हि
महत्त्व
उनके
कोई
थी।
सभी
हमारे
डाला
की है
द्वारा
किय

पाट
चंद
में
ग्रंथ
है
स
'र
क

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

[इंडियन म्यूज़ियम कलकत्ता के अधिकारियों के सौजन्य से]

चंद वरदायी

और

उनका काव्य

[कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी॰ फ़िल॰ उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबंध]

विपिन बिहारी त्रिवेदी

एम्॰ ए॰, डी॰ फ़िल (कलकत्ता)

१९५२

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : २००० : १९५२

मूल्य : ८)

मुद्रक : सेवा प्रेस, इलाहाबाद तथा
न्यू ईरा प्रेस, इलाहाबाद

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति

आचार्य नरेंद्रदेव

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी का आरंभ से ही यह प्रयास रहा है कि अपने साहित्य में जिन विषयों पर बिलकुल कार्य नहीं हुआ है या बहुत कम साहित्य प्रकाशित हुआ है, उन पर प्रामाणिक ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ। हिंदी के आदि कवि चंद वरदायी का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है, पर अभी तक उनके जीवन तथा काव्य आदि के संबंध में एक भी पुस्तक प्रकाश में नहीं आई। यह एक बड़ी कमी थी। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन इसी कमी को दूर करने के लिए किया गया है।

पुस्तक में योग्य लेखक ने उपलब्ध सभी सामग्रियों के खोजपूर्ण अध्ययन के उपरांत चंद वरदायी की जीवनी तथा उनके काव्य की समीक्षा प्रस्तुत की है। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस प्रबंध को डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकार किया है।

आशा है प्रस्तुत ग्रंथ एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करेगा।

हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

भूमिका

हिंदी साहित्य से अनुराग रखनेवाला ऐसा विरला ही व्यक्ति होगा जिसने चन्द-वरदायी रचित पृथ्वीराज रासो का नाम न सुना हो। इस सुप्रसिद्ध ग्रंथ की सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियाँ भारतवर्ष के विभिन्न पुस्तकालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहालयों में हैं तथा इनके अतिरिक्त लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में भी कई प्रतियाँ हैं। इधर की खोज से इतना और स्पष्ट हुआ है कि इन प्रतियों को दीर्घ, मध्यम और लघु संस्करणों में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि इन तीनों प्रकार के संस्करणों में केवल दीर्घ को छोड़कर जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित हो चुका है अन्य संस्करण अभी तक देखने में नहीं आये; परन्तु उनके विषय में जो कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं उनसे उनकी प्रामाणिकता उन्हीं अनुमानों के आधार पर विवादग्रस्त है जो दीर्घ संस्करण के लिए लगाये जाते हैं। प्रक्षेपों और अनैतिहासिक कथानकों की भरमार वाले रासो का समुचित ऐतिहासिक अध्ययन अभी नहीं हुआ है क्योंकि एक विद्वत् समुदाय जहाँ उसकी त्रुटियों का निर्देश करता है और उसे जाली ठहराता है वहाँ दूसरा दल विरोधी दल की युक्तियों को काटने और ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिला-कर उसे प्रतिपादित करने के प्रयत्न में संलग्न दिखाई देता है। परन्तु इस ग्रंथ की प्रसिद्धि और विशेष कर राजपूताने में इसकी लोकप्रियता निर्विवाद है। पूर्ववर्ती उत्तर मध्यकालीन कतिपय शताब्दियाँ ऐसी बीतीं जब कि रासो के कथानकों को सत्य मानकर राजस्थान के अनेक राजवंशों के ख्यात तथा वंशावलियाँ तक रच डाली गईं। यद्यपि उनमें इसके प्रमाण-स्वरूप रासो का उल्लेख नहीं किया गया था परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक खोज ने इसका भंडाफोड़ कर दिया है। रासो की तत्कालीन सर्वव्यापी मान्यता देखकर ही कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान में उसके आधार पर अनेक बातें लिखीं जिनकी उचित आलोचना म० म० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने स्वसम्पादित टाड राजस्थान (अध्याय १-१०) तथा अनेक भागों में प्रकाशित होनेवाले अपने गवेषणात्मक 'राजपूताना का इतिहास' में स्थान स्थान पर की है।

रासो से प्रभावित होनेवाले यूरोपीय विद्वानों में कर्नल टॉड ही नहीं थे जिन्हें उक्त काव्य के पचीस हज़ार छन्दों के अंगरेज़ी अनुवाद का श्रेय दिया जाता है, वरन् रूसी विद्वान् राबर्ट लेंज़, फ्रांसीसी विद्वान् गार्से द तासी तथा अंगरेज़ विद्वान् एफ० एस० ग्राउज़, जान बीम्स, डा० ए० एफ० रुडोल्फ हार्नले और डा० जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन भी थे। इनमें श्री ग्राउज़, बीम्स और हार्नले का प्रयत्न सराहनीय है। डा० हार्नले ने तो रासो के कई अध्याय (समय २६-३५) वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित तथा अनुवादित (स० २७) कर डाले थे जिनका प्रकाशन बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने किया है। यदि डा० बूलर ने सन् १८९३ ई० में रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल को रासो की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट करके उसका सम्पादन न रोक दिया होता तो यह कहने में किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं है कि डा० हार्नले जैसे विद्वान् ने उसके शब्दों की व्युत्पत्ति, ऐतिहासिक प्रमाण, भौगोलिक खोज के

विवरण तथा पदों के अँगरेज़ी अनुवाद और पाठ संशोधन करके इस ग्रन्थ को आज अति सरल बना दिया होता। डा० हार्नले के काम में त्रुटियाँ अवश्य हैं परन्तु यहाँ तो उतना करनेवाला भी कोई नहीं था और इस समय भी अभी तक नहीं है। इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में डा० ग्रियर्सन ने चन्द वरदायी और पृथ्वीराज रासो पर अपने नोट में श्री ग्राउज़,, बीम्स और डा० हार्नले के कार्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि भाषा-विषयक कठिनाई के कारण ये विद्वान् अधिक प्रगति नहीं कर सके।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू चाहे कोई बन ले परन्तु हिन्दी साहित्य में रासो अपने प्रक्षेपों, अनैतिहासिकताओं, पाठान्तरों आदि के होते हुए भी ललकार रहा है कि तुम हमें नहीं समझते तब हमारे ऊपर किस बल-बूते पर फ़तवा देते हो। रासो की भाषा खिचड़ी ही सही और अर्वाचीन ही सही परन्तु आज भी वह एक दुर्भेद्य दीवाल है जो रासोकार और प्रक्षेप-कारों के वास्तविक अर्थ की तह तक पहुँचने में बाधक है।

रासो पर ऐतिहासिक दृष्टि से यदि बहुत कुछ नहीं तो थोड़ा-बहुत तो लिखा ही जा चुका है परन्तु साहित्यिक दृष्टि से उसका मूल्यांकन कुछ भी नहीं हुआ है। भले ही कुछ अंशों में अथवा सम्पूर्ण अंशों में रासो जाली सिद्ध हो परन्तु प्रकाशित रूप में वह जैसा जो कुछ हमारे सामने है उसकी साहित्यिकता की परख अक्षुण्ण रहेगी। बस, इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रस्तुत समीक्षात्मक विवेचना की गई है।

चन्द वरदायी रचित केवल पृथ्वीराज रासो नामक महाकाव्य की ही प्रसिद्धि है तथा कविकृत अन्य रचनाओं की जनश्रुति भी सुनने में नहीं आयी अतएव वर्तमान साहित्यिक विमर्श में रासो मात्र के अध्ययन के नमूनों का दिग्दर्शन कराया गया है एवं इसी उद्देश्य को दृष्टिगत करके प्रस्तुत विभिन्न अंगोंवाली सम्पूर्ण आलोचनात्मक व्याख्या को "चंद वरदायी और उनका काव्य" संज्ञा दी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारंभ में दो चित्र दिये गये हैं—एक है पृथ्वीराज का जिन्हें फ़ारसी इतिहासकार राय पिथौरा भी कहते हैं। और दूसरा चंद वरदायी का। महाराज पृथ्वी-राज चौहान तृतीय के कई प्रसिद्ध चित्र देखने में आये हैं। उनमें कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष म्यूज़ियम, विक्टोरिया मेमोरियल और इंडियन म्यूज़ियम के चित्र अधिक प्रामाणिक हैं तथा इनमें भी इंडियन म्यूज़ियम का एक चित्र प्राचीन है और वही यहाँ दिया गया है।

चंद वरदायी का चित्र जोधपुर कालेज के प्रो० रमाकांत त्रिपाठी को कवि चंद के वंशज नेनूराम भट्ट से प्राप्त हुआ था। नेनूराम के वंश-वृक्ष आदि पर इस पुस्तक में यथा-स्थान प्रकाश डाला गया है। उक्त चित्र पर उसके निर्माण की तिथि सं० १६३० दी हुई है।

गोवर्धन शर्मा लिखित 'महाकवि चंद अने पृथ्वीराज रासो' शीर्षक गुजराती पुस्तक के प्रारंभ में 'महाकवि चंद वरदायी' नाम से एक रंगीन चित्र दिया है जो इंडियन म्यूज़ियम के पृथ्वीराज चौहान के दूसरे चित्र से अनुरूपता रखता है। चित्र के अंदर यह वाक्य है 'श्रीयुत महान कवि चंद वरदाई संवत १६३० चित्र प्रति लिखि गई।' असंभव नहीं कि रासो की प्रसिद्धि होने पर उसमें वर्णित पृथ्वीराज और चंद की सदृश्यता के आधार पर इस प्रकार के चित्र बन गये हों।

अंत में मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पूज्य श्री ललिताप्रसाद जी सुकुल के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी प्रेरणा मुझे हिंदी साहित्य क्षेत्र में कार्य करने के लिए खींच लाई और जिनके सतत निर्देश और प्रोत्साहन से मैं पृथ्वीराज रासो पर प्रस्तुत कार्य कर सका। उनके अतिरिक्त वर्तमान विवेचना के सम्भार में म० म० पं० सकलनारायण शर्मा, म० म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, म० म० पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, मुनिराज जिनविजय, डा० श्यामसुंदर दास, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बनारसीदास जैन, प्रो० एच० डी० वेलणकर, डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, प्रो० हरिवल्लभ भयाणी प्रभृति महामहिम विद्वानों का मैं ऋणी हूँ जो मेरी कठिनाइयों का स्वागत करने तथा उन्हें हल करने के लिये सदा कटिबद्ध रहे और जिनके मार्ग-प्रदर्शन से ही यह अध्ययन प्रस्तुत होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फ़िल० उपाधि हेतु स्वीकृत हुआ।

कलकत्ता की सेन्ट्रल लायब्रेरी, नेशनल लायब्रेरी, एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, विक्टोरिया मेमोरियल, इंडियन म्यूज़ियम तथा बम्बई की युनिवर्सिटी लायब्रेरी और एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकाध्यक्षों के प्रति विशेष आभार है जो मेरे कार्य की प्रगति हेतु मुझे यथाशक्ति सुविधायें प्रदान करते रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय की सेन्ट्रल लायब्रेरी के तत्कालीन अध्यक्ष और अब वागेश्वरी प्रोफेसर डा० नीहार रंजन राय के प्रति भी विशेष कृतज्ञता ज्ञापन मेरा कर्त्तव्य है जिन्होंने लंदन, पेरिस आदि प्रसिद्ध यूरोपीय पुस्तकालयों तथा भारत के राज-दरबार पुस्तकालयों और व्यक्तिगत पुस्तक संग्रहालयों से पृथ्वीराज रासो संबंधी सूचनायें मँगवाने का कष्ट उठाया था।

लखनऊ विश्वविद्यालय
१८ जून, सन् १९५२ ई०

विपिन बिहारी त्रिवेदी

विषय-सूची

चंद वरदायी

[प्रो० रमाकांत त्रिपाठी, एम्० ए०, के सौजन्य से]

अध्याय १

जीवन

पृथ्वीराज रासो में आदि से अन्त तक आये हुए वर्णनों में चंद के जीवन पर जिस प्रकार प्रकाश पड़ा है उसका संक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त कवि के जीवन के विभिन्न अंगों को लेकर स्वतंत्र रूप से प्रत्येक का विवेचन किया गया है।

दिल्ली में अपने श्वसुर अनंगपाल के यहाँ पृथ्वीराज का जन्म सुन कर अजमेर-नरेश सोमेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए (छंद ६८५.६६१, स० १) और उन्होंने लोहाना और चन्द को बुलाकर घर के इन्द्र पृथ्वीराज को अजमेर लाने के लिए कहा :—

तब बुलाय सोमेस बर, लोहानौ अरु चन्द।

लै आवहुँ अजमेर धर, पहौते घरह सु इन्द। छं० ६९२, स० १

इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के जन्म के समय चंद महाराज सोमेश्वर के दरबार में आ गया था और आ ही नहीं गया था वरन् उनका विश्वासपात्र भी हो गया था।

परन्तु इसी समय के कई छन्दों में कहा गया है कि चंद और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था। यदि यह मान लिया जाय कि दोनों का जन्म एक ही दिन और मुहूर्त में हुआ था तब इस सम्भावना के लिए स्थान नहीं रह जाता कि चंद को महाराज सोमेश्वर ने नवजात शिशु पृथ्वीराज को लाने के लिए अजमेर से दिल्ली भेजा होगा। अतएव या तो उपर्युक्त छंद क्षेपक है या वे सारे छन्द जो आगे 'चंद के जन्म' शीर्षक में महाराज पृथ्वीराज और उसका जन्म एक ही दिन होने के प्रमाण-स्वरूप रासो से उद्धृत किये गये हैं। जो भी हो, इतना मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं प्रतीत हो सकती कि चंद महाराज सोमेश्वर के समय में ही दरबार में आ गया था, जिसके अन्य बीसों प्रमाण रासो में उपलब्ध हैं।

कवि चंद और महाराज पृथ्वीराज के पारस्परिक सम्बन्ध तथा घनिष्टता का परिचायक आद्योपान्त पृ० रा० ही है, अतएव उसके वर्णानुक्रम के आधार पर हम देखेंगे कि कवि महाराज के जीवन से कितना घुलामिला था।

पृथ्वीराज के चाचा कन्ह चौहान ने गुर्जर-नरेश भीमदेव चालुक्य के सात चचाज़ाद भाइयों को जो महाराज के आश्रित थे, मूँछ ऐंठने पर सरे दरबार मार डाला था, जिस अपराध के फलस्वरूप पृथ्वीराज ने कन्ह की आँखों पर चढ़ाने के लिए एक हीरे-पन्नों से जड़ी सोने की पट्टी बनवाई, जिसको उनकी आँखों पर बाँधने का काम चंद ने सम्पादित किया:—

कंचन किलाव लगाय कल, पट्टा बंधिय चंद भट।

तिहि बेर कन्ह चहुआन चष, रूप प्रगटि अति षिन्निवट। छं ९५, स० ५

एक समय अपने सामन्तों को लेकर पृथ्वीराज मृगया हेतु चल दिये क्योंकि यह उनका परम व्यसन सा था। साथ में चंद भी था। बीच में भटक कर चंद अलग जा पड़ा और उस बीहड़ में मार्ग खोजते हुए एक ऋषि के सामने जा पहुँचा। चतुर कवि ने ऋषि को प्रसन्न करके उनसे बावन वीरों को वशीभूत करनेवाला मंत्र प्राप्त कर लिया। क्रमशः वह सब दल से आ मिला और महाराज से उसने अपनी इस सिद्धि का हाल बताया जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि :—

तो सम न और तिहुँ लोक में, नट्ट भट्ट नाटिक्क नर।

संसार पार वोहिथ समह, तोहि मात देवी सुवर। छं० ४८, स० १

फिर चंद ने हवन और मंत्रोच्चारण करके वीरों का दरबार में आह्वान किया। पृथ्वीराज ने चंद से उक्त मंत्र सब सामंतों को बतला देने के लिए कहा और उसने बिना किसी आनाकानी के उनकी आज्ञा का पालन किया। कवि की सिद्धि और त्याग-भावना परिलक्षित कर प्रसन्न हो संभरेश ने उसे बीस ग्राम तथा एक सुसज्जित हाथी और घोड़ा दिया (छंद १७२—१७८, स० ६)। बस यही प्रथम घटना है जिसमें कवि को अपनी जीविका हेतु इतना बड़ा पुरस्कार प्राप्त होने का प्रमाण मिलता है। इसके उपरान्त पृ० रा० में क्रमशः कवि चंद की उन्नति और दरबार में सम्मानित पद प्राप्त होने के वर्णन मिलते हैं। वीरों का वशीकरण कवि के जीवन की उन्नति की नींव का प्रथम प्रस्तर था।

वह क्रमशः महाराज का सलाहकार हो गया। शहाबुद्दीन द्वारा निर्वासित मीर हुसेन जब नागौर आकर पृथ्वीराज का शरणार्थी हुआ तो चंद से भी सलाह ली गई (छं० १५-१६, स० ६) और कवि ने उसे शरण देने की सम्मति इन शब्दों में दी :—

शंकर गर विष कंद जिम, वड़वा अगनि समंद।

तै रष्षहु चहुआन तिम, षां हुसेन कहि चंद। छं० १७, स० ६

तदुपरान्त शरण देने पर कवि ने महाराज की मुक्तकंठ से प्रशंसा की (छं० २०, स० ६)। दिल्लीश्वर अनंगपाल ने जब पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर स्वयं बद्रिकाश्रम जाने का संदेश भेजा तब सामंतों का मत जान लेने के पश्चात् चंद की भी सलाह महाराज ने ली :—

सब भट पूछि पूछि कवि चंदह, तुम बरदाइ लही बुधि कंदह।

किम अप्पै पित मात धरंनिय, सब बिरतंत कहौ मन करनिय। छं० ७, स० १८

चंद ने ध्यानपूर्वक देवी का आह्वान करके बतलाया कि ज्योतिषी व्यास की भविष्यवाणी के अनुसार चौहान का राज्य पूर्ण तेजस्वी होगा (छं० ८-६, स० १८)। चंद द्वारा सारी वार्ता सुनकर पृथ्वीराज ने दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया।

तंत्र-मंत्र विद्या में निष्णात् कवि को अपना कौशल दिखाने का अवसर शीघ्र ही आया। गुर्जर-नरेश भोला भीमदेव चालुक्य के मन्त्री अमरसिंह सेवरा ने अपनी मन्त्र-

विद्या से पृथ्वीराज के मंत्री कैमास दाहिम पर वशीकरण करके चौहान-नरेश-अधिकृत नागौर नगर में चालुक्य राज्य की आन फेर दी। स्वप्न में इस वृत्तांत का परिचय पाकर चंद नागौर गया और अपने मंत्र बल से जैन की माया को विनष्ट कर दिया, जिसके फल-स्वरूप कैमास का उद्धार हुआ और चौहान दल की विजय हुई (छंद २१२—३०७, स० १२)।

कार्य-व्यस्त न होनेपर पृथ्वीराज चंद से अपनी शंका-निवारणार्थ नाना प्रकार के प्रश्न किया करते थे। फाल्गुण मास में लज्जा-त्याग और कार्तिक में दीप जलाने के कारण पूछे जाने पर चंद ने क्रमशः पृ० रा० की होली कथा और दीपमालिका कथा में उसका वर्णन किया।

एक बार मृगया से लौटकर जब महाराज पृथ्वीराज सिंहासनारूढ़ हुए, अन्य सामन्त-गण आये और चंद ने भी आकर पुष्पवर्षा की। तदुपरान्त नागौर के षट्टू बन की भूमि में गड़े हुए खजाने को खोद निकालने की चर्चा हुई। सब के सहमत होने पर षट्टू बन की यात्रा की गई। खजाने का पत्थर तोड़ते ही एक बड़ा भारी सर्प निकला जिसे चंद ने अपने मंत्रबल से बाँध लिया। बारह हाथ खोदने पर एक देव निकला जिसने अनेक प्रकार की माया रचकर लड़ाई ठान दी। चंद ने देवी से प्रार्थना करके दानव को मारने का वरदान प्राप्त किया। दानव पराभूत हुआ। दुर्गा देवी का आह्वान करके चंद ने इस राक्षस और धन की कथा जानी। चंद ने उक्त देव को भी प्रसन्न कर लिया और खजाना खोदने में उसकी सहायता प्राप्त की। सारा द्रव्य निकाला गया। पृथ्वीराज के बहनोई रावल समरसिंह ने चंद को मोतियों की माला भेंट की। इस प्रकार चंद ने पृथ्वीराज की सहायता की (स० २४)।

देवगिरि के यादव राजा की कन्या शशिव्रता का हरण करने चलते समय महाराज को अपशकुन हुए। पूछने पर चंद ने कहा कि या तो विषम युद्ध अथवा गृह-विच्छेद ही परिणाम समझ पड़ता है और नरेश को कान्यकुब्जेश्वर जयचंद के बैर का स्मरण दिलाते हुए समझाया कि इस काम में हाथ देना मानो बैठे बिठाये भयंकर शत्रु को जगाना है। परन्तु वय, पराक्रम, राज्य और काममद से मत्त राजा ने उसकी सलाह की उपेक्षा करके दक्षिणी यात्रा का अभियान कर दिया (स० २५)। इससे स्पष्ट है कि चंद निर्भीक भाव से उचित सम्मति देना अपना कर्त्तव्य समझता था, भले ही वह मान्य न हो। इसी समय में हम पढ़ते हैं कि दक्षिण-यात्रा का फल विषम हुआ। दिल्ली और कन्नौज साम्राज्यों की पारस्परिक शत्रुता के अंकुर दृढ़ हो गये और कालान्तर में इस विष-वृक्ष ने दोनों महान शक्तिशाली हिन्दू शासन-केन्द्रों का विनाश कर डाला।

कवि इस समय तक महाराज का परम विश्वास-भाजन बन चुका था। घग्घर युद्ध में पराजित बन्दी शाह ग़ोरी से दंड-स्वरूप पाया हुआ सारा सोना चंद के संरक्षण में रावल जी के पास चित्तौड़ भेजा गया था। रावल जी से बहुमूल्य दान प्राप्त करके कवि लौटा (स० २६)।

उज्जैन के राजा भीम ने प्रथम पृथ्वीराज को अपनी कन्या देने का वचन दिया था।

कंचन किलाव लगाय कल, पट्टा बंधिय चंद भट।

तिहि बेर कन्ह चहुआन चष, रूप प्रगटि अति षित्रिवट। छं ९५, स० ५

एक समय अपने सामन्तों को लेकर पृथ्वीराज मृगया हेतु चल दिये क्योंकि यह उनका परम व्यसन सा था। साथ में चंद भी था। बीच में भटक कर चंद अलग जा पड़ा और उस बीहड़ में मार्ग खोजते हुए एक ऋषि के सामने जा पहुँचा। चतुर कवि ने ऋषि को प्रसन्न करके उनसे बावन वीरों को वशीभूत करनेवाला मंत्र प्राप्त कर लिया। क्रमशः वह सब दल से आ मिला और महाराज से उसने अपनी इस सिद्धि का हाल बताया जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि :—

तो सम न और तिहुँ लोक में, नट्ट भट्ट नाटिक्क नर।

संसार पार वोहिथ समह, तोहि मात देवी सुवर। छं० ४८, स० ६

फिर चंद ने हवन और मंत्रोच्चारण करके वीरों का दरबार में आह्वान किया। पृथ्वीराज ने चंद से उक्त मंत्र सब सामंतों को बतला देने के लिए कहा और उसने बिना किसी आनाकानी के उनकी आज्ञा का पालन किया। कवि की सिद्धि और त्याग-भावना परिलक्षित कर प्रसन्न हो संभरेश ने उसे बीस ग्राम तथा एक सुसज्जित हाथी और घोड़ा दिया (छंद १७२—१७८, स० ६)। बस यही प्रथम घटना है जिसमें कवि को अपनी जीविका हेतु इतना बड़ा पुरस्कार प्राप्त होने का प्रमाण मिलता है। इसके उपरान्त पृ० रा० में क्रमशः कवि चंद की उन्नति और दरबार में सम्मानित पद प्राप्त होने के वर्णन मिलते हैं। वीरों का वशीकरण कवि के जीवन की उन्नति की नींव का प्रथम प्रस्तर था।

वह क्रमशः महाराज का सलाहकार हो गया। शहाबुद्दीन द्वारा निर्वासित मीरहुसेन जब नागौर आकर पृथ्वीराज का शरणार्थी हुआ तो चंद से भी सलाह ली गई (छं० १५-१६, स० ६) और कवि ने उसे शरण देने की सम्मति इन शब्दों में दी :—

शंकर गर विष कंद जिम, वड़वा अगनि समंद।

तै रष्षहु चहुआन तिम, षां हुसेन कहि चंद। छं० १७, स० ६

तदुपरान्त शरण देने पर कवि ने महाराज की मुक्तकंठ से प्रशंसा की (छं० २०, स० ६)। दिल्लीश्वर अनंगपाल ने जब पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर स्वयं बद्रिकाश्रम जाने का संदेश भेजा तब सामंतों का मत जान लेने के पश्चात् चंद की भी सलाह महाराज ने ली :—

सब भट पूछि पूछि कवि चंदह, तुम बरदाइ लहौ बुधि कंदह।

किम अप्पै पित मात धरंनिय, सब बिरतंत कहौ मन करनिय। छं० ७, स० १८

चंद ने ध्यानपूर्वक देवी का आह्वान करके बतलाया कि ज्योतिषी व्यास की भविष्यवाणी के अनुसार चौहान का राज्य पूर्ण तेजस्वी होगा (छं० ८-९, स० १८)। चंद द्वारा सारी वार्ता सुनकर पृथ्वीराज ने दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया।

तंत्र-मंत्र विद्या में निष्णात् कवि को अपना कौशल दिखाने का अवसर शीघ्र ही आया। गुर्जर-नरेश भोला भीमदेव चालुक्य के मन्त्री अमरसिंह सेवरा ने अपनी मन्त्र-

विद्या से पृथ्वीराज के मंत्री कैमास दाहिम पर वशीकरण करके चौहान-नरेश-अधिकृत नागौर नगर में चालुक्य राज्य की आन फेर दी। स्वप्न में इस वृत्तांत का परिचय पाकर चंद नागौर गया और अपने मंत्र बल से जैन की माया को बिनष्ट कर दिया, जिसके फल-स्वरूप कैमास का उद्धार हुआ और चौहान दल की विजय हुई (छंद २१२—३०७, स० १२)।

कार्य-व्यस्त न होनेपर पृथ्वीराज चंद से अपनी शंका-निवारणार्थ नाना प्रकार के प्रश्न किया करते थे। फाल्गुण मास में लज्जा-त्याग और कार्तिक में दीप जलाने के कारण पूछे जाने पर चंद ने क्रमशः पृ० रा० की होली कथा और दीपमालिका कथा में उसका वर्णन किया।

एक बार मृगया से लौटकर जब महाराज पृथ्वीराज सिंहासनारूढ़ हुए, अन्य सामन्त-गण आये और चंद ने भी आकर पुष्पवर्षा की। तदुपरान्त नागौर के षट्टू बन की भूमि में गड़े हुए खजाने को खोद निकालने की चर्चा हुई। सब के सहमत होने पर षट्टू बन की यात्रा की गई। खजाने का पत्थर तोड़ते ही एक बड़ा भारी सर्प निकला जिसे चंद ने अपने मंत्रबल से बाँध लिया। बारह हाथ खोदने पर एक देव निकला जिसने अनेक प्रकार की माया रचकर लड़ाई ठान दी। चंद ने देवी से प्रार्थना करके दानव को मारने का वरदान प्राप्त किया। दानव पराभूत हुआ। दुर्गा देवी का आह्वान करके चंद ने इस राक्षस और धन की कथा जानी। चंद ने उक्त देव को भी प्रसन्न कर लिया और खजाना खोदने में उसकी सहायता प्राप्त की। सारा द्रव्य निकाला गया। पृथ्वीराज के बहनोई रावल समरसिंह ने चंद को मोतियों की माला भेंट की। इस प्रकार चंद ने पृथ्वीराज की सहायता की (स० २४)।

देवगिरि के यादव राजा की कन्या शशिव्रता का हरण करने चलते समय महाराज को अपशकुन हुए। पूछने पर चंद ने कहा कि या तो विषम युद्ध अथवा गृह-विच्छेद ही परिणाम समझ पड़ता है और नरेश को कान्यकुब्जेश्वर जयचंद के बैर का स्मरण दिलाते हुए समझाया कि इस काम में हाथ देना मानो बैठे बिठाये भयंकर शत्रु को जगाना है। परन्तु वय, पराक्रम, राज्य और काममद से मत्त राजा ने उसकी सलाह की उपेक्षा करके दक्षिणी यात्रा का अभियान कर दिया (स० २५)। इससे स्पष्ट है कि चंद निर्भीक भाव से उचित सम्मति देना अपना कर्त्तव्य समझता था, भले ही वह मान्य न हो। इसी समय में हम पढ़ते हैं कि दक्षिण-यात्रा का फल विषम हुआ। दिल्ली और कन्नौज साम्राज्यों की पारस्परिक शत्रुता के अंकुर दृढ़ हो गये और कालान्तर में इस विष-वृक्ष ने दोनों महान शक्तिशाली हिन्दू शासन-केन्द्रों का विनाश कर डाला।

कवि इस समय तक महाराज का परम विश्वास-भाजन बन चुका था। घघर युद्ध में पराजित बन्दी शाह ग़ोरी से दंड-स्वरूप पाया हुआ सारा सोना चंद के संरक्षण में रावल जी के पास चित्तौड़ भेजा गया था। रावल जी से बहुमूल्य दान प्राप्त करके कवि लौटा (स० २६)।

उज्जैन के राजा भीम ने प्रथम पृथ्वीराज को अपनी कन्या देने का वचन दिया था।

जिसे वह बाद में पलट गया। अन्य सामन्तों और पुरोहित के साथ महाराज ने चंद को भी राजा को समझा बुझाकर राज़ी कर लेने के लिए भेजा। सबके कहने-सुनने पर भीम ने कहा कि :—

अहो चंद दंद न करहु, तुम कुल दंद सुभाउ।
जैतराव मिलि राम गुरु, लै काने समझाउ। छं० १६, स० ३३

किसी प्रकार परिस्थिति सम्हलते न देखकर युद्ध का आश्रय लेना पड़ा, जिसमें चौहान विजयी हुए और राजा भीम की कन्या से उनका विवाह हो गया।

चंद स्वप्न-फल बतलाने और अदृश्य वर्णन में पूर्ण पंडित था। रणथम्भौर युद्ध की समाप्ति पर रात्रि में पृथ्वीराज ने स्वप्न में एक चंद्रवदनी स्त्री को प्रेमालिंगन किया परन्तु नींद खुलने पर उसे न पाया। स्वप्न का वर्णन सुनकर चंद ने कहा कि उक्त रमणी आपकी भावी स्त्री हंसावती है तथा उसका नखशिख-वर्णन करके भी महाराज को सुनाना प्रारम्भ कर दिया। यह बातें हो ही रही थीं कि राजा भान का पुरोहित लग्न लेकर हंसावती के विवाह हेतु आ गया (छं० ८६-६८, स० ३६)।

कट्टर हिन्दू-भक्त कवि चंद ने एक बार श्री द्वारिकाधीश के दर्शन हेतु तीर्थयात्रा की। महाराज ने तो अनेक वस्तुएँ दीं ही, सारे सामन्तों ने भी अपने मित्र कवि को घोड़े, हाथी तथा अन्य साज-सामान दिया (महाराज का विश्वासपात्र होकर भी चंद अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण दरबार के सामन्तों का कभी भी द्वेषभाजन नहीं होने पाया)। वह जहाँ दान लेना जानता था वहाँ दान देने में भी मुक्तहस्त था। द्वारिकापुरी में उसने भूमि, हाथी, घोड़े, रथ, सुवर्ण और वस्त्रों का ख़ूब दान किया था। वहाँ से लौटते समय पट्टनपुर में उसने चालुक्य-नरेश के आमंत्रण पर अमरसिंह सेवरा से शास्त्रार्थ करके अपने मंत्र-तंत्र से उसे प्रायः वशीभूत कर लिया। इस ४२ वें समय में हमें तत्कालीन प्रचलित अंध विश्वासों पर चंद का आस्था होने के प्रमाण मिलते हैं (छं० ४८)। जैनधर्म की रीतियों के प्रति उसका चुभनेवाला व्यंग्यात्मक उपहास भी बरबस ध्यान आकर्षित कर लेता है (छं० ४६)। लौटते समय पट्टनपुर में कवि को महाराज का पत्र मिला कि गज्जनेश चढ़ आया है और स्वामिधर्म-निरत भट्ट कवि युद्धकाल में नरेश का साथ देने के लिए कूच पर कूच बोलता हुआ दिल्ली की ओर प्रस्थित हो गया (स० ४२)।

अपने पिता सोमेश्वर की मृत्यु का बदला लेने के लिए महाराज पृथ्वीराज ने गुर्जर-नरेश भीमदेव पर चढ़ाई कर दी। भीमदेव को भड़काने का कार्य चंद को सौंपा गया। पृथ्वीराज का संदेश स्वयं उभाड़ने वाला था, परन्तु चंद ने इतना वेष और बनाया। गले में जाल और नसेनी डाली, एक हाथ में कुदाल और दीपक लिया तथा दूसरे हाथ में एक अंकुश और त्रिशूल लिया। भीमदेव ने देखते ही पूछा कि यह वेश कैसा ? चंद ने निर्भीकता से उत्तर दिया कि पृथ्वीराज का कहना है कि यदि भीमदेव जल में छिपेगा तो इस जाल से पकड़ूँगा। यदि आकाश में जावेगा तो यह नसेनी लगाऊँगा, यदि पाताल में घुसेगा तो इस कुदाल से खोद निकालूँगा, यदि अंधकार में छिपेगा तो इस दीपक से

ढूँढ़ लूँगा, फिर इस अंकुश से उसे अपने वश में करके इस त्रिशूल से मार डालूँगा और अधिक क्या कहा जाता। भीमदेव ने क्रोध से फुफकारते हुए कहा कि मैं इन धमकियों से डरनेवाला नहीं हूँ। जो भाट का पुत्र हो वही तुम्हें वाक्य-कौशल दिखा सकता है, मैं तो रण में कौशल दिखानेवाला हूँ। संभरीश से कह देना कि उसके जी में जो भरा हो उसे पूरा कर ले (स० ४४)। चंद वार्तालाप और दूतकार्य में अति निपुण था। युद्ध होना अनिवार्य हो गया, जिसमें भीमदेव चालुक्य ने वीरगति पाई। इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध सदृश जटिल और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों में चंद का विश्वास किया जाता था।

कर्नाटकी वेश्या के कारण मंत्री कैमास दाहिम के महाराज पृथ्वीराज द्वारा बध का आद्योपान्त वर्णन चंद की देवी ने उसे बतला दिया था, जिससे उसका चित्त बड़ा दुःखी हुआ। दूसरे ही दिन दरबार में सबके उपस्थित होने पर महाराज ने कई बार कहा कि सब लोग आगये लेकिन कैमास का अभी पता नहीं है, फिर कवि को सम्बोधन कर कहा कि वरदायी क्या तुम बतला सकते हो? चंद ने कहा कि, हाँ, मैं तो बता ही दूँगा। महाराज को ताव आ गया। उन्होंने कहा कि यदि तुम दुर्गा के सच्चे भक्त हो और अपने को वरदायी प्रसिद्ध करते हो तो कैमास का अदृश्य कहो अथवा अपनी सिद्धि की बात कहना छोड़ दो। इस प्रकार प्रचारे जाने पर स्पष्ट वक्ता कवि अपने को अधिक न रोक सका। उसने फिर भरे दरबार में पूछ ही तो डाला कि आपने कैमास को क्यों मारा? फिर कहा कि, हे पृथ्वीनरेश, आपका प्रथम बाण चूक गया तब दूसरे बाण से आपने उसे मार डाला और पश्चात् खोदकर उसे गाड़ दिया। हे सोमेश्वरनंदन, आपने यह कैसा प्रलय कर डाला? सरे दरबार इस प्रकार अपना भंडाफोड़ देखकर पृथ्वीराज का मस्तक झुक गया और सामन्तगण अति खिन्न-हृदय होकर क्रमशः उठ गये, सब के अन्त में चंद भी दो चार भर्त्सना के वाक्य कह कर चला आया। यह समाचार सारे नगर में फैल गया और चारों ओर उदासी छा गई। पृथ्वीराज ने सबसे मिलना-जुलना छोड़ एकांतवास ग्रहण कर लिया। कैमास की स्त्री को सती होने के लिये अपने पति का शव भी न मिल सका। अन्त में उसने चन्द का आश्रय लिया और कवि ने अपने प्राणों की बाजी लगा कर महाराज को अनेक प्रकार से ऊँचा-नीचा समझा कर प्रसन्न करके कैमास का शव उसकी स्त्री को दिला दिया और कैमास के पुत्र को कैमास की जागीर दिला दी (स० ५७)।

यह ध्यान में रखने की बात है कि इस समय तक चंद वरदायी का महाराज पृथ्वीराज पर कितना प्रभाव बढ़ गया था। चंद ने भरी सभा में संभरेश का कृत्य कह दिया। क्रोधी नरेश को सारे सामंतों में से कोई भी समझाने-बुझाने का साहस न कर सका, वैसे यह भी सम्भव है कि सारे सामंत रुष्ट हो गये हों और वे महाराज से न मिलना चाहते हों, जैसा कि ५७ वें समय के अन्त में दरबार में महाराज द्वारा सब से क्षमा-याचना का वर्णन पढ़कर हमें आभास मिलता है। परन्तु इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि चंद के प्रयत्न से ही यह दुर्भाव और वैमनस्य दूर हुआ था। चंद के यह वचन देने पर कि वह कन्नौज के दल-पंगुरे का दरबार दिखायेगा, पृथ्वीराज ने कैमास का शव दिया था। इस घटना के बाद से चंद का सम्मान और अधिक बढ़ गया, जैसा कि आगे स्पष्ट

होगा। कुछ अंशों में यहाँ तक कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि चंद ने पृथ्वीराज को अपने वशीभूत कर लिया था।

अब तक चंद बरदायी के पांडित्य का यश दूर दूर तक फैल चुका था। शाह गोरी के हिन्दू कवि भट्ट दुर्गा केदार ने शाह से पृथ्वीराज चौहान के यहाँ जाने की अनुमति लेकर प्रस्थान किया और पानीपत में चौहान-नरेश से मिला तथा चंद से शास्त्रार्थ करने की आकांक्षा प्रकट की। दोनों कवि बैठ गये, पहिले दोनों ने साहित्यिक दाँव-पेच दिखाये फिर मंत्र-तंत्र चलाने लगे; इसी प्रकार नाना भाँति की उखाड़-पछाड़ हुई। कोई किसी से घटकर न ठहरता था। अन्त में ये दोनों कवि बराबर सिद्ध हुए। दुर्गा केदार महाराज से भलीभाँति पुरस्कृत हो लौट गया (स० ५८)।

दरबार में महाराज पृथ्वीराज के पीछे ब्रह्मा सदृश गुरु राम पुरोहित का आसन रहता था और उसके सामने चंद रहता था :—

गुरु राम पिट्ठ विराजयं। जनु वेद ब्रह्म सु साजयं।

मुष अग्ग चंद सु भूषनं। रज रीति हद्द सु रष्षनं। छ० १८, स० ५६

एक दिन दरबार में चंद का सत्कार करते हुए महाराज पृथ्वीराज ने कहा कि कमधज्ज ने हमें अपने दरबार का द्वारपाल बनाकर थाप रखा है; मैं अब जीवन की वांछना नहीं करता; कवि तुम भी विचारो, पंगानी के दृढ़व्रत धारण का निश्चय तुम सुन ही चुके होंगे। अतएव कन्नौज चलने के मत पर विचार करो, चंद ने उत्तर दिया कि, हे संभरी-नरेश, आप पंग को जानते ही हैं, उन्होंने आपके सारे देश को जला दिया है तथा दिल्ली पर आक्रमण कर उसे धूल में मिला दिया है। सर्प के मुख में कौन उँगली दे तथा यम से कौन हाथ मिलावे? कन्नौज जाने में कुशल नहीं है। अनेक प्रकार से समझाने पर जब पृथ्वीराज ने अपना विचार न छोड़ा तब चंद ने हाँ कर ली, इस समय एक प्रहर रात्रि अवशेष थी। दरबार समाप्त हुआ (स० ६०)।

कुछ दिन बाद पृथ्वीराज ने चंद से कहा कि मुझे दलपंगुरे के यहाँ ले चलो। उसने कहा कि शूरता का बाना अलग रखिये और छद्म-वेष ग्रहण कीजिये तभी पंग का दर्शन सम्भव होगा। यह सुनकर नरेश संशय में पड़ गये तथा सामन्तों ने भी न जाने की सलाह दी। अन्त में वे चंद के पानधार बनने को प्रस्तुत हो गये, जिसका मंत्री जैतराव ने यह कह कर विरोध किया कि तेजस्वी नहीं छिपता। रात्रि में राजा ने एक स्वप्न देखा। चंद ने कहा कि इसका फल यह है कि आप शत्रु को परास्त कर सफल मनोरथ होंगे। बस एक दिन अचानक महाराज अपने सामंतों और चंद सहित चल दिये, मार्ग में नाना प्रकार के भयंकर अपशकुन हो रहे थे। सब लोग घबड़ाये, कुछ खास लोगों को छोड़ कर गन्तव्य किसी को विदित न था। अगले पड़ाव पर पृथ्वीराज ने सब के सामने अपना मन्तव्य रखा और कहा कि युद्ध का अवसर उपस्थित हो जाने पर सब लोग कार्य साधें। मार्ग में एक देव, हनुमान जी और सिंहवाहिनी देवी का साक्षात्कार करते हुए सब लोग गंगा जी के किनारे किनारे चल कर कन्नौज पहुँच गये। अबतक सबके सब वेष बदल चुके थे। नगर प्रवेश करते ही अशुभ शकुन हुए। चंद ने कहा कि अरिष्ट-सूचक भाव हैं, किन्तु भावी प्रबल है, इसे सुनकर

चौहान-नरेन्द्र हँस दिये। महाराज कवि के पानों की छग्गर लेकर उसके खवास बन चुके थे। चंद अपने दलबल सहित राजा जयचंद के द्वारपाल के सामने जा उपस्थित हुआ। द्वारपालों के नायक रघुवंशी हेजम कुमार को अपनी बातचीत से प्रसन्न करके उसने अपने आने का संदेश महाराज जयचंद के पास भिजवा दिया। जयचंद ने कवि की योग्यता की परीक्षा लेने के लिये अपने दसौंधी को भेजा, कवि ने अपनी अदृश्य-वर्णन-शक्ति द्वारा जयचंद के दरबार तथा सारे सरदारों के नाम-ग्राम आदि का वर्णन करके उसे प्रसन्न कर लिया। दसौंधी द्वारा इस विलक्षण प्रतिभा-संपन्न कवि का समाचार पाकर पंग-नरेश ने उसे अपने पास बुलवा लिया। चंद ने पहुँचते ही महाराज को आशीर्वाद दिया और उनकी विरुदावलि यह कहते हुए समाप्त की कि 'अकेले पृथ्वीराज ही आपको कुछ नहीं समझते।' भरी सभा में जयचद यह सुन कर क्रोधित हो उठा और बोला कि जंगलराव (भील, पृथ्वीराज) के राज्य में रहकर भी बरद्दिया (बैल, वरदायी) क्यों दुबला हो गया? चंद ने इससे भी चुभनेवाली कटूक्ति में कहा कि पृथ्वीराज के शत्रुओं ने सारी घास खा डाली इसी से बरद्दिया दुबला हो गया। इस वार्तालाप में अंततः महाराज जयचंद दब गये और उन्होंने दूसरी चर्चा छेड़ दी। कवि ने इन्हीं बातों के सिलसिले में उन्हें बतलाया कि एक बार संभरी-नरेश ने किस प्रकार मोर्चा लेकर ग़ोरी शाह के कन्नौज आक्रमण करने का प्रयत्न निष्फल किया था। पृथ्वीराज के पराक्रम की बात फिर बढ़ती देखकर जयचंद ने पूछा कि आख़िर तुम्हारे नरेश के पास कितने शूरमा और कितने देश हैं तथा उनकी सादृश्यता कैसी है? सब बतला रक चंद ने अपने पानधार से पृथ्वीराज की सादृश्यता की, जयचंद और छद्मवेशी चौहान परस्पर घूरने लगे, परन्तु जयचंद ने सोचा कि चाहे जो कुछ भी हो पृथ्वीराज खवास नहीं बन सकते, फिर चंद ने प्रसंग चला कर कहा कि इस समय पृथ्वीराज ने रीति-नीति से अपना बल-वैभव बढ़ाया है, परन्तु कलिकाल में आपका यज्ञ करना नीतिसंगत नहीं था। इसी अवसर पर जयचंद की आज्ञा से कर्नाटकी दासी कवि को पान देने के लिये आई और छद्मवेशी खवास पृथ्वीराज को पहचान कर उसने लज्जा से घूँघट खींच लिया। इस भाँति अपनी बात खुलती देख चंद ने संकेत से उसका अवगुंठन हटवा कर परिस्थिति सम्हाली। महाराज जयचंद ने नगर के पश्चिम प्रान्त में कवि को सत्कार-पूर्वक ठहराया और उसके सारे दलबल के लिये भोजन की उचित व्यवस्था की। पंग की महारानी ने भी छः भाषाओं में व्युत्पन्न कवि के लिये अलग से एक अच्छी भेंट भेजी, डेरों पर आकर लोग यथास्थान हो गये। पृथ्वीराज गद्दी पर बैठ गये और नियमानुसार दरबार लग गया। सन्देह तो हो ही चुका था। गुप्तचर लगे हुए थे, यह समाचार जयचंद को मिला। अपने मंत्री रावण की सलाह से जयचंद चंद कवि की विदाई हेतु एक लम्बी चौड़ी भेंट का प्रबन्ध कर उसके डेरों पर गये। कान्यकुब्जेश्वर का आगमन सुन कर दरबार का रूप पलट गया और पृथ्वीराज पुनः पानधार खवास हो गये। बातचीत होने लगी, चंद ने खवास से जयचंद को पान देने के लिये कहा, खवास रूपी पृथ्वीराज ने बायें हाथ से पान देते समय जयचंद की हथेली में अपना नख इतने ज़ोर से चुभाया कि रक्त की धारा बह चली, अब सन्देह स्पष्ट हो चुका था। जयचंद ने अपने

महल में आकर तुरन्त चंद के डेरे घेरने और खवास को पकड़ने की आज्ञा दी। मंत्री रावण ने फिर सलाह दी कि यह सब आपको चिढ़ाने के लिये किया गया है। अच्छा हो यदि चंद से स्पष्ट पूछ लिया जाय, वरदायी कभी भी असत्य भाषण न करेगा। अस्तु, चंद से बुलाकर पूछा गया और उसने अपने साथ महाराज पृथ्वीराज का होना स्वीकार करते हुए अन्य साथी सामन्तों के नाम ग्राम और यश ख़ुलासा कह डाले। फिर क्या था चक्रवर्ती सम्राट् पंग की अस्सी लाख सेना के निशान पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये बज उठे। अविलम्ब विकट युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी बीच पृथ्वीराज दलपंग-नरेश की पुत्री अनुपम सुन्दरी राजकुमारी संयोगिता (संयुक्ता) का हरण कर उसे अपने साथ घोड़े पर बिठाले हुए अपने दल में आ गये। सामन्तों ने महाराज से स्वयं दिल्ली चले जाने की प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। चारों ओर से घिरा सामन्तदल क्रमशः दिल्ली की ओर बढ़ने लगा। एक एक करके सामन्त मोर्चा रोकने लगे। पृथ्वीराज के बहुत रोकने पर भी चंद कवि ने युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे देख कर शूरवीर तक वाह वाह कर उठे। उनचास सामन्तों के खेत रहने पर शेष सामन्तों ने चंद को समझाया कि पृथ्वीराज को समझाकर अभी भी फेर लो। अस्तु चंद उनके घोड़े के सन्मुख जा खड़ा हुआ। और उनका शौर्य बखानते हुए कहा कि आप के सदृश न किसी ने किया है और न करेगा, अब घर चलिये, पुनः सबकी कीर्ति बढ़ेगी तथा राजा के घोड़े की बाग पकड़ ली और उसे दिल्ली ले जाने वाले मार्ग पर खींच ले चला। दिल्लीश्वर को पकड़ने के लिये पुनः पंग के निशान बज उठे। इस युद्ध में चौंसठ सामन्त मारे गये तब कहीं महाराज संयोगिता सहित सकुशल दिल्ली पहुँच सके (स० ६१)।

इस समय में चंद का बढ़ा हुआ प्रभाव स्पष्ट ही लक्षित होता है। कन्नौज युद्ध की विजय बड़ी महँगी पड़ी थी। पृथ्वीराज और सामन्त बहुत उदास हो गये थे। इसी नैराश्य और दुःखजनित वातावरण का वेग कम करने के लिये मृगया का आयोजन किया गया, पानीपत के जंगलों में डेरे पड़ गये, रानियाँ भी वहाँ पहुँच गई। शिकार और प्रीतिभोज बड़े आनन्द से हुए। फिर एक दिन सारा समुदाय दिल्ली लौट चलने के लिये प्रस्तुत हो गया था कि इतने में ही एक गुफा में सिंह के होने का समाचार आया। पृथ्वीराज ने उसमें घास फूस भर कर ख़ूब धुआँ करने की आज्ञा दी। उस धुएँ से व्याकुल होकर सिंह के स्थान पर अति क्रोध में भरे एक ऋषि निकले और उन्होंने शाप दिया कि जिसने मेरे नेत्रों को इतनी पीड़ा पहुँचाई है वह अपने शत्रु द्वारा अंधा किया जाय। इस भयंकर शाप को सुनकर पृथ्वीराज किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये तथा अन्य लोग सन्नाटे में आ गये। केवल चंद दौड़ कर ऋषि के चरणों में गिर पड़ा और उनकी प्रशंसा करता हुआ बोला कि 'स्वामिन्, शाप से उद्धार कीजिये। सिंह के भ्रम से धूम किया गया था। नरेन्द्र संकुचित हैं और भय से काँप रहे हैं, सोमेश्वर-पुत्र की रक्षा कीजिये, आपको छोड़ हमें कौन शरण देगा, पृथ्वीराज की रक्षा कीजिये', इत्यादि। ऋषि चंद के वाक्यों से द्रवित हो गये और बोले कि मेरा वचन तो मिथ्या न होगा, परन्तु यह वरदान है कि चौहान, तुम और सुलतान ग़ोरी एक ही साथ मृत्यु को प्राप्त होंगे।

नृप चहुआन रु चन्द्र कवि, अरु गोरी सुलतान ।
इक मुहूरत में मरैं, इह हम दिय वरदान । छं० १७१, स० ६३

यह सुनकर पृथ्वीराज प्रसन्न होकर ऋषि के पैरों पर गिर पड़े और ऋषि ने उनका सिर उठा लिया । तत्पश्चात् चंद ने ऋषि से सांसारिक रीति नीति पर अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने बड़ा अच्छा समाधान किया । फिर ऋषि से आज्ञा पाकर सब लोग दिल्ली आये परन्तु उत्साह नष्ट हो चुका था । (स० ६३) वाक्य चातुर्य के अतिरिक्त चंद-साम नीति में भी पटु था । ऐसे अवसर पर ऋषि को प्रसन्न कर लेना विरली प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति से ही सम्भव था ।

दिल्ली खबर पहुँची कि सुलतान शाह गोरी अपनी सेना लिये बढ़ा चला आ रहा है । सामन्त लोग परामर्श करने लगे । सेनापति चामंडराय के पैरों में बेड़ियाँ भरी थीं । अधिकांश योद्धा कन्नौज वाले युद्ध में जूझ चुके थे । सब लोग चामंडराय के घर पहुँचे और उससे बेड़ी उतारने के लिये कहा । चंद भी वहाँ जा पहुँचा और बोला कि राजाज्ञा से बेड़ी धारण करनेवाले, स्वामि-धर्म-निरत वीर तुम धन्य हो । शाह असंख्य दल लेकर आया है, भयंकर युद्ध अवश्यम्भावी है, बेड़ी निकाल कर तुम भी युद्ध में लगो जिससे चौहान की विजय हो; अनेक सूरमा कन्नौज के युद्ध में हत हो चुके हैं, आज दिल्ली में तुम्हारे सिवा चौहान की लाज रखनेवाला दूसरा कोई नहीं है । हे वीर ! बेड़ी निकाल दो और शत्रु पर विषम वार करो । चामंडराय ने चंद की सलाह मान ली और बेड़ी निकाल दी । पक्खर आदि से सुसज्जित एक घोड़े पर चढ़कर वह मैदान में आ गया । दो हजार दाहिम घुड़-सवार वीर उसके साथ थे । पृथ्वीराज ने चामंड दाहिम की बेड़ी खुली देखकर अति क्रोध किया और लोहाना को उसके पास भेज कर फिर बेड़ियां पहिनने का आदेश दिया, जिसे उस वीर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

इस स्थल पर यह भूलने योग्य नहीं है कि पृथ्वीराज ने चंद तथा अन्य सामन्तों के मत की उपेक्षा करदी क्योंकि यह भी उन्होंने अवश्य सुना होगा कि इन्हीं सबकी सम्मति से चामंडराय ने अपनी बेड़ियाँ उतारी हैं । पृथ्वीराज की निरंकुशता बढ़ गयी थी तथा चंद का प्रभाव भी कम हो रहा था । इस युद्ध में कवि चंद का भी एक पुत्र मारा गया । चंद स्वयं तो महाराज के साथ युद्ध भूमि में जाता ही था युद्ध करने योग्य उसके वयस्क पुत्र भी साथ जाते थे । सुलतान गोरी की पराजय हुई और दंड अदा करने पर उसे छुटकारा दे दिया गया । (स० ६४)

चित्तौर के रावल समरसिंह के दिल्ली आने पर कवि चंद ने जाकर उन्हें आशीर्वाद दिया और उनकी प्रशस्ति पढ़ी, रावलजी ने चंद को पचास मन मैदा, बीस मन बेसन, नाना प्रकार का मांस, अपार आटा, घृत, खांड़, गुड़ तथा एक हथनी, एक दुहथ्थी तलवार, स्वर्णजटित झूलवाला एक ऐराक़ी घोड़ा, एक सिंहलद्वीपी हाथी, एक यमदाढ़ और ज़रकशी सिरोपाव दिया । बनवीर परिहार ने एक सुन्दर हथनी, मोतियों की मालाएँ और दो मुँदरियाँ कवि को दीं । (छं० ६०—६२) पृथ्वीराज सारा राजकाज और मिलना-जुलना छोड़कर संयुक्ता के साथ निरंतर रहने लगे थे । शाह गोरी के आक्रमण का समा-

चार आया परन्तु महाराज तक न पहुँच सका। आखिरकार दिल्ली के प्रतिष्ठित लोग गुरुराम के साथ चंद के यहाँ आये और अपनी व्यवस्था वर्णन की। फिर चंद सब को लेकर महाराज के महल की ड्योढ़ी पर पहुँचा जहाँ नरवेशधारी स्त्री पहरेदारों ने कवि और गुरु को छोड़ कर और सबको मार कर भगा दिया। चंद ने एक दासी से एक पत्र और संदेश महाराज के लिये भेजा कि :—

कमार अप्पह राजकर, मुख जंपह इह बत्त।
गौरी स्त्री तुम धरनि, तूं गोरी रस रत्त। छं० २३७, स० ६६

पृथ्वीराज ने पत्र फाड़ कर फेंक दिया और कहा कि गुरु और भट्ट अब राज्य की रक्षा करेंगे। परन्तु तत्काल ही उनका वीर भाव हो गया और वे बाहर आ गये। सारा समाचार जानकर उन्होंने गुरुराम और चंद से ऐसा उद्योग करने के लिए कहा जिससे रावलजी चित्तौड़ लौट जावें और इस युद्ध की विभीषिका में न पड़ें। रावलजी ने लौटना स्वीकार नहीं किया। फिर रावलजी ने पृथ्वीराज से चामंडराय की बेड़ी उतरवाने के लिए समझाया। अस्तु, चंद भेजे गये तथा अन्य लोग भी साथ गये। कवि ने चामंडराय को नाना प्रकार से समझाया और उसी समय उस स्थल पर प्रकट होकर पृथ्वीराज ने अपनी तलवार चामंडराय को दी। दाहिम ने तलवार ले ली और बेड़ी उतार दी। तब चंद ने कहा कि लोहे की बेड़ी छूटने से क्या होता है, नमक की बेड़ी पैरों में और राजा की आन की तौक तो गले में आजन्म के लिए पड़ी है :—

हथ्थ हथ्थ करि प्रेम की, पाइन वेरी लोन।
गलै तोष नृप आन की, छुट्यौ कहत है कौन। छं० ४१०, स० ६६

हिन्दू सैन्य दल का शोर सुनकर निगमबोध (दिल्ली के समीप) में एक शिला के नीचे से एक भीमकाय देव निकला। चंद ने उसे दंडवत और प्रशंसा द्वारा प्रसन्न किया तथा दरबार में लाकर सब सामन्तों के नाम ग्राम आदि से परिचित कराया। ये युद्ध देखने के इच्छुक वीरभद्र थे। महाराज ने राजकुमार रैनसी को दिल्ली का भार सौंपा परन्तु उसने युद्ध में पराक्रम दिखाने का अनुरोध किया तब चंद ने उसे समझा बुझा कर रोका। पूछे जाने पर वीरभद्र ने चंद को बताया कि चौहान इस बार समर में पराजित होकर म्लेच्छ द्वारा पकड़ा जावेगा। शाह गोरी की विशेष तैयारी का समाचार सुन कर पृथ्वीराज ने कांगड़ा दुर्ग के हाहुली हमीर नामक रूठे सामन्त को मना लाने के लिये चंद को भेजा। चन्द ने हमीर का समाधान करते हुए उसे स्वामिधर्म विषयक बड़ा ही प्रभावोत्पादक उपदेश दिया। परन्तु छल से उसने कवि को जालंधरी देवी के मन्दिर में बन्द कर दिया और स्वयं गोरी की सहायतार्थ चल दिया। जब गोरी पृथ्वीराज को लेकर ग़ज़नी चला तब वीरभद्र की कृपा से मन्दिर के कपाट खुले और युद्ध का दुःखद अन्त जान कर कवि चंद मूर्छित हो गया। वीरभद्र ने उसे प्रबोधा और राजा का उद्धार करने के लिए प्रेरित किया (स० ६६)।

वरदायी योगिनीपुर (दिल्ली) आया और दो मास पन्द्रह दिन में पृथ्वीराजका रासो रचकर तथा अपने योग्य पुत्र जल्हन को उसे देकर फिर स्त्री और पुत्रों से विदा

लेकर एक योगी के वेष में नाना प्रकार के कष्ट सहन करता हुआ वह ग़ज़नी पहुँचा। सुलतान गोरी को अपने कौशल और वाक्य-चातुर्य से प्रसन्न करके उसने अंधे महाराज पृथ्वीराज द्वारा शब्दवेधी बाण का अद्भुत चमत्कार दरबार में दिखाने के लिए सहमत कर लिया। पृथ्वीराज को उसने संकेत द्वारा सुलतान गोरी के सिंहासन के स्थान का निर्देश कर दिया। तीसरा शाही फरमान निकलते ही महाराज का बाण उसका तालू और सिर टुकड़े-टुकड़े करता हुआ उस पार हो गया। मीर और खान इन दोनों को मारने के लिए दौड़ पड़े। उसी समय कवि ने अपनी जटाओं से छुरी निकाली जिससे महाराज पृथ्वीराज और चंद ने अपना प्राणान्त कर लिया (स० ६७)।

इस प्रकार सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न पंडित प्रवर और योद्धा तथा यश का निम्न उपदेश और गुणगान करने वाले......

गल्हां काज हमीर, देव देवी सिर दिन्ना।
गल्हां काज हमीर, अग्ग सध्यौ जुउ जिन्ना।
गल्हां काज हमीर, राज मुक्यो रघुराई।
गल्हां काज हमीर, मंस कट्यो सिव सांई।
हम गल्हवान गल्हां करैं, तुम गल्हां लग्गै बुरी।
म्रत लोक जीव जम पंजरै, तुम जानौ छुट्टै दुरी। छं० ७०१, स० ६१

...हिन्दी के आदि महाकवि भट्ट चंद वरदायी ने स्वामिधर्म और यश के लिए भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान की कीर्ति उज्ज्वल कर तथा उन्हें शत्रु से प्रतिशोध दिलाकर जीवन का तृण सदृश उत्सर्ग करके अपने को सदा सदा के लिए अमर कर दिया।

पृ० रा० के निम्न छंद से स्पष्ट है कि चंद का जन्म लाहौर में हुआ था।

हुअ निझ्झर कनवज्ज जैत सलष अब्बूगढ।
मंडोवर परिहम्म करषि कंगुर हाहुलि दिढ।
जन्म बलिभद्र सु नागौर चंद उप्पजि लाहौरह।
दिल्लिय अत्ताताइ वियाधर सामत सोरह।
राम दे राव जालौर धर, गोइंद गढ्ढ धामनि असै।
दाहिम्म बयाने उप्पनौ, प्रिथिराज परिवह बसै। छं० ५८४, स० १

काशी में अपने अंगों को काटकर हवन कर देने वाले ढुंढा दानव की जिह्वा का अवतार भी पृ० रा० के तीन स्थलों पर वर्णित है—

दिय वीसल वरदान कुष्व उपजै माहा भर।
वीरा रस उत्तान जुद्ध मंडै न कोइ नर।
वीर जोति अवतार भट्ट जिव्हा तन भारिय।
नयन जोति संजोगि पत्ति कुल पिता संघारिय।
दिष्षे सु नयन पुहकर प्रसिध, कियौ पाप इन ध्रूव करि।
उप्पजै नारि अति रूप तिन, तेन जिह्व जायै सु धर। छं० ५८२, स० १

वर दिल्ली ढुंढा नरिंद जाय कासी तट सिद्धौ।
अस्ति लियौ अवतार भट्ट रसना रस पिद्धौ।
सोमेसर परिगह प्रबन्ध सित उपने षित्रि नर।
हुए बीस अजमेर विये उप्पने अपर घर।
सोमेस वीर सुत पिथ्थ हुअ, ठौर ठौर ऊपजि वलिय।
विधि-विधि विनान अवलोक गति, अवर सूर आए मिलिय। छं० ५८३, स० १

तथा—

ढुंढ रूप दानव उतंग बोलि आना नरिंद दिय।
अस्ति सकल सामंत तेज प्रथिराज वीर विय।
बल विक्रम अति सूर जीह कविचंद प्रमानं।
एक ठाम उप्पजै एक थल मरन निधानं।
संजाल काल दिल्ली रहौ, चौसट्ठा टोडर समनि।
वैवत्त पह देवान गति, दैव गत्ति जोगा सघनि। छं० ५५७, स० १७

पृ० रा० के तीन स्थलों पर चंद और पृ० रा० की समवयस्कता के प्रमाण मिलते हैं।

दानव कुल छत्रीय नाम ढुंढा रष्षस वर
तिहि सु जोत प्रथिराज सूर सामंत अस्ति भर
जीह जोति कविचंद रूप सजोगि भोगि भ्रम
इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीहै समाय क्रम
जथ्थ कथ्थ होइ निर्मये, जोग भोग राजन लहिय
वज्रंग बाहु अरि दलमलन, तासु किंत्ति चंदह कहिय। छं० ६२, स० १

दानव क्षत्रिय कुल में ढुंढा नामक श्रेष्ठ राक्षस हुआ, उसकी ज्योति से पृथ्वीराज ने जन्म लिया, हड्डियों से शूर सामंत हुए, जिह्वा की ज्योति से कवि चंद हुआ, रूप से संयुक्ता हुई, एक दिन उत्पन्न होकर एक ही दिन सब नष्ट हो गये, यथानुसार उनकी कथा है, राजा ने योग और भोग प्राप्त किये, शत्रु दल को नष्ट करने वाले वज्रबाहु चौहान नरेश की कीर्ति चंद ने वर्णन की।

चहूआन कै वंश वीर मानिक्क पुत्र दस।
तासु किंत्ति कविचंद जनम लग्गै जंपत जस।
ज्यों बीत्या भारथ्थ आदि अंतह ज्यों जंपौं।
वय वानी सु प्रमान लग्न मग्नह गुन थप्पौं।
ज्यौं भयौ जनम कविचंद कौ, भयौ जनम सामन्त सब।
इक थान जनम मरनह सु इक, चलहि किंत्ति ससि लग्गि रव। छं० ७१०, स० १

श्रेष्ठ चौहान के वंश में वीर माणिकराव जी हुए जिनके दस पुत्र थे, उनकी कीर्ति का वर्णन करने में कविचंद का सारा जीवन ही बीत जायगा। आदि से अंत तक संपूर्ण युद्ध मैं वर्णन करूँगा तथा वय (आयु), वाणी (विद्या), लग्न और अनेक गुणों को भी कहूँगा। जिस प्रकार कविचंद और सब सामंतों का जन्म हुआ है वह तथा एक स्थान का जन्म और एक

स्थान का मरण भी वर्णन करूँगा। जब तक सूर्य और चन्द्र हैं इनकी कीर्ति चलेगी।
तथा—

कहै तास कविचंद अहो वीराधि वीर सुनि।
हम मनुच्छ मय मोह उदधि बुड्डै सु तत्त तुनि।
हमहि राज इक वास सथ्थ उतपन्न स ंग सदि।
नेह बंध बंधियै करिय अति प्रीति राज रिदि।
सामंत सकल अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियौ।
बलिभद्र नेह स ंसार सुष, किम सुनेह छंडै जियौ। छं० १७०२, स० ६६

अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय और सुलतान गोरी द्वारा उनके बंदी बनाये जाने का समाचार देव वीरभद्र से पाकर चंद ने नाना प्रकार से अपना दुख प्रगट किया और प्रबोधे जाने पर उसने अपनी विवशता प्रदर्शित करते हुए कहा कि—हे श्रेष्ठ वीर, माया और मोह के सागर में बूड़ा हुआ मैं एक साधारण मनुष्य, तत्व क्या समझूँ। मैं और राजा पृथ्वीराज साथ उत्पन्न हुए, एक स्थान पर निवास किया तथा सदैव साथ रहे हैं, स्नेह के बंधन में तो बँधे ही थे परन्तु राजा की मुझसे हार्दिक प्रीति थी। सारे सामंत भी बड़ा प्रेम रखते रहे हैं। बाल स्नेह ने हृदय में घर कर लिया है (या बाल काल के स्नेह ने हृदय को अपना धुरा बना लिया है)। हे वीरभद्र! संसार में स्नेह सुख का दाता है फिर हृदय से इसे किस प्रकार दूर किया जाय।

यदि चंद और पृथ्वीराज का जन्म साथ माना जाय तो पृ० रा० के—

एकादस सै पंच दह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपु जय पुर, हरन कौं भय प्रिथिराज नरिंद। छं० ६९४, स० १

के अनुसार महाराज का जन्म अनंद विक्रम शाक १११५ होता है अर्थात् ना० प्र० स० वाले संपादकों की गणना से १११५+९१=१२०६ वि० सं० सिद्ध है और यही चंद के लिए भी मान्य होना चाहिये। परन्तु म० म० गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा के शब्दों में पृ० रा० का यह 'भटायत' संवत् एक अत्यन्त ही विवादग्रस्त विषय है। पृथ्वीराज की जन्म तिथि के लिये बहिरंग प्रमाण खोजने पर केवल निराशा हाथ लगती है क्योंकि 'बीजोलियाँ के वि० सं० १२२७ के शिलालेख', जयानक का १२ वीं शताब्दी रचित 'पृथ्वीराज विजय', १४ वीं शताब्दी का 'प्रबन्ध कोष', १५ वीं शताब्दी का 'हम्मीर महाकाव्य' तथा १६ वीं शताब्दी का 'सुर्जन चरित्र' इस विषय पर सर्वथा मौन हैं। 'पृथ्वीराज-विजय' में कवि ने पृथ्वीराज का जन्म ज्येष्ठ मास द्वादशी का उल्लेख मात्र किया है, संवत् नहीं दिया। यथा :—

चरितार्थतामथ नयद्दानान्तरापेक्षया।
ज्येष्ठस्य प्रथयन्परंतपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितीम्।
द्वादश्यास्तिथि मुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिम्
तन्वनगोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना। सर्ग , पृ० २४६

'बलभद्र विलास' नामक ग्रन्थ में पृथ्वीराज के जन्म के विषय में निम्न वर्णन दिया है:

अथ स माव मासे तु त्रयोदश्यां सिते भ्रगौ।
पुष्ये द्विश्रीन्दुचन्द्रेऽब्दे मध्यान्हेऽभिजितक्षणे ॥ १ ॥
मुदिते लोक सन्तामे तदा पुत्रमजीजनत।
ये वदन्ति नरा: सर्वे धार्तराष्ट्रावतारकम् ॥ २ ॥
आजानुबाहुः शशिपूर्णमास्यः पद्मायताक्षी मदनैक रूपः।
वीरप्रहन्ता क्षितिभारहर्ता वंशावतंसो नरदेहसंज्ञः ॥ ३ ॥

संवत् ११३२ माघ शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार को दोपहर दिन के समय पुष्य नक्षत्र अभिजित मुहूर्त में सब लोगों के प्रसन्न काल में कमला के पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसको सब मनुष्य दुर्योधन का अवतार कहते हैं। वह बालक लम्बी भुजा वाला, चन्द्रमा के समान मुख कान्ति वाला, कमल के समान नेत्रों वाला, कामदेव के समान सुन्दर रूप वाला, वीर हन्ता, भूमि के भार को हरने वाला, चौहान वंश में भूषण नरदेही हुआ।

इस वि० सं० ११३२ में पृथ्वीराज का जन्म मान लेने से उनकी आयु ११७ वर्ष की ठहरती है क्योंकि उनकी मृत्यु वि० सं० १२४६-५७ (ई० सन् ११६२) सुनिश्चित है। अतः इस संवत् को भी हमें छोड़ देना पड़ता है।

वर्ण्य विषय को यहीं पर छोड़ देने के लिये विवश हो जाना पड़ता है। पृ० रा० के अनुसार चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक समय पर हुआ था, हम अभी इतने से ही संतोष करेंगे।

निम्न छंद का उल्लेख करते हुए :—

अग्गे सुचक्र लिन्नो गुविंद, अग्गे सु वज्र कर चढ्ढी छंद।
विहु वाह सूर सज्जे समंत, वेने विरद्द बंधे अनंत। छं० १२१, स० १

ना० प्र० स० द्वारा संपादित पृ० रा० के संपादकों ने अपने ग्रन्थ पृष्ठ १२४ पर यह टिप्पणी दी है—"यह छंद सं० १६४७, १७७० और १८४५ की पुस्तकों में नहीं है किन्तु सं० १८५६ की लिखी में है।

"इस छंद के अंत की तुक में 'वेने विरद्द बँधे अनन्त' है कि जिसका अर्थ होता है कि वेन ने अनेक विरद बांधे अर्थात् कहे। यह वेन कवि इस महाकाव्य के रचने वाले चंद का पिता था और वह इस समय सोमेश्वर जी के साथ था। अब तक चंद से पहले का कोई काव्य किसी भी कवि का किसी के जानने में नहीं है, किन्तु हमने जो एक 'चंद छंद वर्णन की महिमा' नामक पुस्तक सं० १६२६ की लिखी शोध की है उनके पीछे महाराणा जी श्री उदयसिंह जी के महाराज कुमार श्री सगतसिंह जी के पंडित विष्णुदास जी ने अकबर बादशाह के भाट गंग जी से अजमेर में पटोलावाय के मुकाम पर चंद के बाप कवि राव वेन का नीचे लिखा छप्पय अर्थात् कवित्त लिखा था, वह हम प्रकाश करते हैं। छप्पय में वेन ने पृथ्वीराज जी के पिता सोमेश्वर जी को असीस दी थी।

माता-पिता

छप्पय : अटल ठाट महि पाट, अटल तारा गढ थानं।
अटल नग्र अजमेर, अटल हिंदव अस्थानं।

अटल तेज परताप, अटल लंका गढ
अटल आप चहुवान, अटल भूमी जस मंडिव।
संभरी भूप सोमेस नृप, अटल जुगां रजेसकर।

इसी के साथ उसी पुस्तक में चंद के नागा पत्रकरण का कहा हुआ यह नीचे लिखा दोहा भी लिखा है :—

दोहा : ले कूँजा नृप पीकुखा, सामंत चमू समंद।
वेन नदन कनवज गमन, चंद करन कइ दंद।"

तथा रासो के निम्न छंद पर—

अनगेस पुत्रि हुअ पुत्र जन्म, विज्जल चमंकि जनु मेघ घन्म।
वद्धाइ राव सोमेस दीन, इक सहस हेम हय हुकम कीन। छं० ६६७, स० १

उक्त संपादकों ने पृष्ठ १४५ पर इस प्रकार लिखा है—

"देखो मालूम होता है कि चंद यहाँ अपने बाप का स्पष्ट नाम नहीं लेकर, मुहावरे से राव शब्द का प्रयोग कर राव बेन का निर्देश करता है।"

परन्तु पृ० रा० में आये हुए निम्न तीन स्थल भी विचारणीय हैं।

१. कन्नौज युद्ध स० ६१ में चंद वरदायी ने भी पृथ्वीराज से युद्ध करने की आज्ञा मांगी। महाराज ने कहा कि हम राजपूत रण में जूझते हैं, हे वरदायी, सामंतों की कीर्ति अमर करने के लिये तुम घर जाओ। चंद नें कहा कि कीर्ति बखानने के लिए जल्हन पीछे रह गया है, हे राजन, मुझे ईश की मुंड माला में अपना सिर डालने की आज्ञा दो। फिर उस ने बिना पृथ्वीराज की आज्ञा पाये ही रण प्रांगण में अपना घोड़ा कुदा दिया। आखिर मल्ह के पुत्र को कौन रोक सकता था :—

तीर तुबक सिर पर बहत, गहत नरिंद गुमान।
बरदाई तहाँ लरन कों, हुकम मांगि चहुआन।
हम झूझत रजपूत रिन, जंपत संभरि राव।
अमर कित्ति सामंत करन, बरदाई घर जाव। छं० १८७२
कित्ति करन गुन उद्धरन, जल्हन पच्छ सु लज्ज।
मोहि नृपति आयस करौ, ईस सीस धौं अज्ज। छं० १८ ३
बिन आयस प्रथिराज कै, धाय नंषयौ बाज।
को रष्षै सुत मल्ह कौ, सूर नूर मुष लाज। छं० १८७४

२. स० ६७ में जालंधर स्थित देवी जालपा के मंदिर से मुक्त होकर चंद भट्ट योगिनिपुर (दिल्ली) चला, निरंजन में उसने अपना चित्त लगाया, अजपा जाप का विचार करने लगा, फिर निराकार को मन में दृढ़ करके मल्ह का पुत्र अपने मार्ग पर चल दिया।

चल्यौ रह जोगिन थान सु भट्ट, परी हिय गंठि मनो परि पट्ट।
सु रन्तह चित्त निरंजन अप्प, धर्यौ हिय ध्यान अजप्पह जप्प। छं० ४
चल्यौ रह अप्पन मल्ह सु तनं, रच्यौ निरकार विलोयन मनं।
धर्यौ मन अप्पन सूनि सुभाइ, सुर्षपति धाम धर्यौ निज भाय। छं० ५

३. स० ६१ में पढ़ते हैं कि चंद वरदायी युद्ध कर रहा था, अप्सरायें विरुदावली गा रही थीं, आकाश से पुष्प वर्षा हो रही थी, शिव अपने गले में मुंड माला डाल रहे थे, कवि राव वार पर वार करता हुआ शत्रुओं को पछाड़ रहा था, काली अपना खप्पर भर रही थीं, भूत और वैताल चीत्कार कर रहे थे, जहाँ तहाँ हाथी, घोड़े, और मनुष्य आग की लपटों की लहर उत्पन्न करने वाले खड्ग की धार में पड़कर धराशायी हो रहे थे, भट्ट ने शत्रु सेना में कहर डाल दिया और उसका संग्राम देख पृथ्वीराज भी वाह वाह कर उठे :—

लरत चंद वरदाइ करत अच्छरि विरदावलि।
झरत कुसुम गयनंग धरत गर ईस मुंडावलि।
करत घाव कवि राव पिसुन परि वथ्थ पछारत।
भरत पत्र कालिका भूत वेताल उकारत।
जहं तहं दरंत गज बाज नर, लोह लरटि पावक लहर।
मुष वाह वाह प्रथिराज कहि, कटक भट्ट किन्नौ कहर। छं० १८९१

उपर्युक्त दो स्थलों में चंद के पिता का नाम स्पष्टतः मल्ह सिद्ध होता है। इन छंदों में न तो कोई क्लिष्ट कल्पना है, न कोई मुहाविरा और न कोई व्यंग्यार्थ ध्वनि। साथ ही ये छंद तत्कालीन प्राप्त पृ० रा० की सभी प्रतियों में पाये गये हैं जब कि छं० ६२३, स० १ जो कि चंद के पिता का नाम वेन सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया है, माननीय संपादकों द्वारा ही तीन प्राचीन रासो की हस्त लिखित प्रतियों से अनुपस्थित बतलाया गया है। यदि इस छंद को छोड़कर हम दूसरे छं० ६६७, स० १ पर विचार करते हैं तो उसमें केवल राव शब्द ही प्रयोग हुआ है, जिसमें वेन शब्द लगाकर किसी परवर्ती रचित ग्रंथ से वाह्य प्रमाण लेकर उसे चंद का पिता सिद्ध कर डालना अनुचित होगा। फिर वाह्य प्रमाण वही सार्थक होता है जो या तो प्रमाण्य वस्तु से प्राचीन हो अथवा अधिक से अधिक तत्कालीन। परन्तु इनमें से एक भी गुण 'चंद छंद वरनन की महिमा' में नहीं है। इस ग्रंथ में कविगंग भाट द्वारा अकबर बादशाह को पृथ्वीराज रासो सुनाये जाने का उल्लेख है, अतएव पृ० रा० की तुलना में इसका रचनाकाल अति अर्वाचीन है। इसी ग्रंथ में भाट गंग जी से पंडित विष्णुदास को प्राप्त छप्पय जिसमें कवि राव वेन आया है, बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी वाली राजस्थानी हस्तलिखित प्रति संख्या ५१३–५–३२ में नहीं पाया जाता, परन्तु इससे उक्त संपादकों को प्राप्त होने वाली प्रति में उपस्थित छंद के अस्तित्व पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। अस्तु, चंद के पिता का नाम राव वेन होना तब तक संदिग्धावस्था में रहेगा जब तक कि उसका कोई प्राचीन पुष्ट प्रमाण न प्राप्त हो जाय। निर्दिष्ट तीसरे स्थल में चंद के लिये भी राव शब्द का प्रयोग हुआ है। यह राव शब्द संज्ञा व्यक्तिवाचक न हो कर संज्ञा जातिवाचक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। राव या राय और उससे कविराव या कविराय उपाधिसूचक प्रतीत होते हैं। ऐसा अनुमान होता है कि आदरणीय संपादकों की विचार दृष्टि में किसी कारण वश ऊपर दिये हुए चंद के पिता को मल्ह और चंद को कवि राव वर्णन करने वाले छंद नहीं आये अन्यथा वे इनको इस प्रकार विस्मृत कर डालने वाली अवहेलना कदापि न करते।

चंद के माता-पिता के विषय में निष्कर्ष यही है कि पृ० रा० के आधार पर उसके पिता का नाम मल्ह था जिसका कवि राव मल्ह कहा जाना संगत हो सकता है और उसकी माता के विषय में किसी सामग्री के अभाव में निराधार कल्पना करने का साहस मात्र होगा।

पृ० रा० से हमें चंद के पूर्वजों का कोई इतिहास नहीं प्राप्त होता। स० ६६ के छं० १७०२ के वर्णन से इतना कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि चंद के पिता मल्ह महाराज सोमेश्वर के दरबार में किसी न किसी (अधिकांशतः कवि) रूप में रहे थे और इसी से बालक चंद तथा कुमार पृथ्वीराज को साथ-साथ रहने खेलने-कूदने और बाल्यकाल से भी परस्पर मित्र भाव होने के अवसर मिलते रहे होंगे। कवि ने अपना और पृथ्वीराज का साथ ही जन्म होना और बचपन से इस अवस्था तक साथ-साथ रहने के कारण स्नेह-बंधन होने का स्मरण कर अति दुःख प्रगट किया है :—

बाल्यकाल

कहै तास कवि चन्द, अहौ वीराधि वीर सुनि।
हम मनुच्छ मय मोह, उदधि बुड्डै सुतस सुनि।
हमहि राज इक बाम, सथ्थ उतपन्न संग सदि।
नेह बंध बंधियै, करिय अति प्रीति राज रिदि।
सामन्त सकल अति प्रेमतर, बाल नेह उर धुर कियौ।
बलिभद्र नेह संसार सुष, किस सुनेह छंडै जियौ। छं० १७०२, स० ६६

तब कवि चंद ने कहा कि हे श्रेष्ठ वीर सुनो, हम साधारण मनुष्य मोह सागर में डूबे हैं, हम और राजा पृथ्वीराज साथ ही पैदा हुए; तथा एक स्थान पर रहते हुए सदैव साथ रहे हैं, स्नेह के बन्धन में तो बँधे ही थे परन्तु राजा हृदय से मुझसे प्रेम करते थे, सारे सामन्त भी बड़ा प्रेम रखते रहे हैं, बाल्यकाल से संचित होने वाले स्नेह ने हृदय में घर कर लिया है, हे बलिभद्र (देव वीरभद्र), संसार में सुख देनेवाले स्नेह को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

अस्तु, बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त कवि का जीवन दिल्ली-अजमेर के चौहान महाराजाओं के दरबार में बीता था।

पृथ्वीराज में चंद के दस पुत्रों का उल्लेख मिलता है :—

पुत्र वंशज और

दहति पुत्र कविचंद, सूर सुंदर सुज्जानं।
जल्ह वल्ह बलिभद्र, कविय केहरि बष्षानं।
वीरचंद अवधूत, दसम नंदन गुनराजं।
अप्प अप्प क्रम जोग, बुद्धि भिन भिन करि काजं।
जल्हन जिहाज गुन साज कवि, चंद छंद सायर तिरन।
अप्पौ सुहित्त रासौ सरस, चल्यौ अप्प राजन सरन। छं० ८३, स० ६३

कवि चंद के दस पुत्र थे : सूर, सुन्दर, सुजान, जल्ह, वल्ह, वलिभद्र, केहरि, वीरचन्द, अवधूत और गुनराज। ये भिन्न-भिन्न कार्यों में प्रवीण बुद्धि वाले अपनी-अपनी

योग्यतानुसार लगे थे। चंद के छंदों का सागर तिरने के लिए गुणों का साज जल्हन जहाज रूप था। अपने सरस रासो का उसी से हित विचार उसको वह अर्पित कर दिया और स्वयं राजा की शरण में चल दिया।

दहति पुत्र कविचन्द कै, सुन्दर रूप सुजान।
इक जल्लह गुन बावरो, गुन समंद ससि मान। छं० ८४, स० ६७

कवि चंद के सुंदर रूप वाले दस बुद्धिमान पुत्र थे, उनमें गुण रूपी समुद्र के लिए शशिवत गुण बावरा जल्ह ही एक था।

आदि अंत लगि वृत्त मन, वृन्नि गुनी गुन राज।
पुस्तक जल्हन हस्त दै, चलि गज्जन नृप काज। छं० ८५, स० ६७

उससे आदि से अंत तक का सम्पूर्ण वृत्त (हाल) कह कर और राजा के गुणों का वर्णन करके तथा जल्हन के हाथ में पुस्तक देकर कवि चंद नृप कार्य हेतु ग़ज़नी चल दिया।

कवि चंद के पुत्रों या पौत्रों आदि के विषय में इससे अधिक पृ० रा० में और कुछ नहीं मिलता। चंद के दस पुत्रों में सबसे अधिक विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ जल्हन ही प्रतीत होता है, क्योंकि उसी को चंद ने सारा हाल बतलाकर पृ० रा० सौंपा था।

कन्नौज युद्ध की विकराल विभीषिका देखकर चंद वरदायी ने भी महाराज पृथ्वीराज से युद्ध करने की आज्ञा मांगी, पृथ्वीराज ने कहा कि युद्ध में जूझने के लिये हम राजपूत हैं, सामंतों की कीर्ति को अमरत्व प्रदान करने के लिए हे वरदायी, तुम घर जाओ (छं० १ ७२ स० ६१)। इसे सुन कर चंद ने उत्तर दिया कि कीर्ति बखानने और गुणावली गाने के लिये जल्हन पीछे रह गया है, हे राजन, मुझे आज्ञा दो मैं आ[illegible] शिव जी को अपना शीश समर्पित करूँ—

कित्ति करन गुन उद्धरन, जल्हन पच्छ सुलज्ज।
मोहि नृपति आयस करौ, ईस सीस द्यौ अज्ज। छं० १८७६, स० ६१

इस विवरण से स्पष्ट है कि चंद वरदायी को अपने सब पुत्रों में जल्हन पर अधिक भरोसा था। निःसन्देह जल्हन भी एक अच्छा कवि रहा होगा। अनुमान है कि पृ० रा० के अंतिम समय ६७ और ६८ जल्हन द्वारा रचे गये होंगे, क्योंकि अपने ग्रंथ की ७५ दिनों में रचना करके—

उभै मास दिन अद्धवर, किय रासौ चहुआन।
रसना भट्ट सुचंद की, बोलि उमा परमान। छं० ४६, स० ६७

चंद उसे जल्हन को दे गया था जैसा कि छं० ८३-८५ स० ६७ से प्रगट होता है। इतना निर्विवाद कहा जा सकता है कि चंद ने स० ६७ और ६८ में भविष्य में घटने वाले वृत्तों की रचना न की होगी। अतः अंतिम समयों का रचयिता जल्हन को छोड़ कर और कौन हो सकता है जिसकी काव्य-कला तथा इ[illegible]कर्तव्यपरायणता पर चंद को पूरा विश्वास था। इस धारणा की पुष्टि में पृ० रा० के अन्तिम समय ६८ के अन्तिम छंदों का छंद २२१ है, जिसमें वर्णित है कि हनुमंत-कृत रघुनाथ चरित का उद्धार जिस प्रकार

राजा भोज ने किया उसी प्रकार कविचंद-कृत महाराज पृथ्वीराज के यश का चंद-नंद [पुत्र, निश्चय ही जल्हन जिसे रासो सौंपा गया था] ने इस प्रकार उद्धार किया—

प्रथम वेद उद्धार, वंभ मच्छह तन किन्नो।
दुतिय वीर वाराह, धरनि उद्धरि जस लिन्नो।
कौनारक नभ देस, धरम उद्धरि सुर सष्षिय।
कूरम सूर नरेस, हिंद हद उद्धरि रष्षिय।
रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिम।
प्रथिराज सुजस कविचंद कृत, चंद नंद उद्धरिय इम। छं० २२१, स० ६८

म० म० हरप्रसाद शास्त्री अपनी चारण काव्य की प्रारम्भिक खोज रिपोर्ट, रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल (पृ० २६) पर जल्हन या जल्ह के लिये इस प्रकार लिखते हैं—चंद का पुत्र झल्ल एक गुणज्ञ कवि था। कहते हैं कि उसने अपने पिता रचित रासो में बहुत कुछ जोड़ा है। कहा जाता है कि अपनी माँ का नाम चलाने के लिये चंद और उसकी स्त्री विषयक वार्तालाप उसी के जोड़े हुए हैं जो छपे रासो में दिये हैं। झल्ल के वंशजों का अकबर के समय तक जोड़ करते रहना कहा जाता है। अकबर को रासो सुनने की इच्छा थी।

म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी खोज रिपोर्ट (पृष्ठ ३०) में तथा प्रोफेसर रमाशंकर त्रिपाठी एम० ए० के 'सरस्वती', नवम्बर १९२९, पृष्ठ ५१६ पर छपे हुए 'महाकवि चंद के वंशधर' शीर्षक लेख में, चंद वरदायी के वंशज कहे जाने वाले बीकानेर निवासी नानूराम ब्रह्मभट्ट से प्राप्त चंद के निम्न वंशवृक्ष का उल्लेख किया गया है—

चंद वरदायी

गुणचंद   झल्लचंद
|
सीताचंद
|
वीरचंद
|
हरिचंद
|
रामचंद

रूपचंद   बुद्धचंद   देवचंद   सूरदास

खेमचंद   गोविंदचंद

जयचंद
मदनचंद
शिवचंद
बलदेवचंद
नाथचंद
बेनीचंद
गोकुलचंद
वसुचंद
लेखचंद
कर्णचंद
गुणगंगचंद
मोहनचंद
जगन्नाथ
रामेश्वर
गंगाधर
भगवानसिंह
कर्मसिंह
मथुरासिंह
वाग्गोविंदसिंह
मानसिंह
विजयसिंह
आनंदराय जी
आसो जी
गुमान जी
करणीदान
नठेमल
वीरचंद
घमंडीराम जी
बुध जी
वृद्धिचंद जी
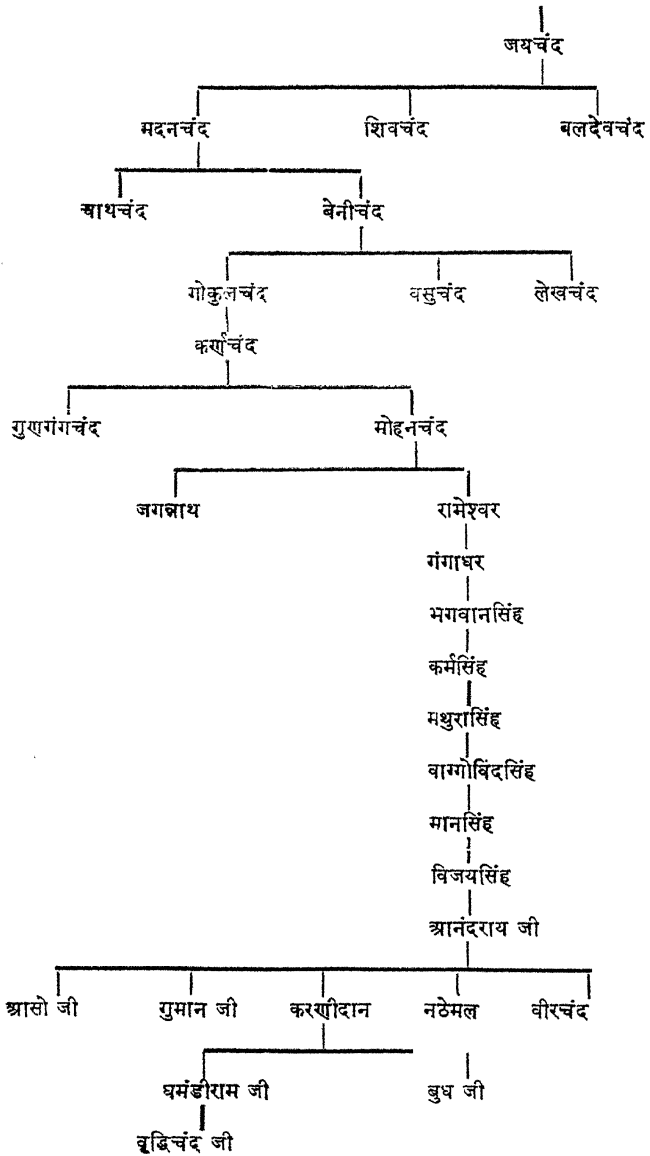
शास्त्री जी की रिपोर्ट में नानूराम जी तक वंश वृक्ष दिया गया है, जिसको पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' पृष्ठ ३७-३८ पर उद्धृत किया है। नानूराम जी तक तथा उनके आगे की दो पीढ़ियाँ प्रोफेसर त्रिपाठी जी के लेख में दी हुई हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध कृष्ण-काव्य गीतिकार भक्त सूरदास ने भी अपने को चंद वरदायी का वंशज कहा है। उक्त प्रमाण हेतु तथा उनके अन्य वंशजों की ज्ञातव्यता के लिये सूरदास रचित 'साहित्य लहरी' की टीका में निम्न पद का उल्लेख है।—

प्रथम ही प्रभु यज्ञ तें भो प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्म राव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप।
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय।
परि पाँयन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसंस में भौ चंद चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस।
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप।
वीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रथंभौर हमीर भूपति सँगत खेलत जाय।
तासु बंस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय।
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर।
पुत्र जन्मे सात ताके महा भट गंभीर।
कृष्णचंद उदारचंद जु रूपचंद सुभार।
बुद्धिचंद प्रकास चौथे चंद भे सुखदाइ।
देवचंद प्रबोध संसृतचंद ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचंद मंद निकाम।

उपर्युक्त वंश वृक्ष और वंशावली विषयक प्रस्तुत पद की तुलना करने से ज्ञात होता है कि नानूराम जिनको भल्लचंद की परंपरा में बतलाते हैं, सूर उन्हें गुणचंद की परंपरा में रखते हैं। शेष नाम प्रायः मिलते हैं।

परन्तु डा० ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल, अपने 'सूरदास' नामक ग्रन्थ में पृ० ६६-७ पर सिद्ध करते हैं कि "साहित्य लहरी, का रचनाकार कोई सूरजचंद नामक भाट

जान पड़ता है, जो कदाचित् चंद वरदायी और सूरदास—हिंदी के दो महान कवियों से अपने व्यक्तित्व को संबोधित और मिश्रित करने के लोभ में साहित्यिक प्रवंचना का अपराध कर बैठा...............उसका समय भाषाभूषणकार जसवंत सिंह के पहले नहीं माना जा सकता।"

हरप्रसाद जी शास्त्री अपनी रिपोर्ट में आगे लिखते हैं। (पृ० ३०)—

'कवि के चार पुत्रों में से एक मुसलमान होगया और दूसरे के वशंज अमझरा में जा बसे, तीसरे के विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं। का०य कीर्ति में चंद का योग्य उत्तराधिकारी चौथा पुत्र झल्लचन्द था। नानूराम जी मुझे विश्वास दिलाते हैं कि लोग मुसलमान हो जाने वाले चौथे को छोड़ कर चंद के केवल तीन पुत्रों की ही बात करते हैं।

नानूराम का कहना है कि झल्ल के पौत्र वीरचंद ने रणथंभौर के दृढ़ दुर्ग निर्माता तथा एक स्वतंत्र छोटे राज्य के संस्थापक और अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध में वीरगति पानेवाले हम्मीर राय की कीर्ति में हम्मीर रासो की रचना की थी।

यद्यपि चारण डिंगल गीतों को अपनी निज की संपत्ति समझते हैं और डिंगल की अधिकांश रचनायें उन्हीं की हैं परन्तु नानूराम का कहना है कि वीरचंद के पुत्र हरिचंद ही डिंगल गीत के प्रथम आविष्कारक थे, उन्होंने भाषा में २४ गीत लिखे थे तथा एक कोष भी बनाया था।'

पृथ्वीराज रासो के अनुसार दस और दी हुई दोनों वंशावलियों के अनुसार कवि चंद के केवल चार पुत्रों का वर्णन एक जटिल समस्या है भविष्य में अन्य पुष्ट प्रमाण उपलब्ध होने पर ही यह सुलझायी जा सकेगी।

यहाँ यह जान लेना अप्रासंगिक न होगा कि पृ० रा० विधायक चंद के दस पुत्रों में से एक स० ६४ में वर्णित सुलतान गोरी वाले युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ था।

षेत परिग कवि चंद सुत, परिग वंध धर धीर।
गहिय मद्द षिलची षरे, पसरत अठ्ठ अमीर। छ० २७७

इस पुत्र के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है।

एक समय महाराज पृथ्वीराज शिकार खेलने गये। वहाँ कवि चंद अपने साथियों से बिछुड़ गया और जंगल में मार्ग खोजता हुआ एक ऋषि के सामने जा पहुँचा। ऋषि को प्रणाम करके उसने उनकी स्तुति की और उनके द्वारा परिचय पूछे जाने पर उसने निम्न उत्तर दिया।

जाति

भट्ट जाति कवियन नृपति, नाथ नाम मो चंद।
आलस में गंगा बही, अब्ब गये सब दंद। छ० २१, स० ६

हे नाथ! मेरा नाम चंद है, मैं भट्ट जाति का हूँ और महाराज के कवियों में हूँ...। पृ० रा० के इसी समय में वर्णित है कि महाराज से मिलने पर चंद ने अपना आद्योपांत हाल कह सुनाया और ऋषि कृपा से वीरों के वशीकरण की बात कही, तब पृथ्वीराज ने कहा—

तो सम न और तिहु लोक में, नट्ट भट्ट नाट्क्कि नर।
संसार पार बोहिथ समह, तोहि मात देवी सुबर। छं० १४८

आगे समय ६३ में पढ़ते हैं कि सिंह के धोखे ...ह राज पृथ्वीराज ने वन में शिकार खेलते समय एक कंदरा में धुआँ करवा दिया, जिससे एक ऋषि निकल पड़े और धूम-यातना देने के कारण पृथ्वीराज को शाप दे डाला, उस भयंकर शाप को सुन कवि चंद ऋषि के पैरों पर गिर पड़ा और स्तुति करके उन्हें तुष्ट किया, ऋषि को अपना परिचय देते हुए वह बोला—

तबहि भट्ट भाषंत, स्वामि मो नाम चंद कवि।
वह नरिंद प्रथिराज, लज्ज भरि रह्यौ देव दबि। छं० १६८, स० ६३

इसके अतिरिक्त पृ० रा० के निम्न स्थलों पर हम दूसरों द्वारा तथा स्वयं कवि को चंद भट्ट प्रयोग करते हुए पाते हैं—

१. कंचन किलाव लगाय कल, पट्टीं बंधिय चंद भट।
तिहि बेर कन्ह चहुआन चष, रूप प्रगट अति षिग्रिवट। छंद ६५, स० ५
२. कथ्थिय वर कैमासं, देवी वरदाय चन्द भट्टायं।
अस तिन चवै असेसं, सत्यं रूप सत्य अवतारं। छं० १४४, स० ६
३. कहै चंद धंडी अहो भट्टभैरूं तुवं लुट्टि विप्र तनी लछि जोरों। छं० २१८ स० १२
४, करै घाट औघाट निघट्ट घट्ट, तिनंकी उपम्मा कही चंद भट्ट। छं० ११५ स० १३
५. कढ्ढ़ि वीर पाषान, राज षट रष्षि प्रधानं।
चन्द भट गुरु राम, कन्ह रष्षिग चहुआनं छंद ३४६, स० २४
६. बहुत जुद्ध कीनों सुबर, सुभर तेज प्रथिराज।
भट्ट चंद कीरति तवै, कूरंभह सिरताज। छंद २४, स० ४०
७. रन षुध सपूरन भग्गि है, जब महिमानी हम करै।
जगदेव भट्ट सचौ चवै, चंद भट्ट इम उच्चरै। छंद ७२, स० ४२
८. गई मात कविचन्द कहि, भइय प्रात अनुरत्त।
दुचित चित्त अनुप्रात भय, चिंति भट्ट प्रापत्त। छंद १६७, स० ४७
९, हक्कारिय चंद कब्बी, देवी वरदाय वीरभट्टाय।
तिहुँ पुर परागद बानी, अग्गे आव राव आएसं। छंद १९१, स० ५१
१०. पूजा हर वान हित करी, धूप दीप सब साज।
चन्द भट्ट बोल्यौ तवै, चल्यौ सुगृह फिरि राज। छंद ७८ स० ६०
११. पहुंचाय चंद भट्टह सुबर, कीरति कलिजुग विस्तरिय। छंद ६१, स० ६६
तथा— १२. सुनौ भट्ट कवि चंद, रहसि बुल्यौ जंबूपति। छंद ६९०, स० ६६

इन अनेक प्रमाणों के आधार पर चंद वरदायी को भट्ट जाति का मान लेने में कोई आपत्ति नहीं दीखती। तत्कालीन भट्ट लोग बड़े वाचाल होते थे। समय ३३ में पढ़ते हैं कि जब चंद ने उज्जैन के राजा भीम को अपनी कन्या पृथ्वीराज को देने के लिए बहुत प्रकार से समझाया तो वह कह बैठा—

अहो चंद दंद न करहु, तुम कुल दंद सुभाउ...छं० १६ ।

हे चंद द्वन्द मत करो, द्वंद करना तुम्हारे भट्ट कुल का स्वभाव है ।

समय ४४ में पढ़ते हैं कि चंद गुर्जर नरेश को पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये उकसाने पहुँचा, वार्तालाप में अपने को निरुत्तर देखकर भीम बोला कि वाणीवाद (बकवास) तो वही कर सकता है जो भाट का पुत्र हो, यथा—

वैन वाद सो करै होइ भट्टह कौ जायौ...छं० १०६

बीकानेर निवासी श्री नानूराम जी जो अपने को चंद का वंशज कहते हैं, और जिनसे प्राप्त वंश वृक्ष का उल्लेख तथा विवेचना 'पुत्र और वंशज' शीर्षक सामग्री में की गई है, अपने को ब्रह्म भट्ट कहते हैं ।

ना० प्र० स० के० पृ० रा० के सम्पादकों ने उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ ७ पर चंद वरदायी की संक्षिप्त जीवनी सी देते हुए लिखा है—'वह भट्ट जाति जो आजकल राव करके कहलाती है, उसके जगात नामक गोत्र का था...' यह जगात गोत्र विषयक चर्चा पृ० रा० के अन्तर्गत नहीं है । खेद है कि उक्त संपादकों ने अपने इस बहिरंग प्रमाण की सिद्धि के अपने साधन नहीं निर्दिष्ट किये ।

महाराज सोमेश्वर के समय से ही हम चंद को उनके दरबार में पाते हैं । पृ० रा० में हमें जीविका के प्रबन्ध का पता तब चलता है जब कि 'आषेटक वीर वरदान वर्णन' समय ६ में वर्णित चंद के एक ऋषि की कृपा से अतुल पराक्रमी बावन वीर गणों को वश में करनेवाला मंत्र सिद्ध करने, उन गणों का प्रत्यक्ष पौरुष दिखाने तथा पृथ्वीराज की आज्ञा से उक्त मंत्र सब सामन्तों को सिखाने पर संभरेश द्वारा उसे बीस ग्राम और एक सजा हुआ घोड़ा देने का समाचार पढ़ते हैं :—

जीविका

बीस गाम कविचन्द प्रति, करी कुंवर बगसीस ।
एक बाजि साजति सज्जहि, दियो सुसम्भरि ईस । छं०१९८ ।

रासो में इन ग्रामों के नाम आदि का अन्य कोई परिचय नहीं दिया गया है इसलिए इस जागीर का पता लगाना जरा टेढ़ी खीर है । कुछ भी हो कवि की जीविका के माध्यम का पता तो रासो दे ही रहा है ।

इस विषय की विवेचना डा० हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी खोज रिपोर्ट परिशिष्ठ ५, पृष्ठ २५ में इस प्रकार की है—

"चंद का पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के दरबार में जाना तथा राजा और राजकुमार पृथ्वीराज का प्रिय पात्र होना कहा जाता है । सिंहासन पर बैठने के उपरान्त पृथ्वीराज ने नागौर और खाटू बसाये । उन्होंने चंद को नागौर में विस्तृत भूमि दी जिस पर कवि के वंशजों का अब तक अधिकार है । दिल्ली राज्य प्राप्त करके पृथ्वीराज कन्नौज से युद्धों में ग्रस्त हुए क्योंकि वहाँ का राजा भी उक्त प्राप्ति का अपने को अधिकारी समझता था ।"

पृ० रा० के अनुसार चंद को अवसरों पर महाराज पृथ्वीराज तथा सामंतों आदि से

लंबे चौड़े दान भी प्राप्त हुआ करते थे, जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है —

१. षट्टूबन में गड़ा खजाना निकालने के बाद चित्तौड़ नरेश रावल समरसिंह ने चंद को एक मोती की माला दी और चित्तौड़ प्रस्थित हुए—

राजन वर रषिय प्रसन करिय सब्ब सामंत।
माल मुत्ति दिय चंद कवि चल्यौ चित्र गढ़ भंति। छं० ४८१ स० २४

२. एक बार चंद वरदायी ने द्वारिका यात्रा की तो उसका निम्न ठाठ था—

देइ सहस है वर विसाल सत वारुन सथ्थह।
सत गयंद रथ रूढ़ साज आसन प्रथि रज्जह।
पलक वेद जोजन प्रमान थटे संघल क्रत पाइय।
साज लष्ष तन लष्ष सकल बल कोरि सजाइय।
धानुक्क धार सत अठ्ठ चलि, करन तिथ्थ जात्रह चलिय।
सत सुभट दान दिय तुरिन गज, मनहु जमन सागर मिलिय। छं० २, स० ४२

दो हजार विशाल श्रेष्ठ घोड़े, सौ हाथी, सौ गज रथ पृथ्वीराज ने दिये थे, पलक मारते योजन भर जाने वाले सिंघल द्वीपी हाथियों पर लाखों का साज पड़ा हुआ था...आठ सौ धनुर्धर भी साथ चले, सौ सामंतों ने कवि को हाथी दान किये और इस साज बाज से चंद द्वारिका को चला मानों यमुना सागर से मिलने जा रही हों।

३. जब चंद के दलबल सहित आने का समाचार चित्तौड़ पहुँचा तो पृथ्वीराज की बहिन महारानी पृथा ने निम्न सामान कवि को भेंट स्वरूप भेजा—

कवि सु सथ्थ मति प्रबल बोलि सैहचरी मत्तिवर।
नवनव रसै भोईन अनंत इन्द्रानि इंद्र घर।
रूप माल सुविसाल मेघ माला सुभ मंजरि।
मदन वेलि मालति, विसाल सत अठ्ठ अनंबर।
नरकंध रथ्थ के आरुहिय ढंकि छबि मनो अंब जल।
प्रति चलिय भट्ट कट्टन दरिद, मोघ निरषि मनुराज थल। छं० १६
कितक छब्बि वस्त्रंग मद्धि माला मुत्तिय मनि।
सीतारामी सहस कनक थारी सत बीजनि।
अगर पान अड़सठ्ठ रजक पालिका पठाइय।
सुवन इक्क पुत्तरिय कर सु सारंग मुह गाइय।
मुक्कलिय प्रथा कवि थान कहुँ, भरन भार अभ्रन भरिय।
प्रति प्रति सुदान मानह प्रबल, कवि सषियन आदर करिय। छं० १७ स० ४२

भट्ट का दरिद्र सदा के लिये काट देने को अनेक सुंदर वस्त्र, मोती माणिक्य की मालायें, एक सहस्र सीतारामी, सौ सुवर्ण की थालियाँ, अगरु, पान, अड़सठ चाँदी की पालकियाँ, हाथ से 'सारंग' बजाते हुए मुँह से गाने वाली एक सुवर्ण पुतली तथा नाना प्रकार के आभूषणों के भार पृथा ने भेजे, कवि ने प्रत्येक का दान मान करते हुए

(सामान लाने वाली) सतियों का सत्कार किया।

४. द्वारिकापुरी से लौट कर चंद भी भीमदेव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर पहुँचा, सुलतान से प्राप्त हुए तंबू सूर्य के रथ के कलशों सदृश लग गये।

दिय डेरा कुंदन सुढिग, जे लीने सुरतान।

तर ते वर तंबू तनिय, मनहु कलस कै भान। छं० ५९, स० ४२

इससे स्पष्ट है कि चंद को भी पृथ्वीराज द्वारा सुलतान गोरी की लूटी हुई अथवा उससे दंड स्वरूप प्राप्त हुई सामग्री प्राप्त हो जाया करती थी। भीमदेव ने कवि को बड़े सम्मान से ठहराने का प्रबन्ध किया और अपने जगदेव भाट के हाथ नग, माणिक्य और मोतियों की मालायें, एक हाथी, सात घोड़े जिनमें एक इराकी था अन्य 'लक्ष्मी' उसके डेरों पर भेंट स्वरूप भेजे—

कहै भीम जगदेव, जाहु तुम चन्द समष्षन।

नग मनि मुक्तिय माल, परसपर वाद सपष्षन।

दियौ सु हथ्थिय एक, सत्त हय इक ऐराकिय।

लै सु जाहु तुम लच्छि, भट्ट पुच्छौ मनुहाकिय।

चल दुष्ट भट्ट आयौ वरै, करि झुम्झौ मंत्रह सुपरि।

आरंभ डंभ सुनियै बहुत, कर विछानि मन षेद करि। छं० ६२ स० ४२

५. पृथ्वीराज ने घघर युद्ध में सुलतान गोरी को बंदी बनाकर उससे दंड स्वरूप जितना सुवर्ण पाया था वह सब चंद की संरक्षकता में अपने बहनोई रावल समरसिंह के पास चित्तौड़ भेज दिया (छंद ५५—५६ सं० २६)। चंद ने वह सब सामान चित्तौर गढ़ में रावल जी को समर्पित कर दिया, रावल जी ने अपनी ओर से भट्ट को बहुत-सा दान दिया।

लै चंद चल्यो चित्तौड़ गढ़, जाइ समप्पौ राव रह।

वहु दान दियौ रावर समर, चल्यौ भट्ट अप्पन घरह। छं० ५७, स० २९

६. अंतिम बार रावल समरसिंह जी ने दिल्ली आकर कविचंद को अपनी विरुदावली पढ़ने के उपरांत—एक दुहथ्थी तलवार, पल भर में एक योजन जाने वाला, स्वर्ण जटित झूल पड़ा इराकी घोड़ा, सिंहलद्वीपी हाथी, एक अमूल्य यमदाढ़ और ज़रकशी शिरोपाव उसे देकर कलियुग में अपनी कीर्ति फैलाई—

दो हथ्थि तरिवार, तुरिय ऐराक अच्चगल।

कंचन जरित पलान, एक जोजन मझ्झ पल।

हथ्थी संवल दीप, एक जमदट्ट अमोलं।

जर जर कसि सिरपाव, साज साकत्ति समोलं।

पहुंचाय चंद भट्टह सुवर। कीरति कलिजुग बिस्तरिय।

चित्र कोट राव दीनौ इतौ। रही कलिज्जुग वत्तरिय। छं० ६२, स० ६६

तथा बनवीर परिहार ने भी एक सुंदर हथिनी, एक मोती की माला और दो मुद्रिकायें कवि को दीं।

बन बीरह परिहार दिय, हथिनी एक सुरंग।
मोती माला सघन जल, द्वै सुंदरी सुचंग। छं० ६२ स० ६६

नोट—श्री जगदीश सिंह गहलोत 'राजपूताना का इतिहास' पृष्ठ १६८ पर लिखते हैं—

"पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथाबाई का विवाह इस समरसिंह (सं० १३३०-१३५८) से हुआ था और पृथ्वीराज की तरफ से लड़ता हुआ वह शहाबुद्दीन गोरी के हाथ से युद्ध में मारा गया। परन्तु यह सब कपोल कल्पित है। क्योंकि समरसिंह (समर सी) पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ था और उसका अंतिम शिलालेख सं० १३५८ की माघ सुदि १० (ई० सन् १३०२ ता० १० जनवरी) का मिला है। इससे पृथ्वीराज के मारे जाने से १०६ वर्ष पीछे तक तो समरसिंह अवश्य जीवित था। अलबत्ता यह घटना सामन्तसिंह के समय की हो सकती है।"

इसी पुस्तक के पृष्ठ १६४ के नोट ३ में आप लिखते हैं—

संभवतः यही सामंतसिंह जिसे ख्यातों में सामंत भी लिखा है, चौहान नरेश पृथ्वीराज दूसरे (सं० १२२६) सोमेश्वर और पृथ्वीराज तीसरे के समकालीन थे। यह बात शिलालेख से भी सिद्ध होती है। डूँगरपूर राज्य की पुरानी ख्यातों में इस सामन्त सिंह का विवाह साँभर और अजमेर के चौहानों के यहाँ होना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि यदि पृथाबाई के विवाह की बात सत्य हो तो उसका विवाह इसी सामंत-सी के साथ हुआ होगा। पृथाबाई को चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे की बहिन या वीसल देव(सं० १२१०-१२२०) की पुत्री मान लिया जाये तो वह अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज चौहान (वि० सं० १२३६-१२४६) की बहिन मानी जा सकती है। सामंत-सी व समर सी के नामों में के थोड़े से अन्तर से भ्रांत होकर ही पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने इन्हें समर-सी समझ लिया है। यह भी संभव है कि बागड़ का राज्य छूट जाने पर ये सामंत-सी अपने साले प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज तीसरे के पास चले गये हों, और वहीं शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करते हुए सं० १२४६ वि० में मारे गये हो।

२. 'रासो सार' पढ़ कर पृथ्वीराज रासो पर-फतवा देने वाले विद्वानों को देखना चाहिये कि रासो में पृथ्वीराज के बहिनोई का नाम केवल समरसिंह ही नहीं वरन् सामंत सिंह भी मिलता है। देखिये—

सामंत सिंह रावर चवै सुगति मुगति लभ्भै तुरत। छं० ६५३, स० ६६

ऐश्वर्य

चन्द की जीविका विषयक वर्णन में हम पढ़ चुके हैं कि महाराज पृथ्वीराज से उसे बीस ग्राम प्राप्त हुए थे। अपनी इस जागीर से उसका ठाट-बाट निःसंदेह काफी अच्छा रहा होगा। यद्यपि कवि ने इस ओर कोई संकेत नहीं किये हैं फिर भी पृ० रा० के दो स्थलों पर उसके ऐश्वर्य के दर्शन होते हैं। एक तो 'चन्द द्वारिका समयो ४२ मे' और दूसरे 'कनवज्ज समयो ६१ में' क्रमशः इन स्थलों पर प्रकाश डाला गया है—

१. महाराज पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर चन्द ने द्वारिका चलने की तैयारी की। उसके साथ दो हज़ार श्रेष्ठ घोड़े, सौ विशालकाय हाथी, सौ गज-रथ जिन्हें साज-बाज कराके पृथ्वीराज ने दिया था और जो एक क्षण में एक योजन जाने वाले थे, इन सब पर लाखों की सजावट का सामान था, आठ सौ धनुंधर भी साथ थे, इस प्रकार वह तीर्थ यात्रा करने चला, सौ सामन्तों ने भी उसे अनेक हाथी घोड़े दान स्वरूप दिये थे, कवि का दल ऐसा प्रतीत होता था मानो यमुना सागर से मिलने चली हों। हाथियों के घंटे, त्रंबाल, भेरी और शहनाई आदि बज रहे थे—

दोइ सहस है वर विसाल सत वारुन सथ्थह।
सत गयंद रथ रूढ सीज आसन प्रथिरज्जह।
पलक वेद जोजन प्रमान थटे संवल क्रत पाइय।
साज लष्ष तन लष्प सकल बल कीरि सजाइय।
धानुक्क धार सत अठ्ठ चलि, करन तिथ्थ जात्रह चलिय।
सत सुभट दान दिय तुरिय गज, मनहु जमन सागर मिलिय। छं० २
गज घंटन त्रंबाल भेरि सहनाइय बज्जिय।
चलत आइ चित्रकोट पुरन त्रियलोक सुरज्जिय। छं० ३

कवि के साथ डेरे तंबू आदि सभी रहते थे। द्वारिकापुरी से लौटते हुए वह गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर आया और नरेश द्वारा सम्मान से ठहराया गया। सुलतान गोरी द्वारा प्राप्त श्रेष्ठ तंबू तन गये जो सूर्य के कलश सदृश दीखते थे, हाथी गजशाला में और घोड़े हयशाला में बाँध दिये गए तथा आधे कोस के विस्तार में उसका दल ठहर गया।

दिय डेरा कुंदन सुढिग, जे लीने सुरतान।
तर ते बर तंबू तनिय, मनहु कलस कै भान। छं० ५९
गज बंधे गज साल में, हय बंधे हय साल।
अद्ध कोस विस्तार अति, भई भीर भर चाल। छं० ६०

चालुक्य नरेश चन्द से मिलने उसके गगनचुंबी सुंदर डेरों पर आया—

आइ सु भोर चंद थह, हय गय नर भर भार।
सथ्थ सपन्नौ तथ्थ सब, बज्जा बज्जिय सार। छं० ७३
देषिय डेरा भीम नृप, उच्चै थह आवास।
गौष पट्टिका बनि गरुअ, देषिय बादर रास। छं० ७४, स० ४२

उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि महाराज पृथ्वीराज प्रदत्त जागीर से उसे अच्छी खासी आय थी अन्यथा उसका छोटे-मोटे राजाओं सदृश रहन सहन कैसे सम्भव हो सकता था।

२. समय ६१ में वर्णित है कि पृथ्वीराज सौ सामन्त और ग्यारह सौ चुने अश्वारोही सैनिकों के साथ कन्नौज के लिये प्रस्थित हुए (छन्द १०३)। कवि चंद भी साथ था। कन्नौज नगर समीपस्थ होते ही पृथ्वीराज तथा उनके दल ने अपने वेश बदल डाले (छन्द २६०), पृथ्वीराज कवि के पानधार हो गये तथा अन्य सामंत और सैनिक उसके दल के

अनुकूल चंद के द्वार पर उपस्थित होने की सूचना प्रधान द्वारपाल हेमकुमार ने महाराज जयचंद को दी और कवि की प्रशंसा करते हुए कहा कि श्रेष्ठ भट्ट के साथ बड़ा आडम्बर है और उसके दल वाले साथी अच्छे योद्धा प्रतीत होते हैं—

आडम्बर बर भट्ट बहु, भर वर सथ्थ कविन्द ।
तब रुक्यौ दरबार में, संग रषि कविचन्द । छं० ४८७

यद्यपि इसे हम वस्तुतः कवि चंद के ठाट-बाट के अंतर्गत नहीं रख सकते क्योंकि कन्नौज यात्रा तो महाराज पृथ्वीराज के उद्देश्य पूर्त्यर्थ की गई थी जिसमें महाराज और उनके सामंत भी उपस्थित थे, परन्तु कन्नौज में तो प्रथम यह विशाल समुदाय उसी के दल के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ था ।

उपर्युक्त दोनो स्थल इस बात के निर्देशक हैं कि तत्कालीन राजकवि पर्याप्त ठाट-बाट से बाहर निकलते थे तथा अन्य दरबारों में यथेष्ट सम्मानित होते थे । वैसे वीरता के उस युग में जहाँ युद्ध और शौर्य प्रदर्शन मात्र ही जीवन के प्रथम व्यापार थे तथा अन्य सारी बातें गौण समझी जाती थीं, इस प्रकार के ठाट-बाट न कोई मापदंड रखते थे और न कोई उनका विशेष मूल्य ही होता था । तत्कालीन भारतवर्ष के शासक क्षत्रिय वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति प्रति क्षण युद्ध के लिये कटिबद्ध रहता होगा तब दिल्लीश्वर के राज-कविचंद का एक छोटी-मोटी सेना लेकर बाहर निकलना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि वह तो उस युग की आवश्यकताओं की एक पुकार थी ।

गणिका

पृथ्वीराज ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये गुजरात के राजा भीमदेव चालुक्य पर चढ़ाई की । यह समाचार पाकर भीमदेव ने भी अपनी तैयारी की, जिसका समाचार अवधूतों के धूत दिगंबर वेश वाले छद्म वेशी गुप्तचरों ने आकर दिया —

चढ़ देषि चालुक्क दल, बहुरे संभरि दूत ।
भेष दिगम्बर दुति तनह, जे अवधूतन धूत । छं० ६४

और उसी समय ठग विद्या में प्रवीण, दूत कार्य में चतुर कविचंद की गणिका ने महाराज के सामने आकर नमन् किया और कहा कि समुद्र की तुलना अतिक्रमण करने वाली वीर पुंगवों की सेना पर चालुक्की का गर्जन हो रहा है, उसकी सारी सेना का प्रमाण एक लक्ष है जिसमें प्रलय ढाने वाले मदस्त्रोता एक हज़ार हाथी हैं —

गनि गनिका कविचंद की, ठग विद्या परवीन ।
दूत धूत अनभूत मन, नवनि राज तिन कीन । छं० ४४
संमुष पिष्षिय राजं, बुल्ले बयन सुहित्त सुभाजं ।
चढ़ि चालुक्की गाजं, नरभर संमुद उलटि जनु पाजं । छं० ४५
एक लष्ष सेना सकल, अकल कलीनह जाइ ।
इक्क सहस मद गज करी, दिष्षिय जानि बलाइ । छं० ४६ स० ४४ [भीम-वध]

उपर्युक्त उद्धरण से यह तो स्पष्ट ही है कि चंद वरदायी गणिका भी रखता था परन्तु साथ ही यह बात भी प्रगट होती है कि उस युग में गणिकायें केवल भोग-विलास की सामग्री

मात्र न थीं वरन युद्ध में भेदिये जैसे दुस्तर कार्यों में भी उनकी नियुक्ति की जाती थी।

देवी की सिद्धि—पृ० रा० स० १ में हम चंद को देवी के दर्शन होने की बात पढ़ते हैं—

गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी, जिनै दर्सियं देवि सा अंग हब्बी।

कवी किति किन्ती उकत्ती सुदिख्खी, तिनै की उचिष्टी कवी चंद भख्खी। छं० १०

तथा आखेटक वीर वरदान स० ६ में वर्णित है कि महाराज पृथ्वीराज ने अपने दरबार में चंद द्वारा बावन गणों के वशीकरण की बात कही (छं० १३२-१४२)। सामंतों ने इस पर कहा कि भट्ट, नट, और चारण आर्त होते हैं, चंद पीछे छूट गया था इसी से आपको प्रसन्न करने के लिये उसने यह बात गढ़ी है (छं० १४३)। इस पर मंत्री कैमास दाहिम ने कहा कि ऐसा मत कहो, चंद को देवी का वरदान है और वह सत्य का अवतार है—

कथ्थिय बर कैमास, देवी वरदाय चद भट्टायं।

अस तिन चवै असेसं, सत्य रूप सत्य अवतारं। छं० १४४

इसी वार्तालाप के अवसर पर चंद वरदायी भी दरबार में आ गया और पृथ्वीराज ने उस से गणों के दर्शन करवाने की बात कहकर प्रशंसा करते हुए कहा कि—तुम्हारे समान त्रैलोक्य में नट, भट्ट और नाटकीय पुरुष नहीं है, संसार सागर से पार उतारने के लिये तुम बोहिथ [जहाज, बेड़ा] सदृश हो तथा तुम्हें देवी माता का श्रेष्ठ वरदान है—

तो सम न और तिहु लोक में, नट्ट भट्ट नाटिक्क नर।

संसार पार बोहिथ समह, तोहि मात देवी सुबर। छं० १४८ स० ६

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चंद को देवी का वरदान था और निम्न प्रकरणों से सिद्ध होता है कि देवी सरस्वती जी थीं जिनका कि वह वरदायी था :—

१. होली कथा, स० २२ में पृथ्वीराज ने फाल्गुन मास के अमर्यादित राग रंग का कारण पूछते हुए कहा कि तुम तो बानी [वाणी = सरस्वती] के वरदायी हो, इस सबका हेतु बतलाओ।

या पुच्छी कविचंद कौ, हिय हरष्ष सुषदाय।

जु कछु भयो सु कहौ तुम, तुम वानी वरदाय। छं० ४

२. कैमास बध, स० ५७ में पृथ्वीराज ने करनाटी वेश्या के कारण रात्रि में अपने मंत्री कैमास दाहिम को शब्दवेधी बाण द्वारा मारकर गाड़ दिया और करनाटी को बंदिनी बना दिया; परन्तु यह सारा कार्य अत्यन्त गुप्त रूप से संपादित किया गया। (छं० ३६—१०५)। देवी ने चद को स्वप्न में इस घटना की सूचना दी (छं० १०७—११०)। यह सूचना पाकर कवि के मन में नाना प्रकार की शंकायें होने लगीं (छं० १११—११४)। तब देवी ब्राह्मणी (सरस्वती) हंस पर चढ़कर वीणा हाथ में धारण किये हुए प्रत्यक्ष प्रगट हो गईं।

तब पर तिष्ष भई ब्रह्मानी, वीना पानि हंस चढ़ि धानी।

त्रिमल चीर हार बिन मंडं, तिहि कलं किति कही सु प्रचंडं। छं० ११५

श्वेत वसना देवी को अपने सामने प्रकट हुआ देखकर कवि उनके स्वरूप की विमल कीर्ति का गान करने लगा :—

मराल बाल आसनं, अलित्त साय सासनं।
सुहंत जाल तामरं, सुराग राग धामरं। छं० ११९
कलिंद केस मुक्करे, उरग्ग बाल विथ्थरे।
लिलाट रेष चंदनं, प्रभात इंद वंदनं। छं० १२०
कपोल रेष गातयौ, उवंत इन्द्र पाथयौ।
उछाइ कीर षंजनं, तरुन्न रूप रंजनं। छं० १२१
आटंक झंक झंकई, तिलक्क पान संकई।
सुहत तेज भासई, रुलंत मुत्ति पालई। छं० १२२
उपंम चंद जंपयौ, सुनंत कीर सीपयौ।
विभूअ जूअ षंचयौ, कलंक राहु चंचयौ। छं० १२३
त्रिभंग मार आतुरं, चिबुक्क चारु चातुरं।
अवन्न आट पिष्षयौ, अनंग रथ्थ चक्कयौ। छं० १२४
जु बाल कीर सुम्भयौ, उपम्म तासु लुम्भयौ।
दिपंत तुच्छ दिठ्ठयौ, विचै अनार फुट्टयौ। छं० १२५
सुग्रीव कंठ मुत्तयौ, सुमेर गंग पत्तयौ।
सुमंत कुच्च तुंमरं, सुरच्छि लग्गि अंमरं। छं० १२६
नषादि ईस अच्छनं, वरंत सुच्छि लच्छिनं।
सुरंग हथ्थ मुंदरी, सो पानि सोम सुन्दरी। छं० १२७
सुजीव अग्म बालयं, सुगंध तिष्ष तालयं।
कनक्क विप्प पव्वया, सुराज सिंभ दिव्वया। छं० १२८
विविच्च रोम रंगयं, पपील सुत्तरंगयं।
हरंत छब्बि आमिनी, कटि सुहो न सामिनी। छं० १२९
सदैव ब्रह्मचारिनी, अबुद्ध बुद्धिकारिनी।
प्रभाव दोष बंचही, सुहंत देवि संचही। छं० १३०
अपुट्ठ रंभ नारिनी, सुजुत्त ओप कारिनी।
नयन्न नास कोसई, बरट्टि कट्टि भेसई। छं० १३१
झलक्क तेज कंबुजं, चरन्न चारु अंबुजं।
सुरंग रंग ईंडुरी, कलोति चंपि पिंडुरी। छं० १३२
सबद्द सद्द नूपुरे, चलंत हंस अंकुरे।
सु पाइ पाइ रंगजा, जु अद्ध रत्त अंबजा। छं० १३३
दरस्स देवि पाइयं, सु कव्वि कित्ति गाइयं। छं० १३४

प्रस्तुत स्वरूप वर्णन निःसंदेह देवी सरस्वती का है।

पश्चात् देवी ने कैमास वध का सारा आद्योपांत हाल चंद को बतला दिया (छं० १३५-१६७ स० ५७)।

३. कनवज्ज युद्ध, स० ६१ में राजा जयचंद के दसौंधी ने कन्नौज में कविचंद से कहा कि हे चंद तुम वरदायी कहलाते हो, कान्यकुब्जेश्वर के दर्शन करने आये हो, सरस्वती का वरदानी तो मैं तुम को तब समझूँ जब तुम मेरे अदृश्य राजा का वर्णन कर सको—

अहो चंद वरदाइ कहावहु, कनवज्जह नृप देषन आवहु।
औ सरसति जानौ वर चाव, तौ अदिष्ट वरनौ नृप भाव। छं० ५१३

और चंद ने सचमुच ही महाराजा जयचंद के दरबार तथा उनके सरदारों के नाम ग्राम का वर्णन कर दिया (छं० ५१६-५४७)।

अतएव पृ० रा० के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि चंद देवी सरस्वती का वरदानी था।

परन्तु हर प्रसाद शास्त्री अपने प्रारम्भिक खोज रिपोर्ट, परिशिष्ट पृ० २५ पर लिखते हैं :—

"चंद की वरदायी उपाधि का अर्थ है कि उसने एक देवी से कवि होने का वरदान प्राप्त किया था। ये ज्वालादेवी थीं और ज्वाला नामक स्थान में प्रतिष्ठित थीं जिसे पृथ्वीराज ने चंद को दिया था। बरदायी संभवतः अशुद्ध है उसे वरदिया होना चाहिये। पठानों में वरदायी नामक एक जाति होती है, ये लोग अपने को चंद का वंशज कहते हैं और अपने पूर्व पुरुषों का बलात् मुसलमान बना लिया जाना बतलाते हैं।"

वरदायी रूप में प्रसिद्ध होना—देवी द्वारा वरदान पाकर कवि चंद वरदायी प्रसिद्ध हो गया था। पृ० रा० में हम उसकी ऐसी ही ख्याति पाते हैं। देखिये

१. चंद की स्त्री के वाक्य—

तुम देवी वरदान, दान दीजे मुहि कब्बिय।
अष्टादसह पुरान, नाम परिमानह सब्बिय। छं० ३०, स० १

२. मंत्री कैमास के वाक्य—

कथ्थिय वर कैमासं, देवी वरदाय चंद भट्टायं।
अस तिन चवै असेसं, सत्यं रूप सत्य अवतारं। छं० १४८, स० ६

३. पृथ्वीराज के वाक्य—

सब भट पूछि पूछि कवि चंदह, तुम वरदाइ लहौ बुधि कंदह।
किम अपने पित मात धरंनिय, सब विरतंत कहौ मनकरनिय। छं० ७, स० १०८

४. पृथ्वीराज के वाक्य—

या पुच्छी कविचंद कौ, हिय हरष्ष सुखदाइ।
जु कछु भयौ सु कहौ तुम, तुम वानी वरदाइ। छं० ४, स० २२

५. **तब प्रथिराज नरिंद, आइ दिल्ली पुर मझ्झं।**
अप्प चित्त वर अवर, बैठि सिंहासन रज्जं।

अवर सूर सामंत, सकल सम्भा भर मंडे।
तब सु चंद वरदाइ, आइ कुसुमावलि छंडे। छं० ३६३, स० २४

६. चंद के वाक्य—

हौता नत कविचंद सुनि, तूं साचौ वरदाइ।
कहि मंत्री कैमास सौ, क्यो मार्‌यो अप धाइ। छं० २३४, स० ५७

७. चंद के वाक्य—

थल छोरि न जाइ अभागरौ, गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ।
इम जंपै चंद वरद्दिया, कहा निघट्टै इय प्रलौ। छं० २१६, स०५७

८. बाला न अच्छि लग्गी, हुं वरदाइ कढिढया अग्गी।
तंबाल विरस लग्गी, लच्छिन पुरसान रष्षिया मग्गे। छं० २६२, स० ५७

९. तब प्रेहनि वरदाइ सु आइय, अचल गंठि विलग्गिय धाइय। छं० २६४, स०५७

१० दुर्गा केदार के वाक्य—

जो पाषान सु पुतरी, अस्तुति करै जु आय।
जो उमया सेमुष कहै, तो सांचो वरदाय। छं० १२०, स० ५८

११. देवी के वाक्य—

विजै है मति राज, उकतिजौ बहु धर्‌यौ।
मोहि चद वरदाय, सु अंतर मत्ति कर्‌यौ। छं० १२६, स० ५८

१२. चंद के वाक्य—

चहुआन चतुर चावद्दिसहि, हिंद वान सब हत्थ जिहि।
इम जंपै चंद वरद्दिया, प्रथीराज उनहारि इहि। छं० ६५४, स० ६१

१३. चंद के वाक्य—

बरस तीस छह अग्गरौ, लच्छिन सब संजुत्त गनि।
इम जंपै चंद वरद्दिया, प्रथीराज उनहारि इनि। छं० ६५५ स० ६१

१४. जयचंद की महारानी के वाक्य—

इहि कवि दिल्लिय नाथो, मैं सुन्यो वीरं वरदाई।
तिहि नव रस भाष छ भनियं, पठ्ठाइयं अस्सनं तथ्थं। छं० ७४४,स०६१

१५. जयचंद के मंत्री के वाक्य :—

नृपवर सोचि विचारि, संग सुझ्झ वरदाइय।
अवधि बसीठ रु भट्ट, वंश नृप लगै बुराइय। छं० ६३०, स० ६१

१६. जयचंद के मंत्री के वाक्य :—

टरिय राज उर क्रोध विचारिय, वरदाई मिथ्या न उचारिय। छं० ६३१,स० ६१

१७. पृथ्वीराज के वाक्य :—

हम झूझत रजपूत रिन, जंपत संभरि राव।
अमर कित्ति सामँत करन, वरदाई घर जाव। छं० १८७२, स० ६१

१८. कुंजर पंजर छिद्र करि, फिरि वरदाई चंद।
तिन अंदर जिद्धनि अमत, ज्यौ कंदरा मुनिंद। छं० १८६६, स० ६१

१९. राजन मझ्झ संपरिय, पट्ट दरबार परट्ठिय।
बहुरे सब सामंत, मंत भग्गिय सिर लट्ठिय।
रह्यो चंद वरदाइ, विमुष पग डग न सुरक्क्यौ।
अम्भ तेजवर भट्ट, रोस जल षिन षिन सुक्क्यौ।... छं० २४६ स० ५७

२०. सामंत वाक्य
कह्यौ चंद वरदाइ, बत्त हाहुलि हम्मीह।
स्वामि ध्रम्म चितियै, दोस टारियौ सरीरह। छं० ६७२, स० ६६

२१. हमीर के वाक्य—
पुनि अष्षिय हम्मीर, सुनहु देविय वरदाइय। छं० ७०७, स० ६६

२२. सुलतान गोरी के वाक्य —
बुझ्झवन बत्त जीरन जुगति, इय वरदाइय ग्यान गुर।
चिहुँ देश चड मडै सचिर, रसन प्रेम रस ध्रम्म धर। छं० ३१४, स० ७७

२३. तब सु चंद वरदाई, साहि अग्गे कर जोरे।
क्रपन गंठि जिमि साहि, राज गंठिन अब छोरे। छं० ५५६, स० ६७

और—

२४. मरन चंद वरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहपंजलि असमान, सीस छोड़ी सु देवतनि। छं० ५५६, स० ६७

इस प्रकार हम देखते हैं कि चंद स्वयं अपने को वरदायी कहता था तथा देश-विदेशों में भी वह वरदायी कहकर संबोधित अथवा वर्णित हुआ था।

वरदायी होने का गौरव

कैमास बध, स० ५८ में वर्णित है कि पृथ्वीराज ने करनाटी वेश्या के कारण मंत्री कैमास का रात्रि में गुप्त रूप से बध करके गाड़ दिया था। देवी ने प्रथम स्वप्न में फिर प्रत्यक्ष प्रगट होकर कविचंद को सविस्तार सारी घटना बतला दी थी। (छं० १०७—१६७)। दूसरे दिन दरबार लगने पर सामंत गण बैठ गये, विरुदावली पढ़ने वाले भट्ट ने विरुद कहा, दोपहर को कविचंद ने भी आकर आशीर्वाद दिया (छं० १६६, स० १७१)। चंद ने दरबार में सब सामंतों की बिरुदावली पढ़ी (छं० १७२—१६३), तब राजा ने उसे अपने समीप बैठने की आज्ञा दी (छं० १६४)। फिर महाराज ने कहा कि सब लोग उपस्थित हैं, केवल कैमास का ही पता नहीं है या तो कैमास को बतलाओ अथवा वरदायी कहलाना छोड़ दो :-

उदय अस्त तौ नयन दिठि, जल उज्जल ससि कास।
मोहि चंद है विजय मन, कहहि कहा कैमास। छं० २२५
नन दिठ्ठौ कैमास कवि, मो जिय इम संदेह।
चामंडा वीरह सुमन, अप्पौ अप्प सुबेह। छं० २२६

नाग पुरह नर सुरपुरह, कथन सुनत सब साज।
दाहिम्मा दुल्लह भयौ, कहि ना जाय प्रथिराज। छं० २२७
का भुजंग का देव ससि, निकम कवित्त जु षंडि।
कै बताउ कैमास मुहि, हर सिद्धि बर छंडि। छं० २२८
जौ प्रसन्न वरदाय, देव संचौ बर अप्पौ।
कहि अदिष्ट कैमास, देवि बर छंडि न जप्पौ।
तीन लोक संचरे, सत्ति तिनकी वरदाई।
तू पन अप्पन छंडि, जोग पाषंडह षाई।
मानहु सु बात अरु वेग वत, कहिग साच कविचंद तत।
मन बच्च क्रम्म कैमास घन, जू दुर्गा सच्चौं सुमत। छं० २२९

साधारण अवस्था में संभवतः चंद ऐसी उद्धता न करता कि महाराज के कृत्य का भंडाफोड़ खुले आम कर देता। परन्तु उसे और कुछ नहीं तो अपनी सिद्धि का अपने वरदायीपन का बड़ा गौरव था। वह सब कुछ सहन कर सकता होगा परन्तु यह सिद्धि का उपहास और वरदायित्व पर व्यंग तथा उसकी साधना की सत्यता की ललकार ऐसी थी कि सीमा से बाहर। उसके स्वाभिमान को ठोकर लगी और सिद्धि वाणीमय हो गई।

वह बोला कि यदि शेष पृथ्वी को छोड़ दे, शिव विष छोड़ दे, सूर्य ताप छोड़ दे तो कविचंद भी वरदायी कहलाना छोड़ देगा, चौहान ने हठ ठान लिया है, सर्प के मुख में उँगली दे दी है, तीनों लोकों में जहाँ कहीं भी कैमास होगा चंद को बतलाना ही पड़ेगा, कवि चंद से पूछे जाने पर रहस्य ढके नहीं रह सकते।

जौ छंडे सेसह धरनि, हर छंडे विष कंद।
रवि छंडे तप ताप कर, वर छंडे कविचंद। छं० २३०
हठ लग्गौ चहुआन नृप, अगुलि-मुष्ष फुनिंद।
तिहुँ पुर तुअ अति संचरे, कहै बनै कविचंद। छं० २३१
जौ पुच्छै कविचंद सौं, तौ ढंकी न उघारि।
अब कित्ती उषर चंपौ, सिंचन जानि गमारि। छं० २३२

फिर उसने कहा कि सच्चा वरदायी कविचंद आपके सम्मुख नत होकर पूछता है कि आपने मंत्री कैमास को क्यों मार डाला, हे पृथ्वीनरेश, आपका प्रथम वाण जब कैमास पर चूक गया तब हे सोमेश्वर नंदन, आपने दूसरा वाण संधानकर उसे मार डाला फिर हे संभर-धनी, आपने उसे गाड़ दिया, चंद वरदायी कहता है कि आपने यह कैसा प्रलय कर डाला —

सेस सिरप्पर सूरतन, जौ पुच्छै नृप एस।
दुहुं बोलन मंडन मरन, कहौ तौ कव्वि कहेस। छं० २३३
होता नत कविचंद सुनि, तूं साचौ वरदाइ।
कहि मंत्री कैमास सौ, क्यों मार्यो अप धाइ। छं० २३४

गाथा— कहना न चंद चित्तं, नर भर सम न राज जोइयं नयनं ।
आचिज्ज मूढ़ बत्तं, प्रगट भवसि अवसि आरिष्टं । छं० २३५
एक बान पहुमी, नरेश कैमासह मुक्यौ ।
उर उप्पर थरहर्यो, बीर कष्षंतर चुक्यौ ।
कियौ बान सधान, हन्यो सोमेसर नंदन ।
गाढो करि निग्रह्यो, षनिव गड्यौ संभरि धन ।
छोरि न जाई अभागरौ, गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ ।
इम जंपै चंद वरद्दिया, कहा निघट्टै इय प्रलौ । छं० २३१

यह भेद प्रकट होते ही राजा संकुचित हो गये, सामंत संतप्त और व्याकुल हो उठे तथा खिन्न मन से दरबार से क्रमशः उठ गये (छं० २३६—२४८)।

यदि वरदायी होने की सत्यता का प्रमाण देने के लिये पृथ्वीराज कवि को न प्रचारते तो बहुत संभव था कि वह प्रस्तुत रहस्य इस प्रकार न खोलता। वरदायी होने का उसको गौरव था, अपनी सिद्धि का उसे अभिमान था, इसमें ठेस लगने पर देखते हैं कि उसको निज स्वामिधर्म भी विलुप्त हो गया। दूसरे दृष्टिकोण से यह रहस्योद्घाटन उसकी निर्भीकता का द्योतक भी है।

पृ० रा० के निम्न चार स्थलों पर पढ़ते हैं कि देवी ने चंद की सहायता की थी।

देवी द्वारा सहायता

१. दिल्ली दान, स० १८ में दिल्लीश्वर अनंगपाल ने जब पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर स्वयं बद्रिकाश्रम जाने का संदेश भेजा तो पृथ्वीराज ने चंद का मत जानने के लिये पूछा कि हे वरदायी, तुम श्रेष्ठ बुद्धि वाले हो, यह अनंगपाल अपने माता-पिता का राज्य मुझे क्यों अर्पण कर रहा है, सारा वृत्तांत मुझे बताओ (छं० ६-७) चंद ने ध्यानपूर्वक देवी का आह्वान किया और उनके द्वारा सूचना पाकर कहा कि व्यास ने जो भविष्यवाणी की थी उसके अनुसार आप का राज्य पूर्ण तेजस्वी होगा। (छं० ८-६)।

२. धन कथा, स० २४ में जब पृथ्वीराज षट्टू बन का खजाना खुदवा रहे थे तो उसमें एक भयंकर देव निकला जिसने नाना प्रकार की माया रचकर लड़ाई प्रारंभ कर दी। (छं० ३९५—३९९)। तब चंद ने देवी की स्तुति की (छं० ४००—४०८) और देवी ने दानव को मारने का वरदान दिया (छं० ४०९)। दानव पृथ्वीराज द्वारा युद्ध में मारा गया (छं० ४१२)। तब चंद ने दुर्गा देवी का आह्वान किया (छं० ४११) और दैवी से इस राक्षस और धन की पूर्व कथा पूछी (छं० ४१२) तथा देवी ने प्रत्यक्ष सारी कथा कही। (छं० ४१३— ४१९)।
नोट : इस प्रसंग से उसे दुर्गा देवी की सिद्धि भी प्रतीत होती है।

३. दुर्गाभट्ट केदार, स० ५८ में वर्णित है कि ग़ज़नी के भट्ट दुर्गा केदार ने देवी से विद्यावाद में चंद पर विजय प्राप्त करने का वरदान मांगा (छं० २९)। देवी ने कहा कि तू चंद को छोड़कर सबको परास्त कर सकता है (छं० ३०—३१)। पृथ्वीराज की सभा में

दोनों कवियों में खूब शास्त्रार्थ हुआ, उस समय देवी ने कहा कि मैं कविचंद के कंठ में संपूर्ण कलाओं से विराजती हूँ (छं० १०३—१०४)। फिर घट के अन्दर से लालिमा रूप में प्रगट होकर देवी ने चंद को आश्वासन दिया कि मुझमें अन्तर नहीं है (छं० १२५—१२७)। दुर्गा केदार अनेक उपाय करने पर भी चंद को पराजित न कर सका और अंततः दोनों बराबर ठहराये गये (छं० १४६)।

४. बानवेध, स० ६१ में चंद ने योग धारण किया (छं० २०) और देवी से निर्विघ्न ग्रंथ समाप्त करने की प्रार्थना की (छं० २३-२४)। वह निगमबोध स्थित चौसठ योगिनियों के स्थान पर चला गया और कोरी पोथी लेकर देवी सरस्वती का ध्यान करने लगा, देवी ने दर्शन दिये, कवि ने वरदान माँगा कि मैं चौहान के ऋण से उद्धार होऊँ और वह उसे मिला, वहीं दो मास और पंद्रह दिनों में उसने पृ० रा० के सात हज़ार रूपकों की रचना की (छं० ५२-५०) फिर कविचंद महाराज पृथ्वीराज के उद्धार के लिये योगी वेष में दिल्ली से ग़ज़नी चल दिया (छं० ८३-९५)। दुर्गम और बीहड़ मार्ग से कवि का चित्त अत्यंत क्लान्त हो गया और वह जंगल में लेट रहा (छं० १०६-११७)। देवी ने कवि को दर्शन दिये और कवि ने अपनी विपत्ति का वर्णन करके सहायता चाही (छं० ११८-१२६)। देवी ने देखा कि भट्ट नृप के दुख से अनुतप्त है, उन्होंने उसे ध्वजा के लिये चीर और सिर के लिये बचन दिया (छं० १२७)। तब चंद ने देवी की बड़ी सुन्दर स्तुति की (छं० १२८-१२६) ग़ज़नी में भीम खत्री के यहाँ ठहर कर उसने देवी का हवन पूजन किया और देवी ने प्रगट होकर वर दिया कि सुलतान, तुम और पृथ्वीराज साथ ही मृत्यु को प्राप्त होगे (छं० २४६-२७४)।

गाथा साह बंदी सुलतानं, तो प्रथिराज अंत दिन एकं।
तो चहुआन स कित्ती, वंछै वर बेलि पुहमि परचारं। छं० २६८

साथ ही देवी ने यह भी वचन दिया कि तुम्हारे कार्य के लिये मैं सुलतान की जिह्वा पर बैठ जाऊँगी। भय मत करो (छं० २७३)। शाही दरबार में तत्तार खाँ ने सुलतान के आज्ञा देने पर भी जब द्वारपाल को इशारा करके कविचंद के अंदर आने की रोक करवा दी (छं० ३०८-३२१) तब चंद ने देवी की सहायता करने के लिये स्तुति की (छं० ३२२-३२६) फिर तो भूचाल आ गया, धूल उड़ने लगी म्लेच्छों की बुद्धि मंद पड़ने लगी, हुंकार शब्द होने लगा तथा भीर हाय हाय कर उठे (छं० ३२६-३३०)। साहब शाह ने हुजाब से कवि को लाने की आज्ञा दे दी और चंद दरबार में आ गया (छं० ३३१)।

अस्तु चंद देवी का वरदानी तो था ही, उनसे समय पड़ने पर सहायता भी प्राप्त किया करता था।

चंद की मंत्र तंत्र शक्ति के परिचायक पृ० रा० के निम्न प्रकरण हैं:—

१. आषेटक वीर वरदान, स० ६ में पढ़ते हैं कि महाराज पृथ्वीराज एक बन में आखेट हेतु गये थे, चंद भी उनके साथ था, मार्ग में अपने साथियों से

मंत्र तंत्र भटक कर चंद एक यती के सामने जा पहुँचा, और यती को प्रसन्न करके

उसने उनके द्वारा दीक्षित हो बावन गणों को वशीभूत करने वाला मंत्र सिद्ध कर लिया—

प्रसन्न चंद सम जतिय दिन्न इक मंत्र इष्ट जिय।
इह आराधत भट्ट प्रगट पंचास वीर जिय।
करि साधन इह साध व्याधि नासत फल धारिय।
गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय।
धरि कान मंत्र लीनो कविय, परसि पाइ अग्गे चलिय।
करबे सु परिष्षा मंत्र की, रचि आसन अग्गे बलिय। छं० २६ स० ६

यती ने चंद से प्रसन्न होकर अपना एक इष्ट मंत्र दिया और कहा कि हे भट्ट, इसकी आराधना करने से बावन वीर प्रकट हो जावेंगे, इसकी साधना साध कर व्याधियां नष्ट होंगी और वांछित फल प्राप्त होंगे। गुरु से उपदेश मंत्र प्राप्त कर सब गणों को अपने आधीन करो, कवि ने कान में मंत्र सुन लिया तथा ऋषि के चरण स्पर्श करके आगे चला, फिर मंत्र की परीक्षा हेतु उसने आसन लगाया।

चंद के मंत्र से प्रेरित वीर गण तत्काल वहीं प्रगट हो गये, उनके दर्शन से चंद को अतीत प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसने उनकी पूजा की, वीरों ने पूछा कि हमें क्यों बुलाया है? चंद ने कहा कि महाराज पृथ्वीराज की सहायतार्थ मैंने आप का आह्वान किया है। गणों ने कहा अस्तु, संकट काल में हमारा स्मरण करना, तथा भैरव ने एक गण को आज्ञा दी कि सब वीरों को चंद को पहिचनवा दो, फिर प्रत्येक का नाम, गुण आदि सुनकर कवि ने प्रणाम करके उन्हें विदा किया (छं० २७-६३)।

तदुपरांत चंद भी महाराज को ढूँढ़ता हुआ उनसे आकर मिला और एकांत में उनसे वीरों को वश में करने का समाचार कहा (छं० ११)। पृथ्वीराज यह हाल जानकर प्रसन्न हुए (छं० १२६)। आखेट से लौटकर दूसरे दिन महल में दरबार के समय मंत्री कैमास द्वारा पूछे जाने पर पृथ्वीराज ने चंद के बावन वीरों के वशीकरण की बात कही (छं०-१३६-१४२)। सामंतों ने उपहास किया कि भाट, नट,. और चारण आर्त होते हैं इसकी बात न माननी चाहिये (छं० १४३)। कैमास ने कहा कि चंद को देवी ने वरदान दिया है और वह सत्य का अवतार है (छं० १४४)। कन्ह ने कहा कि चंद पीछे छूट गया था, आपको प्रसन्न करने के लिये उसने यह वार्ता गढ़ दी है (छं० १४५)। इससे पृथ्वीराज के मन में भी संदेह हो गया। इतने में ही चंद ने भी आकर आशीर्वाद दिया (छं० १४६) पृथ्वीराज ने चंद से उक्त गणों की बातचीत करते हुए कहा कि वीरों का दर्शन करने की हमारी अति अभिलाषा है (छं० १४७-१४८)। चंद ने मंत्र का जाप और हवन प्रारंभ किया। नाना प्रकार के उपद्रव होने लगे और वीर गण प्रगट हो गये, तब सामंत गण डरे कि इसका अहेतुक बुलाना उचित नहीं हुआ। यथा—

दूहा, **सुनि आनंद्यो चंद चित, कीन मंत आरंभ।**
जद्पि जाप हवि होम सब, लग्यौ कज्ज असंभ। छं० १४६

गाथा, **किज जप जाप सु होमं, आए वीर धीर आतुरयं।**
गज्जौ गयन गहीरं, भयभै भीत सोर आघातं। छं० १५०

भुजंगी, धर्मकी धरा धंभ धंमै धरक्की, कठं पिठ्ठ कंमठ्ठ कठ्ठै करक्की।
डिड्गै अडिड्गं सोदिगंपाल दस्सं, तरक्कैक चकै मुनि जंनं तपस्सं। छं० १५१
भरक्कै सुबाजं स बाजं बिछुट्टै, तरक्कैक एकं उलट्टै सुलट्टै।
इसो आगमं भौ सुबावन्न वीरं, कंपे काइरं धीर रष्षौ सुधीरं। छं० १५२

दूहा, सुनिअ घात वर वीर कौ, चमकै चित सामन्त।
इन आकष कज्ज बिन, किन्नौ अप्प अमन्त। छं० १५३

वीरों का भयंकर शब्द सुनकर दरबार के बाहर अलग अलग बँधे हुए दो विकराल मस्त गजराज चौंके और तुड़ाकर लड़ने लगे, जिससे बड़ी खलबली मच गई, सामंत लोग अनेक उपाय करने पर भी हाथियों को वश में न ला सके, तब चंद ने बावन वीरों से प्रार्थना की कि आप इन्हें छुड़ाकर बाँध दीजिये, भैरों की आज्ञा से वीरों ने हाथियों को जंजीर से बाँध दिया। यह कौतुक देख सामंत बड़े आश्चर्यान्वित हुए, सब लोग आकर दरबार में बैठ गये, पृथ्वीराज ने गणों को प्रणाम किया और चंद ने नाम लेकर उनकी महाराज से पहिचान कराई, फिर चंद ने कहा कि बिना कारण इन्हें बुलाया है, इनको बावन घड़े मदिरा और बावन बकरे दो, पृथ्वीराज ने सब वस्तुएँ मंगा दीं तथा सिंदूर, तेल, पुष्प आदि से उनकी पूजा की, गण प्रसन्न हो गये तथा वर माँगने के लिये कहा, चंद ने कहा कि युद्ध काल में महाराज की सहायता करना, भैरव ने चंद को बुलाकर कहा कि आपत्ति काल में हमारा स्मरण करना। तदुपरांत उन सब ने बिदा ली, सामंतों को चंद की बात पर विश्वास हो गया और पृथ्वीराज का प्रेम उस पर अधिक बढ़ गया, फिर महाराज के कहने पर चंद ने सब सामंतो को वह मंत्र सिखला दिया (छं०-१५४-१७७)।

गाथा— तब कूंअर कहि चन्द, देहु मन्त्र सब्ब सामंतं।
तब कहि मंत्रं चदं, कीन अप्प अप्पं सहायं। छं० १७७

२. भोलाराय समय १२ में वर्णित है कि गुर्जर नरेश भोलाराय भीमदेव चालुक्य के मंत्री * मरसिंह सेवरा ने जैन मंत्र-तंत्र बल तथा लाले नमक एक रूपवती स्त्री के द्वारा महाराज पृथ्वीराज चौहान के मंत्री के पास दाहिम पर वशीकरण करके पृथ्वीराज के नागोर नगर पर चालुक्य राज की आन (दुहाई) फिरवा दी (छंद २१२-२७१)। चंद को स्वप्न में इस बात का समाचार मिला, उसने देवी का आह्वान करके स्तुति की तथा नागोर को प्रस्थान किया, वहाँ उसने सब प्रत्यक्ष ही पाया और घर घर वही चरचा सुनी (छं० २७२-२७६)। यह देखकर चंद ने भैरों और देवी का अनुष्ठान प्रारम्भ किया तथा देवी से जैन की माया जीतने का वरदान मांगा (छं० २७७-२८६)। यह समाचार पाकर अमरसिंह सेवरा ने चंद का मंत्र नष्ट करने के लिए मंत्र प्रयोग किया और घट स्थापित किया (छं० २८७-२८८) जिससे एक क्षण के लिए चंद भ्रम में पड़ गया परन्तु फिर शीघ्र ही सम्हल कर अनुष्ठान करने लगा और योगिनियों को जगाने का मंत्र प्रारम्भ किया, अमरसिंह ने अनेक पाषण्ड किये परन्तु चंद ने अपने मंत्र बल से उसे जीत लिया

(छं० २८६-३०५)।

दूहा— वर पाषंड न पुज्ययौ, किये अमर घन तंत।
को जित्ते कविचंद सों, द्रुगा सहाइक मंत। छं० ३०२

अरिल्ल— जे पाषंड बहुत अभ्यासे, चंद मीन विष ज्यों अहि ग्रासे।
छिनक एक विद्या गुन संधी, वर पाषंड मंडि कवि बंधी। छं० ३०३
बद्धा जैन सुजैन लगि, जीता चंद चरित्त।
भामीं भट्ट सुमंत किय, मरन जियन करि हित्त। छं० ३०४
लुट्टि लये पाषंड सब, छुटि मंत्री कैमास।
हर हरंत आयास लगि, चंद न छंडे पास। छं० ३०५।

३. चंद द्वारिका समय ४२ में उल्लेख है कि चंद बरदायी द्वारिकापुरी से लौटकर गुर्जर नरेश की राजधानी पट्टनपुर आया, गुर्जर नरेश ने उसका अच्छा आतिथ्य किया परन्तु साथ ही अपने जैन मंत्री अमरसिंह सेवरा से उसका शास्त्रार्थ कराया, चंद ने अपने मंत्रबल से सेवरा को रथ समेत आकाश में उड़ा दिया, बवंडर उठ खड़ा हुआ, तथा पट्टनपुर नगर हिलने लगा। यथा—

तब पुच्छिय भीमंग, तुम वरदान सु दिद्धिय।
बाद बहि देवंग, सुपन पिष्षिय मन सिद्धिय।
चद देव किय सेव, तिन सु अमरा बुल्लाइय।
थूल रथ्थ आरूढ़, चंद असमान चलाइय।
तरवर सुपत्त बैठो तिनह, फिर न वाद को नौ बलिय।
नट्ठी जु सबी उपजी अनल, सुरसि बंचि नंच कलिय। छं० ८१
जीता बे जीता चंदानं, परि पिष्षिय रष्षिय रंभानं।
मुष बुल्ले जैजै चहुआनं, नाटिक करि नंचो निरवानं। छं० ८२
हल हलंत तंबू हल हिलियं, बंदि भत्त हैगै पति चलियं।
चंद मंत्र पट्टन चल चलियं, मनो अंब ताराइन तुलियं। छं० ८३

४. दुर्गा केदार समय ५८ में पाते हैं कि गज़नी दरबार के भट्ट दुर्गा केदार का चंद बरदायी के साथ पानीपत में महाराज पृथ्वीराज की अनुमति से शास्त्रार्थ हुआ। प्रथम तो दोनों कवियों ने काव्य सम्बन्धी अपने अपने चमत्कार दिखलाये (छं० ७५-८५) फिर तंत्र मंत्र जल का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, केदार भट्ट ने एक घट से ज्वालाएँ निकालीं और वेदोच्चार कराया, चंद ने अपने घट से ज्वालाओं के साथ चौदहों विद्यायें प्रगट कर दीं, केदार ने एक घोड़े से राजा को आशीर्वाद दिलाया, चंद ने उसके मस्तक पर कुछ पुष्प फेंका। फेंकते ही घोड़े ने एक आशीर्वादात्मक गाथा पढ़ी, केदार ने पत्थर पिघलाकर उसमें अँगूठी डाल दी, तब चंद ने शिला को पुनः पानी करके अँगूठी निकाल ली, फिर दुर्गा केदार ने अन्य अनेक कलायें दिखाईं और चंद ने सबका प्रत्युत्तर दिया, अंत में दोनों कवियों के तंत्र मंत्र बराबर सिद्ध हुए (छं ८६-१४१)।

कवित्त पढ़त मंत्र बरदाय, चल्यो पावन सुरंग कल।
घट वद्दै रिति कलिय, दिद्ध आसीस हम सुबल।
बर सुंदरि कटि नंषि, और आरंभ सु किन्नौ।
जंत्र मंत्र बहु जुगति, मंगि फिर बोल सु दिन्नौ।
ठठुक्यौ सु दुर्गा केदार बर, देव विष्ट नंषे सुमन।
जित्यौ न कोय हार्‌यौ न को, सुनिय कथ्थ प्रथिराज उन। छं० १४८

दूहा बाद बिबादन वीर कवि, सत्ति सुभाव सुधीर।
दुग्ग मत्ति तौ संचरी, जौ चंद वयठ्ठौ नीर। छं० १४९

५. बानबेध प्रस्ताव, स० ६७, में कविचंद ने ग़ज़नी जाकर एक एकांत स्थान में अपने मंत्रों की स्तुति से देवी का ध्यान किया, उक्त रात्रि को मुल्लाओं को अपने मंत्र निष्फल होते देख बड़ा आश्चर्य हुआ (छं० २५२-२६५)।

सुरिल्ल करे जाप सा मंत्र बीज बर, लग्गो करन होम सा विधि पर।
करे ध्यान पूरन जपं कब्बी, सनमुष तो न प्रगट्टी हब्बी छं० २५२

भुजंगी महल साह साहाब सुरतान गोरी।
जगी जलनि किरनानि संमान जोरी।
किते वे कुराने कुसी कान लग्गे।
डरे देव वानी नही मंत जग्गे। छं० २८८
डरे दान दीये सुलीये फकीरे।
तहाँ करि सकै कौन अह साह पीरे।
फिरस्ते न इस्ते न मुल्ला पुकारे।
उठै मुट्टि दिट्ठी तहाँ गात झारे। छं० २८९

इस प्रकार इन स्थलों के आधार पर ज्ञात होता है कि चंद एक प्रबल तांत्रिक तथा मंत्रशास्त्र का सिद्ध जानकार था। उपर्युक्त पाँचों वर्णनों में हम इस क्षेत्र में उसकी विजय का समाचार पाते हैं। साथ ही वह मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन तथा बाजीगरी आदि करतबों में भी पूरा दक्ष था।

इन मंत्र-तंत्रादिकों के अतिरिक्त वह गाड़ुरी मंत्र का भी ज्ञाता था। धन कथा, स० २०४, में वर्णित है कि नागौर के खट्टू बन में महाराज पृथ्वीराज अपने शूर सामंतों और वीर सैनिकों सहित एक गड़े हुए ख़ज़ाने का अन्वेषण कर उसे खुदवा रहे थे, मुख्य स्थान का पत्थर तोड़ते ही एक बड़ा भारी सर्प निकला जिसे देख कर लोग भाग खड़े हुए, तब कवि चंद ने अपने मंत्र-बल से उसे पकड़ लिया और द्रव्यवाले स्थान की खोज करने लगा। यथा—

तब दिष्षो वह थान तिन, सस्र अनी छिति भंजि।
अप्प सु दिष्षो चव सुबल, रहे दूरि सब भज्जि। छं० ३८६ तथा,

अप्प मंत्र बंध्यौ सु कवि, द्रव्य निरष्यो जाइ।

चिहूं दिसा जो देखिये, दिष्ट न आवे ठाइ। छं० ३८८, स० २४

अपने महाकाव्य का उल्लेख करते हुए कवि का कथन है कि उसमें विशाल धर्म

भाषाज्ञान की उक्तियाँ हैं, राजनीति और नव रसों का वर्णन किया गया है तथा छः भाषाओं, पुराण और कुरान का मैंने कथन किया है। यथा--

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।

षट भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया। छं० ८३, स० १

पंग दरबार के दसौंधी ने महाराज जयचंद को द्वार पर उपस्थित चंद का परिचय देते हुए, उसके छै भाषाओं के ज्ञाता होने का उल्लेख किया था। यथा—

भाषा षट नव रस पढ़त, वर पुच्छै कविराज।

संप्रति पंग नरिंद कै, बर दरबार विराज। छं० ५५५

भाषा परिछा भाष छह, दस रस दुब्भर भाग।

वित्त कवित्त ज्ञु छंद लों, पग सम पिंगल नाग। छं० ५५६, स० ६१

कवि के कन्नौज आने का समाचार पाकर पंग नरेश की रानी ने कहा कि दिल्लीश्वर के इस कवि को मैंने वरदायी सुना है, वह नव रस और छै भाषाओं का ज्ञाता है, उसके पास मैं भोजन भेजूँगी। यथा—

इह कवि दिल्लिय नाथो, मैं सुन्यो वीर वरदायी।

तिहि नव रस भाष छ भनियं, पठ्ठाइय असनं तथ्थं। छं० ७४४, स० ६१

ग़ज़नी के शाही द्वार पर द्वारपाल द्वारा परिचय पूछे जाने पर चंद ने जहाँ उससे अपने अन्य गुणों का बखान किया, वहाँ अपनी छै भाषाओं की जानकारी भी बतलाई थी। यथा—

षट भाष रस्स नव नट्ट नाद।

जानो विवेक विच्चार वाद......छं० १७६, स० ६७

इस प्रकार पृ० रा० में हम चंद को छै भाषाओं का जानकार होना पाते हैं। 'पृथ्वीराज विजय' प्रणेता 'जयानक' के विषय में उसी ग्रन्थ में लिखा है कि 'वह कवि छै भाषाओं का जानकार था'। देखिये—

"१२ वें सर्ग में विग्रहराज के मंत्री पद्मनाभ ने एक काश्मीरी कवि को चंद्रराज पृथ्वीभट्ट से परिचित कराया जो किसी गंभीर विचार में शाला के बाहर आये थे तथा किसी को यह काव्य सुनाते सुनकर कि उसे प्रत्येक वस्तु प्राप्त होती है जो उसके लिए उद्योग करता है—उन्होंने उस कवि के बारे में पूछा था। पद्मनाभ ने कहा उक्त कवि का नाम जयानक है और वह अत्यन्त विद्वान् है तथा वह विद्या के केन्द्र काश्मीर से आया है। तद्पश्चात् कवि बतलाता है कि किन कारणों वश उसने अपनी जन्मभूमि छोड़ी। हस्तलिखित ग्रंथ का अन्तिम पत्र (संख्या ८३) अति बिगड़ी स्थिति में है, उस पर कुछ टूटे हुए वाक्य पढ़े जाते हैं जिनका भाव संभवतः यह है कि कवि छै भाषाओं का जानकार

है तथा देवी सरस्वती के आदेश से विष्णु के अवतार पृथ्वीराज की सेवा में आया है।"
(पृथ्वीराज विजय, हर विलास सारदा; जे० आर० ए० एस० बी०; १९१३, पृ० २८०)

गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह (वि० सं० ११५०-११९९) की सभा में जैन पोरवाड जातीय 'श्रीपाल' नामक प्रसिद्ध कवि था, जिसने 'वैरोचन पराजय' ('प्रभावक चरित्र', हेमचन्द्र सूरि प्रबन्ध, श्लोक २०६) एवं 'सहस्रलिंग सरोवर' आदि विभिन्न स्थानों की विद्वत्तापूर्ण प्रशस्तियाँ निर्माण की थीं, जिनमें से केवल बड़नगर दुर्ग की अवशिष्ट रह गई है। कवीन्द्र 'श्रीपाल' को 'षड् भाषा चक्रवर्ती' विरुद से संबोधित करते थे। ('गुजरात नो मध्यकालीन राजपूत इतिहास', पृ० २६३)

अतएव अपने निर्दिष्ट काल में 'चंद' के अतिरिक्त हम 'जयानक' तथा 'श्रीपाल' को भी षड् भाषा पंडित पाते हैं। इससे एक और अनुमान यह भी होता है कि ये छै भाषायें प्रचलित थीं तथा श्रेष्ठ कवि के लिये इनका ज्ञान होना आवश्यक था। अब देखना यह है कि आखिर इन विशेष छै भाषाओं पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है अथवा नहीं।

नवीं शताब्दी में 'रुद्रट' ने अपने 'काव्यालंकार' में प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अप्रभ्रंश को छै भाषाओं के अंतर्गत रखा है। यथा—

भाषाभेदनिमित्तः, षोढा भेदोऽस्य संभवति।
प्राकृत—संस्कृत—मागध—पिशाचभाषाश्च शौरसेनीच।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः। काव्यालंकार २, ११-१२

गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह के मंत्री ('द्वयाश्रय' हेमचंद्राचार्य, सर्ग २० श्लोक ९१, ९२) और कवि 'वाग्भट' (वि० स० ११७९) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'वाग्भटालंकार' में अपने समय की प्रकीर्तित संस्कृत, प्राकृत अप्रभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी छै भाषाओं का उल्लेख किया है। यथा—

संस्कृतं प्राकृतं चैवापभ्रंशोथ पिशाचिका।
मागधी सूरसेनी च भाषाः षट् संप्रकीर्तिताः।

"संस्कृत का साहित्य सबसे अधिक संपन्न था। उस समय संस्कृत ही राजकीय भाषा थी, राज्यकार्य इसी में होता था। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी प्रायः इसी में लिखे जाते थे, इसके अतिरिक्त यह संपूर्ण भारतवर्ष के विद्वानों की भाषा थी, इस कारण भी संस्कृत का प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारत में था (म० भा० सं०, पृ० ७३)।

"प्राकृत, से विद्वानों की सम्मति है कि वाग्भट का तात्पर्य महाराष्ट्री से रहा होगा। महाराष्ट्री भाषा का उपयोग विशेष कर प्राकृत काव्यों के लिये होता था। हाल, की सतसई (सप्तशति), प्रवरसेन कृत रावण बहो, सेतुबंध, वाक्पतिराज का गौड़बहो तथा हेमचंद्र का 'प्राकृत द्वयाश्रय' आदि काव्य तथा 'बज्जालग्ग' नामक प्राकृत का सुभाषित ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गये हैं (म० भा० सं०, पृ० १३६)।

"अपभ्रंश में धनपाल-रचित भविसयत्त कहा, महेश्वर सूरि कृत संजम-मंजरी, पुष्फदंत (पुष्पदंत) विरचित तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकार, नयनंदी-निर्मित आराधना, योगीन्द्र देव-लिखित परमात्मप्रकाश, हरिभद्र का नेमिनाहचरिउ, वरदत्त-रचित वैरसामिचरिउ, अंतरंग संधि, सुलसाखायन, भवियकुटुम्बचरित्र, संदेश शतक और भावना संधि आदि लिखे गये हैं। (वही, पृ० १३७)।

"पैशाची में गुणाढ्य-रचित प्रसिद्ध ग्रंथ वृहत् कथा है जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। क्षेमेन्द्र और सोमदेव द्वारा उसके दो कवितावद्ध संक्षिप्त संस्कृत अनुवाद मिलते हैं। (वही, पृ० १३६)

"प्राचीन मागधी अशोक के लेखों में मिलती है। उसके पीछे की मागधी का कोई ग्रंथ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। साधारणतः संस्कृत के नाटकों में छोटे दर्जे के सेवक धीवर, सिपाही, विदेशी, जैन साधु और बच्चों आदि से यह भाषा बुलाई जाती है। अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रबोधचंद्रोदय, वेणीसंहार और ललित विग्रहराज आदि में प्रसंग-वशात् यह भाषा मिलती है। (म० भा० स०, पृ० १३१)।

"शौरसेनी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में स्त्रियों तथा विदूषकों के संभाषण में गद्य रत्नावलि, अभिज्ञान शाकुन्तल और मृच्छकटिक, आदि में उसका प्रयोग मिलता है, स्वतंत्र नाटक नहीं मिलता। दिगंबरी जैनों का बहुत कुछ साहित्य इस भाषा में मिलता है, जिसमें मुख्य ग्रंथ पवयनसार और कत्तिकेयानुपेक्खा आदि हैं (वही, पृ० १३५)।

अस्तु, देखते हैं कि संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, इन छै भाषाओं का उस समय साहित्य तथा बोलचाल में काफ़ी प्रचार था और बहुत संभव है कि पृ० रा० वर्णित कवि चंद की षट् भाषा की जानकारी से इन्हीं भाषाओं की ओर संकेत हो।

महाराज पृथ्वीराज के गुणों का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि ये संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाचिक, मागधी, शौरसेनी छै भाषाओं के ज्ञाता थे। यथा—

संस्कृतं प्राकृतं चैव, अपभ्रंशा पिशाचिका।
मागधी शूरसेनी च, षट् भाषाश्चैव जायते। छं० ७४६ स० १

अतएव ये ही तत्कालीन प्रचलित भाषायें समझ पड़ती हैं और चंद को भी इन्हीं की पूरी जानकारी रही होगी।

जैन धर्म

चंद बरदायी और जैन धर्म के विषय में कुछ भी कहने से पूर्व हमें पृ० रा० के इतिवृत्तात्मक प्रकरण देखना चाहिये। रासो के एतद्विषयक निम्न स्थल विचारणीय होंगे।

१—भोलाराय समय १२—उस समय गुजरात में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था और वहाँ का तत्कालीन नरेश भीमदेव चालुक्य जिसके स्वयं जैन धर्म अंगीकार करने के प्रमाण रासो में उपलब्ध नहीं हैं, कतिपय कारणों वश उक्त धर्म का प्रवर्तक था।

यथा श्रोतान राग लग्ग लिषै, पट्टनवै पट्टैसरां।
जै जैन ध्रंम उग्गाइयां, ते न कूर लग्गौकरां। छं० ११

और उसका जैन मंत्री अमरसिंह सेवरा (छं० ८ स० १२) हिंदू मतावलंबियों के प्रति अति असहिष्णु था। उसने अपने मंत्र-तंत्र-बल से अमावस्या को चंद्रमा दिखला दिया और इस प्रकार ब्राह्मण ज्योतिषियों को झूठा ठहराकर राजाज्ञा से दंडस्वरूप उनके सिर मुँड़वा दिये.....................उसके छंद (छल छंद = चेटकों द्वारा चमत्कार शक्ति) से नर, नाग और देवता खिच कर चले आते थे, विदर्भ देश, दक्षिण दिशा तथा पश्चिम की संपूर्ण भूमि उसने जीत ली थी, वहाँ के निवासियों को जैन धर्मानुयायी बना दिया था अथवा उक्त देश विजित कर चालुक्य नरेश के साम्राज्य में सम्मिलित कर दिये थे, यथा :—

जिन अमरसीह सेवरा, चंद मावस उग्गाइय।
जिन अमरसीह सेवरा, विप्र सब सीस मुडाइय।
कहर कूर पाषंड, चंड चारन मिलि बत्तं।
दुज दो पंजर हेम, देहि उत्तर घन हित्तं।
नर नाग देव छंदां चलै, आकर्षै आवंत कर।
विदरभ्भ देस दषिन दिसा, सब जित्ती पच्छिम सुधर। छं० ९

नोट—ब्राह्मणधर्म द्वेषी जैन अमरसिंह सेवरा के कृत्यों से किसी भी तत्कालीन हिन्दू धर्मानुयायी को प्रसन्नता न हुई होगी और इन्हीं सारी बातों को लेकर चंद वरदायी का भी जैन धर्म विरोधी हो जाना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।

भीमदेव का यह जैन-मंत्री मारण, मोहन, वशीकरण, तंत्र-मंत्र आदि में बड़ा कुशल था। पृथ्वीराज ने अपने मंत्री कैमास को नागौर में चालुक्य नरेश से होने वाले युद्ध का भार सौंपा। अमरसिंह सेवरा ने अपने मंत्र-तंत्र बल तथा लाल खत्री नामक एक रूपवती लड़की द्वारा कैमास पर वशीकरण करा के नागौर में चालुक्य राज की दुहाई फिरवा दी (छं० २१०-२७१)। चंद ने स्वप्न में यह सूचना पाकर नागौर को प्रस्थान किया और वहाँ यही सब प्रत्यक्ष देखा (छं० २७२-२७६) फिर उसने भैरौ और देवी का अनुष्ठान करते हुए (छं० २०७-२८१) देवी से जैन की माया जीतने का निम्न वरदान मांगा।—

आई तू उमया अखंड तनया दाता दुरी नासिनी।
संतुष्टा सुर नाग किंनर गना दैत्यानि संत्रासिनी।
यस्या चारु चवंति चारु कमलं संतुष्टयं साधुनं।
जैनं वर्द्धस वर्द्धयाइ चरनं जै जै सुजिवृहासनं। छं० २८२

अमरसिंह सेवरा ने भी चंद का मंत्र व्यर्थ करने के लिये अनुष्ठान किये (छं० २८७-२८८)। इस प्रकार इन दोनों में ये मंत्र-तंत्र युद्ध खूब चले (छं० २८९-३०३),

जिनके अंत में प्रयास के बाद चंद की विजय हुई, सेवरा की माया नष्ट हुई और कैमास का उद्धार हुआ। यथा—

वद्धा जैन सु जैन लगि, जीता चंद चरित्त।
भामीं भट्ट सुमंत किय, मरम जियन करिहित्त। छंद० ३०४
लुट्टि लये पाषंड सब, छुटि मंत्री कैमास।
हर हरंत आयास लगि, चंद न छंडे पास। छं० ३०५

२. चंद द्वारिका समयौ ४२—में चंद को द्वारिकाधीश के दर्शन करने के उपरांत वहाँ का निम्न माहात्म्य वर्णन करते हुए पाते हैं।

जे द्वारा मति जाइ, छाप भुज नाहिं दिवावहिं।
ते दरबारह चढ्ढि, न्याय हय पिट्ठ दगावहिं।
हरि चरन्न करि सेव, रहि न उब्भै जुरि करि वर।
ते बागुरि अवतरे, अधोमुख झुल्लंत तरवर।
दीनी न जिनहि पर दच्छिना, दंड वृत्त करि सुद्ध उर।
कविचंद कहत ते वृषभ होई, अरहट जु पेरिरंत नर। छं० ४८

द्वारिकापुरी में जो लोग भुजाओं में छापा नहीं दिलाते दूसरे जन्म में वे राज दरबार के घोड़े होते हैं जहां उनकी पीठ दागी जाती है। हरि (द्वारिकेश) के चरणस्पर्श करके जो हाथ जोड़ कर नहीं उठते वे 'वागुर' (चमगादड़) होकर जन्म लेते हैं और नीचे मुँह करके वृक्ष से लटकते हैं, शुद्ध हृदय से दण्डवत करके जो प्रदक्षिणा नहीं करते, कविचंद का कथन है कि ऐसे नर कोल्हू में पेरे जाते हैं। यथा—

भद्र भेषनह हुए, जाइ गोमत्ति न न्हावै।
तजै न भ्रम सेवरा, होइ करि केस लुचावै।
मुष पावन इन करै, वस्त्र धोवै न विवेकं।
आंसू आंप परंत, करत उपवास अनेकं।
दरसन्न देव मानै नहीं, गंगा गया न श्राद्ध क्रम।
कविचंद कहत इन कहा गति, किहि मारग लग्गो सुभ्रम। छं० ४९

[द्वारिका पुरी की गोमती नदी में स्नान करके जो अपने को शुद्ध नहीं करता वह दूसरे जन्म में सेवरा (जैन साधु) होता है, उसके केश नोचे जाते हैं, वह न मुँह धोता है न विवेक-पूर्वक अपने वस्त्र धोता है, आँखों में आँसू आने पर अनेक उपवास करता है, देवताओं के दर्शन नहीं करता, गङ्गा, गया श्राद्ध आदि कर्म नहीं मानता, कविचंद का कथन है कि इस मार्ग में भ्रमते हुए जीव की न जाने क्या गति होती होगी।]

३—उपर्युक्त समय में आगे चल कर पढ़ते हैं कि द्वारिकापुरी से लौट कर चंद भीमदेव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर आया, वहाँ चालुक्य नरेश ने उसका अपने जैन मन्त्री सेवरा से वाद (शास्त्रार्थ) करा दिया, जिसमें चन्द की अपूर्व विजय हुई। यथा:—

तब पुच्छिय भीमंग, तुम वरदान सु दिद्धिय।
बाद बद्दि देवंग, सुपन पिष्षिय मन सिद्धिय।
चंद देव किय सेव, तिन सु अमरा बुल्लाइय।
थूल रथ्थ आरूढ़, चंद असमान चलाइय।
तरवर सुपत्त बैठौ तिनह, फिरि न वाद कीनौ बलिय।
नट्टी जु सषी उपजी अनल, सुरस बंचि नंचौ कलिय। छं० ८१
जीता वे जीता चंदानं, परि पिंष्षिय रष्षिय रंभानं।
सुप बुल्लै जै जै चहुआनं, नाटिक करि नंचै निरवानं। छं० ८२
हल हलंत तंबू हल हिलिय, बंदि अत्त है गै पति चलियं।
चंद मंत्रे पट्टन चल चलियं, मनों अंब ताराइन तुलियं। छं० ८३

इन विवरणों से प्रतीत होता है कि चंद को शास्त्रार्थ में जैन अमरसिंह सेवरा को परास्त करने में विशेष प्रयत्न करना पड़ा था। १२ वीं शताब्दी में अर्थात् चंद के समय उत्तरी भारत में राजपूताना और गुजरात में जैनों के अनेक धर्म-प्रवर्तक प्रबल केन्द्र स्थापित हो चुके थे तथा जैसा कि गुजरात के इतिहास में देखते हैं वहाँ जैनाचार्यों का प्राबल्य था, गुर्जर-नरेश जैन न होकर भी इन आचार्यों को सब प्रकार से सहायता दिया करते थे तथा अधिकांश जनता जैन धर्म ग्रहण कर चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में आये दिन प्राचीन समय के स्थापित ब्राह्मण-धर्म के आचार्यों तथा जैनाचार्यों में धार्मिक मुठभेड़ें होना स्वाभाविक था और इन वाक्युद्धों में येन केन प्रकारेण अपने पक्ष को ऊँचा सिद्ध करना, विपक्षी को पराजित करना तथा उसके विफल होने पर दंड स्वरूप उसके सिर मुंडन आदि के विधान होने के हम तत्कालीन साहित्य में अनेक प्रमाण पाते हैं। उल्लिखित स्थल २ के छं० ४८ तथा ४६ पर पृ० रा० के ना० प्र० स० वाले संपादकों की टिप्पणी है कि "छं० ४८ और ४६ दोनों मो० प्रति में नहीं है तथा क्षेपक जान पड़ते हैं। कविचन्द कहत, ऐसा पाठ कहीं भी नहीं पाया गया है। कथाक्रम, काव्य, भाषा आदि ४८ और ४६ छन्दों की बहुत कुछ भिन्नता है अतएव हमें इन दोनों छन्दों के क्षेपक होने का सन्देह है।" जो कुछ भी हो यदि सारे एतद् प्रासङ्गिक वर्णित स्थलों के क्षेपक सिद्ध करने के पुष्ट प्रमाण प्राप्त हों तब तो बात ही दूसरी है। अन्यथा जैन साधुओं के विपरीत आचरण, उनके धर्म प्रचार से हिन्दुओं का जैन धर्म में दीक्षित हो जाना, उनकी धर्म-दिग्विजय के अवसर अवसर, स्थान स्थान पर अभियान, उनके द्वारा ब्राह्मण आचार्यों की पराजय नित्यप्रति देखते सुनते महाराज पृथ्वीराज के कट्टर हिन्दू, देवी के वरदायी, चन्द कवि का भी जैनों के प्रति अपने तीव्र विरोधी उद्गार प्रगट करना बहुत सम्भव है। साथ ही उन स्थलों में प्रयुक्त हुए वाक्य 'जैन वद्धंस वद्धयाइ', अमरसिंह सेवरा के कार्य 'कहर कूर पाषण्ड', 'बद्धा जैन सुजैन लगि', 'तजै न भ्रम सेवरा' आदि कवि के आदरणीय संस्मरण नहीं हैं। इन्हीं सारे आधारों पर चन्द वरदायी का जैन धर्म द्वेषी होना समझ पड़ता है।

नोट—अकबर बादशाह के शाही फ़र्मान में जैन मुनि श्री हीर विजय सूरि के लिये 'सेवड़ा' शब्द का प्रयोग मिलता है। देखिये :—

"..........इससे योगाभ्यास करनेवालों में हीर विजय सूरि सेवड़ा और उनके धर्म के मानने वालों की जिन्होंने हमारे दरबार में हाज़िर होने की इज्जत पाई है और जो हमारे दरबार के सच्चे हितेच्छु हैं—योगाभ्यास की सचाई, वृद्धि और ईश्वर की शोध पर नज़र रख कर हुक्म हुआ कि—उस शहर (उस तरफ़) के रहने वालों में से कोई भी इनको हरकत (कष्ट) न पहुँचावे और इनके मंदिरों तथा उपाश्रयों में भी कोई न उतरे........।" ('सूरीश्वर और सम्राट अकबर', पृष्ठ ३७६, परिशिष्ट (क), फ़र्मान नं० १ का अनुवाद)

१—श्वेताम्बर जैन साधुओं के लिये संस्कृत में 'श्वेत पट' शब्द है। इसी का अपभ्रंश भाषा में 'सेवड' रूप होता है, वही रूप विशेष बिगड़ कर 'सेवड़ा' हुआ है। 'सेवड़ा' शब्द का प्रयोग दो तरह से होता है—जैनों के लिए और जैन साधुओं के लिये। अब भी मुसलमान आदि कई लोग प्रायः जैन साधुओं को 'सेवड़ा' ही कहते हैं। (विद्या-विजय)

पृ० रा० के निम्न तीन स्थलों पर हम चंद को अदृश्य वर्णन करते हुए पाते हैं :—

अदृश्य वर्णन १—समय २६—रणथंभौर युद्ध की समाप्तिपर रात्रि में स्वप्न के अनंतर पृथ्वीराज ने एक सुन्दरी का प्रेमालिंगन किया। दूसरे दिन चंद ने स्वप्न का हाल सुनकर कहा कि वह आपकी भविष्य स्त्री हंसावती है, यदि आप आज्ञा दें तो मैं उसका रूप, रंग, अवस्था आदि सब का वर्णन कर डालूँ—

ऐन बयन रूपह रवन, इन गुन इन उनमान।
धीरत्तन पूजंत बर, सुनहु तौ कहूँ प्रमान। छं० ८८

तत्पश्चात् उसने इस सुंदरी के रूप, गुण, वयः संधि आदि का आद्योपान्त वर्णन कर सुनाया (छं० ८९-९८)।

२. समय ६१—कन्नौज में महाराज जयचंद के दसौंधी ने चंद से कहा कि तुम वरदायी कहलाते हो, क्या हमारे अदृश्य राजा का वर्णन कर सकते हो (छं० ५१३)। चंद ने कहा कि यदि मैं जयचंद का वर्णन कर दूँ तभी सरस्वती का वरदायी हूँ। छंदों में मैं वह सब वर्णन कर सकता हूँ (छं० ५१४)। दसौंधी ने कहा कि अदृश्य वर्णन कठिन है:—

कहहि पंग बुधि जन कवित, सुनह चंद वरदाइ।
दिठि दिष्षो बरनै सकल, अदिठ न वरन्यो जाइ। छं० ५१५

फिर चंद ने महाराज जयचंद का सिंहासन समेत विस्तृत वर्णन (छं० ५१६-५२४), दरबार के एक सुए का वर्णन (छं० ५२५-५२७) और दसौंधी के कहने पर जयचंद के सरदारों का नाम, ग्राम और बैठक का भी वर्णन कर दिया (छं० ५२८-५४६)।

३. समय ६१—इसी समय में आगे चलकर महाराज जयचंद ने पूछा कि हे कवि, वह

बतलाओ जो मैं कहना चाहता हूँ (छं० ६८८)। उसने कहा आप भट्ट चंद को पान देना चाहते हैं, जिन्हें रनिवास से अविवाहिता सुंदरी दासियाँ ला रही हैं, फिर उसने उन दासियों का रूप-रंग नख-शिख वर्णन कर डाला (छं० ६९२-७१२)।

चंद की इस अद्भुत वर्णन शक्ति का समन्वय करना विचारणीय है, उसका काव्य शास्त्र में अति कुशल होना रासो में पग पग पर प्रमाणित होता है। उपर्युक्त (१) और (३) स्थलों में उसने जो नख-शिख वर्णन किये हैं उनमें तो प्रायः समानता है ही वरन् वे प्राचीन और तत्कालीन साहित्य की परंपरा के अनुकूल हैं, अतएव चंद जैसे उद्भट विद्वान के लिये उनका वर्णन साध्य होना किसी प्रकार भी दुष्कर नहीं समझा जा सकता। (१) स्थल में हंसावती की आयु आदि की उसे थोड़ी बहुत अवश्य खबर रही होगी। (३) स्थल में उसने अविवाहिता सुंदरी दासियों की समान आयु आदि का जो वर्णन किया है वह उसके दरबारी अनुभव का प्रदर्शन है। (२) स्थल, जिसमें चंद ने महाराज जयचंद के सरदारों के नाम ग्राम और दरबार में उनके स्थान का वर्णन किया है, उसकी विस्तृत जानकारी के अंतर्गत आता है। चक्रवर्ती प्रतिहार कान्यकुब्जेश्वर की सभा के विषय में उसने किसी न किसी प्रकार अपने को अवश्य अभिज्ञ कर रक्खा होगा और यह कुछ असंभव सा भी नहीं प्रतीत होता, क्योंकि पृथ्वीराज द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर उसने कन्नौज की महिलाओं का वर्णन (छं० ३५२-३६९), शंखध्वनी नागा योगी योद्धाओं का पंग के दरबार में आने का कारण (छं० ४५३-४५५, १७९२-१८२९) जयचंद की महारानी जुन्हाई की उत्पत्ति कथा (छं० ७५१-७५२) आदि का जैसा विस्तृत वर्णन किया है उसे देखते हुए कवि को पंग के सरदारों का पूरा ज्ञान होना कदापि आश्चर्यजनक नहीं है। गुप्तचर उस युग में थे ही और उन्हीं के द्वारा चंद को इन विषयों से परिचित होना संभव हुआ होगा। स्थल विशेष पर अपने उपार्जित ज्ञान का उचित सदुपयोग करके यह श्रोताओं को चमत्कृत करने की विद्या में निष्णात था। ग़ज़नी के शाही द्वारपाल को अपना परिचय देते हुए उसने कहा था कि मैं चौदहों विद्यायें जानता हूँ और तीनों भुवनों में घटित होने वाली घटनाएं बतला सकता। हूँ:—

विद्याह चतुर दस चितमोहि, बुझ्झै सु कहौ त्रिभुवन होहि।

छं० १८१, स० ६७

महाराज जयचंद के पूछने पर कि हे श्रेष्ठ कवि, महल की स्त्रियाँ तो अदृश्य हैं, सूर्य भी उनका मुँह नहीं देख सकते, तुमने उनका वर्णन कैसे कर दिया (छं० ६८८ स० ६१), कविचंद ने उत्तर दिया कि कुछ नेत्रों के इशारों को देखकर, कुछ शब्दों को सुनकर और फिर कुछ लक्षणों पर विचार करके मैंने जान लिया था:—

कछुक सयन नयनंह करिय, कछु किय बयन बषान।
कछु इक लछिन विचार किय, अति गंभीर सुजानि। छं० ६८९, स० ६१

फिर वरदायीपन भी थोड़ा बहुत सहायक रहा होगा।

ये ही सब उपाय थे जिनका कि कवि अपने अदृश्य वर्णनों में आश्रय लेता था

और यही उसकी इस विलक्षण शक्ति के अधिकार का समाधान है।

दूतत्व　　भीम वध स० ४४, पृथ्वीराज ने गुजरात के राजा भीमदेव पर अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये चढ़ाई की और गुर्जर नरेश को भड़काने के लिये उसने चंद को भेजा :—

अहौ चंद चंदह मरन, दिन दिन सल्लै दुष्ष।
कहौ जाइ चालुक्क सम, मंगै वैर समुष्ष। छं० ९८
ले चल्लौ नृप भीम कौ, चंगी दोय रसाल।
एक सुरंगी पघ्घरी, इक कंचुकी भुजाल। छं० ९९

पृथ्वीराज ने कहा कि हे चंद, मुझे पिता की मृत्यु का दुःख दिनों दिन कष्टदायक होता जाता है, तुम चालुक्य से जाकर कहो कि मैं तुरन्त बैर का बदला लेना चाहता हूँ। भीमदेव के पास दो 'चंगी' ले जाओ। एक तो लाल पगड़ी और दूसरी लाल चोली।

मन मानै सोइ गहौ, करिव चित्त इकतारं।
इह संसार सुपन्न, अपन झुझ्झै इक वारं।
चंद हथ्थ कहि पठय, भीम सम संभरि वारं।
तात बैर संग्रहन, वचन तत्ते उच्चारं।
गज भाट सुभर घट भंजि तुअ, सरित चलाऊं रुधिर की।
धार सिंचि सोमेस कहुं, तपति बुझाऊं उअर की। छं० १००

और कहना कि इन दोनों में से जो पसंद हो वही ग्रहण करलो, चित्त को शांत करके देखो कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है अतएव युद्ध करने का निश्चय करो, फिर संभरिनरेश ने पांडव भीम सदृश कर्म का चंद द्वारा यह कठोर बचन कहला भेजा कि मैं अपने पिता के बैर के बदले में तुम्हें हाथी, घोड़े और सैनिकों समेत मारूँगा और रुधिर की नदी बहाकर उसी में अपने पिता सोमेश्वर का तर्पण करूँगा तथा अपने हृदय की जलन शान्त करूँगा।

रामाइन मघवान, बरषि घन अमृत धारं।
बालमीकि पीयूष, सींचि लव रघुपति रारं।
अरजुन सयन समेत, आनि बब्बर पताल मनि।
वेद व्यास भारथ्थ, सकल सोहनि दीपक बनि।
चहुआन कहाइय चंद कर, पिता बैर कज इह बयन।
चालुक्क भीम उन सम सुनहु, तुमहु जिवावन अब कवन। छं० १०१

चौहान ने पिता के बैर का बदला पूरा करने के लिए चंद द्वारा कहलवाया कि हे भीमदेव चालुक्य सुनो, उनके समान (या उनसे सुनो कि) तुम को अब जीवित रखने वाला कौन है।

नोट : ना० प्र० स० के पृ० रा० के संपादकों का कथन है कि छं० ९९ से लगाकर १०१ पर्यंत मो० प्रति में नहीं हैं।

यदि यह अंश क्षेपक है तो चंद वरदायी के इस प्रथम दूतत्त्व कार्य में एक चमत्कारिक विशेषता आ जाती है जिससे उस युग-विशेष के परंपरागत दूतकार्य की निर्भीकता मिश्रित, दूत में आवश्यक, समयानुसार बुद्धि के अनोखेपन में चंद की साहसिक सूझ-बूझ देखते ही बनती है,जैसा कि हम आगे वर्णन में पावेंगे। यदि यह अंश क्षेपक न भी हुआ तो भी चंद का दूतत्त्व वैलक्षण्य समावेशों से रंजित मिलेगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस अंश को हटा देने से किसी प्रकार की हानि प्रकरण विशेष को नहीं पहुँचती तथा चंद की सूझ का महत्त्व अविलंब अधिक हो जाता है।

महाराज पृथ्वीराज ने तो अपना कठोर संदेश तथा भड़काने के चिन्ह चोली और लाल पगड़ी भेजे ही, चंद ने अपनी दूतबुद्धि से उसमें नमक मिर्च लगाकर उसे उग्रतम बना दिया। देखिये :---

चल्यौ चंद गुज्जरह, गरै जारी जंजारह।
नीसरनी कुद्दाल, दीप अंकुस आधारह।
कस्न सूल संग्रहै, गयौ चालुक दरबारह।
इह अचंभ जन देषि,मिल्यौ पेषन संसारह।
भेट्यौ सु भीम भोरा सुभर, कहिय वत्त संभरि बयन।
हो भट्ट चट्ट बोलहु कयन, कहा इहै डंबर सयन। छं० १०२

चंद गले में जाल और नसेनी डाले, एक हाथ में कुदाल और दीपक लिये तथा दूसरे हाथ में अंकुश और काला त्रिशूल लिये हुए गुर्जर नरेश चालुक्य के दरबार में गया, उसकी ऐसी आश्चर्यजनक वेश भूषा देखकर संसार (बहुत से मनुष्यों की भीड़) उसके पीछे लग गया, श्रेष्ठ योद्धा भोलाराय भीमदेव ने उससे भेंट की और जब चंद ने संभरी-नरेश का संदेशा कह लिया तो उसने पूछा कि हे भट्ट, इस आडंबरी वेष का कारण चट-पट कहो।

एन जाल संग्रहो,जाम जल भीतर पढ्यौ।
इन नीसरनी ग्रहो,जाम आकासह चढ्यौ।
इन कुद्दाल षनौ, जाम पायाल पनठ्ठौ।
इन दीपक संग्रहौ, जाम अंधारै नठ्ठौ।
इन अंकुस असि वसि करौं,इन त्रिसूल हनि हनि सिरौं।
जगमगै जोति जग उप्परै, तौं डर प्रथम नरिंदरै। छं० १०३

चंद ने कहा कि पृथ्वीराज का कहना है कि यदि भीमदेव जल में छिपेगा तो उसे जाल से पकड़कर खींच लाऊँगा, यदि आकाश में जावेगा तो नसेनी लगाकर पकड़ लाऊँगा, यदि पाताल में जावेगा तो कुदाल से खोदकर निकाल लाऊँगा, यदि कहीं अंधकार में छिपेगा तो दीपक लेकर ढूँढ़ लाऊँगा, अंकुश से उसे अपने वश में करके त्रिशूल से हन डालूँगा।

जाल ज्वाल करि भसम, करसौं नीसरनी कट्टौं ।
घन भंजौं कुद्दाल, दीप कर पवन झपट्टौं ।
अंकुस अंकुर मोड़ि, तिनह त्रसूल संकोड़ौं ।
हनन कहै ता हनौं, जोति जग मच्छर मोड़ौं ।
हौं भीम भीम कन्दल करौं, मो डर डंक अचंभ नर ।
सम ग्ररइ ग्रब्ब धरि लज्ज अब, बित्तक पुब्ब परषि पर । छं० १०४

भीमदेव ने उत्तर दिया कि जाल को ज्वाला में भस्म कर दूँगा, नसेनी को काट दूँगा, कुदाल को घन से नष्ट कर दूँगा, दीपक को हाथ के झपट्टे की हवा से बुझा दूँगा, अंकुश को मोड़ दूँगा, त्रिशूल को सिकोड़ दूँगा, जो मुझे मारने को कहेगा मैं उसे ही मार डालूँगा......मैं भीम हूँ, भीमसेन सदृश युद्ध करूँगा, मेरे डंके का भय मनुष्यों को चकित कर देता है, पूर्व की बीती से परिचित होकर भी इस प्रकार का गर्व करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ।

रे उंदर बिड्डाल, कोई कारन भिर मच्चौ ।
रे गिद्धिन सिर हंस, दैव जोगह सिर नच्चौ ।
रे मृग वघ संग्राम, करै वर अप्पन आयौ ।
रे अप्पह सो समर, करै मंडुक जस पायौ ।
आचंभ ग्रम्ह गति वह नहीं, बार बार तुहि सिष्षियै ।
प्रज्जरै झार तरवर गिरह, का दीपक लै दिष्षियै । छं० १०५

रे कवि, आज किसी कारण वश चूहा बिलार से लड़ना चाहता है, दैवयोग से गिद्ध हंस के सिर पर चढ़ना चाहता है, मृग बाघ से संग्राम करने स्वयं आया है, क्या मेढक को सर्प के साथ युद्ध करके कहीं विजय प्राप्त हो सकती है । भाग्य की मति आश्चर्य में डालने वाली है । बार बार तुझे क्या उपदेश करूँ । तलवार के प्रहारों द्वारा प्रज्वलित अग्नि-ज्वाला दिखाने वाले मुझ गुर्जर नरेश को तू अपने स्वामी की प्रताप रूपी दीप शिखा को क्या दिखाने आया है ।

बैन बाद सो करै, होई भट्टह कौ जायौ ।
गारि रारि सो करै, जे न रस षग्ग न पायौ ।
हथ्थ वथ्थ सो भिरै, घरह धन बंधव बट्टै ।
इह सोमेसर बैर, लेहु अप्पन सिर सट्टै ।
तुम कहौ जाई संभरि बयन, इन डिंभन डिंभरु डरै ।
संच्यौ दरक हक्कै परत, सज्ज फटक्कै निक्करै । छं० १०६

तुझ से वाणी विवाद वह करे जो भाट का पुत्र हो, गाली युद्ध वह करे जिसने तलवार युद्ध का रस न पाया हो, यदि सोमेश्वर का बैर अपने सिर लिया चाहते हो तो घर का धन बांधवों में बाँट दो, फिर वक्षस्थल और हाथों को आकर भिड़ाओ, जाकर संभरी से यह बात कह देना कि इन डिंभों से बच्चे ही डर सकते हैं, यदि उसे भरी हो तो सेना सजाकर मैदान

में निर्भयता से निकले ।

चंद मंद मन आतुरह, उठ्यौ रत्त करि नैन ।
फिरि पहुच्यो नृप पिथ्थ पै, कहै चरक्का वैन । छं० १०७

चंद का आतुर मन मंद हो गया वह लाल नेत्र करके उठा और महाराज पृथ्वीराज के पास वापिस लौटा तथा भीमदेव के क्रोधी वचन कहे ।

नोट :—इधर भीमदेव तो भलीभाँति भड़क ही चुका था उसने अपने जगदेव भाट को भेजा :—

सुनौ भट्ट जगदेव, कहै भोरा भीमंदे ।
तुमहु चंद पै जाहु, षबरि पायान दियंदे ।
जो कुछ तुम बुलत्रए,ज्वात्र मंगन हौं आयौ ।
ज्यौ सुत्तो सुषउरग,मींडि वर पुंछ जगायौ ।
आयौ नरिंद गुज्जर सबर, करिय सेन चतुरंग भर ।
भो दिठ्ठ दिठ्ठ पुच्छिय सयन,बयन बाद मानौं न उर । छं० १०८

भोलाराय भीमदेव ने कहा कि जगदेव भाट सुनो, तुम भी चंद के पास जाकर खबर ले आओ और कहना कि जो कुछ तुम से कहा गया था मैं उसका उत्तर लेने आया हूँ, सोते हुए सर्प को उसकी पूँछ दबाकर जगाया गया है, कह देना कि बलवान गुर्जर-नरेश अपनी चतुरंगिणी सजा कर आया है, वाणीवाद (बकवास) में वह विश्वास नहीं करता, युद्ध में उसका सामना करो ।

कहु मिसरे छेड़यौ, राउ गुज्जरी नरंसर ।
दीवी जाल कुदाल, कहमि वह सह आडंबर ।
केह मिसरै कैमास, जास पुच्छंत विचष्षन ।
चामंड रा कहां गयौ, बहुत राग्रा वर दृष्षन ।
कह भिसरै कन्ह बिष्पनौ, जगदेव संचौ चविय ।
बंभन हय या दिद्ध घर, कह मिसरे संभरि धनिय । छं० १०९

जगदेव ने चंद से कहा कि तुम दीपक, जाल, कुदाल से आडंबरी वेष धारण करके गुर्जर नरेश को छेड़ने गये थे, यदि कैमास, चामंडराय अथवा संभरी नरेश गये होते तो मालूम पड़ जाता, तुम को तो उसने छोड़ दिया ।

बार बार बोलयौ, सरस बत्तड़िया गुज्जर ।
अब विगत्ति लभ्भि है, मिरच चब्बै ज्यों गज्जर ।
तू अनि राव मजाय, जिके रन अंगम जित्ता ।
इन संभरि वै राव, कोड़ि सै सहस दिघत्ता ।
भेदयौ नहीं गुर अष्षरौ, कविय वयन संम्हौ सरै ।
कर नहीं मंत्र वीछिय तनौ, घत्ते हथ सप्पा हरै । छं० ११०

चंद ने कहा कि बातें बनाने वाले गुर्जर नरेश ने अनेक खेल किये हैं परन्तु इस बार

उसे पूरा मज़ा मालूम हो जावेगा जैसा कि गजर (छीमी) खानेवाले को मिर्च खाने पर मालूम होता है। तुम्हारे राजा ने जिन अनेकों को रणसंग्राम में सहज ही जीत लिया है यह संभरीनरेश उनमें से नहीं है। मेरे वचनों का प्रमाण सामने आने पर मिलेगा। बीछी का मंत्र न जानना और सर्प के बिल में हाथ डालना।

सुनि सु बेन जगदेव फिरि, कहि भोरा भीमंग।
आयौ नृप चहुआन सजि, हय गय भर चतुरंग। छं० १११

चंद की यह बात सुनकर जगदेव भोला भीमदेव के पास लौट गया और बोला कि चौहान हाथी, घोड़े और योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना सजाकर आ गया है।

यह समाचार पाकर भीमदेव चालुक्य भी अपनी सेना सजाकर युद्धभूमि में आ गया और भयंकर युद्ध प्रारंभ हो गया (छं० १२४-१२५)।

नोट :—इस प्रकार हम देखते हैं कि चंद वरदायी को अपने दूतकार्य में सफलता मिली।

१. पृथ्वीराज का प्रधान आशय यही था कि गुर्जर नरेश भड़क कर मुझ से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो जावे तभी मैं उससे पितृ बैर का बदला लूँ और चंद उसे युद्ध में प्रवृत्त कराने में कृतकार्य हुआ।

२. म० म० राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा ने अपने संपादित ग्रंथ 'कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह' (वि० सं० १९८५) में 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक अपने लेख के पृष्ठ ४५-४६ पर 'भीमवध' के विषय में इस प्रकार लिखा है :—

"रासो का कर्ता लिखता है :—'गुजरात के राजा भीमदेव के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का बैर लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचरा राय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिये (पृथ्वीराज रासो; भीमवध; चौवालीसवाँ समय, रासो सार, पृष्ठ १५६)।"

यह सारी कथा असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीमदेव पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं जिनमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन बदि ३ का 'बिजोलियाँ' का प्रसिद्ध लेख है (जर्नल रायल सोसाइटी, बंगाल, जिल्द ५५, भाग १, ई० सन् १८८६, पृष्ठ ४०—५६) और अंतिम वि सं० १२३४ भाद्र सुदि ४ का (आंवलदा गाँव का लेख, विक्टोरिया हाल, उदयपुर में सुरक्षित है)। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ बदि १२ का (लोहारी गाँव का लेख, विक्टोरिया हाल उदयपुर में सुरक्षित है)। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहांत और पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबंधकोष के अंत की वंशावली से ज्ञात होता है (प्रबंधचिंतामणि, पृ० ५४)। भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिलकुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि० सं० १२९८ तक वह जीवित रहा (प्रबंधचिंतामणि, पृ० २४६)। इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उस

पर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्यूज़ियम में भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है (इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द, ११, पृ० २२१—२२२)। आबू पर देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन मंदिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति के लेख के समय भी भीमदेव विद्यमान था (एपीग्रेफिया इंडिका, जिल्द, ८, पृ० २१६)। डा० बूलर ने वि० सं० १२६६ मार्गशीर्ष वदि १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है। (इंडियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द, ६, पृ० २०६—२०८)। इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमानतः पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।

२. बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव—सं० ६६, चंद की योग्यता और उसके दूतत्व में महाराज को पूर्ण विश्वास था। कन्नौज युद्ध में चौंसठ वीर सामंतों की आहुति हो चुकी थी, महाराज की विलासिता ने राज्यकार्य शिथिल कर दिया था, शेप सामंतों में ईर्ष्या-द्वेष की प्रबलता ने उनकी एकसूत्रता और संगठन में क्षीणता पैदा कर दी थी, जालंधर गढ़ का राजा (हाहुली) हमीर दरबार में अन्य सामंतों द्वारा अपमानित हो महाराज से खिन्न होकर रूठ बैठा था।

यही उस समय की पृष्ठ भूमि थी जब ग़ज़नी के सुलतान गोरी के आक्रमण का समाचार दिल्ली पहुँचा। महाराज की अध्यक्षता में राजपूत सेना पानीपत से बढ़ती हुई सतलज नदी पार पहुँची। तब पृथ्वीराज ने चंद से कहा कि तुम काँगड़ा दुर्ग जाकर हमीर को मना लाओ :—

सुभर उतरि सतनंज, चंद पट्टौ कंगूरह।
लै आयौ जालंध, राइ हाहुलि हंमीरह।
अरु जाल पाप रसि परस, परस दरसत इह अप्यौ।
आदि जुद्ध दय दीन, सिंध पष्षरि किन दिष्यो।
हम नमस्कार करि पुच्छयौ, अरु पुछयौ पछली विगति।
हुं कहौं सु तुम जानहु सकल, चलहु चंद अग्गे निरति। छं० ६७०

श्रेष्ठ योद्धा सतलज नदी उतर गये तब पृथ्वीराज ने जालंधरराय हाहुली हमीर को मना लाने के लिये चंद को काँगड़ा दुर्ग भेजा और कहा कि उससे मिलते ही कहना कि उसे जो पाप का जाल (कलंक) लगाया गया था उसमें रस का स्पर्श था (अर्थात् वह तो मज़ाक था)। वह (हाहुली हमीर) तो सदा ही युद्ध में अग्रगामी रहा है, सिंह की किसी ने पीठ देखी है, फिर हमारा नमस्कार करके पिछला हाल पूछना, हे चंद मुझे जो कुछ कहना है वह सब तुम जानते हो, फिर मनुष्य का भाग्य आगे चलता है।

मग्गह चलंत नहि करि विरम्म, सामंत सूर सुभर सुदित तम्म।
जालंध जाहु न्रप पति सुकाज, राषहु त राज प्रथिराज आज। छं० ६७१

'मार्ग में विराम न करना क्योंकि समय बहुत थोड़ा है,' श्रेष्ठ योद्धा शूर सामंतों ने प्रसन्न होकर कहा, 'नृप कार्य हेतु जालंधर जाओ, आज इस आड़े समय में राजा पृथ्वी-

राज की रक्षा करो।'

कह्यौ चंद बरदाई, वत्त हाहुलि हम्मीरह।
स्वामि ध्रम्म चितयै, दोस टारिये सरीरह।
चहुआना दौ राज, धान जंबू ग्रह लग्गौ।
बोल कंक तजि कंक,साम ध्रंम्मह ग्रथ जग्गौ।
जंमन मरंन भंजन भिरन, जंत राति सह जानियौ।
कंगुरह राइ बत्तें अचल, भई वचन परमानियो। छं० ६७२

हे चंद वरदायी, हाहुली हमीर से यह बात कह देना कि स्वामिधर्म का विचार करके शारीरिक दोषों को निकाल दो, चौहान के राज्य रूपी चंद्र में जंबू धाम ग्रह (कलंक) बन कर लग रहा है, वक्र (टेढ़े) वचनों के 'कंक' (कलंक) का विचार त्याग दो, स्वामिधर्म पथ पर चलने के लिये जग उठो, जीना मरना, युद्ध करना और नष्ट होना (अथवा यवनों के लड़ने, भिड़ने और मरने की रीति तुम्हें मालूम है) इस सब की परम्परा तुम जानते हो; फिर काँगड़ा राय से कहना कि हमारे वचनों को प्रमाण मानें, बातें (यश) ही अचल रह जावेगीं।

चलत मग्ग इह मंगि,राजा तव लगि इहि धीरह।
लै आऊं जालंध, राइ हाहुलि हंमीरह।
नदि विषाह उत्तरिग, जाय कंगुर सपन्नौ।
पंच सत पंच पेडि, आय आग्गौ होइ लिनौ।
भोजन भगति बहु भांति किय,सब पुच्छिय राजन विगति।
जालंध राइ जंबू धनि, सुनि हमीर चंदह सुमति। छं० ६७३

चलते समय चंद ने पृथ्वीराज से कहा कि हे राजन् आपके लिये मैं जालंधरर हाहुली हमीर को ले आऊँगा, आप धैर्य रक्खें। व्यास नदी पार करके वह काँगड़ा पहुँच . हमीर ने......'पेडि' आकर उसका स्वागत किया, नाना प्रकार से भोजन आदि की आव-भगत की तथा राजा का सब हाल पूछा। श्रेष्ठ मति चंद से जंबू धनी जालंधरराय हमीर ने सब सुना।

प्रथम वाह असनान, अष्ट भुज देवि परसनस्सी।
तहं सुदेव रा ग्राम, बान गंगा अब दरसी।
गए पाप जनमंत, भेट कंगुर गढ रानी।
और मिले हम्मीर, सामि ध्रंम्मह सहि नानी।
तुम कहि जुहार सामंत सब, अरु राजन बहु हेत धरि।
इन वार तुम्म हम्मीर नृप, सजौ सेन सुरतानि परि। छं० ६७४

स्नान करने के उपरांत अष्टभुजा देवी के चरणों का स्पर्श किया, वहीं देवरा ग्राम है जहाँ वाणगंगा के दर्शन होते हैं, काँगड़ा दुर्ग की रानी (अष्टभुजा देवी) से भेंट करके जन्म भर के पाप नष्ट हो गये, फिर कविचंद हमीर से मिला जिसके लिये स्वामिधर्म

रूपी भेंट लाया था फिर उसने कहा कि सब सामंतों ने तुम्हें जुहार कह भेजी है तथा राजा ने तुम से अतिहित रखते हुए कहा है कि हम्मीर राज, इस बार तुम सुलतान पर सेना सजाओ (अर्थात् मेरी सेना का सेनापतित्व ग्रहण कर सुलतान से युद्ध करो)।

मुष मिट्टौ रुठ्ठौ सुजी, हाहुलि राव नरिंद।
बोल बंक सो कंक करि, जंपि सु मुष जै चंद। छं० ६७५

चंद ने फिर कहा कि हे नरेन्द्र हाहुलीराय, वक्र वचनों को कलंक समझ कर आप के हृदय में रोष है तथा मुख मलिन हो गया है अब आप अपने सुमुख से अर्थात् सुन्दर मुख या प्रसन्न मुख से उन वचनों को विस्मृत कर चौहान का जयघोष करें।

दिल्ली वै है गै दिसा, ता राजन लगि भीर।
हो तौ ते रन आतुरह, चढ़ि हैवर हम्मीर।
चढ़ि हैवर हम्मीर, साहि नद सिंधु समुक्की।
राह रोस गोरी नरिंद, चहुआन स रुक्की।
षग्ग मग्ग अकलंक, कित्ति बोहित्थ चलाई।
तो लागौ संग्राम, भार अप्पौ छं० ६७६

दिल्ली की दिशा में हाथी घोड़ों की दौड़ लगी हुई है और वहाँ सहायक राजाओं की भीड़ लग चुकी है, अतएव हे हम्मीर, श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर युद्धार्थ आतुर हो जाओ, हे हम्मीर श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ लो, शाह ने सिंधु नद छोड़ दिया है और चौहान नरेन्द्र रोष-पूर्वक गोरी का मार्ग रोकने जा रहे हैं, खड्ग के निष्कलंक मार्ग पर कीर्ति रूपी बोहित्थ (जहाज़) चलाओ, दिल्ली का भार तुम पर अर्पित हो चुका है अस्तु संग्राम में लग जाओ (अर्थात्) युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

कै कारन भौ वे दिशा, चढि दिल्ली वै भद्द।
वंक विसाहन भरह घौ, लै लाहौरी हद्द। छं० ६७७

दिल्लीश्वर की ओर से चढ़ने के लिये मैं आपसे इस कारण वश कहता हूँ कि यह लाहौर की हद्द सदा से 'बंक विसाहन' (वंक विश्वास=विश्वासघात) का अड्डा रही है।

इन लाहौरी हद्द, कंक करि वैर बिसाही।
इन लाहौरी हद्द, वीर व्यापार बसाही।
इन लाहौरी हद्द, मूल बिन व्याज साहि लिय।
इन लाहौरी हद्द, बोल चहुआन सत्य किय।
लाहौर हद्द अजहूँ सकल, करहि जग्ग व्योपार वर।
हाहुलि हमीर दो षन्न बचि, करौं धरद्धर साह बर। छं० ६७८

यह लाहौर की हद्द ही कलंक की जड़ है तथा इसके कारण ही बैर मोल लिया जाता है, इस लाहौर की हद पर व्यापार द्वारा वीर खरीदे जाते हैं (अर्थात् क्रय-विक्रय द्वारा वीरता खरीदी जाती है अथवा किराये के टट्टू तय्यार किये जाते हैं)। इस लाहौर की हद्द पर ही शाह गोरी बिना मूलधन के ब्याज वसूल करता है (अर्थात् वीरों को प्रलोभनों

द्वारा वशीभूत करने का या वीरता खरीदने का खोटा व्यापार करता है), इस लाहौर की हद के विषय में चौहान का जो आक्षेप है उसकी सत्यता तुम प्रमाणित करो (वहाँ की निंद्य परिस्थिति को दूर करके), आज भी लाहौर की हद पर इसी खोटे व्यापार का यज्ञ किया जा रहा है, हे हाहुली हमीर, अब दो ही क्षण बचे हैं (अर्थात् अब अधिक समय नहीं है), शाह के (मूल बिना व्याज लेने वाले वीरता खरीदने के निंदनीय व्यापार के) बल को धराशायी कर दो (अर्थात् कवि संकेत पूर्वक सूचित कर रहा है कि हमीर, तुम भी इस लाहौरी हद के पड़ोसी होने के नाते अपने को शाह के हाथों कहीं न बेच देना ।)

बोला बंकस कंक, केलि संभलि रा गोरी।
वे उन्हां उन्हां कहै, पंचौ नद भेरी।
जुद्धानी बज्रागि, जागि वीरा उन्हाई।
हो हम्मीर नरिंद, चंद जायो न बुझाई।
षगधार ध्रम्म षत्री तनौ, चूकै ब्रक्क निवासियै।
जै काम सूर साधन चले, धू धू मंडल वासियै। छं० ६७९

गोरी और संभलि (संभरेश पृथ्वीराज) दोनों की जिंदगी परस्पर कलंकमय आक्षेप करने तथा पंचनद (पंजाब) पर अपना अपना अधिकार सिद्ध करने में बीत रही है और इसी के फलस्वरूप युद्ध की 'वज्रागि' (सौदामिनी) ने दमक कर वीरों को जगा दिया है। चंद का कथन है कि हे हमीर नरेश, वह वज्रागि बुझाई नहीं जा सकती, क्षत्रिय शरीर का धर्म खड्गधार में कूदना है, इसमें चूक (भूल) होने से नरक निवास निश्चित है, शूरों की जय कामना की सिद्धि तो धू धू (अग्नि) मंडल (सूर्यमंडल) में वास करने से ही पूरी होती है।

के दीहां लगि केलि, करौ काहे लगि झुझ्झौ।
हट गल्हां सो लागि, जाइ कैरव कुल बुझ्झौ।
हौ हमीर हम्मीर, चंद बत्तां करि दिष्षौ।
जौह पंचा नदि पंच देस, अद्धा अध नंष्षौ।
कहियै न सुष्ष नर लोक को, किं सुर लोक सुहाइयां।
मिष्ठान पान भामिनि भवन, पुच्छौ तोहि कहाइयां। छं० ६८०

हमीर ने कहा कि कैरवकुल (पृथ्वीराज) को जाकर समझाओ कि विजय के झूठे दर्प हेतु यह थोड़े दिनों का जीवन व्यर्थ ही क्यों युद्ध में डाल रहे हैं, गोरी और चौहान दोनों बराबरी के अधिकारी होकर रहना पसंद करें तो पाँच नदियों वाले पंचदेश को आधा-आधा बाँट लें और हे चंद, यही मंत्रणा चौहान को देकर तुम उन्हें समझाने की चेष्टा करो, यदि ऐसा हो जाय तो नर लोक का सुख अकथनीय होगा तथा मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि मिष्ठान्न, पान, स्त्री, और भवन आदि सुखोपयोगों वाले इस लोक के सामने, किसको सुरलोक (देवलोक=स्वर्ग) अच्छा लगेगा। हट गल्हां=यश का हठ (या विजय का

झूठा दंभ), हम्मीर (हम+मीर)=बराबरी के मीर (अधिकारी)।

धिग्ग सुष्ष संसार, धिग्ग मिष्ठान पान बर।
सुपन में ईषह षत्त, मिष्ट लग्गै हाहुलि पर।
अक्क संधि में परै, क्रम्म धर बंध भार गिर।
कातर मन छंडियै, जीह सल बंधै दुद्धर।
सुर लोकहु नर अक्कपन, जस अपजस बंधो रवन।
मो बुझि झुझि पच्छै मरौ, जानि वक्र ग्रह मुगति पनु। छं० ६८१

चंद ने कहा कि सांसारिक सुखों को धिक्कार है तथा श्रेष्ठ मिष्ठान्न पान आदि भोगों को भी धिक्कार है, हे हाहुलीराय, स्वप्न में ईख चूसने और उसकी मिठाई से तृप्ति अनुभव करने के समान ही ये सांसारिक सुख हैं, कर्म में पकड़ा जाकर बंधन के भार (बोझ) से शिथिल होकर जीव नरक में जाता है और मन की यह कायरता ही जीव को दुर्द्धर (विषम) बंधनों में डालने वाली है, वैसे तो अपयश को यश मान कर प्रसन्न होने वालों के लिये नरक भी स्वर्गलोक तुल्य है परन्तु यदि मुझ से पूछा जाय तो मैं यही कहूँगा कि वक्र ग्रह (खड्ग) को मुगति पनु (मुक्तिदाता) समझकर युद्ध में ही प्राण त्याग करो, ऐसे मरना तो नरक में जाना है।

कहि हमीर सुनि चंद, नाम तुम चंद न्याय धरि।
कहौ मंत्र कुल बद्द, कबहुँ उतरै न संभरि।
राजनीति जानहु न, साहि दिष्यौ दल अप्पेन।
गलहां करि मरिहौ जु, बिरद लभ्भौ उर कंपन।
जद्यपि सुभान उत्तर तपै, जदपि संझ चंपिय गहन।
चहुआन अंग ते दिन नहीं, गहन राज ते रिपु रहन। छं० ६८२

हमीर ने कहा कि चन्द सुनो, तुम्हारा नाम चन्द न्यायोचित है, क्षत्रिय कुल वंद्य संभरेश को सलाह दो कि युद्ध हेतु न बढ़ें, तुम राजनीति का भी विचार करो, तुमने न शाह का दल देखा है और न तुम को अपने दल का अनुमान है, (अर्थात् तुमको अपने दल की असलियत का पता नहीं है) अस्तु; यदि केवल यश के लिये प्राण दोगे तो संसार में उर कंपन (हृदय को दहला देनेवाली वीरता) मात्र की ख्याति भले पा जाओ परन्तु सूर्य चाहे उत्तरायण में तपते रहें और चाहे चन्द्रमा अंधकार का विनाश ही करने पर तुला रहे परन्तु चौहान के जीवन में अन्धकारपूर्ण दिन अब मिट नहीं सकते।

अपनी रीति नीति के कारण उनका राज्य भयंकर शत्रुओं से रहित नहीं हो सकता

सुनि हम्मीर नरिंद, विधिनि बंधै बंधनबर।
डोरी घन अिम्मान, काल बंचौ निकट्ट कर।
पय लग्गानिय मीच, मंत कौ करै जियन कौ।
विधि विधान त्रिम्मान, झूठ उच्चार कियन कौ।

गल्हां न संच संचै ननह, सो न रहे गल्हां रहै।
उच्चरे चंद जम्बूधनी, साँच एक जुग जुग चहै। छं० ६८३

हे हमीर नरेश सुनो, विधाता द्वारा बाँधे हुये श्रेष्ठ बंधनों की डोरी काल खींचा करता है, और मृत्यु जब पैरों के समीप आ गयी हो तब जीवन की मंत्रणा कौन दे सकता है, विधि निर्मित विधान को असत्य ठहरानेवाला कौन है, यश का संचय न कर, नश्वर शरीर का संचय (रक्षा) करनेवाले को जानना चाहिये कि उस शरीर का तो नाश अवश्यम्भावी है परन्तु यश सदा स्थिर है (अनश्वर है)। हे जंबूधनी, चन्द का वचन है कि सत्य की चाह प्रत्येक युग में रहती है।

कहि हमीर सुनि चन्द,हुआै दिन अदिन विचारौ।
जब रावण हरि सीत, कियौ गढ लंक सँघारौ।
अदिन काज पंडवनि, जूअ सों हेत विचारौ।
अदिन काज परिछत्त, रिब्ब गल अप्प हकारौ।
इह अदिन बुद्धि सामन्त सब, कलह केलि अति बल सरिय।
हरि हरा देवि इन्द्रादि सुर, बरजि गये अति गति बुरिय। छं० ६८४
मिटै न बर सम्बन्ध, इतौ अनयौ क्यों सहियै।
चन्द बिम्ब चहुआन, भूमि भारह त्रिब्बहियै।
जैत सुभर बलिभद्र, बीर बंधन सुबिहानं।
बड़ गुज्जर रा राम, झूठ बंधै बर बानं।
बीरंभ भग्ग मन जिहि बरनि, नर बरनि तिहि सोइ नर।
जानियै न मन छिज सबर सुगति, यों धर बन्ध पूरंन कर। छं० ६८५

हमीर ने कहा कि हे चंद सुनो, अच्छे दिन अदिनों (बुरे दिनों) में बदल गये हैं इसका विचार करो। अदिन आने पर ही रावण ने सीता का अपहरण किया जिसके फल-स्वरूप उसके लङ्का दुर्ग का संहार कर डाला गया, अदिन के कारण ही पांडवों ने जूआ खेलने में अपना हित समझा, अदिन के कारण ही राजा परीक्षित ने ऋषि के गले में सर्प डाला। वैसे ही इन अदिनों में सब सामन्तों की बुद्धि अति बल के दर्प में आकर युद्ध क्रीड़ा के लिए उद्यत है। हरि, हर तथा इन्द्रादिक सभी देवताओं का कथन है कि अति करनेवाले की बुरी गति होती है।

चन्द ने कहा कि चाहे जो कुछ भी हो परन्तु तुम्हारा और पृथ्वीराज का श्रेष्ठ सम्बन्ध मिटनेवाला नहीं है। और तुम ऐसा दुर्भाग्य क्यों सोचते हो। चन्द्रवंशी चौहान भूमि का भार निवारण करेंगे, सुभट जैतराव और बीर बलभद्र कल शीघ्र ही उस गोरी सुलतान को बन्दी बना डालेंगे तथा राम राय बड़गूजर झूठ ही श्रेष्ठ बाना नहीं बनाता या श्रेष्ठ धनुर्धर नहीं है। वीरों द्वारा मनोनीत मार्ग का वरण करने वाला ही मनुष्य है, सबलों (वीरों) के मन के छीजने (उत्साह नष्ट होने) से वे सुगति नहीं पाते और फिर धर बंध (भूमि बन्धन=साम्राज्य या चक्रवर्तित्त्व) भी पूरा नहीं कर सकते (उसकी

रक्षा नहीं कर सकते)।

चन्द कहै हमीर, अनष पत्री क्यों आवै।
जबहि समर सम्पजै, तबहि अम्बर सिर लावै।
जहां रुध्यो तहां मरै, घाट अवघट न विचारै।
जस लज्जा गल बंधि, स्वामि ध्रम्मह उचारै।
संसार अथिर सामन्त मत, सक सहाब बन्धन भिरिन।
जानहि पराक्रम पुच्छ तम, इन अग्गें को वर करन। छं० ६८६

चन्द ने कहा क्षत्रिय मलिन अथवा निराश क्यों हो। जभी वह युद्ध पर कमर कस ले वह आकाश को अपने सामने झुका सकता है। घाट औघाट का विचार न करके रुँध जाने पर वह स्वामिधर्म को लक्ष्य में रख कर तथा यश और लाज को गले का हार बनाकर (पीठ दिखाना नहीं वरन् केवल) मरना जानता है। संसार की नश्वरता सामन्तों का आदर्श है और वे सहाब गोरी से युद्ध करने तथा उसे बन्दी बनाने में समर्थ हैं। आप भी उनका पराक्रम जानते हैं। मैं पूछता हूँ कि उनके आगे कौन टिक सकता है।

काली कल विष धरै, डंक बीछी उच्छारै।
नीलकन्ठ शिव वरै, मोर महौरंग निहारै।
काल अंब ढरि जाहि, जीह पेप्पीह पुकारै।
धप्पै बहै गयन्द, चढै शिक्कार सिआरै।
सुरतान काम सद्धै सलष, जैतराइ बिरदां बहै।
हाहुलि राइ भट्टै कहै, को अनंष इतै सहै। छं० ६८७

दावानल पांवार, अनल चहुआन सहाई।
घट जनमा रिषिराज, समद सोषै धरताई।
जैत राव कन्ठीर, हथ्थ सामन्त राज सिर।
पहु पहार पांवार, घडै भंजै गोरीधर।
अब्बुआ राव अग्गै पहर, बिन न जोर जम्बू रहै।
चुंगलिय बाज जोगिनि पुरिय, जं जं भावै तं कहै। छं० ६८८

हाहुली राय ने भट्ट से कहा कि चाहे विषधारी नाग को बिच्छू डंक मार दे, नीलकंठ शिव कर्पूर गौर होना चाहें, सर्प मयूर को खाने की इच्छा से देखे, पपीहा स्वाति बुन्द के स्थान पर काल अम्ब (मृत्युजल) को रट लगावे, और चाहे शिकारी हाथी सिआर से भय मान कर भाग खड़ा हो, परन्तु जैतराव ने, मुझे जो सुलतान का काम साधनेवाला, (अर्थात् विश्वासघाती) विरुद दे डाला है, यह इतना बड़ा अनंष (कलंक) कौन सहन करे, (अर्थात् मैं यह कलंक नहीं सह सकता) तथा जैत प्रमार ने दावाग्नि लगा दी है और चौहान ने वायु रूप से उसे और बढ़ाया है, कुम्भज ऋषि ने घट (अर्थात् मिट्टी या ज़मीन) से उत्पन्न होकर भी धरती की सरसता समुद्र को सुखा डाला था। वैसे ही

इस प्रमार ने पृथ्वीराज द्वारा बल पाकर भी उनके दल में विरसता पैदा कर दी है। इस कंठीर (खोटे कमीने) जैतराव ने सामन्तों को तो अपने हाथ में कर लिया है और राजा पृथ्वीराज के सिर पर चढ़ गया है। प्रमारों का यह स्वामी गोरी को बन्दी बनाने तथा उसकी सेना नष्ट करने की बातें करता हुआ भी उस गोरी का पोषण कर रहा है। क्योंकि उसकी रीति नीति से महाराज के दल का वातावरण असन्तोष और क्षुब्धता से भर गया है। योगिनिपुर (दिल्ली) के चुगलखोर, जैसा कुछ मन में आवै तैसा कहैं।

सुनि हमीर नरिन्द, मरन आवै अभाग मति।
अन्तकाल विक्कम नरिन्द, भष्षिवायस अविद्धि गति।
मरन वार वर भोज, ध्रम्म मुक्के मलेच्छ भौ।
मरन काल पन्डवन, ग्यान छुट्टौ मोहि लभ्भौ।
चित्तौ न चित्त चिंतह नहीं, नरक निवासी होंहि नर।
धिग धिग सुवीर वसुधा करै, तौन छुट्टै नर काल भर। छं० ६८६

हमीर राज ने कहा कि और सुनो, मरणकाल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। अन्त समय अवाधगति (न रोके जा सकनेवाले) विक्रम नरेन्द्र ने कौवा भक्षण कर डाला। मरने के समय श्रेष्ठ राजा भोज अपना धर्म त्याग कर म्लेच्छ हो गये तथा मरण काल में पान्डवों का ज्ञान चला गया और वे मोह को प्राप्त हुए। मृत्यु आने पर, चेता हुआ चित्त (ज्ञानी) भी नहीं चेतता और इसी लिये मनुष्य को नरक निवासी होना पड़ता है। पृथ्वी पर किसी श्रेष्ठ वीर को चाहे जितना धिक्कारा जाय वह मृत्यु के झंझावात (और विपरीत बुद्धि) से नहीं बच सकता।

सुनौ भट्ट कवि चन्द, रहसि बुल्यौ जम्बूपति।
मो जिय इय अन्देस, मंत पुच्छौं जालंधगति।
उभै लिखै कागद प्रमान, राज राजन सुलितानं।
बीय अग्गै मुक्कियै, सोई अप्पै फुरमानं।
बत्ती विवेक द्रुग्गा सुपत, इथ समप्पि हम्मीर कर।
आरम्भ होइ इह बत्त गति, सुवर बीर जंपौ सुबर। छं० ६६०

फिर जम्बूपति हम्मीर ने मुस्कराते हुए कहा कि कवि चन्द भट्ट सुनो, मेरे हृदय में अंदेशा है, मैं जालंधरी देवी (देवी जालपा) से सम्मति लेना चाहता हूँ। राजराजेश्वर (पृथ्वीराज) और सुलतान दोनों ने मुझे पत्र भेजे हैं, ये दोनों मैं उन देवी के सामने रख दूँगा, वे ही उचित आज्ञा देंगी, विवेकशालिनी दुर्गा सुपथ का निर्देश करेंगी। हमीर ने तो अपने को उन्हीं के हाथों में समर्पित कर दिया है। इसी बात से प्रारम्भ करके मुझे आगे की गति का निर्णय करना है। तुम भी तो श्रेष्ठ वीर हो, तुम भी इसका औचित्य बतलाओ।

असत राज जब ग्रहै, नीति ध्रम दूरि बिडारे।
सती असत जब ग्रहै, पैलि भांडै भंडारे।
जती असत जब ग्रहै, कनक कामिन मन मंडै।
सूर असत जब ग्रहै, मरन माया तन मंडै।
हो अबुधि न करि जम्बूधनी, इह सुबुद्धि को पुच्छियै।
जालंध देवि गम अगम बुधि, सो बुधि पुच्छ न इच्छियै। छं० ६६१

चन्द ने कहा कि राजा जब असत्य ग्रहण करता है तो नीति और धर्म को दूर फेंक देता है, सती जब असत्य ग्रहण करती है तब सतीत्वरूपी अमृत के भंडार को नष्ट कर डालती है, यती जब असत्य ग्रहण करता है तब वह सुवर्ण और कामिनी की, ओर मन चलाता है; और जब शूर वीर असत मार्ग ग्रहण करता है तब वह मरण धर्मा मायामय शरीर की रक्षा चाहने लगता है। हे जम्बूधनी, अबुधि (मूर्खता) मत करो, सद्बुद्धि की बात उनसे पूछो, जालन्धरी देवी सत् और असत् की जानकार हैं और वही उनसे पूछने की इच्छा रखो।

सोइ जो सूर सा ध्रम, जुग्ग सा ध्रंम न पुज्जै।
दया दान दम तित्थ, सबै सा ध्रम मनि रुज्झै।
सामि ध्रंम बर मुगति, नरक बर तित्थ निवासौ।
सुनि हमीर सा ध्रम, करै सुरपुर नर बासौ।
सा ध्रम्म मुकति बन्धै रवन, सामि ध्रम्म जस मुगति वर।
अब कित्ति कित्ति करतार कर, नरक चूक झुझ्झोति नर। छं० ६६३

चन्द ने कहा कि शूर वही है जो स्वामिधर्म का अनुसरण करे। इस युग में स्वामिधर्म की बराबरी नहीं की जा सकती; दया, दान, दम, तीर्थ आदि सब का निरोध कर आगे जाने वाला स्वामिधर्म ही है; स्वामिधर्म के आचरण से निश्चय ही मुक्ति प्राप्त होती है। और उसकी विपरीतता से नरक निवास भी सुनिश्चित है; हे हमीर, सुन लो कि स्वामिधर्मानुयायी देवलोक में निवास करता है; स्वामिधर्म आनन्ददायी मुक्ति को दृढ़ करने वाला है; निश्चय ही यश और मुक्ति स्वामिधर्म के अन्तर्गत हैं। कीर्ति और अपकीर्ति (अर्थात जय और पराजय) तो विधाता के आधीन हैं परन्तु नरकवास से बचने का (एकमात्र) उपाय : युद्ध में लड़ मरना है।

अब्बूरा पांवार, जैत हाहुलि कहि बुल्लै।
सुनि कन्हा चहुआन, ताहि प्रथिराज न पल्लै।
पुछानी चामन्ड, डंड मंगै लाहौरी।
जिम खाना गन्धान, कोल लद्धौं कारोरी।
उच्चार भार बोलै हरै, राज उलग्यौ साहनी।
उपरैं जाम जहाँ लगर, सुभर उभारै बाहनी। छं० ६६४

हमीर ने कहा कि आबू का जैत प्रमार मुझे हाहुलि कहकर बुलाता था और कन्ह

चौहान का (मेरे लिये) कहना था कि पृथ्वीराज ऐसे कुत्तों को नहीं पालता ; चामन्डराय से क्यों नहीं पूछते कि लाहौर दन्डस्वरूप माँगा जा रहा है तथा करोड़ों (बेशुमार) मदमस्त हाथी और घोड़ों की माँग है (अब क्या करना चाहिये)। भाँति भाँति के (चौहान दल में) आक्षेप सुनकर (और उनसे पारस्परिक तीव्र मतभेदों का अनुमान लगा कर ही) शाह (गोरी) ने राजा (पृथ्वीराज) पर धावा (आक्रमण) बोला है और इसके अतिरिक्त जाम राव जादव जैसे लगर (लँगर=ढीट, गँवार) सुभटों ने शाह को उभाड़ा भी खूब है।

इन बेरां हम्मीर, नहीं औगुन बंचीजै।
इन बेरां हम्मीर, छत्रि ध्रम्मह संचीजै।
इन बेरां कै सिंघ, बर बिषर जेम उंभारै।
इह बेरां हम्मीर, सूर क्यों स्यार सँभारै।
बेरां हमीर पौरुष पकरि, इह सु बात रंडां ररी।
सामन्त राज काजह समथ, न करि ढोल निन्दा करी। छं ६९५

चन्द ने कहा कि हे हमीर, इस समय अवगुणों का वर्णन मत करो; इस समय हे हमीर, क्षत्रिय धर्म के विचारों का संचय करो; हे हमीर इस समय सूर सियारों की गति का अवलम्बन क्यों करें, (या इस समय शूरों का काम है शृंगालों (कायरों) का नहीं); हे हमीर, यह पुरुषार्थ का सहारा लेने का समय है (जैसी बातें तुमने की हैं) वैसी तो राँड़ें बातें करती हैं (या वह तो असमर्थ राँड़ों का रोना है)। हे सामन्तराज (पृथ्वीराज) के कार्य में सामर्थ्यवान, इस प्रकार निन्दात्मक वचन कह कर ढील (टालमटोल) न करो (कन्धा न डालो)।

की लोहानै जंग, साम लग्गा अजमेरी।
कै मासैं उच्छेरि, तुरी तुंवर विच्छेरी।
जेती तारूभांमि, ढाम ढुंढा ढुंढारा।
कूरंमा पज्जून, काम किन्नौं कुढ्ढारा।
सारुंडै झुझ्झ उलझिझ्या, लोहानै लज्जी बही।
ऊछंगा बन्धन सेवरा, ते भट्टां द्रुग्गा लही। छं० ६९६

हमीर ने कहा कि क्या अजमेर के युद्ध में लोहाना के कालिख नहीं लगी थी? कैमास का भी उच्छेदन हो गया था और तोमरों के घोड़े बिखर गये थे........पज्जून कूरंभ ने बड़ा बुरा काम किया था, सारुंडा के युद्ध में लोहाना की लज्जा बह गयी थी। सेवरा के बन्धन में पड़े हुए को भट्ट ने ही दुर्गा देवी की सहायता से निकाला था।

सलष अलष करि जुद्ध, साहि गज्जन वै साह्यौ।
कैमासे बर बन्धि, भीम भोरा घर गाह्यौ।
तूंबर बर उच्छारि, अप्प वाचा कहि फेरी।
कमधज धरधक धोरि, धरनि जित्ती अजमेरी।

हों भट्ट चट्ट जस अजस पढ़ि, भरों साषि सूरह समर।
हम्मीर मंत चुक्कत समर, हसहि देव दानव अमर। छं० ६९७

चंद ने कहा कि, सलख (जैतराव प्रमार) ने अपूर्व युद्ध करके ग़ज़नी के शाह को परास्त किया, श्रेष्ठ मंत्री कैमास को बन्धन में डालने (वशीभूत करने) वाले, भोलाराय भीमदेव (चालुक्य नरेश) के घर पर आक्रमण किया जिसने वीर तोमरों का उच्छेदन करके अपनी दुहाई फेर दी थी, कमधज्ज (कान्यकुब्जेश्वर) को अपनी वीरता से, कम्पायमान कर दिया था तथा अजमेर की सारी भूमि जीत ली थी। मैं तो भट्ट (दरबार का कवि, हूँ, उज्ज्वल यश तथा अपयश का पढ़नेवाला हूँ तथा समरभूमि में किस सूरमा ने क्या किया है उसका मैं साक्षी हूँ; हे हमीर, इस समय तुम यदि अपने मत से चूक गये तो (याद रखना कि तुम्हारी अपकीर्ति अमर हो जायगी) और देवता तथा दानव तुम्हारा उपहास करेंगे।

भोरै रा भारथ्थ, कथ्थ जानै तूं भाई।
पामारां पज्जून, लिये पट्ठनवै साई।
मे कढ्यो कैमास, हथ्थ भीमा बढ्ढानी।
तूं जानै चहुआन, बार बर तूं इच्छानी।
सलषां सलभ्भ सुब्बा हुआं, अब्ब लगाई बत्तरी।
सुरतान काल्हि आनों धरा, आज तुम्हारी रत्तरी। छं० ६९८

चहुआना रै रजधान, सामन्त बड़ाई।
ते बोला बर लागि, जाइ कनवज्ज झुझाई।
ऐ गोरी साहाब, हीन जानै पहिलोना।
हसम हयग्गय देस, देह दष्यौ दह गोना।
कै काम कलह कंदल चढौ, कम्मा मत्तां गढौ।
बे काम भट्ट गल्हां पढै, जिन मंजौ दिल्ली सढौ। छं० ७००

हमीर ने कहा कि भाई, तुम तो भोलाराय, भीमदेव चालुक्य के युद्ध का वृत्तांत जानते हो। पट्टनपुर के उस स्वामी ने पज्जूनराय प्रमार की कैसी दुर्गति की थी और उसने पृथ्वीराज के मन्त्री कैमास तक को अपनी ओर मिला लिया था, उस समय मैंने ही भीमदेव से लोहा लिया था और कैमास को बाहर निकाला था। तुम और चौहान दोनों ही ये सारी बातें जानते हो, परन्तु सलख को बड़ा घमंड हो गया है और वह ऊटपटांग बातें करने लगा है; सुलतान गोरी को कल (शीघ्र) यहाँ आया हुआ ही समझो, आज की रात (बहुत थोड़ा समय) तुम्हारे पास है, जो चाहो सो करलो।

हमीर ने कहा कि एक समय था जब चौहान के दरबार में सामन्तों की कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी, परन्तु उन्हें ले जाकर कन्नौज में जुझा डाला गया। (इधर तो इतनी कमजोरी आ गई है और उधर) शाहाबुद्दीन गोरी को पहिले का सा न जानो, उसका दल हाथी, घोड़े और देश पूर्व से दस गुने देखे गये हैं; अतएव क्या काम है युद्ध

के कंदल में पड़ने का ? क्या काम है भाँति भाँति के मत गढ़ने का ? हे भट्ट, प्रशस्ति पढ़ कर और इस प्रकार प्रोत्साहित कर, व्यर्थ ही दिल्लीश्वर को नष्ट मत करो।

गल्हां काज हमीर, देव देवी सिर दिन्न।
गल्हां काज हमीर, अग्ग सध्यो जुड जिन्न।
गल्हां काज हमीर, राज मुक्यौ रघुराई।
गल्हां काज हमीर, मंस कढ्यौ सिव सांई।
हम गल्हवांन गल्हां करैं, तुम गल्हां लग्गै बुरी।
म्रतलोक जीव जम पंजरै, तुम जानौ छुट्टै दुरी। छं० ७०१

चन्द ने कहा कि हे हमीर, यश प्राप्त करने के लिये देव (जगदेव प्रमार) ने, अपना सिर देवी को अर्पित कर दिया था; हे हमीर यश के लिये रघुराज, (रामचन्द्र) ने राज्य को भी छोड़ दिया था। और हे हमीर, यश के लिये ही राजा शिवि ने अपने शरीर का मांस काटा था। हम तो गल्हवान, (यश बखानने वाले) हैं, और यश बखानते हैं, परन्तु तुमको यश बुरा लगता है। (या हम तो गल्हवान हैं और गल्ह (यश) में विश्वास करते हैं परन्तु तुमको गल्ह बुरी लगती है। तुम उसमें विश्वास नहीं करते)। तुमने तो जीवन को ही मुक्ति समझ लिया है। लेकिन मृत्युलोक में तो जीव यमराज के पंजे में फँसा हुआ है।

अरे चन्द तुम गल्ह, इहां नाहीं अधिकारिय,
ए घर जानी बेल, नहीं डिमरू षिल्लारिय।
इहै अग्गि नहिं दीप, अहै आगै होइ दिष्षै।
जब फुट्टै आकाश, कोन थिगरी सू रष्षै।
हम दुरे नहीं जीवन मरन, नह लगै गल्हां बुरी।
मा मत्ति इहै अप उब्बरौ, करौ मन्ति गो ब्रह्म छुरी। छं० ७०२

हमीर ने उत्तर दिया कि हे चन्द, तुम गल्ह की अनधिकार चर्चा करते हो, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। इस परिस्थिति को तुमने खेलवाड़ समझा है, यह बच्चों का खेल नहीं है। यह आग है इसके सामने दीपक उठाकर दिखाने का प्रयत्न मत करो। आकाश फटने पर उसे थेगरी से नहीं जोड़ा जा सकता। हम जीवन के लिये मृत्यु से नहीं भागते। और न हमको गल्ह (कीर्ति) बुरी लगती है। मेरी सम्मति यही है कि इस अवसर पर अपना उद्धार कर लो, (अर्थात् पृथ्वीराज के दलबल की रक्षा कर लो) और (युद्ध का आह्वान कर, पृथ्वीराज को पराजित कराके म्लेच्छों द्वारा) गऊ और ब्राह्मणों के गले पर छुरी न फिरवाओ।

सुन हमीर इक अलुक, गरुर गाढ़ी मित्राई।
तब्ब उलूकइ देषि, गरुर जोरा मुसकाई।
तब अलूक भय भयौ, गरुर अग्गैं कर जोरै।
मोहि तहां ले जाहु, जहां कोइ जीव न तोरै।

धरि पंष ढंकि साइर गुहा, तहं बिलाव भष्षह भरन।
सनमन्ध देह जथ्थह परन, मिटै न सो राजन मरन। छं० ७०३
पारधि बागुरि सिंघ कौ, दावानल भय मानि।
ससि मंडल में मृग बसत, ग्रहन राह सोइ आनि। छं० ७०४
ईसं सीसे मयंकं, सरन रहिये जा भय मंने।
रुंडमाल छल राहं, अनचिंतियं आय वेरियं तथ्यं। छं० ७०५

चन्द ने कहा कि हे हमीर सुनो, एक उल्लू और गरुड़ में गाढ़ी मित्रता थी। एक दिन उल्लू को देखकर गरुड़ का जोड़ा मुसकुराया, यह देखकर उल्लू को बड़ा भय हुआ। और उसने गरुड़ से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि मुझे ऐसे स्थान पर ले चलो जहाँ पर कोई जीव मुझे न मार सके। गरुड़ ने उसको अपनी पीठ पर बिठा लिया और एक गुफा में ले जाकर सुरक्षित किया, परन्तु वहाँ तुरत ही एक बिलाव ने उसे खा डाला। हे राजन्! मृत्यु मिटाई नहीं जा सकती और उसी के अनुसार (उल्लू और गरुड़ सदृश) शारीरिक सम्बन्ध हो जाते हैं।

पारधी (बहेलिया), बागुर (जाल), सिंह और दावाग्नि से भयभीत हो उनसे त्राण पाने के लिये हिरन ने शशि मंडल में शरण ली, परन्तु वहाँ भी राहु ने आकर ग्रहण कर लिया। भय मानकर शिव जी के शीश पर स्थित चन्द्रदेव में शरण ली, वहाँ राहु का सिर छलपूर्वक शिव की मुंडमाला में प्रविष्ट हो गया और अचानक आकर उसे ग्रहण कर लिया।

केहरि कन्दर द्वार, भिल्ल मुगता फल पायौ।
फिटक जानि पाषान, मूढ़ अज गल बंधायौ।
कोइक समै षारषी, मिल्यौ जवहरी विचष्षन।
मुह मंग्यौ दै मोल, तोल करि आनि ततष्षन।
अवलोकि तेज पानी सरस, महिपति जरिय किरीट महि।
इहि रीति चिंति कवि चंद कहि, हाहुलि राव हमीर कहि। छं० ७०६
पुनि अष्षिय हम्मीर, सुनहु देविय बरदाइय।
मोर पिट्ट मोरिंग, अंग सोभा दरसाइय।
तिन को लै मन्द मति, चोटि नंखत करि लघुता।
मंडल शसी रमन्त, षडिय सो पावत प्रभुता।
ब्रजनाथ हाथ गहि साथ धरि, मुरली मुख बज्जावही।
मिलि सकल गोप गोपांगना, मुक्ताफल सुबुधावही। छं० ७०७

एक भील ने सिंह की गुफा के द्वार पर एक मुक्ता पाया। स्फटिक को पत्थर समझ कर उस मूर्ख ने उसे बकरे के गले में बांध दिया, किसी समय कोई विचक्षण पारखी जौहरी ने उसे देखा और उसी क्षण मुँह मांगे मूल्य पर उसे खरीद लिया, फिर महीपति ने उसकी चमक दमक, आब और सुन्दरता देखकर उसको अपने मुकुट में जड़वा लिया।

हाहुलि राय हमीर ने कहा कि हे कविचन्द, मेरी परिस्थिति पर इस रीति से विचार करो। तथा—हमीर ने फिर कहा कि हे देवी के वरदायी और सुनो, मोर अपने पंखों की शोभा दिखाकर मोरनी को रिझाता है, उन पंखों को लेकर मन्दमतिवालों ने उनका दुरुपयोग किया, परन्तु उनमें शशि मंडल देख कर कृष्ण ने उन्हें परखा और जब उन्होंने उनको अपने माथे पर धारण कर लिया और मुरली बजाई तो सारे गोप और गोपिकाओं ने उन (मोरपंखों) पर मोती न्योछावर कर बधाई दी (अर्थात् चौहान के यहाँ पर मेरा सम्मान नहीं किया गया परन्तु सुलतान गोरी ने मेरी प्रतिष्ठा की और इसी से देख रहा हूँ कि मेरी पूछ होने लगी है)।

चरचि तेल सिन्दूर, बहुरि बंध सिर चंबर।
आभूषन पहिराइ, ढंकि ऊपर पाटम्बर।
चलावंत मुह अग्ग, दुरद नरपति कै दिट्ठै।
झगरि झुंड में षात, आय बन मंझ अपुट्टै।
अप अप्प उतन लग्गत सदा, मिठ्ठौ हाहुलि राव धन।
कविचन्द कहत पिछताइगो, मति करै दिसि जवन मन। छं० ७०८

तेल और सिन्दूर से चर्चित करके सिर (माथे) पर चमरी बाँधी गई, आभूषण पहिराकर ऊपर से पाटम्बर डाले गये, (इस प्रकार सम्मानित होकर भी) हाथी राजा की निगाह पर या इशारे पर, (अपनी दासता का अनुभव करके) संकोचपूर्वक खाता है, परन्तु बन में स्वच्छन्द होकर वह अपने अपने झुंडवालों से झगड़ कर कौतुक करता हुआ खाता है। हे धनी (राजन्) हाहुलि राव अपना-अपना कुल सब को प्यारा लगता है। कविचन्द का कहना है कि यवन सुलतान गोरी की ओर अपना मन मत करो नहीं तो पछताना पड़ेगा।

बहुत कहत हम्मीर सुनि, अब कछु रहत रसन्न।
थान भिष्ट सोभत नहीं, नर नष केस दसन्न। छं० ७०९
दसन दुरद सोभइय, पहिर वनिता कर चूरिय।
सरहि केस सोभइय, राज सिर सभा न पूरिय।
केहरि नष सोभइय, कनक मढि कुंअर वलत गर।
सूरवीर सोभइय, सिंघ सा पुरस परद्दर।
हाहुलि कहंत कविचन्द सुनि, अब्ब जुगति बन बहि घनिय।
पहिले न करिये आदर भरनि, मन विचारि संभरि धनिय। छं० ७१०

हमीर ने कहा कि सुनो, बहुत कहना क्या, अब कुछ रस नहीं रह गया है, मनुष्य के नाखून, केस, और दाँत अपने स्थान से भ्रष्ट होकर फिर शोभा नहीं पाते।

दाँत हाथी के मुँह में शोभित होते हैं, परन्तु वहाँ से अलग होने पर स्त्रियों के पहिनने के लिये उनकी चूड़ियाँ बना डालते हैं। केशों की शोभा सरहि, (सुरहि=सुरा

गाय) के शरीर तक रहती है, वहाँ से हटाये जाकर राजा के सिर तथा सभा में डुलाने के लिये उसके चँवर बनाये जाते हैं। नखों की शोभा सिंह के बदन तक है, वहाँ से हटने पर उन्हें सोने से मढ़ कर (तावीज़ बनाकर) बच्चों के गले में पहिनाते हैं। शूरता की शोभा (वीर) पुरुष में है जो शत्रु को रोकने के लिये सिंह सदृश अड़ जाता है, हे कविचन्द, हाहुलि राय का कथन यह है कि अब अनेक प्रकार की युक्तियाँ बनाने से क्या लाभ है, पहिले तो सम्भरि धनी पृथ्वीराज ने विचार न करके वीरों का सम्मान नहीं किया।

अरनि मद्धि घसि कूप, परत नर पथिक अद्ध फर।
बट बल्ली अवलम्बि, नाग अवलोकि चरन तर।
सिर पर सिन्धुर आय, सुंड गहि साष हलावत।
तुह छत्ता मुंह आलि, उड्डि तिहि तन पलटावत।
मधु बुन्द परत चट्टत अधर, सकल दुष्ष जिय भुल्लइय।
इम विषय सुष्ष कविचन्द कहि, किम हमीर मन डुल्लइय। छं० ७११

किसी अरण्य (जंगल) स्थित कूप में पथिक गिर पड़ा, पैरों के नीचे सर्प देख कर वहीं कूप में लटकी हुई बरगद की बल्लरियों को पकड़ कर वह लटक गया। उसी समय किसी हाथी ने आकर बट की शाखा को सूँड़ से पकड़ कर हिलाया जिससे संयोग वश उस शाखा में लगे हुए छत्ते की मधु मक्खियाँ उड़ीं और उन्होंने उस बेचारे के शरीर को ख़ूब काटा। परन्तु इसी के साथ कुछ मधु की बूँदें भी गिरीं जिन्हें चाटकर उसके हृदय का सारा दुःख भूल गया। कविचन्द का कहना है कि हे हमीर, इस प्रकार तुम विषय सुखों की ओर अपना मन क्यों चलाते हो। जरा सोचो कि उन साधारण भोगों के लिये तुम्हें कितनी बड़ी कीमत चुकानी होगी।

तत्त बत्त जानौ सबै, हम माया इच्छांमि।
चलि जालन्धर देहरा, मिलि जालय पुच्छांमि। छं० ७१२
नालिकेर फलदल सुफल, कर कपूर तंमोर।
उभै सुनर पूजन चलै, दै सब सथ्थ बहोरि। छं० ७१३

हमीर ने कहा कि तुम सब तत्व की बातें जानते हो परन्तु मैं तो महामाया की इच्छा पर निर्भर हूँ। अस्तु, जालन्धरी के मन्दिर चलें और मिलकर जालपा से पूछें। नारियल, अनेक सुन्दर फल अपने साथियों को देकर दोनों व्यक्ति हाथ में कपूर और पान लेकर चले। फिर जालपा के स्थान पर पहुँचकर कविचन्द ने देवी का पूजन और स्तुति करते हुए (छं० ७१४, ७२२) कहा :—

कह्यौ तोहि प्रन्नाम मो सिद्धि देवी, प्रकारं सुधारं विवद्धी सुसेवी।
अहं मोकल्यौ हाहुली पास काजं, तिनं पुच्छनं माव साकित राजं। छं० ७२३
कहौ कारनं अंब सराज अम्बी, पुहं पन्जली छंडि सीसं सुलम्बी।
रह्यौ आप थट्टौ दुअं पानि मंडी, अंग कारनं जानि बोली न चन्डी। छं० ७२४

चन्द ने देवि की स्तुति करते हुए कहा कि हे सुसेव्य, उन्नतिकारिणी, सुधारिणी,

मेरी सिद्धिदात्री तुम को प्रणाम कहा है, और राजा पृथ्वीराज ने मुझे हाहुलीराय के पास उसका भाव जानने के लिये भेजा है। हे राज्यमाता, अब आप ही निर्णय कीजिये। इतना कहकर चन्द ने उनके सिर पर पुष्पांजलि छोड़ी और स्वयं उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया परन्तु आगे का बुरा भविष्य देख कर चंडी नहीं बोलीं।

कहि हमीर सुनि देव, तत्तवादी कवि आया।
कै को हिन्दू को तुरुक, कौन रंक सु को राया।
को रविन्द्र करे जिन्द, कौन तापस को छाया।
को साहब को राज, कवन सुकवि कह गाया।
इह परमहंस संसार हित, तूं माया तूं मोह मत।
जानौं न बाम दच्छिन करन, हौं सांई संसार रत। छं० ७२५

हमीर ने कहा कि हे देवी सुनो, तत्ववादी (ज्ञानी) कवि उपस्थित है, कौन हिन्दू है कौन तुर्क है, कौन राजा है कौन रंक है, कौन देवता है कौन दानव है, कौन तपस्वी है कौन छाया (भूत प्रेत) है, कौन साहब (स्वामी) है कौन राजा है, किसकी सुकीर्ति कवियों ने गाई, और किसकी नहीं गाई। संसार के हित के लिये नीर क्षीर विवेक करने (अर्थात् उचित अनुचित बतलाने के लिये आप परमहंस स्वरूपिणी हैं, आपही की प्रेरणा से मनुष्य माया और मोह के बन्धन में पड़ता है। मैं संसार रत मनुष्य हूँ उलटा सीधा कुछ नहीं जानता, आपही मेरी स्वामिनी हैं, अतएवं आप जानती हैं कि किसमें मेरी भलाई है और किसमें बुराई है।

एह परत्तर दीह, चन्द जान्यौ चहुआनं।
जिन भुजानि धर भार, भोमतीय अघरं भानं।
हसम हयगय देस, दीह घट्टै बल घट्टै।
धन्न मरन तिन जानि, महल सिर सारे पट्टै।
आवृत्त बात जोगिनिपुरह, भव भवस्य इह भ्रिमयौ।
कविचंद रुक्कि बंध्यौ जियन, ग्रिह गोरी हाहुलि गयौ। छं० ७२६

हमीर ने कहा कि चंद समझता है कि चौहान के दिन पलट गये हैं। जिसकी भुजाओं पर पृथ्वी, आकाश, सूर्य तथा देश, हाथी, घोड़े, नौकर चाकर आदि का भार था उसके दिन घट गये और फलस्वरूप उसकी शक्ति भी घट गई है।......

फिर उसने कविचन्द को तो रोक लिया (बन्दी बना दिया) और अपनी जीवरक्षा-हेतु (हाहुली राय) गोरी के पास चल दिया। भविष्य की होनहार इस प्रकार हुई। और यह बात योगिनिपुर (दिल्ली) में फैल गई।

सुनिय बत्त चहुआन त्रिप, धरिय धीर मन पान।
हौं अभंग अनभंगवर, हौं भंजन सुलतान। छं० ७२७

महाराज चौहान ने यह बात सुनी और धीर (पुंडीर) को पान का बीड़ा देने का निश्चय किया। मैं सुलतान का भंजन (नाश) करूँगा—ऐसा उन्होंने कहा।

रोकि कविंदहि अप्प मिलि, सो सुरतान अबुझ्झ।
सुनत राज प्रथिराज कै, हबि लागी उर मझ्झ।
हबि लागी उर मझ्झ, संझ आई गुर गल्हां।
भट्ट बसीठह रोकि, अप्प है वै दिसि हल्लां।
दस हजार हैबरनि, लष्ष पयदल अम वृन्दा।
मिल्यौ जाइ सुलितान, रोकि देवलें कविंदा। छं० ७२८

कवि को रोक (बन्दी बना) कर स्वयं सुलतान से मिलने गया है—यह सुनते ही पृथ्वीराज के हृदय में आग लग गई; सायंकाल यह गम्भीर समाचार आया और उनके हृदय में (उसे सुनते ही) आग लग गई। दूत भट्ट को बन्दी बनाकर स्वयं शत्रु पक्ष की ओर चला गया है; दस हज़ार श्रेष्ठ घुड़सवारों तथा (एक) लाख पदान्तिक सैनिक लेकर वह सुलतान से मिलने जा रहा है, तथा कवि को (देवी के) मन्दिर में बन्दी बना दिया है।

इस प्रकरण में हमें चन्द के अद्‌भुत योग्यतापूर्ण दूतत्व का परिचय मिलता है। उसके दूतकार्य का उद्देश्य जालंधर के अधिपति, रूठे हुए हाहुली हमीर राय को चौहान पृथ्वी-राज के पक्ष में समझा बुझाकर लाना था।

हमीर से मिलते ही सर्वप्रथम उसने सामन्तों की जुहार कही, जिनसे हमीर चिढ़ गया था। वक्र वचन बोलनेवाले विपक्षी की ऐसी विनम्रता हृदय की कठोरता को निःसन्देह कम करनेवाली होती है और चंद ने इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को लक्ष्य में रखकर इस युक्ति का प्रयोग किया।

इसके उपरान्त उसने महाराज पृथ्वीराज की ओर से कहा कि राजा ने बड़े स्नेह के साथ यह सन्देश भेजा है कि हे हमीर राज, इस बार तुम सुलतान पर सेना सजाओ। यह सेना सजाने के अर्थात् चौहान सैन्य का सेनापतित्त्व ग्रहण करने की बात चन्द ने बड़ी ही प्रलोभनपूर्ण कही थी। फ़ील्ड मार्शल और कमान्डर-इन-चीफ़ के पद आज भी युद्धकाल में आकांक्षा, आकर्षण और महत्त्व के हैं। अतएव सामन्तों की जुहार कहकर उसने हमीर के रोष को शान्त करते हुए उसके हृदय को नम्र करने की चेष्टा की तथा सेनापतित्त्व के पद का लोभ देकर उसे चौहान पक्ष की ओर आकर्षित किया। फिर उसने बतलाया कि दिल्ली की ओर हाथी घोड़ों की दौड़ जा रही है तथा वहाँ राजाओं की भीड़ लग चुकी है (दिल्ली वै गै दिसा, ता राजन लगि भीर)। इन शब्दों से चन्द ने साम, दाम और दन्ड नीतियों का एक साथ चमत्कारिक प्रयोग कर डाला है। उसकी सामनीति का अर्थ था कि पृथ्वीराज को चारों ओर से अभूतपूर्व सहायता प्राप्त हो रही है। तुम्हारे बिना उनका कार्य असफल न होगा। अस्तु, चाहो तो मुफ़्त मिलने वाले यश में हाथ बँटा लो। परन्तु दाम नीति हमीर के लिये एक प्रलोभन की वस्तु थी कि पृथ्वीराज की सहायता के लिये लोग चारों ओर से जा रहे हैं और तुम्हें उनके दल के सेनापतित्त्व का गौरव प्राप्त होगा। तथा इन शब्दों में गर्भित अन्तर्द्वन्द मचा देने वाली दंडनीति भी संकेत

कर रही थी कि हमीर, चाहे तुम नहीं भी चौहान के पक्ष में जाओ, उनकी सहायता के लिये राजाओं की भीड़ इकट्ठा हो चुकी है अर्थात् चौहान की विजय अवश्यम्भावी है। परन्तु प्रस्तुत अवसर पर सहायता न करने के कारण विजय प्राप्त करने के उपरान्त पृथ्वीराज तुमको यों ही न छोड़ देंगे, इस समय की उदासीनता का दन्ड तुम्हें भोगना ही होगा और तुम्हारे राज्य तक को छीन लिया जाना भी असम्भव नहीं है।

फिर हमीर को खड्ग के निष्कलंक मार्ग पर चलने का उत्कर्ष देता हुआ चंद लाहौरी हद्द के विश्वासघाती वीरों का उल्लेख करता हुआ कहता है कि 'शाह गोरी वीरता खरीदने वाला निन्दनीय व्यापार करता है और इस प्रकार हमीर को सचेत करते हुए कि इस लाहौर हद्द के पड़ोसी होने के नाते तुम भी कहीं सुलतान के चक्कर में आकर अपने को न बेंच बैठना।' वह उसे शाह के इस खोटे व्यापारिक बल को नष्ट करने का बढ़ावा देता है।

हमीर के शत्रु-पक्ष की प्रबलता का भय तथा सांसारिक सुखों का प्रलोभन देकर युद्ध से विरक्त रहने की सम्मति प्रकट करने पर चंद उसकी दाम और दन्ड नीति को यह कह कर उड़ा देता है कि सांसारिक सुख नश्वर हैं और मृत्यु का भय कोरी कायरता है जो वीरों के लिये सदैव त्याज्य है। फिर वह सतत अमर रहने वाले यश की श्रेष्ठता कहता है। अपनी उक्तियाँ निरर्थक होते देखकर हमीर के अपनी असली शिकायतों—चौहान दरबार में अपना निरन्तर उपहास, व्यंगात्मक वक्र वचनों के आरोप तथा पृथ्वी-राज की इस विषय में तटस्थता का उल्लेख करने पर, चंद उसे इस संकट काल में वह सब भूल कर स्वामिधर्म का आश्रय लेकर सुयश प्राप्त करने के लिये प्रबोधता है। और हाथी के कुल स्वभाव का उदाहरण देकर स्पष्ट कह देता है कि सुलतान की ओर अपना मन मत करो अन्यथा पछताना पड़ेगा। परन्तु हमीर अन्त में कहता है कि अब नाना प्रकार की युक्तियाँ करने से क्या होगा, पहिले तो संभरि धनी ने वीरों का आदर नहीं किया, फिर भी चंद उसे समझाता है कि साधारण भोगों के लिये तुमको बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी अर्थात् सुलतान की दासता स्वीकार करनी होगी।

कवि के सामने अपने को सर्वथा निरुत्तर देख कर हमीर ने उसे जालन्धरी देवी के मन्दिर में देवी जालपा से निर्णय कराने के लिये प्रेषित किया और मन्दिर ले जाकर दूत चंद को तो (हिन्दू नीति विरुद्ध) वहीं बन्दी कर दिया तथा स्वयं सुलतान गोरी की सहायता के लिये चल दिया।

निःसन्देह चंद अपने दूतकार्य में सफल नहीं हुआ और हमीर के छल का शिकार बन गया। उसने हमीर से ऐसी आशा भी न की होगी। जो भी हो उसका वार्त्तालाप उसकी प्रत्युत्पन्नमति, वाक्यपटुता, गम्भीर अध्ययन, तार्किकता और गहरी सूझ-बूझ का परिचायक है। ये गुण दूत में सदैव अपेक्षित हैं।

पृथ्वीराज रासो में चंद की निर्भीकता के द्योतक तीन स्थल हैं उन पर हम क्रमशः विचार करेंगे :—

कवि की निर्भीकता

१. भीमबध स० ४४ में चंद भीमदेव चालुक्य को

पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये उकसाने को एक अजीब स्वाँग बनाकर गया था। गले में जाल डाले, नसेनी, कुदाल, दीपक, और काला त्रिसूल लिये वह गुर्जर नरेश के दरबार में पहुँचा (छं० १०२) भीमदेव ने कहा कि यह आडम्बर कैसा तो उसने निर्भीकता से उत्तर दिया कि :—

एन जाल संग्रहौ, जाम जल भीतर पथ्थो।
इन नीसरनी ग्रहौ, जाम आकासह चथ्थो।
इन कुदाले षनौ, जाम पायाल पनट्टौ।
इन दीपक सग्रहौ, जाम अंधारै नट्टौ।
इन अंकुश असि बसि करौं, इन त्रिशूल हनि हनि सिरौं।
जगमगै जोति जग उप्परै, तो डर प्रथम नरिन्दरै। छं० १०३

पृथ्वीराज का कहना है कि यदि भीमदेव जल में घुसेगा तो इस जाल से उसे पकड़ निकालूँगा, यदि आकाश में जावेगा तो यह नसेनी लगाऊँगा, यदि पाताल में जावेगा तो इस कुदाल से खोद लाऊँगा, यदि अँधेरे में छिपेगा तो इस दीपक से ढूँढ़ लूँगा, इस अंकुश से उसे वश में करूँगा और इस त्रिशूल से उसे हन डालूँगा।

ऐसा विकट सँदेशा उस युग में, और भीमदेव से स्वेच्छाचारी शक्तिवान राजा के पास ले जानेवाले में कितना साहस, कितनी निर्भयता और प्राणोत्सर्ग की कितनी तय्यारी अपेक्षित थी, यह विचारणीय है।

संदेश सुनते ही भीमदेव की क्रोधाग्नि भड़क उठी, उसने पृथ्वीराज का विषम उपहास करते हुए (छं० १०५) चंद से कहा कि भाट का पुत्र ही बकवास कर सकता है (छं० १०६) फिर सम्भवतः यह विचार कर कि दूत मारा नहीं जाता उसने चंद के प्राण नहीं लिये, आगे हम पढ़ते हैं कि भीमदेव के भट्ट जगदेव ने चंद से जाकर कहा कि यदि कन्ह, कैमास, चामंडराय अथवा पृथ्वीराज, यह 'मिसरा' लेकर जाते तो उन्हें मालूम हो जाता, तुम्हें तो उसने छोड़ दिया (छं० १०६)।

प्राणों की बाजी लगानेवाले बिरले ही हुए हैं, चंद भी स्वामिकार्य के लिये अपने जीवन का मोह त्याग ऐसा निर्भीक संदेशवाहक हो गया था।

२. कैमास बध, स० ५७ में चंद को अपनी अधिष्ठात्री देवी से महाराज पृथ्वीराज द्वारा मन्त्री कैमास दाहिम की हत्या का पूरा विवरण ज्ञात हो चुका था (छं० १०७-१६७), दूसरे दिन दरबार लगने पर जब सभी सामन्त और कवि चंद उपस्थित हुए तो महाराज ने कहा कि यदि सच्चे बरदायी हो तो बतलाओ कि कैमास कहाँ है अथवा बरदायी कहलाना ही छोड़ दो (छं० २२५-२२६)। चंद ने प्रथम तो बड़ा संकोच किया परन्तु पृथ्वीराज का दुराग्रह सीमा पार कर चुका था, अस्तु उसने पूछा कि :—

एक बान पहुमी, नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहर्यौ, बीर कष्षन्तर चुक्यौ।

कर रही थी कि हमीर, चाहे तुम नहीं भी चौहान के पक्ष में जाओ, उनकी सहायता के लिये राजाओं की भीड़ इकट्ठा हो चुकी है अर्थात् चौहान की विजय अवश्यम्भावी है। परन्तु प्रस्तुत अवसर पर सहायता न करने के कारण विजय प्राप्त करने के उपरान्त पृथ्वीराज तुमको यों ही न छोड़ देंगे, इस समय की उदासीनता का दन्ड तुम्हें भोगना ही होगा और तुम्हारे राज्य तक को छीन लिया जाना भी असम्भव नहीं है।

फिर हमीर को खड्ग के निष्कलंक मार्ग पर चलने का उत्कर्ष देता हुआ चंद लाहौरी हद्द के विश्वासघाती वीरों का उल्लेख करता हुआ कहता है कि 'शाह गोरी वीरता खरीदने वाला निन्दनीय व्यापार करता है और इस प्रकार हमीर को सचेत करते हुए कि इस लाहौर हद्द के पड़ोसी होने के नाते तुम भी कहीं सुलतान के चक्कर में आकर अपने को न बेंच बैठना।' वह उसे शाह के इस खोटे व्यापारिक बल को नष्ट करने का बढ़ावा देता है।

हमीर के शत्रु-पक्ष की प्रबलता का भय तथा सांसारिक सुखों का प्रलोभन देकर युद्ध से विरक्त रहने की सम्मति प्रकट करने पर चंद उसकी दाम और दन्ड नीति को यह कह कर उड़ा देता है कि सांसारिक सुख नश्वर हैं और मृत्यु का भय कोरी कायरता है जो वीरों के लिये सदैव त्याज्य है। फिर वह सतत अमर रहने वाले यश की श्रेष्ठता कहता है। अपनी उक्तियाँ निरर्थक होते देखकर हमीर के अपनी असली शिकायतों— चौहान दरबार में अपना निरन्तर उपहास, व्यंगात्मक वक्र वचनों के आरोप तथा पृथ्वी-राज की इस विषय में तटस्थता का उल्लेख करने पर, चंद उसे इस संकट काल में वह सब भूल कर स्वामिधर्म का आश्रय लेकर सुयश प्राप्त करने के लिये प्रबोधता है। और हाथी के कुल स्वभाव का उदाहरण देकर स्पष्ट कह देता है कि सुलतान की ओर अपना मन मत करो अन्यथा पछताना पड़ेगा। परन्तु हमीर अन्त में कहता है कि अब नाना प्रकार की युक्तियाँ करने से क्या होगा, पहिले तो संभरि धनी ने वीरों का आदर नहीं किया, फिर भी चंद उसे समझाता है कि साधारण भोगों के लिये तुमको बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी अर्थात् सुलतान की दासता स्वीकार करनी होगी।

कवि के सामने अपने को सर्वथा निरुत्तर देख कर हमीर ने उसे जालन्धरी देवी के मन्दिर में देवी जालपा से निर्णय कराने के लिये प्रेषित किया और मन्दिर ले जाकर दूत चंद को तो (हिन्दू नीति विरुद्ध) वहीं बन्दी कर दिया तथा स्वयं सुलतान गोरी की सहायता के लिये चल दिया।

निःसन्देह चंद अपने दूतकार्य में सफल नहीं हुआ और हमीर के छल का शिकार बन गया। उसने हमीर से ऐसी आशा भी न की होगी। जो भी हो उसका वार्त्तालाप उसकी प्रत्युत्पन्नमति, वाक्यपटुता, गम्भीर अध्ययन, तार्किकता और गहरी सूझ-बूझ का परिचायक है। ये गुण दूत में सदैव अपेक्षित हैं।

पृथ्वीराज रासो में चंद की निर्भीकता के द्योतक तीन स्थल हैं उन पर हम क्रमशः विचार करेंगे :—

कवि की निर्भीकता

१. भीमबध स० ४४ में चंद भीमदेव चालुक्य को

पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये उकसाने को एक अजीब स्वाँग बनाकर गया था। गले में जाल डाले, नसेनी, कुदाल, दीपक, और काला त्रिसूल लिये वह गुर्जर नरेश के दरबार में पहुँचा (छं० १०२) भीमदेव ने कहा कि यह आडम्बर कैसा तो उसने निर्भीकता से उत्तर दिया कि :—

एन जाल संग्रहौ, जाम जल भीतर पढ्यो।
इन नीसरनी ग्रहौ, जाम आकासह चढ्यो।
इन कुदालै षनौ, जाम पायाल पनट्ठौ।
इन दीपक संग्रहौ, जाम अंधारै नट्ठौ।
इन अंकुश अलि बसि करौं, इन त्रिशूल हनि हनि सिरौं।
जगमगै जोति जग उप्परै, तो डर प्रथम नरिन्दरै। छं० १०३

पृथ्वीराज का कहना है कि यदि भीमदेव जल में घुसेगा तो इस जाल से उसे पकड़ निकालूँगा, यदि आकाश में जावेगा तो यह नसेनी लगाऊँगा, यदि पाताल में जावेगा तो इस कुदाल से खोद लाऊँगा, यदि अँधेरे में छिपेगा तो इस दीपक से ढूँढ़ लूँगा, इस अंकुश से उसे वश में करूँगा और इस त्रिशूल से उसे हन डालूँगा।

ऐसा विकट सँदेशा उस युग में, और भीमदेव से स्वेच्छाचारी शक्तिवान राजा के पास ले जानेवाले में कितना साहस, कितनी निर्भयता और प्राणोत्सर्ग की कितनी तय्यारी अपेक्षित थी, यह विचारणीय है।

संदेश सुनते ही भीमदेव की क्रोधाग्नि भड़क उठी, उसने पृथ्वीराज का विषम उपहास करते हुए (छं० १०५) चंद से कहा कि भाट का पुत्र ही बकवास कर सकता है (छं० १०६) फिर सम्भवतः यह विचार कर कि दूत मारा नहीं जाता उसने चंद के प्राण नहीं लिये, आगे हम पढ़ते हैं कि भीमदेव के भट्ट जगदेव ने चंद से जाकर कहा कि यदि कन्ह, कैमास, चामंडराय अथवा पृथ्वीराज, यह 'मिसरा' लेकर जाते तो उन्हें मालूम हो जाता, तुम्हें तो उसने छोड़ दिया (छं० १०६)।

प्राणों की बाजी लगानेवाले बिरले ही हुए हैं, चंद भी स्वामिकार्य के लिये अपने जीवन का मोह त्याग ऐसा निर्भीक संदेशवाहक हो गया था।

२. कैमास बध, स० ५७ में चंद को अपनी अधिष्ठात्री देवी से महाराज पृथ्वीराज द्वारा मन्त्री कैमास दाहिम की हत्या का पूरा विवरण ज्ञात हो चुका था (छं० १०७-१२७), दूसरे दिन दरबार लगने पर जब सभी सामन्त और कवि चंद उपस्थित हुए तो महाराज ने कहा कि यदि सच्चे बरदायी हो तो बतलाओ कि कैमास कहाँ है अथवा बरदायी कहलाना ही छोड़ दो (छं० २२५-२२६)। चंद ने प्रथम तो बड़ा संकोच किया परन्तु पृथ्वीराज का दुराग्रह सीमा पार कर चुका था, अस्तु उसने पूछा कि :—

एक बान पहुमी, नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहर्यौ, बीर कष्षन्तर चुक्यौ।

बियौ बान सन्धान, हन्यौ सोमेश्वर नन्दन।
गाढ़ौ करि निग्रह्यौ, षनिव गड्यौ सम्भरिधन।
थल छोरि न जाइ अभागरौ, गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ।
इम जम्पै चंद बरदिया, कहा निघट्टै हय प्रलौ। छं० २३६

हे पृथ्वीनरेश, आपने एक बाण कैमास पर छोड़ा परन्तु वह उस वीर के हृदय को चूककर काँख से निकल गया; हे सोमेश्वर नन्दन, तब आपने दूसरा बाण संधान कर उसे मार डाला और फिर हे सम्भरधनी, आपने गढ़ा खोद कर उसे गाड़ दिया, चंद वरदायी कहता है कि इस प्रकार यह आपने कैसा प्रलय कर डाला?

यह निर्भीक और कटु सत्य सुन कर महाराज सकुच गये (छं० २३७-२३८) तथा सब सामन्तों के हृदय सन्तप्त और व्याकुल हो उठे (छं० २३६) और वे क्रमशः दरबार से उठ गये। अब तक चार प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी (छं० २४०-२४८)। चंद वरदायी अन्त तक ठहरा रहा और यह कह कर कि घर घर यह चर्चा फैल जावेगी; दाहिम को मारने के आप दोषी हैं, कलियुग में यह अपयश मिटनेवाला नहीं है :—

राजन मझ्झ संपरिय, पट्ट दरबार परट्ठिय।
बहुरे सब सामन्त, मंत भग्गिय सिर लठ्ठिय।
रह्यौ चंद वरदाइ, विमुष पग डग न सरक्कयौ।
अम्भ तेज वर भट्ट, रोस जल षिन षिन सुक्कयौ।
रत्तरी कंत जागंत रे, भई घरं घर बत्तरी।
दाहिम्म दोष लग्यौ षरौ, मिटे न कलि सौ उत्तरी। छं० २४९

वह भी अपने घर चला आया (छं० २५०)।

वस्तुतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि चन्द राजकवि और राजमित्र था परन्तु साथ ही हम उसे एक स्पष्ट वक्ता भी पाते हैं, पृथ्वीराज एक निरंकुश शासक थे, उनकी सरे दरबार इस प्रकार पोल खोलने के लिये अत्यन्त साहस की आवश्यकता थी और हमारे चरित्र नायक में उसका अभाव कदापि न था।

३. कनवज्ज युद्ध, स० ६१ में चन्द महाराज जयचन्द के दरबार में पहुँचा, उसने जयचन्द की विरुदावली यह कह कर समाप्त की कि छत्तीसों वंशों ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली है केवल यशस्वी चौहान के (छं० ५६६-५७७) इस बात से मर्माहत हो :—

सुनत नृपति रिपु को वयन, तन मन नयन सुरत्त।
दिय दरिद्र मंगन घरहु, को मेटै विधिपत्त। छं० ५७८
रतन बुंद वरषै नृपति, हय गय हेम सु हद्द।
लग्गि न बुंद सुभग्ग तन, सिर पर छत्र दरिद्र। छं० ५७९

शत्रु का नाम सुनते ही नृपति (जयचन्द) के तन, मन और नेत्र लाल हो गये दरिद्रता और भिखमंगे का घर ही जब मिला है, तो विधाता का पत्र कौन मिटा सकता है, राजा चाहे रत्नों की बूँदें बरसावै, परन्तु जिसके सिर पर दरिद्रता का छत्र लगा है उस

शरीर पर एक बूँद भी नहीं गिर सकती।

फिर कवि को लक्ष्य कर के श्लेषालंकार में निम्न कटूक्ति कही :—

मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगलराव सुहद्द।
बन उजार पशु बन चरन, क्यों दूबरौ बरद्द। छं० ५८०

मुँह का दरिद्री, तुच्छ शरीरवाला, जंगलराव, (१. जंगलेश=पृथ्वीराज, २. जंगल का राजा=भील) के राज्य में रहनेवाला तथा बन उजाड़नेवाला पशु बरद (१. बरदायी =चंद कवि, २. बैल) क्यों दुबला है :—

चंद ने तुरंत ही उत्तर दिया :—

चढ़ि तुरंग चहुआन, आन फेरीति परद्धर।
तास युद्ध मंडयौ, जास जानयौ सबर बर।
केइक तकि गहि पात, केइ गहि डार मूर तर।
केइक दंत तुच्छ त्रिन्न, गये दस दिसनि भाजि डर।
भुअ लोकत दिन अचिरिज भयौ, मान सबर बर मरद्दिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ जु षर, सु यों दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८१

(उस जंगलराव) चौहान ने घोड़े पर चढ़ कर दूसरों की भूमि में अपनी दुहाई फेर दी, सबलों को युद्ध में पराजित किया, उसको देखकर अनेकों ने अपने मुँह में पत्ते दबा लिये, किसी किसी ने वृक्षों की डालें और जड़ें पकड़ लीं और कोई कोई अपने दाँतों में तिनके दबा कर दसों दिशाओं में डर कर भाग खड़े हुए, उस दिन भूलोक में बड़ा आश्चर्य हुआ, जब सब सबलों का मान मर्दन कर दिया गया; इस प्रकार पृथ्वीराज के शत्रुओं ने सारी घास खा डाली और इसी से वरद्दिया (१. बैल २. वरदायी चंद कवि) दुबला हो गया।

जयचंद ने अपना व्यंग सर्वथा निष्फल होते देख फिर चुटकी ली :—

हंस न्याय दुब्बरौ, मुत्ति लब्भै न चुनंतह।
सिंह न्याय दुब्बरौ, करी चंपै न कंठ कह।
म्रग न्याय दुब्बरौ, नाद बंधियै सु बंधन।
छैल छबक दुब्बरौ, त्रिया दुब्बरी मीत मन।
आषाढ गाढ बंधन धुरा, एकहि गहिह हरद्दिया।
जंगर जु रारि उज्जर षरन, क्यों दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८२

तथा—

पुरै न लग्गी आरि, भारि लद्यौ न पिट्ठ पर।
गज्जवार गंभार, गहो गट्ठी न नथ्थ कर।
भ्रम्यौ न कूपं भौंवरी, कबंहुक सब सेन रुत्तौ।
पंचधार ललकारि, रथ्थ सथ्था नह जुत्तौ।
आषाढ़ मास बरषा समै, कंध न कहौ हरद्दिया।
कमधज्ज राव इम उच्चरै, सु क्यों दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८३

मोती न पाने से न्याय सम्पन्न हंस दुर्बल होता है, गजराज की गर्दन का रक्त न पाने से सिंह दुर्बल होता है, नाद के कारण बंधन में पड़ा हुआ मृग दुर्बल होता है, छैला अपने मन की मौज न पाने से और स्त्री बिना अपने मन के मित्र के दुर्बल होते हैं, परन्तु वरद्दिया (१. वरदायी चंद २. बैल) के दुबले होने का एक भी कारण उपस्थित नहीं है क्योंकि आषाढ़ का महीना है और इससे रात दिन हल भी नहीं चलाना पड़ता है, तथा न पुरवट खींचना पड़ता है, न पीठ पर भार लादा जाता है, न किसी गँवार से पाला पड़ा है, जो मन मानी गांठें लाद कर नथ खींच कर चलाता हो, न रहट में चलाया जाता है, न युद्ध के रथों में जुत कर ललकार के साथ चलाया जाता है, आषाढ़ का महीना है, वर्षा का समय है, हल में कंधा देना नहीं पड़ता, कमधज्जराय (जयचंद) पूछते हैं कि फिर आखिर बरद्दिया क्यों दुबला है।

इस नवीन उक्ति का उत्तर चंद ने नयी युक्ति से दिया:—

फुनि जंपै कविचंद, सुनौ जैचंद राजबर।
पुरै आर किम सहै, भार किम सहै पिट्ठ पर।
नथ्थ हथ्थ किम सहै, कूप भाँवरि किम मंडै।
है गै सुरबर सुधर, स्वामि रथ भारथ तंडै।
बरषा समान चहुआन कै, अरि उर बरह हरद्दिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ सुषर, सु हम दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८४

तथा—

प्रथम नगर नागौर, बंधि साहाब चरिग तिन।
सोझंते मर भीम, सीम सोधीति सकल बन।
मेवार्ता मुगल महीप, सब्ब पत्र जु षद्धा।
ठढ्ढा कर दिल्लिया, सरस संमूर न लद्धा।
सामंत नाथ हथ्थां सु कहि, लरिकै मान मरद्दिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ सु पर, यौं दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८५

फिर कवि चंद ने उत्तर दिया कि हे राजन् जयचंद, सुनिये, वरद्दिया (बैल) पुरवट क्यों खींचे, पीठ पर बोझ क्यों लादे, नाथ से क्यों खींचा जाय, रहट क्यों चलावे, युद्ध के रथों में क्यों जोता जाय, यह सारा कार्य करने के लिए स्वामी (पृथ्वीराज) के पास श्रेष्ठ हाथी और घोड़े हैं, चौहान द्वारा (शत्रु मानमर्दनरूपी) समान बर्षा हुई है, जिसके कारण उन सब बैरियों के उर पर बरहा बनाना पड़ा, और पृथ्वीराज के शत्रुओं ने सारी घास खा डाली, यही कारण वरद (बैल) के दुबले होने का है। तथा—

प्रथम नागौर नगर में साहाब (गोरी) बाँधा गया, वह (तृण) घास चर गया, फिर सोझंती में भीमदेव परास्त हुआ उसने सारा घास का जंगल साफ कर दिया, मेवाती मुगल राजा ने सारे पत्ते ही खा डाले दिल्लीश्वर के सामने बिना जड़ पकड़े कोई खड़ा न रह सका तथा सामंत नाथ से युद्ध करनेवालों ने अपना मान मर्दन करवा लिया,

पृथ्वीराज द्वारा विजित शत्रुओं ने सारी घास खा डाली इसी से बरदिया (बैल; वरदायी) दुबला हो गया।

कवि के ये बचन सुनते ही जयचंद के नेत्र, कान और मुँह लाल हो गये, भृकुटियाँ टेढ़ी हो गयीं, दाँतों से ओठ दब गये और हृदय उच्छ्वास फेंकने लगा। शत्रु का विक्रम सुन कर वे क्रोध में भर गये परन्तु फिर नीति का विचार करके कमंध (जयचंद) ने चंद की ओर प्रेम से देखा, एक बड़ी अंगड़ाई ली और भट्ट का आदर करते हुए कहा कि हे श्रेष्ठ विरद (गुणवाले) यह तो बतलाओ कि मुझ से संभरधनी (शाकंभरी नरेश पृथ्वीराज) क्यों नहीं मिलते। यथा :—

सुनत पंग कवि बयन, नयन श्रुत बदन रत्त बर।
भुवन बंक रद अधर, चंपि उर उससि सास गर।
कोप कलंमलि तेज, सुनत विक्रम अरि क्रंमह।
सगुन विचार कमंध, दिष्षि दिल चंद सु पिम्मह।
आदर सुभट्ट राजिन्द किय, अंग एँडाइ बिसतारि कर।
नन मिलत मोहि संभरि धनिय, कहौ बत्त मुख विरद वर। छं० ५८६

चन्द ने राजा जयचंद का भाव परिवर्तन स्पष्टतया परिलक्षित किया। और उन्हें इस बार अपने को बरद (बैल) के स्थान पर विरद (गुणवान) सम्बोधित करते पाया। परन्तु वह अवसर चूकनेवालों में न था। वाक्य चातुर्य और प्रत्युत्पन्न मति वाले कवि ने तुरन्त ही बरद को एक अत्यन्त विलक्षण महिमा, प्रदान करते हुए राजा को ऐसी उपाधि देने की कृपा के लिये धन्यवाद दिया।

जिहि बरद चढ्ढि कै, गंग सिर धरिय गवरि हर।
सहस मुष्ष सम्पेषि, हार किन्नौ भुजंग गर।
तिहि भुजंग फन जोरि, झोलि रष्षी बसुमत्तिय।
बसुमत्ती उप्परै, मेर गिरि सिंध सपत्तिय।
ब्रहमंड गंड मंडिय सकल, धवल कंध करता पुरस।
गरुअत्त बिरद पहुपंग दिय, क्रपा करिय भट्टह सिरस। छं० ५८७

जिस बरद पर चढ़ कर शिव जी ने पार्वती जी को लिया और अपने सिर पर गंगा जी को धारण किया, सहस्रों मुखों वाला देख कर उन्होंने भुजंग (शेषनाग) को अपने गले का हार बनाया, उक्त भुजंग ने अपने फनों के बल पर उस पृथ्वी को रख लिया जिस पर मेरु पर्वत और सातों समुद्रादि हैं, तथा सप्त लोक और फिर स्वयं ब्रह्म पुरुष भी हैं, इस प्रकार पहुपंग (जयचंद) ने भट्ट पर अति कृपा करके उसे बरद (बैल) का महान विरद (प्रशस्ति) दिया।

कवि को इस प्रकार नम्र और शान्त होते देख कर राजा जयचंद ने उसका आदर करते हुए कहा कि दिल्ली धनी (पृथ्वीराज) मुझे कैसे मिलें, यह समझाओ। यथा :—

आदर किय नृप तास कौं, कह्यौ चंद कवि आउ।
मिले मोहि संभरि धनी, सुबत कहिग समझाउ। छं० ५८८

क्योंकि हम और वे तो सगे हैं और तुम जानते ही हो कि सारे राजा लोग मेरी प्रभुता स्वीकार करते हैं। यथा :—

उनि मातुल मुहि तात कहि, नित नित प्रेम बढंत।
जिम जिम सेव स अद्दरिय, तिम तिम दान चढंत। छं० ५८९
सोमेसं पानि ग्रहन, जब ढिल्ली पुर कीन।
हम गुरजन सब बत्त करि, बहु धन मंग सु लीन। छं० ५९०
कै कमान सद्ध्यौ सु छह, सुनौ न विजय नरिंद।
सब सेवहि पहु हमहि नृप, सो तुम सुनि कवि चंद। छं० ५९१

जयचंद का सारे राजाओं द्वारा सेवा करवाने का गौरव मिट्टी में मिलाने के लिए चंद ने कहा कि आपके माता पिता को दिग्विजय का उत्साह था और आप अनेक दिनों तक दक्षिण में थे तब म्लेच्छों ने इधर प्रवेश किया था। उस समय सामन्त नाथ पृथ्वीराज ने ही रोष पूर्वक अपना तूणीर कसा था तथा शूर सामन्तों को लेकर शाह की सेना नष्ट कर दी थी। परामर्श लेकर राज्य-कार्य चलाने वाले चौहान-राज्य-कुल-छत्र, शब्द वेधी बाण चलाने में निपुण उन पृथ्वीराज से, हे राजन, आप मिलने में खेद न कीजिये। यथा:—

अवसर पसाउ सुनि पंग राव, तुअ तात मात द्रिग विजय चाव।
तुम दिवस लगिग दच्छिनह देश, तब लग्ग मेछ हथ्थह प्रवेश। छं० ५९२
सामन्त नाथ तपि तींन बंधि, संहर्यौ साहि सब सेन संधि।
दामित्त रूप तपि छत्ती कुलाह, सामन्त सुन दुहु विधि दुवाह। छं० ५९३
अन पुच्छि करै गृह राज काज, कुल छत्र पंड चहुआन लाज।
सिंगिनि समथ्थ सर सबद बेध, जिन करन राव उन मिलन खेद। छं० ५९४

जयचंद ने कहा कि यह कब की बात है, सुलतान गोरी ने कब यह अपघात किया था। उस दिन की तो मुझे सब बात ही भूल गई। हे चंद, मुझे यह सब बात बताओ (छं० ५९७)। तब कवि ने विस्तारपूर्वक बतलाया कि शहाबुद्दीन ने किस प्रकार कन्नौज पर आक्रमण करने की योजना बनाकर चढ़ाई की। कैसे रायसिंह बघेला ने कुन्दन पुर में उसे रोकने के प्रयत्न में करारी हार खाई। और पृथ्वीराज ने नागौर में यह समाचार पाकर सारुंडा में डेरा डाला तथा आधीरात के समय उस पर आक्रमण किया। इस युद्ध में शाह पकड़ा गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार शाकम्भरी नरेश ने आपके राज्य की रक्षा की थी (छं० ५९८-६४७)।

शत्रु की यह प्रशंसा सुनकर जयचंद ने हँस कर पूछा कि आखिर सम्भरेश के पास कितने सैनिक हैं और कितने देशों पर उनका अधिकार है (छं० ६४८)। चंद ने कहा कि पृथ्वीराज के कार्य महान हैं तथा उनके पराक्रम का वर्णन किया (छं० ६४९-५१)।

जयचन्द के पृथ्वीराज की साहश्यता पूछने पर अपने पानधार खवास (असली पृथ्वीराज) की ओर संकेत करते हुए चंद ने दो छप्पय पढ़े :—

बत्तीसह लच्छिनह, बरस छत्तीस मास छह।
हम दुज्जन संग्रहत, राह जिस चंद सूर ग्रह।
एक छुटहि महिदान, एक छुट्टहिति दंड भर।
एक गहहि गिर कन्द, एक अनुसरहि चरन परि।
चहुआन चतुर चावद्दिसहि, हिंदवान सन हत्थ जिहि।
इम जंपै चन्द वरद्दिया, प्रथीराज उनहारि इहि। छं० ६५४

इसौ राज प्रथिराज, जिसौ गोकुल मद्धि कन्हह।
राज प्रथिराज, जिसौ पथ्थर अहि बन्नह।
राज प्रथिराज, जिसौ अहँकारिय रावन।
राज प्रथिराज, राम रावन संतावन।
वरस तीस छह अग्गरौ, लच्छिन सब संजुत्त गनि।
इम जंपै चंद वरद्दिया, प्रथीराज उन हारि इनि। छं० ६५५

यह सुनते ही महाराज जयचन्द पुनः क्रोध से भभक उठे और बोले कि कवि चंद तुम व्यर्थ बकवाद करते हो चुप रहो :—

कवि चंद बहुत बुल्लहु बयन, छिति अछिति षत्री कवन।
चल दल समान रसना चपल, विफल वाद मंडौ मषन। छं० ६५६

इसी वार्त्तालाप के अन्तर्गत आगे जयचन्द ने पूछा कि समय देखकर शासन करने वाला आज कल कौन राजा है और कौन नहीं (छं० ६६५)। चन्द ने कहा कि नीतिनिपुण संभरेश ने अपना धन, धर्म्म और यश बढ़ाया है (छं० ६६५-६६६) परन्तु इस कलिकाल में आपका यश करना नीति संगत नहीं था (छं० ६६७-६७७)।

इस प्रकार देखते हैं सभा चतुर, वाग्वैदग्ध, तुरतबुद्धि, स्पष्टवक्ता और दरबारी राजनीति में कुशल कवि चंद बड़ा ही निर्भीक पुरुष था। चक्रवर्ती सम्राट कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचन्द की सभा में उनके शत्रु पृथ्वीराज की उसने प्रशंसा की धूम बाँध दी थी। उसकी वार्तालाप-प्रवीणता का लोहा भीमदेव ने 'वैन वाद सो करै, होइ भट्टह कौ जायौ।' तथा जयचन्द ने 'चल दल समान रसना अचल, विफल वाद मंडौ मषन' कह कर एक प्रकार से स्वीकार कर ली थी।

पृ० रा० (जो ना० प्र० स० द्वारा दिये गये रूप में ऐतिहासिकों को मान्य नहीं है) में महाराज पृथ्वीराज का जीवन वयस्कता से अन्त तक युद्ध जीवन अथवा शिविर जीवन है।

कवि और युद्ध

और महाराज के जीवन में प्रायः ओत प्रोत उनके सामन्तों, कवियों और राजगुरु का जीवन है। आज इससे छेड़छाड़ है तो कल उससे झगड़ा और परसों तीसरे पर अभियान। इन युद्धस्थलों पर हम महाराज पृथ्वीराज को चंद वरदायी से अपनी शंका बतलाते और कवि द्वारा उसका समाधान होते हुए

पाते । इस परिस्थिति के परिचायक निम्न स्थल हैं :—

१. समय १०, आषेटक चूक वर्णनं—महाराज पृथ्वीराज शिकार खेल रहे थे, चंद भी उनके साथ था। कवि ने कहा कि हमें शहाबुद्दीन के आने का सन्देह है। फलस्वरूप खोज की गयी और चारों ओर यवन पाये गये (छं० १७)। यवनों ने आक्रमण किया, युद्ध हुआ जिसमें चौहान विजयी हुए। युद्धकाल में चंद की उपस्थिति का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु उसका वहाँ रहना अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि महाराज इस अवसर पर जैसा कि वर्णित है सब के साथ घिर गये थे।

२. समय ४२, चंद द्वारिका से लौटता हुआ पट्टनपुर आया। वहाँ उसे पृथ्वीराज का पत्र मिला कि गज्जनेश आ गया है, यह पढ़कर वह कूच पर कूच बोलता हुआ दिल्ली चल दिया :—

प्रथु कागद चन्दह पढिय, आयौ षरि गज्जनेस।
कूच कूच मग चन्द षरि, पहुँच्यौ घर दानेस। छं० ८५

यदि उसका युद्धकाल में उपस्थित होना किन्हीं कारणों वश आवश्यक न होता तो पृथ्वीराज उसको इस आशय का पत्र क्यों लिखवाते।

३. समय ६१, कन्नौज युद्ध अपनी चरम सीमा पर था, सामन्त और शूरवीर अपना पराक्रम दिखाते हुए वीर गति प्राप्त कर रहे थे, उस समय चंद वरदायी ने महाराज से युद्ध करने की आज्ञा माँगी।

तीर तुबक सिर पर बहत, गहत नरिन्द गुमान।
वरदाई तहां लरन कों, हुक्रम माँगि चहुआन।
हम जूझत रजपूत रिन, जंपत संभरि राव।
अमर किति सामन्त करन, वरदाई घर जाव छं० १८७२

संभरि नरेश ने कहा कि रण में जूझनेवाले हम राजपूत हैं, वरदायी, सामन्तों की कीर्ति अमर करने के लिये घर जाओ।

कित्ति करन गुन उद्धरन, जल्हन पच्छ सु लज्ज।
मोहि न्रपति आयसु करौ, ईस सीस द्यौं अज्ज। छं० १८७३

चंद ने उत्तर दिया कि कीर्ति बखानने और गुणावली गाने के लिए जल्हन पीछे रह गया है। हे नृपति मुझे आज ईश (शिव) को अपना शीश समर्पित करने की आज्ञा दीजिये।

बिन आयस प्रथिराज कै, धाय नंषयौ बाज।
को रष्षै सुत मल्ह कौ, सूर नूर मुख लाज। छं० १८९४

फिर बिना पृथ्वीराज की आज्ञा पाये ही उसने दौड़ कर रण प्रांगण में अपना घोड़ा कुदा दिया, आखिर मल्ह के पुत्र को कौन रोक सकता था। उस शूर का तेजस्वी मुँह लज्जा से ढँक रहा था। अतएव विकट युद्ध करके उसने अपनी लाज को धो बहाया। कवि की युद्ध शैली और उसका शौर्य इस प्रकार प्रकट किया गया है :—

कविंद बाज नष्षयं, नरिंद चष्ष दिष्षयं।
मनो नछित्र पातयं, हू अंकि मद्धि राजयं। छं० १८७५
पवंन वेग पाइसं, तुरंग कब्बि राइसं।
नृपत्ति अप्प पारषं, वियौ न कोई आरिषं। छं० १८७६
नचंत वै किसोरयं, हरै गुमान मोरयं।
धरा एराक ठौरयं, लियौ सु वप्प तोरयं। छं० १८७७
दियौ चुहान मोर को, समुद्द की हिलोर को।
जरावयं पलानयं, अमोल पिट्ठ ठानयं। छं० १८७८
मनो कि रथ्थ भानयं, कविन्द जाचि आनयं।
सुमन्त अग्र कान के, मनो भल्लक वान के। छं० १८७९
हरन्न शत्रु प्रान के, करे विरंचि प्रान के।
हुती उपंम जोरयं, त्रिया सु नैन कोरयं। छं० १८८०
कि मोर चित्त हेत की, गरभ्भ फाक केतकी।
प्रफुल्ल चंद मौजयं, कि पंखुरी सरोजयं। छं० १८८१
पवन्न हीन विष्षयं, कि दीप ज्योति सिष्षयं।
तमं दरिद्र भंजनं, पतंग सूम दक्कनं। छं० १८८२
सुभंत केश बालयं, सरित्त ज्यों सेवालयं।
सवद्ध कन्ध बक्र कौ, सगोल पुट्ठि चक्र कौ। छं० १८८३
गिरह देत घुम्मरं, पलं हलं त क्रुम्मरं।
षुरं चमक्क उज्जलं, मनो घनंम विज्जुलं। छं० १८८४
वरन्न गात भौर सौ, हलंत पुंच्छ चौंर सौ।
करंत फौज हीसयं, दिष्यौ कन्नौज ईसयं छं० १८८५
षुरं रजं तुरंगयं, उडंत जोर जंगयं।
किरन्न सूर मुंदयं, कुटंत तीर हद्दयं। छं० १८८६
बजै निसान नद्दयं, गरज्ज ज्यों समुद्दयं।
बहंत गज्ज मद्दयं, करंत सद्द रद्दयं। छं० १८८७

कवि ने अपने अद्भुत साहस, धैर्य और युद्ध-कौशल से यवन सेना को विचलित और तितर-बितर कर दिया और फिर महाराज के पास लौट आया, उसके शरीर पर एक भी घाव न था। देखिये :—

उठै रनं खद्दयं, सुनंत भट्ट सद्दयं।
कमंध पंग उठ्ठयं, सुमेर जेम दिठ्ठयं। छं० १८८८
करै हुकक्कंम पठ्ठयं, गम्भीर मीर अठ्ठमं।
हुसेन षां कमालयं, षज्जील षां जलालयं। छं० १८८९
पिरोज षां हुजाबयं, फरीद षां निवाजयं।
अजब्ब साज बाजयं, धरंत जुद्ध लाजयं। छं० १८९०

कुलं जरं गरिट्ठयं, भुजा तिनं बलिट्ठयं।
द्रिगं सुघात रत्तयं, मनो गयंद मत्तयं। छं० १८६१
लरंत मीर भट्टयं, छुटै हथ्यार थट्टयं।
करंत घाव घट्टयं, नचंत जेम नट्टयं। छं०१८६२
अरी घटा दवट्टयं, कि बिज्जुलं लपट्टयं।
परंत चट्ट पट्टयं, पिशाच श्रोन चट्टयं। छं० १८६३
सनट्ट हथ्थ भट्टयं, उभै सु मीर कट्टयं।
हयग्गयं सु अंगयं, कलंत श्रोन पंकयं छं० १८६४
कृपान हथ्थ चन्दयं, सुरग्गदेव वंद्दयं।
भरंत मीर अंगयं, निकट्ट तट्ट गंगयं। छं० १८६५
घटं सु घाव घुम्मयं, परे सु मीर झुम्मयं।
लगे तुरंग अंगयं, सँपूर लोह जंगयं। छं० १८९६
फिर्यौ सुचन्द तब्बयं, करन्न राज कव्वयं।
लगे न घाव गातयं, सहाय द्रुग्ग मातयं। छं० १८६७
कुंजर पंजर छिद्र करि, फिरि वरदायी चन्द।
तिन अन्दर जिद्धनि भ्रमत, ज्यों कन्दरा मुनिन्द। छं० १८९८
लरत चन्द वरदाइ, करत अच्छरि विरदावलि।
झरत कुसुम गयनंग, धरत गरईस मुंडावलि।
करत घाव कवि राव, पिसुन परि वथ्थ पछारत।
भरत पत्र कालिका, भूत बेताल उकारत।
जहं तहं ढरंत गज वाज नर, लोह लपटि पावक लहर।
मुष वाह वाह प्रथिराज कहि, कटक भट्ट किन्नौ कहर। छं० १८६६

चंद वरदायी युद्ध कर रहा था, अप्सरायें विरुदावली गा रही थीं, आकाश से पुष्प वर्षा हो रही थी, शिव अपने गले में मुंडमाला डाल रहे थे। कवि राव वार पर वार करता हुआ शत्रुओं को पछाड़ रहा था, काली अपना खप्पर भर रही थीं, भूत और बैताल चीत्कार कर रहे थे, जहाँ तहाँ हाथी, घोड़े और मनुष्य आग की लपटों की लहर उत्पन्न करनेवाले खड्ग की धार में पड़कर धराशायी हो रहे थे। भट्ट ने शत्रु सेना में कहर डाल दिया और उसका संग्राम देख पृथ्वीराज भी वाह वाह कर उठे।

इस स्थल पर पृथ्वीराज का वाह वाह कर उठना एक विशेष संकेत करता है। पृथ्वीराज उस युग के एक अद्वितीय योद्धा थे और उनका अनायास वाह वाह कर उठना सिद्ध करता है कि चंद ने अपूर्व पराक्रम, शौर्य और हस्तलाघवता का परिचय दिया होगा। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि उसने तत्कालीन रण प्रणाली की निश्चय ही शिक्षा पाई होगी अन्यथा ऐसी सफलता वह कैसे पा सकता था।

फिर :—
भयौ पाज कविराज, तंग रूक्यौ दल सायर।
कर कृपान झमकंत, कंपि थरहर कर काइर।

साज वाज रुधि भीज, किस्यौ छुर हर गति नाहर।
भूमि तुरंग परंत, मुष्ष जंपिय गिरिजा हर।
कविचन्द पयादौ होइ करि, नृप विरुदावलि आप पढ़ि।
विलहान कन्ह चहुआन कौ, बगसि भट्ट सिर नाइ चढ़ि। छं० १६०१

४. समय ६४, में वर्णित पृथ्वीराज और सुलतान गोरी युद्ध में भी रणभूमि में चंद की उपस्थिति का उल्लेख है।—

दिसं अग्ग बढ्ढी सु चढ्ढी पुकारै, लिये लक्करी सेन गोरी निकारै।
लिये लष्ष सेना सुरत्तान सद्धी, रनं राह बाराह बरदाइ बद्धी। छं० २६८
हँसै सब्ब सामन्त सम राज भट्टं, भई बारही फौज एकं सुवट्टं। छं० २६६

कवि महाराज के साथ युद्धों में अकेला ही न जाता था वरन् अपने वयस्क पुत्रों को भी निश्चय ही युद्धार्थ ले जाता था। इसी समय वाले युद्ध में हम पढ़ते हैं कि कवि का एक पुत्र मारा गया था :—

षेत परिग कविचंद सुत, परिग बंध धर धीर।
गहिय मद्द षिलची षरे, पसरत अठ्ठ अमीर। छं० २७७

आठ अमीरों के पसर करने पर......धीर का बन्धु (भाई या कुटुम्बी) गिरा और कवि चंद का पुत्र खेत रहा।

अतः हम देखते हैं कि कवि चंद कोरा कवि ही न था वरन् एक श्रेष्ठ सूरमा भी था। और फिर स्वतंत्र भारत की वीर सन्ध्या के उस सामन्त युग में जब कि वीरों का मरना और जाना तो हक था तथा युगों तक यश चलाने का उद्देश्य था श्रेष्ठ पुरुषों को अल्प जीवन की वांछना रहती थी :—

मरना जाना हक्क है, जुग्ग रहेगी गल्हां।
सा पुरुषों का जीवना, थोड़ा ही है भल्हां।

तथा कवि का अहर्निशि उन शूर सामन्तों का साथ रहता था जिनका युद्ध ही जीवन था और जो यह दृढ़ विश्वास अपने में जमा चुके थे कि यदि जीवित रहे तो लक्ष्मी का उपभोग करेंगे, मरने पर देव बालायें हमारा वरण कर लेंगी, यह शरीर तो क्षणभंगुर है फिर युद्ध भूमि में मरने की चिन्ता कैसी :—

जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिन्ता मरणे रणे।

कायरों और भीरुओं का नाम निशान मिटा देने की सत्ता वाले ऐसे वीरताजनीन महायुग में यद्यपि वीर बाने के अधिकारी केवल क्षत्रिय ही प्रतीत होते हैं, परन्तु अन्य विद्याओं के पंडित भट्ट चंद वरदायी का युद्ध विद्या विशारद होना कोई आश्चर्यजनक वस्तु नहीं है। युद्ध करना उस युग का घोष था और वीरगति पा अमरता (यश) प्राप्त करना सहज संदेश था। मृत्यु भय की वस्तु न थी। उस पार सुरांगणाओं को प्राप्त करने की आशा भी कम आकर्षक न रही होगी।

बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव : समय ६६ में वर्णित है कि महाराज पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण का समाचार पाकर चंद वरदायी को काँगड़ा दुर्ग के हाहुली हमीर को मना लाने के लिये भेजा था (छं० ६७०)। चंद ने हमीर को नाना प्रकार से समझाया (छं० ६७२-७११)। अन्त में दोनों जालन्धरी देवी के स्थान पर गये और देवी की स्तुति की (छं० ७१२-२५)। फिर हमीर ने कवि चंद को तो उसी मन्दिर में बन्द कर दिया और स्वयं शाह गोरी को सहायता देने चला गया (छं० ७२६)। जब पृथ्वीराज को पकड़ कर शाह ग़ज़नी ले गया तब वीरभद्र युद्ध की समाप्ति देख कर चंद के सम्मुख मन्दिर में प्रगट हुए और उसे विस्तार पूर्वक सारा समाचार बतलाया (छं० १६७१-६८)। यह दुःखद वार्ता सुनकर कवि मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा (छं० १७००)। वीरभद्र ने कवि की मूर्च्छा दूर कर उसे समझाया (छं० १७०१)। कवि ने कहा कि मैं राजा के बाल स्नेह तथा सामंतों के प्रेम के स्मरण के कारण व्याकुल हूँ (छं० १७०२)। वीरभद्र ने कहा कि अब चिंता न करके राजा का उद्धार करो। एक दिन सबका अन्त होता है, शोक न करके कर्तव्य का पालन करो (छं० १७०३-१०)। फिर कवि के सिर पर हाथ रख कर उसे मूल गुरु मंत्र दिया (छं० १७११-१३)। जिससे चंद का मोह दूर हुआ और उसका चित्त प्रसन्न हो गया (छं० १७१४)।

मृत्यु

[स० ६७] फिर उसने कहा कि हे वीर, मंदिर के बज्र कपाट बन्द हैं, मैं कैसे निकलूँ (छं० १)। यह सुनते ही घनघोर शब्द के साथ द्वार खुला और कवि मुक्त होकर दिल्ली चल दिया। (छं० २-१०)। दिल्ली की दुर्दशा देख कर चंद को अति दुःख हुआ। नगर निवासी रोदन करते हुए उससे मिले (छं० ११-५)। फिर कवि अपने घर पहुँचा और स्त्री द्वारा राजा का बंधन सुन कर दुखी हुआ (छं० १६-६)। राजा के उद्धार का निश्चय कर उसने योग धारण किया (छं० २०)। और यश की महिमा का बखान करते हुए अपनी स्त्री से यशस्वी होने की बात कही (छं० २२)। देवी स्तुति करके उसने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये विनती की (छं० २३-३६)। कोरी पुस्तक लेकर वह योगिनी के स्थान पर गया और दो मास आधे दिन (या ढाई मास) में उसने सात हज़ार रूपकों वाला पृथ्वीराज रासो काव्य रच डाला (छं० ४०-५०) तथा नगर में लौट कर अपने श्रेष्ठ पुत्र जल्ह को उसने पढ़ाया, और अपनी स्त्री को समझा बुझा कर सबसे बिदा ले नृप कार्य हेतु ग़ज़नी चल दिया। (छं० ५१-८५)। योगी वेष में अपनी धुन में लगा कवि क्षुधा पिपासा भूल कर ग़ज़नी के मार्ग पर चल रहा था (छं० ८६-६५), दुर्गम मार्ग की विषमता से उसका चित्त क्लांत हो गया तब उसने देवी की शरण ली; देवी ने उसे दर्शन देकर सहायता के लिये वरदान दिया। और वह क्रमशः ग़ज़नी जा पहुँचा तथा शाह के दरबार के द्वारपाल के सामने पहुँच गया। (छं० ६६-१४३)। द्वारपाल ने परिचय पूछा तो चंद ने अपनी नाना प्रकार की विद्यायें बताई जिन्हें सुनते ही वह कवि को पहिचान गया (छं० १७२-८६)। अपना भंडाफोड़ होते देखकर वह वहाँ से चला आया (छं० १८७)। दिन के तीसरे प्रहर में शाह गोरी हदफ़ खेलने के लिये अपने साज-बाज से निकला

(छं० १६८-२०१)। कवि ने एक ओर से ज़ोर से शाह की विरुदावली पढ़कर उसे हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया (छं० २०२-२०)। शाह ने कवि की ओर ध्यान दिया और परिचय पाने पर पास बुलाकर हाल पूछा। तथा उसे ठहराने का भार हबशी पीरोज खाँ को सौंपा (छं० २२१-३७)। कवि को भीम खत्री के यहाँ डेरा दिया गया वहाँ उसने अपनी देवी का हवन पूजन करके मनोवांछित वरदान पाया कि सुलतान पृथ्वीराज और तुम एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होगे (छं० २४२-७४)। दूसरे दिन प्रातःकाल दरबार में सुलतान ने कवि को बुलाने की इच्छा करके हुजाब खां को उसे लाने की आज्ञा दी जिसे सुनकर तत्तार खां ने मना किया और नाना प्रकार से समझाया बुझाया परन्तु शाह ने न माना और उसने कवि को दरबार में बुला लिया (छं० २६७-३३१)। कुशल नीतिज्ञ चंद ने शाह गोरी को अपनी बातचीत से प्रसन्न कर लिया और कहा कि पृथ्वीराज ने मुझे सात लोहे के तवे वेधने का अपना कौशल दिखाने का वचन दिया था; शाह ने कहा कि तुम्हारा नरेश तो अब नेत्र विहीन और क्षीण शरीरवाला हो गया है, अब उसमें वह पौरुष कहाँ; चंद ने कहा कि एक बार अपने राजा से पूछ तो लूँ; सुलतान सहमत हो गया तथा कवि को पृथ्वीराज के समीप जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु अपने सैनिकों को आदेश दिया कि कवि और वन्दी दस हाथ की दूरी पर रखे जावें। (छं० ३४७-७८)। चंद ने राजा को आशीर्वाद दिया परन्तु उन्होंने उसे सिर न झुकाया तब कवि ने उनकी विरुदावली पढ़ी जिसे सुनकर राजा ने उसे धिक्कारा, (छं० ३८८-६६)। कवि ने कहा कि यदि मैं भवितव्यता जानता तो काँगड़ा दुर्ग क्यों जाता (छं० ३६७)। दुःख के कारण कवि का गला भर आया परन्तु राजा ने उसे नमन न किया; तब चंद ने कहा कि हे संभरिधनी, मुझे जो वचन दिया था उसे पूरा करो, राजा ने कहा कि मुझमें उसे पूरा करने की शक्ति नहीं है; तब कवि ने कहा कि मैं शाह से बुलवाऊँगा आप वचन दीजिये; राजा शंका करने लगे परन्तु चंद ने उन्हें प्रबोधते हुए वचन ले लिया (छं० ४००-३०)। तब हुजाब कवि को लेकर सुलतान के पास आया। वह राजा और कवि की बातों का मर्म नहीं समझ सका था (छं० ४३१-३२)। शाह से कवि ने कहा कि यदि आप आज्ञा देना स्वीकार करें तो राजा अपने वचन पूरे करना स्वीकार करता है (छं० ४३५)। तत्तार खां ने चंद को डपटा कि क्या निरर्थक बात करता है (छं० ४३६)। चंद ने कहा कि यदि शाह वचन दे तो प्रत्यक्ष तमाशा देख लो; शाह आज्ञा देने के लिये सहमत हो गया; और लोहे के घड़ियाल सजाये गये; यह कौतुक देखने के लिये दर्शकों की अपार भीड़ इकट्ठी होने लगी; तत्तार खाँ ने कहा कि आज जुमेरात है, आज रहने दीजिये तथा रात्रि के अपने बुरे स्वप्न का हाल कह कर भी मना किया परन्तु सुलतान ने कहा कि मैं दिया हुआ वचन नहीं पलट सकता हूँ। यह सुनकर तत्तार खाँ खीझकर दरबार से उठ गया (छं० ४३७-५३)। शाह ने चंद से कहा कि मैं फ़रमान दूँगा, तुम राजा का कौशल दिखलाओ; यह सुनकर चंद पृथ्वीराज को लेकर रंगभूमि में आ गया (छं० ४५४-६०) उस समय निम्न संवत, मास, पक्ष और घड़ी थे :—

संवत अट्ठावन माघ मास, अनसित्त पष्ष दसमी सुभास।
दिन घटिय अंत पल आदि जात, तारक्क मूल त्रिव तिथ्थ पात। छं० ४६१

रंगभूमि में हुजाब खाँ ने पृथ्वीराज को कई कमानें दीं जो उसके खींचते ही टूट गईं, तब मीरा शाह की कमान दी गई; उनका खींचना देखकर विलन्दी खाँ ने कहा कि यदि घरियार फोड़ दिये तो शाह बहुत कुछ देगा (छं० ४६३-६८)। चंद ने कहा कि राजा की अपनी कमान दिलायी जाय फिर हुजाब खां ने वही धनुष दिया। उस समय तत्तार खाँ ने एक बार फिर यह तमाशा न देखने का अनुरोध किया (छं० ४६६-७३)। अपना धनुष पाकर राजा प्रसन्न हो गये, निसुरत खाँ ने उनके हाथ में तरकस भी दे दिया, राजा ने बाण संधाना तब चंद ने ज्ञानोपदेश करते हुए उन्हें दृढ़ता दी और नाना प्रकार से उत्कर्ष देकर समझाया की हे सम्भरिनरेश, सात को नहीं एक को बेधिये, और इसी एक बाण से अपना पराक्रम दिखाइये, बस आपकी कीर्ति युगों युगों तक चलेगी (छं० ४७५-५२४)। फिर कवि के गूढ़ संकेत से महाराज ने शाह के सामने अपना मुँह कर लिया, (छं० ५२५)।

गिरनारा लगि गौड, देस जीता बंगल थल।
लंका गढ़ जित्तयौ, समद जित्तौ उर सलियल।
हथिनावर जित्तयौ, सीम कंधारा बंधिय।
मथुरापुर जित्तयौ, एक मुष धार न संधिय।
प्रथिराज-सुनवि संभरिधनी, सुहिनैही मम जानि सुष।
इमि जंपै चंद बरद्दिया, सजि जालंधर देस मुष। छं० ५२५

पृथ्वीराज सन्नद्ध होकर खड़े हो गये, कवि ने डमरू बजाकर शाह से फ़रमान देने की प्रार्थना की और महाराज की विरुदावली पढ़नी प्रारम्भ की (छं० ५२७-३६)। प्रथम फ़रमान पर राजा ने बाण संधाना, दूसरे पर उसे निशाने पर अचल करके दृढ़ करते हुए कान तक खींच लिया, तीसरे फरमान का होना था कि राजा का शब्दवेधी बाण सुलतान के दाँत, जीभ, तालू, तोड़ता फोड़ता हुआ सिर के टुकड़े टुकड़े करके पार हो गया और उसका धड़ नीचे गिरा (छं० ५३७-४६)।

भयौ एक फुरमान, बान जोगिनिपुर संध्यौ।
सोइ सबद अरु बान, अग्र अविचल करि बंध्यौ।
भयौ बियौ फुरमान, तानि रष्यौ अवनंतरि।
तियौ भयौ अन भयौ, पर्‌यौ पति साहि धरंतरि।
लै दसन रसन तालू सघन, सीस फट्टि दह दिसि गवन।
सुरतान पर्‌यौ षां पुक्करै, भयौ चंद राजन मरन। छं० ५४६

शाह के मरते ही कवि चंद ने महाराज को योग द्वारा अपने प्राण त्यागने की सम्मति दी परन्तु उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की; उस समय गोरी दरबार में इन दोनों को मारने के लिए चारों ओर से म्लेच्छ दौड़ पड़े (छं० ५५०-७३)। तत्काल ही कवि चंद ने अपनी जटाओं से छुरी निकाल कर अपना सिर अलग कर दिया और छुरी महाराज

को दे दी जिससे उन्होंने भी अपना प्राणान्त कर लिया। यथा:—

कड्डि षान तत्तार, भट्ट करि टूक रज्ज सम।
मैं द्रिग देषत कहि भट्ट, दुष्ट देखियै काल श्रम।
धरौ साहि अब गोरि, बिनै साहाब चरन लगि।
चंद राज वर घेरि, लोह छुट्टै न अंग लगि।
छुरिका कविंद जट मभ्भ थी, कट्टि भट्ट कटि सीस अप।
ता पछै चंद वरदाय नै, दइय राज वर हथ्थ नृप। छं० ५५४
भूत वृंत्त मन वृत्तयौ, भवछित पढ़ि कविचंद।
गयौ अग्ग जीवंत करि, तजिय सुवर ग्रह दंद। छं० ५५५
मरन चंद वरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहुपंजलि असमान, सीस छोड़ी सु देवतनि।
मेच्छ अवद्धित धरनि, धरनि सब तीय सोइ सिग।
तिनहि तिनइ संजोति, जोति जोतिह संपालिग।
रासौ असंभ नव रस सरस, चंद छंद किय अमिय सम।
श्रृंगार वीर करुना विभछ, भय अद्भुत्त हसंत सम। छं० ५५६, स० ६७

इस प्रकार हिन्दू कुल शिरोमणि भट्ट कवि चंद वरदायी ने स्वामि धर्म के हेतु शत्रु सुलतान गोरी से महाराज पृथ्वीराज द्वारा बदला लिवाकर अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये......'इक थान जनम मरनह सु इक। चलहि किित्ति ससि लग्गि रव।' उनकी कीर्ति निःसन्देह सूर्य और चंद्र के साथ-साथ चलेगी। धन्य है कवि, भारत भूमि तुम जैसे सपूतों से सदैव गौरवान्वित रहेगी।—

दानव कुल छत्रीय नाम, ढुंढा रष्षस बर।
तिहि सु जोत प्रथिराज, सूर सामंत अस्ति भर।
तीह जोति कविचंद, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह ऊपन्न, इक्क दीहै समाय क्रम।
जथ्थ कथ्थ होइ निर्मये, जोग भोग राजन लहिय।
वज्रंग बाहु अरि दल मलन, तासु किित्ति चंदह कहिय। छं ६२ स० १

परन्तु पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में सी० वी० वैद्य अपनी पुस्तक हिस्ट्री आव मेडीवल हिंदू इंडिया' भाग ३, १९२६, अध्याय २०, 'शहाबुद्दीन ग़ोरी और पृथ्वीराज से उसका युद्ध' पृ० ३८५ पर लिखते हैं—

"परन्तु पृथ्वीराज का अपना जीवन अंत करने का रासो—वर्णित वृत्तांत उसकी अनैतिहासिक प्रकृति की चरम सीमा है। यह प्रतिशोध की प्रचलित गाथा है और एक कहानी है जो इंडस के दक्षिणी तट पर गक्खरों द्वारा मुहम्मद ग़ोरी की हत्या का सत्य विवरण विस्मृत हो जाने पर गढ़ ली गई होगी। पृथ्वीराज की मृत्यु, पानीपत में जनकोजी सिंधिया और भाऊसाहब की मृत्यु सदृश अभी तक रहस्य गर्भित बनी हुई है। ताज और तबक़ात के विवरण भिन्न-भिन्न हैं। दूसरे ग्रंथ में इतना मात्र उल्लेख है कि 'पिथौरा

अपने हाथी से उतर एक घोड़े पर चढ़ सरपट भागा परन्तु सरसुती के निकट पकड़ा गया और नरक भेज दिया गया।' ताज (पृ० २१५) में लिखा है कि 'अजमेर का राय बंदी बना लिया गया परन्तु उसे जीवन दान दिया गया। अजमेर पहुँचकर (जहाँ उसे ले जाया गया था) वह एक षड्यंत्र करता पकड़ा गया (जैसा कि संकेत लक्षित है) इसलिये उसके शिरोच्छेदन की आज्ञा दी गई और एक तलवार ने उस कमीने बंदी का शिर उसके शरीर से अलग कर दिया।' ऐसे प्रमाणों से यह निर्णय करना कठिन है कि पृथ्वीराज की मृत्यु किस प्रकार हुई परन्तु हम यह विश्वास करना चाहेंगे कि पृथ्वीराज सरस्वती पर बंदी हुए और तुरन्त ही उन्हें मार डाला गया जैसा कि तबक़ात में लिखा है।"

तथा फ़ारसी इतिहासकारों के मत को पुष्ट करने वाले डॉ० ए० बी० एम्० हबीबुल्ला अपनी पुस्तक 'दि फ़ाउंडेशन आव मुस्लिम रूल इन इंडिया', सितंबर १९४५, पृ० ५८-९ पर लिखते हैं—

"फ़रिश्ता के अनुसार अफ़ग़ान, खिलजी और ख़ुरासानी नायकों की अवहेलना के कारण युद्ध में पराजित होना पड़ा था और ग़ज़नी पहुँचकर उसने उनकी तीव्र निंदा की। दूसरे वर्ष वह एक लाख बीस हज़ार सवारों के साथ लौटा और एक बार फिर तराईं के मैदान में अपने प्रतिद्वंद्वी चौहान से भिड़ा। संभवतः अपनी तय्यारियाँ पूरी करने के लिये तथा शत्रु को असावधान रखने के लिये ही उसने क़िवामुलमुल्क को लाहौर से पृथ्वीराज के पास अपनी आधीनता स्वीकार कराने के लिये भेजा। आज्ञा के अनुसार ललकार और उपेक्षा गर्भित उत्तर आया। अंततः जब युद्ध का मोर्चा छिड़ा तब पृथ्वीराज की सेना में अति विश्वनीय सूत्र से (फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ५८) तीन लाख मनुष्य थे। मुईज़ुद्दीन ने अपनी सेना के पाँच भाग किये जिनमें से चार ने शत्रु को चारों ओर से युद्ध में संलग्न कर लिया। दिन ढलने पर रोक रक्खे गये पाँचवें भाग ने थके हुए शत्रु पर आक्रमण किया और इस युक्ति द्वारा संघर्ष का निर्णय कर डाला। खांडे राय (गोविंद राय) जिसने पिछले वर्ष के युद्ध में मुईज़ुद्दीन को आहत किया था, मारा गया और निकल भागने के प्रयत्न में पृथ्वीराज को सरसुती के निकट बंदी बना लिया गया (मिनहाज, पृ० १२०)। हसन निज़ामी के अनुसार उसे अजमेर ले जाया गया जहाँ कुछ समय के उपरांत विश्वासघात का अपराधी पाकर उसे मृत्यु दंड दिया गया (ताजुल-मआसिर, पत्र ४४ ब)। मिनहाज का कथन है कि उसे तुरंत मार डाला गया था। चंद वरदायी की निराधार कहानी कि पृथ्वीराज ने किस प्रकार नेत्र विहीन करके ग़ज़नी के बंदीगृह में रखे जाने पर भी उस की सहायता से अपनी मृत्यु से पूर्व मुईज़ुद्दीन का बध कर डाला—देखिये पृथ्वीराज रासौ, भाग ६ तथा राजदर्शिनी पत्र ४६ अ। उसके कुछ सिक्कों पर संस्कृत के अतिरिक्त 'हम्मीर' शब्द उत्कीर्ण मिलता है जो इस बात का प्रदर्शक है कि उसने मुईज़ुद्दीन की आधीनता स्वीकार कर ली थी (टामस क्रानिकल्स, पृ० १२, नं० १५)।

अस्तु देखते हैं कि इतिहासकारों को पृ० रा० वर्णित पृथ्वीराज और चंद की मृत्यु की घटना मान्य नहीं है। अन्य प्रमाणों के अभाव में हमें यह विवाद इसी स्थिति में छोड़ देने के लिये विवश होना पड़ता है।

अध्याय २

वस्तु-वर्णन

एक ओर रासो के प्रारंभ और लगभग अंत में स्पष्ट लिख दिया गया है कि इस ग्रंथ में सात हज़ार रूपक हैं। यथा:—

सत्त सहस नष सिष सरस, सकल आदि मुनि दिष्ष।
घट बढ मत कोऊ पढौ, मोहि दूसन न बसिष्ष। छं० ९० स० १

तथा

सहस सत्त रूपक सरस, गुन सुंदर बहु चित्त।
ले पुस्तक कवि चंद कौ, दिय माता बहु रित्त। छं० ५० स० ६७

परन्तु दूसरी ओर प्रकाशित रासो में (१६३०६) सोलह हजार तीन सौ छै छन्द पाये जाते हैं। इस प्रकार देखते हैं कि रासो का कलेवर सवा दो गुने से कुछ अधिक बढ़ गया है। परन्तु परवर्ती प्रक्षेपों का वर्तमान परिस्थिति में निश्चित निर्देश कर सकना कठिन ही नहीं वरन् कठिनतम कार्य है। हम यहाँ पर ये सारी संभावनायें और आलोचनायें छोड़ कर रासो के सम्पूर्ण वर्णनों पर विचार करेंगे।

काव्यों में विस्तृत विवरण दो रूपों में पाये जाते हैं। १, कवि द्वारा वस्तुवर्णन के रूप में और २, पात्र द्वारा भाव व्यंजना के रूप में। यदि कवि वस्तुवर्णन कुशलता से करने में समर्थ होता है तो इतिवृत्तात्मक अंश बहुत कुछ सरस हो जाता है। संस्कृत भाषा के कवियों को हम इस कला में निपुण पाते हैं।

रासो में फुटकर वर्णन का ताँता लगा हुआ है जिन्हें कवि ने वर्णन-विस्तार हेतु चुना है। इन में से कुछ का हम संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

व्यूह-वर्णन

कवि ने हिन्दू सेना को व्यूह बद्ध युद्ध करते हुए प्रदर्शित किया है। ऐसे कतिपय व्यूह देखिये:—

छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनौ सिर छत्रं।
चन्द्रव्यूह अंकुरिय, राज दुअ इहां इकत्रं।
एक अग्र हुसेन, बीय अग्रह पुंडीरं।
मद्धि भाग रघुवंश, राम उभौ वर वीरं।
सांषलौ सूर सारंग दे, उररि षान गोरीय मुष।
हथ नारि गोरि जंबूर घन, दुहूं बांह उभैति रुष। छं० ७१ स० २७

मुख्य छत्र अपने ऊपर धारण करके जैत सेनापति बना और उसने अपनी सेना को चन्द्रव्यूह में खड़ा किया। वहाँ सब राजे महाराजे एकत्रित हुए। एक सिरे पर हुसेन खाँ था और दूसरे सिरे पर पुंडीर था तथा बीच में वीर योद्धा रघुबंशी राम था। साँखल का

योद्धा और सारंग दे गोरी के सम्मुख पड़े (या गोरी के खानों पर सामने से आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत थे) वे दोनों सिरों पर बहुत सी छोटी और बड़ी तोपें लिये हुए क्रोधित खड़े थे।

नोटः—भारत में तोपों का सर्व प्रथम प्रयोग बाबर ने किया था। अस्तु, उपर्युक्त सम्पूर्ण छन्द या उसका 'हथनारि गोर जंबूर घन' वाला अंश प्रक्षिप्त है और यही सिद्धान्त रासो के इस प्रकार के अन्य वर्णनों पर भी लगता है।

इम निसि बीर कढ़िय समर, काल फन्द अरि कढ्ढि।
होत प्रात चित्रंग पहु, चक्राव्यूह रचि ठढ्ढि। छं० ७०
समर सिंह रावर, नरिंद कुंडल अरि घेरिय।
एक एक असवार, बीच बिच पाइक फेरिय।
मद सरक्क तिन अग्ग, बीच सिलखार सु भीरह।
गोरंधार विहार, सोर छुट्टै कर तीरह।
रंन उदै उदै बर अरुन हुअ, दुहू लोह कढ्ढी बिभर।
बल झकति लोह हिल्लोर, कमल हंस नचै सु सर। छं० ७१ स० ३१

शत्रु को मृत्यु के फंदों में डाले हुए उस समर क्षेत्र में वीरों की रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही चित्रंग प्रभु चक्रव्यूहाकार में अपनी सेना सजाये सुसज्जित खड़े थे। नरेन्द्र रावल सिंह ने शत्रु को कुंडलाकार में घेर रखा था। प्रति अश्वारोही सैनिक के बीच में एक पादातिक सैनिक था। उनके आगे मद झरनेवाले हाथी थे और उनके बीच में कवचधारी सैनिक थे। इन सबके बीच में आ जा सकने योग्य अग्न्यास्त्र छोड़नेवाले सैनिक थे। अरुणोदय के साथ दोनों दलों के सुभटों ने अपनी तलवारें खींच लीं और युद्धोदय हो गया। तलवार के वार उस युद्ध सर की हिलोरें थी जिसमें (वीर गति पाने वालों के) हंस (जीव) कमल सदृश खिल रहे थे।

देषि फौज सुरतान दल, मति मंडै रन साज।
मोर व्यूह मति मंडिकै, तब सज्जौ प्रथिराज। छं० २४६
आरध वेस नरिंद, छत्र वर मुक्त कहि गढ्ढै।
सबै सेन प्रथिराज, मोर व्यूहं रचि ढढ्ढै।
चोंच राव चामंड, जैत द्रिग बंधि प्रमानं।
नष पिंडी पुंडीर, सेन उब्भौ सुरतानं।
वर कंध बंध बंधी न्रिपति, पुंछि वीर कूरंभ रचि।
अरुनेव उदै उद्दित सुभर, महन रंभ दोउ दीन मचि। छं० २४७ स० ६४

सुलतान की सेना को रण के लिये दृढ़ देखकर पृथ्वीराज ने आपस में मंत्रणा करके अपनी सेना को मयूर व्यूह में सजाया।...... पृथ्वीराज की सारी सेना मयूर व्यूह रचकर खड़ी हो गयी। चोंच पर चामंड था, आँखों पर जैत प्रमार था, नख और पिंड प्रदेश पर सुलतान की सेना पर झपटने के लिये पुंडीर था; कूरंभ को पूँछ भाग में रख कर नृपति ने अपनी सेना को श्रेष्ठ बंधन से युक्त कर दिया था। अरुणोदय के साथ सुभटों

के उत्साह का उदय हुआ और दोनों 'दीनों' में भयंकर युद्ध मच गया।

तथा—

तब जद्दव कूरंभ, राय रावल प्रति बद्दिय।
चामर छत्र रषत्त, ग्रद्ध व्यूहं रचि गद्दिय।
एक पंष बलिभद्र, एक पंषह जामांनिय।
चुंच कंध पुंडीर, सैन संमुह सुरतानिय।
पग पिंड सिंघ आहुट्ठपति, पुंच्छ रच्चि मारू महन।
बामंग अंग प्रथिराज कै, सुभर जुद्ध मत्तौ गहन। छं० १००८, स० ६६

तब यादव कूरंभ ने रावल जी से कह कर चामर छत्र आदि लेकर अपनी सेना को गिद्धव्यूह में सजाया, एक पंख का भार बलभद्र पर और दूसरे का जाम यादव पर रखा गया। सुलतान की सेना से सामने मोर्चा लेने के लिये चोंच और कंधे पर पुंडीर किया गया। पैर और पिंड भाग पर आहुट्ठपति रावलसिंह जी को करके पूँछ पर मारू वीरों को किया और पृथ्वीराज को बाईं ओर करके सुभटों ने 'गहन' युद्ध करने की मंत्रणा की।

अब किंचित् महाभारत के चक्रव्यूह का उल्लेख देखिये जिसमें अभिमन्यु का वध हुआ था :—

तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत।
तत्रमध्यदिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः। १८
स चाभिमन्युर्वचनात् पितुर्ज्येष्ठस्य भारत।
विभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा। १९
स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान् सहस्रशः।
षट् सु वीरेषु संसक्तौ दौःशासनिवशं गतः। २०
सौभद्रः पृथ्वीपाल जहौ प्राणान् परन्तपः।
वयं परम संहृष्टा पांडवाः शोककर्शिताः। २१ अध्याय ३३ द्रोण पर्व।

और गरुड़व्यूह का वर्णन भी देखिये जो रासो के गिद्धव्यूह के वर्णन से मिलता जुलता है :—

गारुडंच महाव्यूह शान्तनवस्तदा।
पुत्राणां ते जयाकाङ्क्षी भीष्मः कुरु पितामह। २
गरुड़स्य स्वयं तुंडे पिता देवव्रतस्तव।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वताः। ३
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ।
त्रैगर्तैरथ कैकेयैवटिधानैश्च संयुगे। ४
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष।
मद्रकः सिन्धु सौवीरास्तथा पांचनदाश्चये। ५

अयद्रथेन सहिता ग्रीवायां सन्निवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सौदर्यैः सानुगर्वृतः । ६
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः । ७
मागधाश्च कलिङ्गाश्च दासेरक गणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थितां व्यूहस्य दंशिताः । ८
कारुषाश्च विकुंजाश्च मुण्डाः कुण्डीवृषास्तथा ।
बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः । ६ अध्याय ५६ भीष्मपर्व

महाभारत के भीष्मपर्व के आदि में सूचीव्यूह, अ० ५०-१ में क्रौंचारुण व्यूह, अ० ५६ में गरुड़ और अर्द्धचन्द्राकार व्यूह, अ० ६८ में मकर व्यूह, अ० ६६ में श्येन व्यूह, अ० ८२ में मंडल और बज्रव्यूह, अ० ८८ में श्रंगातक व्यूह, अ० १०० में सर्वतोभद्र व्यूह, और द्रोणपर्व के अ० ३३ में चक्रव्यूह आदि के वर्णन मिलते हैं। और भी कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र', परवर्ती नीति ग्रंथों और 'धनुर्वेद' में व्यूहों का विस्तृत विवरण पाया जाता है।

जहाँ तक अनुमान है रासोकार को व्यूह वर्णन प्रेरणा महाभारत से मिली है। दोनों के वर्णनों में बहुत कुछ समानता पाई जाती है। परन्तु ये वर्णन इस ढङ्ग के हैं कि हमें व्यूहों की स्थिति का पता नहीं लग पाता। केवल नाम देने और कतिपय निर्देश कर देने मात्र से सेना के आकार और प्रकार का पता लगा सकना सर्वथा असम्भव है। यह एक स्वतंत्र अनुसंधान का विषय है।

वैशम्पायन कृत 'नीति प्रकाशिका' अध्याय ६ श्लोक १० में कहा गया है कि व्यूह सहस्रों प्रकार होते हैं। कौटिल्य ने अपने 'अर्थ शास्त्र' भाग १० अ० ५ में शुद्ध और मिश्रित व्यूहों का वर्णन किया है; केवल पैदलों, अश्वारोहियों, रथों या हाथियों से बनाया गया व्यूह शुद्ध कहा गया है और इन सबके मेल से निर्मित व्यूह मिश्रित बताया गया है। रासो में जो कई प्रकार के व्यूह मिलते हैं इसी मिश्रित कोटि के हैं।

नगर वर्णन :—रासो में नाम तो अनेक नगरों के आये हैं परन्तु वर्णन उनमें से कुछ का ही किया गया है।

१. गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर देखिये। (स० ४२) :—

चंद द्वारिकापुरी से पट्टनपुर पहुँचा जो कैलाश के समान था और राज महल के समीप ही प्रबल सागर लहरा रहा था (छं० ५०)। बिजली सदृश कौंधनेवाले उस नगर में बड़ी भीड़ थी, वह व्यापार का बड़ा केन्द्र था, रत्न और मोतियों के वहाँ ढेर लगे हुए थे, नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे, हाथी घोड़ों की कोई गिनती न थी, नवों निधियाँ वहाँ उपस्थित थीं। (छं० ५१—५)।

२. पृथ्वीराज चौहान की दिल्ली भी देखते चलिये। (स० ५६) :—

यमुना तट पर निगम बोध स्थित राज उद्यान के नाना प्रकार के वृक्षों, फलों और फूलों की सूची देखिये :—

सुधं निगंम बोधयं, जमंन तट्ट सोधयं।
तहा सु बाग अच्छयं, बने सु गुल्ल अच्छयं। छं० ५
समीर तासु बासयं, फलं सु फूल रासयं।
बिरष्ष बेलि डंबरं, सुरंग पांन अंमरं। छं० ६
सु केसरं कुमं कुमं, मधुप्प वास तं भ्रमं।
अनार दाष पल्लवं, सु छत्र पत्ति ढिल्लणं। छं० ७
श्री षंड थंड बासयं, गुलाब फूल रासयं।
सु चंपकं कदंबयं, षजूरि भूरि अंबयं। छं० ८
सु अंननास ओरयं, सतूतयं जंभीरयं।
अषोट सेव दामयं, अबाल बेलि स्यामयं। छं० ९
सु श्रीफलं नरंगयं सवद स्वाद होतयं।
षवंत मोर बायकं, मनो सगीत गायकं। छं० १०
उपम्म बाग राजयं, मनो कि इन्द्र साजयं।
... ... । छं० ११

इंद्रपुरी सदृश चौहान की दिल्ली में भंवाल और नगाड़े बजते रहते हैं, राजा के पास तक पहुँचने के लिये दस पौरियाँ पार करनी पड़ती हैं, फिर सात खंडोंवाला राजप्रासाद है। दिल्ली के हाट में नाना प्रकार के मोती माणिक्य मिलते हैं :—

सुरि सुम्मिय अंब निसाण सुरं, पुर है प्रथिराज कि इंद्रपुरं।
प्रथमं दिखियं किखियं कहमं, अह पौरि प्रसाद घना सतमं। छं० २३
बन भूप अनेक अनेक भती, जिम षंधिय बंधन छत्रपती।
जिम अश्व चढे बरि अश्व खषं, बल श्रीप्रभु मंत्र अनेक भणं। छं० २४
इह पौरि सु सोभत पिष्ष बरं, नरनाह निसंकित दाम नरं।
भर इह सु लष्षनयं भरयं, धरि बस्त अमोल नयं नरयं। छं० २५
तिहि बीच महल्ल सतष्षनयं, लषि कोटि धजो सु कवी गनयं।
नर सागर तारंग युद्ध परे, परि राति सुरायन बादु षरे। छं० २६
पषि ल्लिलिय नीखिय मानकयं, रतनं जतनं मनि तेज कयं।
सुभ दिल्लिय हट्ट सु नैर मभै, करि दंत मिलंत गिरंत सभै। छं० ३०

३. कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचन्द का कन्नौज नगर (स० ६१) :—

प्रातःकाल पंग के नगाड़े क्या बज रहे थे मानो बादल गरज रहे थे (छं० ४०३) मार्ग पर चारों ओर पाँच योजन तक फैला हुआ नृपति का उद्यान था, जिसमें नारंगियाँ पुष्प और दाड़िम विकसित थे, लतायें हिल रही थीं, जूही, जंभीरी, सेव आदि से मह भरा हुआ था (छं० ४०६-२२)। नगर प्रवेश करते ही द्यूत शालायें मिलीं (छं० ४२४) और भिन्न पेशों वाले भाँति भाँति के स्त्री पुरुष मिलने लगे, वीणा आदि वाद्य बज रहे थे। वेश्यायें नाच रहीं थीं। (छं० ४२५-३४) नगर के हाट में रत्न, मोती, माणिक्य के हार, सोना, वस्त्र आदि सभी प्रकार की वस्तुओं का क्रय विक्रय हो रहा था; बजाज एक एक से

सुन्दर वस्त्र बेंच रहे थे, सोने के तारों द्वारा चित्र विचित्र कढ़ाई का काम किया जा रहा था; दसों दिशाओं से हाथी और घोड़े आ जा रहे थे (छं० ४३५-४५) चलते चलते 'हरिसिद्धि का मन्दिर आया (छं० ४४७)। फिर सामने ही राजमहल थे जहाँ हाथी घोड़े और नाना प्रकार के पशु दिखाई पड़ रहे थे, नगाड़े तथा अन्य विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे और मनुष्यों की खासी भीड़-भाड़ थी (छं० ४४६) तथा अस्सी लाख की विशाल वाहिनी पंग के आदेशों का पालन करने के लिये तत्पर थी (छं० ४५२)।

४. और यह सुलतान गोरी की गज़नी है। (स० ६७)

है गै अमृत सुमृत गति, नठ नाटक बहु बार।
इह चरित्त पिष्षन नयन, गयौ चंद दरबार। छं० १४३
हयं गय अनेक भंति जोध जोध राजयं।
म्लेच्छ दुष्ट तेज ताम ता कुरान साजयं।
पढंत मीर पारसी गिताब सामि अम्भयं।
नमंत चंद बीध चंद पीर सीस नामयं। छं० १४४
निमाज तंत मंत सीर बीत राज राजयं।
बहंत गाज बारुनी सुनारनो व साजयं।
केसूत हड्ड हड्ड कंक सेर के मसुष्कयं।
अलष्षि सोइ लष्षयं विचार बोल लष्षियं। छं० १४५
सुवै न चंद बेद लइ बइ तं कथं ममो।
करोरि कोक उग्र मेक दिष्षयो विसिंमयो।
कमाव बीर पंचवौ सुटंक जो अधारयौ।
समान मेछ दिष्षियै सुजम्म तैसु धारयौ। छं० १४६
विपास बीर चातुरी सुढारह हड्ड सोहयं।
बिभास नम्भ सामि की सुमिद्धि मोह मोहयं।
कटंत ते सुनार है मतार तार राजही।
मयूष सांझ प्रात की किरन्न भान छाजही। छं० १४७
अमग्ग हड्ड अट्टनं सुरंग सुभ्र सोभयं।
भ्रिहं भ्रिहं सुदिष्षियं तुरंग तंग लोभयं। छं० १४८

यमुना का विशेष वर्णन वैष्णव प्रचारकों के समय से प्रारम्भ हुआ था। गोपियाँ यमुना तट पर जल भरने जाया करती थीं। यमुना तट के कुंजों में कृष्ण की रास क्रीडा की चर्चा भागवत् में मिलती है। बस तभी से पनघट का वर्णन साहित्य में प्रारम्भ होता है। क्रमशः इस पनघट वर्णन ने शृंगारिक वर्णन के अंतर्गत एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया और इतना ही नहीं उसका उल्लेख एक आवश्यक अंग माना जाने लगा।

पनघट वर्णन

रासोकार ने भी पनघट की चर्चा की है। पट्टनपुर और वहाँ की सुन्दरियों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि अप्सरायें जैसी बालायें, कामदेव के रथ से उतर कर सरोवर

में अपने घड़े भर रही थीं।

भरे सु कुंभयं घनं, ढुका सु पानि गंगमं।
असा अनेक कुंडनं,..................... । छं० ५६
सरोवरं समानयं, परीस रंभ जानयं।
बतक्क सोर संमयं, अनेक हंस क्रम्मयं। छं० ५७
भरै सु नीर कुंभयं,..................... ।
अरूढ काम रथ्थयं, सु उत्तरी समथ्थयं। छं० ५८ स० ६१

कन्नौज में गंगातट पर जल भरने के लिये गई जयचंद की दासी के रूप सौन्दर्य आदि को लेकर (छं० १२३-७४ स० ६१) विनोदपूर्ण वर्णन मिलता है। इस स्थल के दो छंद पर्याप्त होंगे—

द्रिग चंचल चंचल तरुनि, चितवत चित्त हरंति।
कंचन कलस झकोरि कै, सुंदरि नीर भरंति। छं० १२८ तथा—

दरस त्रियन दिल्ली नृपति, खोवन घट घर हथ्थ।
बर घुंघट छुटि पट्ट गौ, सटपट परि मनमथ्थ।
सटपट परि मनमथ्थ, भेद् वच कुच तट भेदं।
कर कंप जल द्रगन, लगि संभावत भेदं।
सिथल सुगति लजि भगति, गलत पुंडरि तन सरसी।
निकट निजल घट तजै, मुहर मुहरं पति दरसी। छं० १७०

सूफ़ी कवि जायसी ने भी अपने पदमावत में पनघट का सुन्दर वर्णन किया है। बूढ़े आचार्य केशवदास ने पनघट पर ही अपने सफ़ेद बालों को कोसा था। रीतिकालीन कवियों ने अपनी काफ़ी प्रतिभा इस पनघट के दृश्य-दर्शन में खर्च की है।

रासो में कई विवाहों का उल्लेख है परन्तु दो विवाह इंछिनि ब्याह कथा, समय १४ और प्रिथा ब्याह वर्णन, समय २१, विस्तृत रूप से दो प्रस्तावों में वर्णित हैं। इनमें

विवाह वर्णन

हमें ब्राह्मण द्वारा लग्न भेजने से लेकर, तिलक, विवाह हेतु यात्रा और बारात, अगवानी, तोरण कलश आदि, द्वारचार, जनवासा, कन्या का शृंगार, मंडप, मंगल गीत, गाँठ बंधन, गणेश, नवग्रह, कुल देवता, अग्नि ब्राह्मण आदि के पूजन, शास्त्रोच्चार, कन्यादान, भाँवरी, ज्योनार, दान, दहेज, विदाई, और वधू का नख-शिख विस्तार पूर्वक पढ़ने को मिलते हैं। ये विवाह साधारण व्यक्तियों के नहीं वरन् तत्कालीन युग के प्रतिनिधि सम्राटों पृथ्वीराज और चित्तौड़ नरेश रावल समर सिंह (सामंतसिंह) के हैं।

अतएव उनमें हमें राजसी ठाट बाट और अनुकूल दान दहेज का परिचय मिलता है।

भारतीय विवाह प्रथा, हिन्दू जीवन से मृत्यु पर्यन्त होने वाले सोलह संस्कारों में से एक है। अस्तु विवाह हिन्दू जीवन का एक संस्कार है जिसकी नींव बड़ी गहराई तक जाती है। पाश्चात्य देशों के विवाह और हिन्दू विवाह में महान अंतर है। दोनों की भावनायें भिन्न हैं और दोनों के आधार पृथक हैं। प्राचीन काल में निर्धारित किये हुए हिन्दू जीवन

के इन संस्कारों की रीतियों में बहुत कम परिवर्तन हुआ है और विवाह संस्कार के विषय में भी लगभग यही बात कही जा सकती है। रासो के विवाहों की रीतियों में हमें कोई नवीनता नहीं मिलेगी परन्तु इनके आधार पर सामाजिक इतिहास लेखक कुछ नयी सामग्री अवश्य पायेगा।

शृङ्गार वर्णन के अंतर्गत स्नान से लेकर पुष्पों वस्त्रों और आभूषणों द्वारा अलंकरण का लम्बा विवरण दिया गया है, जिसके अंतर्गत नख शिख भी है :—

तजि मज्जन सजि सिंगार अली, प्रगटी जनु कंद्रप जोति कली।
सु संवारिय केस सुरंग सुगंध, तिनं वर गुंथि प्रसून सु बंधि। छं० ६८
तिनं उपमा सु कहै कवि सुद्ध, लग्यौ ससि राह अधंमय जुद्ध।
चले अलकें अलि चंचल घट्ट, लगी जनु कालिय नागिनि पट्ट। छं० ६९
अस्यौ ससि फूल धर्‌यौ मनि बद्ध, उग्यौ गुरदेव किधौं निसि अद्ध।
बियं उपमा कबरी सु अलप्प, चढ़े मनु सेर ससी लय अप्प। छं० ७०
सीमंति सुमुत्तिय बंधि संवारि, तिनं उपमा बरनी सु विचारि।
परी रवि होइ मयूषन तार, भए मनु सिद्ध उधातम धार। छं० ७१
बनी कबरी वर पुत्तरि बाम, अध्यातम पाठि पढावत काम।
धर्‌यौ वर बाल तिलक्क मिलाइ, मनों ससि रोहिनि आनि मिलाइ। छं० ७२
मनो ससि दीपक तीय समान, तिनं सिरलाइ लिलाट सुभांन।
हुती दुतियं बरनो कवि चंद, दुर्‌यौ छवि देषि सरद्द कौ इंद। छं० ७३
बनी वर भौंह सु बंकिय एह, मनो धनु काम धरं बिन जेह।
कहौं वर नासिक ओपम एह, सुकाम भवन्न कि दीपक तेह। छं० ७४
सु देषि कह्यौ कविरूप अभ्यास, मनो उठई मकरंद सुवास।
सजे पट दून अभूषन बाल, मनो कवि काम करी रति भाल। छं० ६१
सु लज्ज सु संकर सों मन अंध, मनो अरनांमद अग्ग सुबंध।
धर्‌यौ तन कौरव वस्त्र कुंवारि, मंडी जनु संभ मनंमथ रारि। छं० ६२ स० २१

तोरण पर वर की वंदना करके अप्सराओं सदृश चन्द्रमुखियों ने मोतियों के अक्षत डाले :—

तोरन कर वर वंदतह, मुत्तिय अच्छित डारि।
मनों चंद त्रिय भेष धरि, अच्छित अच्छ उछार। छं० २५
वंदे विंद कलस्य तोरन वरं तुंगे रसं मन्मथं।
सुष्षं साजति सक्र चक्रति कला निग्राहनुग्राहनी।
जां निज्जै त्रैलोक उम्भति पुरे वंदे कवि उपम्मे।
दुअ पासं दुअ नारि दिष्षत बरं मनो नैर वर दिष्ष्यं। छं० २६ स० १३

नगर की स्त्रियाँ बारात की शोभा देख रही थीं :—

नृपति काज अलि दिषहि, अलिन दिष्षत नर नारिय।
जनु मिलत राज प्रथिराज, नयर विय बांह पसारिय।

जनु वन्ही गुरुदेव, सत्ति स्वाहा हाहा हुअ।
जै जै जै उच्चार. राज रवनी रंजत रुअ।
पंमार सलष बंद्त बलिय, दिषिष कला मनमथ्थ पिथ।
दिष्षै सु त्रिया दुरि दुरि नयन, मनहु तरंग कि काम तिथ। छं० ९२, स० १४

तथाः—

चढ़ी घर जाहिन बाल विसाल, रही लघुवेस लगी चित्रसाल।
तनं सुध बालय अंचल लेहिं, चषं चपला कुलटा गति केहि। छं० ५१...६४ स० ४

यह बारात देखनेवाली प्रथा भारत की एक प्राचीन परिपाटी है।

भाँवरी फिरते समय नाना प्रकार के दान दिये गये :—

एक फिरत भांवरी, साठि मेवात गांम दिय।
दुतीय फिरत भांवरी, दुरद दस एक अग्गरिय।
त्रितिय फिरत भांवरी, दयौ संभरि उदक्क कर।
चौथी भांवरि फिरत, द्रब्य दीनौ अनत बर।
चहुआन चतुठ चावद्दिसा, हिंदवान वर भांन विधि।
गुन रूप सहज लच्छी सुबर, सहज वीर बंधी जु सिधि। छं० १५६, स० २१

लग्न साधने के बाद ज्योनार हुई, उसके व्यंजनों का वर्णन देखियेः—

लगन साधि आराधि नृप, पुनि ज्यौंनारि जिवाइ।
छ रस अंत अंत न लहौं, क्यों कवि कहै बनाइ। छं० ८८
अगनि पक्क घृत पक्क कर, दूध पक्क बेपार।
तेल पक्क लषियै नहीं, जहं तहं लूट अमार। छं० ८९
रहस्यं रहस्यं अनेकंत भंती, घनं जोति मिष्टांन पान प्रभती।
उडंदं पुडंदं गुडदंति आंसं, किते अंन प्रंनं किते वीर भासं।
किते स्वाद स्वादं प्रथी देव वंछै, तहां केवलं अनि आवत्त गंछै।
मरे एक बारं भ्रितं षंड मद्धी, दिषे स्वाद राजं चले देव बंधी। छं० ९०, स० १४

स० १४, इंच्छिनी व्याह, १६४ छंदों में वर्णित है और स० २१, प्रिथा व्याह, २१४ छंदों में। प्रिथा के विवाह वर्णन में कवि ने कुछ नवीन वर्णनों का और समावेश कर दिया है जिससे इस समय का आकार बड़ा हो गया है। परन्तु तत्कालीन वैवाहिक रीतियों के अध्ययन के लिये दोनों समय आवश्यक हैं। इन वर्णनों को हम विवाह का पूरा चित्र कहना उपयुक्त समझते हैं।

युद्धोत्साह और युद्ध वर्णन

रासो में ये वर्णन एक बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। ये विस्तृत तो हैं ही परन्तु साथ ही वर्णन कुशलता के कारण अपना प्रभाव डालने में भी पूर्ण समर्थ हैं। इनकी चर्चा आगे भाव व्यंजना प्रकरण में वीर और रौद्र रसों के अंतर्गत की गई है। इन वर्णनों में कवि की प्रतिभा और उत्साह के हमें दर्शन होते हैं।

रासो में छोटे-मोटे उत्सवों का उल्लेख कहीं-कहीं मिलता है, परन्तु उन्हें विशेष महत्व नहीं दिया गया है। होलिकोत्सव और दीपोत्सव के विस्तृत वर्णन मात्र ही नहीं वरन् संभवतः इनकी महत्ता दिखाने के लिये इन्हें एक-एक स्वतंत्र समय के रूप में रख दिया गया है, यद्यपि इनका आकार क्रमशः २२ और ३५ छंदों का है। इन वर्णनों में मौलिकता भी है। देखिये :—

उत्सव वर्णन

१. होली कथा, स० २२—

एक दिन महाराज पृथ्वीराज ने कवि चंद से कहा कि फाल्गुन मास में स्त्री और पुरुष लज्जा क्यों छोड़ देते हैं। बालक, युवक और वृद्ध टोलियाँ बाँध कर निकलते हैं, तथा माता पिता गुरु की मर्यादा का विचार न करके अश्लील बकते हैं। चारों वर्ण परस्पर मिल कर क्रीड़ा करते हैं, खाद्य, अखाद्य खाते हैं; हे वाणी के बरदायी कविचंद, इन सबका कारण कहो (छं० १—४)। चंद ने कहा कि चौहान कुल में ढुंढा नाम का राक्षस था उसकी छोटी बहिन का नाम ढुंढिका था जिसके यौवन काल में ही सुखों की संध्या हो गयी थी (छं० ५)। ढुंढा वाराणसी गया है और सौ वर्षों से तपस्या कर रहा है, यह सुन कर ढुंढिका भाई की सहायता करने पहुँची (छं० ६)। ढुंढा ने अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया जिससे पृथ्वीराज चौहान तथा अन्य शूर सामंत पैदा हुए (छं० ७)। परन्तु ढुंढिका वहाँ सौ वर्ष तक बैठी रही, केवल वायु सेवन करते हुए उसने तपस्या की, उसका वर्णन सुनो (छं० ८)। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर पार्वती जी ने उससे वरदान माँगने के लिये कहा (छं० ९)। ढुंढिका ने कहा है कि मुझे यह वर दीजिये कि मैं बालक, युवक और वृद्ध सबको भक्षण कर सकूँ (छं० १०)। यह सुन कर पार्वती जी स्तम्भित रह गयीं और उन्होंने शिव जी से जाकर कहा कि ऐसा उपाय बताइये कि ढुंढका को वर तो मिल जाय परन्तु वह मनुष्य भक्षण न कर सके (छं० ११)। शिव जी ने कहा कि उससे कह दो कि जो विह्वल और व्याकुल करने वाली वाणी में असुरों की भाँति अनंत प्रकार के शब्द करें उन्हें छोड़ कर वह सब का अन्त कर डाले (छं० १३)। इधर शिव जी ने पवन को आज्ञा दी कि पृथ्वी पर यह समाचार फैला दो कि लोग फाल्गुन मास में तीन दिन तक विचित्र रंग ढंग कर दें, गदहों पर चढ़ चढ़कर हँसें, सिर पर सूप रखें, टोलियाँ बाँध कर गलियों में घूमें और हो हो शब्द करें (छं० १३-५)। ढुंढिका ने आकर देखा कि लोग पागलों की भाँति गदहों पर चढ़े हुए हो हो कर रहे हैं, अश्लील बक रहे हैं, सिन्धू राग बजाते हुए 'नवला' गीत गा रहीं हैं, हो हो करके हा हा करते हुए वे विपरीत आचरण कर रहे हैं, घर घर में आग जला रखी है, वे धूल और राख उछाल रहे हैं, तथा नाचते गाते हुए परस्पर 'काँख' दिखाते हैं। फाल्गुन मास में वायु ने इस प्रकार का भाव पैदा कर दिया, लाज तो चली गयी परन्तु विघ्न भी टल गया (छं० १६-२०)। इस प्रकार कष्ट दूर हुआ। सबके हृदय का द्वन्द हटा, चैत्र का महीना आया और घर घर में आनन्द छा गया (छं० २१)। जाड़ा बीतने और बसंत के आगमन पर लोग होलिका पर्व की पूजा और ढुंढा देवी की स्तुति करते हैं :—

गतेषु चार समये, वसंते च समागमे।
होलिका प्रत्र पूज्यन्ते, ढुंढा देवी नमोस्तुते। छं० २१

नोट :—

प्रसंगवश 'भविष्य पुराण' का एक आख्यान आवश्यक होगा। इसमें वर्णित है कि युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से फाल्गुन मास के होलिकोत्सव के विषय में जिज्ञासा प्रदर्शित की। कृष्ण ने कहा कि कृतयुग के महाराज रघु ने पुरवासियों द्वारा बालकों को कष्ट देने वाली ढौंढा राक्षसी के उपद्रव सुनकर गुरु वसिष्ठ से उसके बारे में पूछा था जिसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि :—

श्रृणु राजन्परं गुह्यं यन्नाख्यातं मया क्वचित्। १३
ढौंढा नामेति विख्याता राक्षसी मालिनः सुता।
तयाचाराधिताः शंभुरुग्रेण तपसापुरा। १४
प्रीतस्तामाह भगवान्वरंवरय सुव्रते।
यत्ते मनोऽभिलषितं तद्दास्य विचारितम्। १५
ढौंढा प्राह महादेवं यदि तुष्टः स्वयं मम।
न च बध्या सुरादीनां मनुजानां च शंकर। १६
मा कुरुत्वं त्रिलोकेशः शस्त्रास्त्राणां तथैव च।
शीतोष्ण वर्षा समये दिवा रात्रौ बहिर्गृहे। १७
अभयं सर्वदा मेस्यात्त्वत्प्रसादान्महेश्वर।

शंकर उवाच— एवमस्त्वित्यथोक्त्वां पुनः प्रोवाचशूलभृत्। १८
उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयं ते संभविष्यति।
ऋता वृतौ महाभागे मा व्यथां हृदये कृथाः। १९
एवं दत्वा वरं तस्या भगवान् भगनेत्रहा।
स्वप्ने लब्धोयथार्थोर्थस्तत्रैवांतर धीयत। २०
एवं लब्ध वरासातु राक्षसी कामरूपिणी।
नित्यं पीडयते बालान्संस्मृत्य हर भाषितम्। २१
अडाडयेति गृह्णाति सिद्ध मंत्रं कुढुंविनी।
गृहेषु तेन सा लोकेह्यडाडेत्यभिधीयते। २२
एतत्ते सर्वमाख्यातं ढौंढायाश्चरितं मया।
सांप्रतं कथयिष्यामि येनोपायेन हन्यते। २३
अद्य पंचदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप।
शीतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातः ग्रीष्मो भविष्यति। २४
अभय प्रदानं लोकानां दीयतां पुरुषोत्तम।
यथाद्या शंकिता लोका रमंति च हसंति च। २५
दारुजानि च खंडानि गृहीत्वा समरोत्सुकाः।
योधारवविनिर्यान्तु शिशवः संप्रहर्षिताः। २६

संचयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत्
तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मंत्र विस्तरैः २७
ततः किलकिला शब्दैस्ताल शब्दैर्मनोहरैः
तमग्निं त्रिपरिक्रम्य गायंतु च हसंतु च २८
जल्पंतु स्वेच्छया लोकानिः शंकायस्ययन्मतम्
तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता २९
अदृष्ट घातैर्डिंभानां राक्षसी क्षयमेष्यति
तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा सनृपः . . . ३० अ० १३२

काशी विश्वनाथ पंचांगम् के होलिकादाह प्रकरण में ढुंढा राक्षसी का निम्न वर्णन मिलता है :—

तत्र पूजा देश कालौ संकीर्त्य मम सकुटुम्बस्य ढुंढा राक्षसी पीडा परिहारार्थं होलिका पूजनमहं करिष्ये......दीपयाम्यद्य ते घोरे चितिरासस सत्तमे। हिताय सर्व जगतां प्रीतयो पार्वती पते......होलिकायाम् प्रज्वलितायाम्।

तमग्निं त्रिपरिक्रम्य शब्दैर्लिंग भगांकितैः।
तेन शब्देन सा पापा राक्षसी तृप्तिमाप्नुयात्। १

२. दीप मालिका कथा, स० २३

फिर महाराज पृथ्वीराज ने कहा कि हे कवि कार्तिक मास में होनेवाले दीपमालिका पर्व का संपूर्ण वृतांत कहो (छं० १)। चन्द ने कहा कि हे नरेन्द्र, आपने मुझसे कथा पूछी है इसलिये मैं दीपमालिका की उत्पत्ति आपको सुनाऊँगा (छं० २)। सतयुग में सत्यव्रत राजा का पुत्र सोमेश्वर एक प्रबल सम्राट था, मनुष्य और देवता उसके सेवक थे (छं० ३)। अनेक ऋद्धियाँ देनेवाला वह प्रजा का अनन्य पालक था। चारों वर्णों और चारों आश्रमों को वह दान-मान से परितुष्ट रखता था (छं० ४)। नदी और सागर सम्मेलन के तट पर उसकी सत्यावती नामकी नगरी थी जिसमें ज्ञानी-ध्यानी मनुष्यों के मन को भी लुभानेवाले विचित्र बाग बगीचे थे (छं० ५)। वहाँ सत्याश्रम नामक एक बुद्धिमान वेदपाठी ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्री बड़ी चतुर थी और ये दोनों छल कपट से दूर थे (छं० ६)। एक दिन उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि हम लोगों को छोड़कर और कोई यहाँ पर दुखी नहीं है, सब अनन्त सुख भोग रहे हैं और बिना सुखों के हमारा जीवन व्यर्थ है, यदि पास में धन न हो तो मनुष्य का जीवन वृथा है, इसलिए या तो उसके लिए उद्योग करो अथवा बनवास लेना उचित होगा (छं० ७-८)। सत्याश्रम ने उसका आदर किया और गम्भीरता पूर्वक चित्त में विचारा कि दरिद्रता रूपी पाप शरीर में लगने के कारण यह जीवन और जन्म व्यर्थ प्रतीत होता है (छं ९)। अर्थ विहीन होने पर दीन बन कर याचना करने से अरण्य सेवन अच्छा है और माँगने से मृत्यु ही अच्छी है :—

सपनो अथ्थ विहूनौ, सेवे रने न भाषयौ दीनौ।
मंगह मरन मह गोन, बीकि नेम न मानि कित। छं० १०

यह सोचते हुए उसने कुछ अनुष्ठान करने का विचार किया। सत्याश्रम ने सात

वर्ष तक विष्णु की सेवा की, विष्णु ने ब्रह्मा की उपासना करने के लिए कहा, ब्रह्मा ने शिव के पास प्रेरित किया और शिव ने माया का वरण करने के लिए कहा (छं० ११-२)। तीन वर्षों, तीन मासों और तीन घड़ियों में मायादेवी तुष्ट हुईं और उन्होंने उसे चौदहों रत्न दिये (छं० १३)। तब सत्याश्रम ने सोचा कि ऋद्धि और सिद्धि से क्या होता है, नरपतियों के स्वामी की सेवा करनी चाहिये (छं० १४)। प्रकाश से बुद्धि बढ़ती है और अन्धकार से नष्ट होती है, बुद्धि को दीपक दिखाओ, दीपक बुझ जाने से लक्ष्मी भी चली जाती हैं (छं० १५)। किससे प्रार्थना की जाय, किससे याचना की जाय, और किसको किसको सिर झुकाया जाय (छं० १६)। ब्राह्मण की बुद्धि में लक्ष्मी का वास समझ में आ गया। कार्तिक की अमावस्था सोमवार को वे आती हैं और उनका निवास जलनिधि है परन्तु इस तिथि को वे वहाँ से निकलती हैं और जहाँ अगर कपूर दीपक आदि जलते हैं वहाँ जाती हैं (छं० १७-८)। ब्राह्मण को राजा की सेवा करते हुए आठ वर्ष बीत गये तब राजा ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिये कहा (छं० १६)। और ब्राह्मण ने दीप दान करने के उद्देश्य से कहा कि कार्तिक की अमावस्या के सिवा उसके और कोई दीपक न जलावे (छं० २०)। राजा ने कहा कि हे विप्रवर यह तुमने क्या माँगा; ब्राह्मण पिछली बुद्धिवाले होते हैं, अन्न, धन, ग्राम आदि माँगते, अस्तु अब अपने घर पधारो (छं० २२)। अपने घर आकर वह ब्राह्मण एक मन तेल और सवा सेर रुई इकट्ठा करने का प्रबन्ध करने लगा (छं० २३)। फिर कल्पवृक्ष सदृश कार्तिक को आया देख कर ब्राह्मण को प्रसन्नता हुई और उसने जाकर राजा से कहा कि मुझे जो कुछ देने के लिए कहा था वह दो (छं० २४)। तब सम्राट ने घोषणा करवा दी कि उक्त तिथि को कोई दीपक न जलावे, आज्ञा भंग करने वाले को प्राणदण्ड होगा (छं० २५)। लक्ष्मी समुद्र से निकलीं और उस नगर में आईं। चारों ओर अंधकार फैला हुआ था। फिर उन्होंने उन दीपकों की ओर देखा (छं० २६)। ब्राह्मण के घर में प्रकाश देखकर वे वहाँ आईं और अहर्निशि वहीं निवास करने का विचार प्रकट किया (छं० २७)। लक्ष्मी को देख कर उस घर का निवासी दरिद्र भागने लगा; तब ब्राह्मण ने कहा कि लक्ष्मी तेरा क्या कर सकती हैं; यद्यपि तूने मेरे चित्त को सदैव दुचित्ता रखा है लेकिन तेरा पालन मेरे घर में ही हुआ है, इसलिये तू इसी स्थान पर रह (छं० २८) और मेरे साथ तूने नदी, पवन, पर्वत आदि सभी जगह निर्वाह किया, रात दिन साथ नहीं छोड़ा तो अब क्यों जाता है (छं० २६)। तब लक्ष्मी प्रसन्न हुईं और उन्होंने रौरव कलंक को काट दिया और ब्राह्मण से कहा कि सात जन्म तक मैं तेरे घर में निवास करूँगी (छं० ३०)। तब तो दरिद्र भाग चला और ब्राह्मण ने उसे दौड़ कर पकड़ा, परन्तु दरिद्र ने कहा कि मुझे जाने दो और वचन दिया कि फिर कभी मैं इस पुरी में नहीं आऊँगा (छं० ३१-२)। ब्राह्मण को लक्ष्मी की कृपा से हाथी घोड़े और अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ। तभी से इस पृथ्वी पर दीपमालिका का प्रचार हुआ (छं० ३३)। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में दीपमालिका का मान है, खान पान का इसे प्रमाण समझो और मनोरथों को पूर्ण करनेवाला जानो (छं० ३४)। राजा पृथ्वीराज के पूछने पर चंद ने प्रसन्नता से इसका वर्णन किया, दीप-

मालिका आने पर घर-घर में मंगलदायक साज बाज होने लगते हैं (छं० ३५)।

ज्योनार वर्णन

स० ६३ में कवि को ज्योनार वर्णन करने का और अपनी जानकारी दिखाने का अवसर मिल गया है। यह बहुत ही विधिवत है। देखिये :—

नूत नूत पल्लव पषारि, पत्रावलि मंडिय।
धोय तोय बिन छिद्र, धरे दोना ढिग ढंढिय।
कोविद उदार उज्जल दुजन, परुषन को आरम्भ किय।
भरि छाब काब कवि को कहै, प्रथम अनूपम पूप लिय। छं० ७१

पुओं से परुस प्रारम्भ हुई और पूड़ियाँ तथा नाना प्रकार की मिठाइयाँ परोसी जाने लगीं (छं० ७२)।

पूप अनूप परूस पुनि, पुरी सुष्षपुरि मेलि।
ललित लुचई लै चले, ऊँच रती बिधि बेलि। छं० ७२
भरि पीठि भीतर लोन सिलाय, कचौरिय मेलि चले दुजराय।
धरे निसराज सिषा जनु फेरि, धरे ढिग बातर भाँवर हेरि। छं० ७३
सुते वर घेवर पैसल पागि, लषे चष फेरि गई उर आगि।
जलेबनि जेब कहै कबि कौन, महा मधु माठ मिठावन मौन। छं० ७४..

और नाना प्रकार की चबाने योग्य वस्तुयें आईं :—

भांति भांति चरवन रहै, चना चिरुंजी चारु।
चौंरा चाहत चेन चष, मिलि मृगमदु घन सार। छं० ८१
करे कसेरू करहरी, गोंद गटा ठट ठानि।
पय के बहु घटि कर करे, कर कपूर पुट वानि।

इसके बाद तरकारियाँ और दूध में बनी हुई भाँति-भाँति की अनेक चीज़ें परोसी गईं (छं० ८२—९३)—

धरौ षीर औटलौ करी खीर ताकी, बियो जंपियै किं सुधादासि जाकी।
महा सद्दि घृत आलि बूरा मिनाई, सबै सूर सामंत जो मै सराई। छं० ८२
...सुर सँधानौ सुर जनौ, धर्‍यौ दही सों सांधि।
फूल फूल फल के जिते, तिते करे कर रांधि। छं० ९३

नाना प्रकार के शाक और दालें भी आईं (छं० ९४—१०२)—

सरसों सूआ के साक जिते, गिरिराज हरायिय रांधि तिते।
बथुआ बड़ साग बबोल बने, बरबाय बिरंग सवाद सने। छं० ९४...

भोजन प्रारम्भ हुआ और जब थोड़ी क्षुधा शेष रही तब 'पछावर' की परुस हुई (छं० १०३—६)—

जेंइ अघाने जठर पर, जलपिय फेरति पानि।
तुच्छ छुधा पाछें रही, तब आई पछावरि वानि। छं० १०३

अनेक युक्तियों से भोजन के लिये बनाई हुई वस्तुओं की सूची काफ़ी लम्बी है। और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि यह साधारण वर्ग की ज्योनार नहीं था वरन् महाराज पृथ्वीराज की 'गोठ' थी। रासो के कलेवर तथा अन्य वर्णन देखते हुए ज्योनार की वस्तुओं के वर्णन को हम लम्बा नहीं कह सकते। राजसी ठाट बाट के औचित्य का निर्वाह करते हुए इसका वर्णन किया गया है। एक और विशेषता इस वर्णन की यह है कि यह अपने युग के खान-पान पर अच्छा प्रकाश डालता है।

स्त्री भेद वर्णन स्त्री भेद के अन्तर्गत स्त्रियों के चार भेद पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी प्रसिद्ध हैं। रासोकार ने इनका वर्णन स० २५ में इस प्रकार किया है :—

तब दुजराज सु उच्चरिय, रे संभरि पुर इंद।
पदमिनि, हस्तिनि चित्रिनो, संषिन संषन नंद। छं० १२४
रक्त जीभ मृग अंक सुलष्छिन वान इहि।
बचन सु अमृत धार रती रति जांनि जिहि।
इला सील कुच बाल छुती छामोदरी।
इन गुन नृप भय चारु सु चार जु सुन्दरी। छं० १२५

हे राजन्, जिसकी जिह्वा लाल हो, मृग सदृश अंक (सुवर्ण कांतियुक्त शरीर वाली) हो, वचनों में अमृत घोलनेवाली हो, रति सम हो, कांतिवान हो, शीलवती हो, जिसके स्तन साधारण और उदर सम हो, इन्हीं गुणोंवाली स्त्री रूपवती कही गयी है, वैसे सुन्दरियों के चार भेद हैं :—

कुटिल केस पदमिनी, चक्र ह्रस्तन तन सोभा।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल, गंध पदुम आलोभा।
सुर समूह हंसी प्रमांन, निद्रा तुछ जपै।
अलप वाद मित काम, रत्तअभया भय कपै।
धीरज्ज छिमा लच्छिन सहज, असन बसन चतुरग गति।
आवंक लोइ लगै सहज, कांम बांन भूलंत रति। छं० १२६

पद्मिनी के केस कुटिल होते हैं, चक्राकार स्तन उसके शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसकी स्निग्ध दंत पंक्ति अनुपम होती है, उसके शरीर से कमल की सी सुगंधि आती है, 'हंसी' सदृश उसका स्वर होता है, अल्प निद्रा और अल्प भाषण उसके स्वभाव हैं, प्रवाद और काम क्रीड़ा से कम प्रीति रखती है, तथा रति के भय से काँप उठती है, धैर्य और क्षमा उसके सहज गुण होते हैं, सब प्रकार के भोजनों और वस्त्रों से रुचि रखती है, उसकी स्वाभाविक दृष्टि कामियों को वक्र लगती है और वे उससे रति विलास की कामना करने लगते हैं।

उर्द्ध केस हस्तिनी, वक्र अस्तन दसंन दुति।
मधुर गंध गरनाट, भुल्लि भ्रम कांम वाम रति।

गूढ़ सबद मन जा, बिषान रंगन छामोदरि।
चित्र नयन चंचल, बिसाल बरनी जंमोदरि।
छिन रुदय हसय बिहसैय लहय, बसि चित्तह चित पुत्तलिय।
नीर्वाय मान जानै बहुत, कंत चित्त जाइ न कलिय। छं० १२७

हस्तिनी उसे कहते हैं जिसके केस ऊर्द्ध हों, स्तन वक्र हों, दाँत चमकीले हों, जिसके शरीर से 'गरनाट' सदृश मधुर गंध आती हो, काम क्रीड़ा के भ्रम में भुलानेवाली हो, जिसके वचन गूढ़ होते हों, जिसका उदर सम हो, जिसके नेत्र विशाल और चंचल हों तथा देखनेवालों को चित्रित कर देने में समर्थ हों, जो क्षण में रोने और क्षण में हँसने वाली हो, परन्तु पति की प्रेम मूर्ति सदैव चित्त में धारण करनेवाली और अति मान करनेवाली हो।

दीर्घ केस चित्रिणी, चित्त हरनी चन्द्रानन।
गंध अग चित्र निंद्र, कोक शब्दन उच्चारन।
सील नील लज्जा प्रमांन, रत्ति भय भै घन मारै।
अलस नयन रस बलित, कलित कल बोल उचारै।
धीरज्ज छिपा छबि लोक करि, अवलोकन गुन औसरै।
विस्तीर्ण मंत्र मोहन पढ़े, चित्त वित्त कंतहु हरै। छं० १२८

चित्रिनी के केश लम्बे होते हैं, और वह चन्द्रवदनी चित्त चुरानेवाली होती है। उसके शरीर से कस्तूरी की गंध आती है। कोयल सदृश उसका स्वर होता है। शील और लज्जा का उसे प्रमाण समझो। रति से भयभीत होकर भी उससे घनी प्रीति रखती है। उसके नेत्र आलस्य से भरे होकर भी रस पूर्ण होते हैं, उसके वचन सुन्दर होते हैं तथा उसके धैर्य, क्षमा और शोभा देख कर और कुछ देखने की इच्छा नहीं होती। मोहिनी मंत्र की वह पंडिता अपने स्वामी का चित्त हरण किये रहती है।

अलप केस कुच मूल, थूल दंती उच्चारन।
थूल उदर लंकीस थूल क्रिस लंगध बारन।
घोर निद्र तन तास, अलप रसना रस छंडै।
अलप सील गंभीर, सबद कलहंतर मंडै।
आचार भ्रंन नहिं सुद्ध मन, विधि विचार बिभचार घन।
आसंष संष संषिनि गुननि, सुख्ख नाह पावै न तन। ं० १२९

शंखिनी वह है जिसके केश और स्तन छोटे, दाँत मोटे और उच्चारण भद्दा हो। जिसकी कटि और उदर स्थूल हों, तथा जिसके शरीर से हाथी की सी दुर्गन्धि आती हो। घोर निद्रा के वश में रहनेवाली जो कदाचित् ही सुन्दर वचन कहनेवाली हो, शील और गंभीरता रहित सदैव कलहकारिणी हो, धर्म आचार रहित हो, जिसका मन शुद्ध न हो, जिसमें विधि विचार न हो तथा जो घना व्यभिचार करनेवाली हो। ऐसी अवगुणों की खान शंखिनी स्त्री का पति उससे सुख नहीं पाता।

जयदेव ने अपनी 'रतिमंजरी' में इन चारों प्रकार की स्त्रियों का वर्णन इस प्रकार किया है :—

भवति कमल नेत्रा नासिका क्षुद्र रन्ध्रा।
अविरल कुच युग्मा दीर्घ केशी कृशांगी।
मृदु वचन सुशीला नृत्य गीतानुरक्ता।
सकल तनु सुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा। ४
भवति रति रसाज्ञा नाति दीर्घा न खर्वा।
तिलक कुसुम सुनासा, स्निधदेहोत्पलाक्षी।
कठिन घन कुचाढ्या सुन्दरी सा सुशीला।
सकल गुण विचित्रा चित्रिणी चित्रवक्त्रा। ५
दीर्घा सुदीर्घ नयना वर सुन्दरी या।
कामोपभोग रसिका गुणशीलयुक्ता।
रेखात्रयेण च विभूषित कंठ देशा।
सम्भोग केलि रसिका किल शंखिनी सा। ६
स्थूलाधरा स्थूल नितम्बभागा।
स्थूलांगुली स्थूलकुचा सुशीला।
कामोत्सुका गाढ़रतिप्रियाया।
नितान्त भोक्त्री करिणी मता सा। ७
पद्मिनी पद्मगन्धा च मीनगन्धा च चित्रिणी।
शङ्खिनी क्षारगन्धा च मदगन्धा च हस्तिनी। ८

इन दोनों प्रकारों के वर्णनों को पढ़कर इनका भेद स्पष्ट है। रतिमंजरीकार ने जिस क्रम से अपना बर्णन रखा है रासोकार ने उस प्रकार नहीं रखा। दोनों के पद्मिनी वर्णन में काफ़ी समता है। परन्तु हस्तिनी को रासोकार ने अपने वर्णन में दूसरा स्थान दिया है जब कि जयदेव ने उसे चौथा; और वर्णन की दृष्टि से रासोकार की शंखिनी लगभग जयदेव की हस्तिनी है। इस विषमता का एक ही उत्तर है कि ये वर्णन रासोकार की इस विषय की अज्ञता के प्रदर्शक हैं, अन्यथा ऐसी भद्दी भूलें क्यों होतीं। साथ ही इसकी भी संभावना है कि ये स्थल किसी प्रक्षेपकर्ता के अधूरे ज्ञान के नमूने हैं।

षट् ऋतु बारह-मास वर्णन

रासो के स० २५ में वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन (छं० ३५-४५) में मिलता है। पृथ्वीराज देवगिरि की राजकुमारी शशिवृता के सौंदर्य का समाचार नट द्वारा पाकर (छं० २६-७) उस पर मुग्ध हो गये और उसकी प्राप्ति हेतु आतुर हो उठे। चारों ओर मोर बोल रहे थे, पपीहे की रट सुनाई पड़ती थी, पृथ्वी नील वर्ण हो गयी थी, और घनी बूंदें बरसती थीं; पृथ्वीराज यादव-कुमारी का स्मरण करते थे (छं० ३५)। राजा काम के बाण से पीड़ित थे, उन्हें नींद नहीं आती थी (छं० ४१)। वर्षा के बाद शरद् ऋतु आई, आकाश में पतंगें उड़ने लगीं (छं० ४३), कीचड़ सूख गया सरितायें उतर गईं, बल्लरियाँ कुम्हिला गईं, बादलों

से रहित पृथ्वी वैसी ही सूनी हो गई जैसे पति के बिना स्त्री हो जाती है (छं० ४४)। निर्मल कलाओं से चन्द्रोदय होने लगा, चमेली के पुष्पों की सुगन्धि वायु में आने लगी, फल और फूल पृथ्वी पर गिरने लगे; शरद ऋतु का आगमन जानकर राजा का हृदय उल्लास पूर्ण हो गया और वे देवगिरि चलने के लिये प्रस्तुत हुए (छं० ४५)।

अस्तु देखते हैं कि प्रसंगवशात् इस स्थल पर वर्षा और शरद् ऋतु की चर्चा की गयी है। पुरुष विरह हेतुक ये वर्णन ऋतु विशेष के सूचक कहे जा सकते हैं।

षट् ऋतुओं का ललित वर्णन स० ६१ (छं ६-७२) में विस्तृत रूप से किया गया है। पृथ्वीराज कन्नौज जाने के लिए प्रस्तुत हैं और यह वसंत ऋतु है। वे इंच्छिनी के महल में उसकी सम्मति जानने के लिये गये। इंच्छिनी ने वसंत ऋतु का आगमन और अपना विरह वर्णन करते हुए कहा कि इस ऋतु में मेरे पास रहिये। और पृथ्वीराज रुक गये। फिर पृथ्वीराज प्रत्येक ऋतु में एक एक रानी के यहाँ गये और उस रानी ने ऋतु का वर्णन और अपना विरह बताते हुए उन्हें अपने पास रोक लिया। इस प्रकार पृथ्वीराज ने छहो ऋतुयें छै रानियों के पास बिताई।

कथा के इस प्रसंग में षट् ऋतुओं का रोचक वर्णन पढ़ने को मिलता है। यद्यपि उद्दीपन को लेकर ही इसकी रचना हुई है परन्तु यह रासोकार के ऋतु विषयक अनुभव, निरीक्षण और वर्णन कौशल का परिचय देता है। प्रत्येक ऋतु का रूप खड़ा करने में कवि ने भरसक चेष्टा की है। इन वर्णनों से हम उदाहरण स्वरूप एक एक ऋतु विषयक एक एक छंद उद्धृत करते हैं :—

वसंत :— मवरि अंब फुल्लिग, कदंब रयनी दिघ दीसं।
भवंर भाव भुल्लै, भ्रमंत मकरंदव सीसं।
बहत बात उज्जलति, मौर अति विरह अगनि किय।
कुहकुहंत कल कंठ, पत्र राषस रति अग्गिय।
पय लग्गि प्रानपति बीनवौं, नाह नेह मुक्त चित धरहु।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटै, कंत बसंत न गम करहु। छं० १

ग्रीष्म :— दीरघ दिन निस हीन, छीन जलधर वैसंनर।
चक्रवाक चित मुदित, उदित रवि थकित पंथ नर।
चलत पवन पावक, समान परसत सु ताप मन।
सुक्त सरोवर मचत, कीच तलफंत मीन तन।
दीसंत दिगम्बर सम सुरत, तरु लतान गय पत्त झरि।
अक्कुलं दीह संपति विपति, कंत गमन ग्रीषम न करि। छं० १७

वर्षा :— अब्दे बद्दल मत्त मत्त विषया दामिन्य दामायते।
दादूरं दर मोर सोर सरिसा पप्पीह चीहायते।
श्रंगारीय वसुंधरा मलिलता लीला समुद्रायते।
जामिन्या सम बापुरो विसरता पावस्स पंथानते। छं० ७

शरद :— पिष्षि रयन झिमलिय, फूल फूलंत भमर घर।
श्रवन सबद नहिं सुभै, हंस कुरलंत मान सर।
कवल कद्रव विगसंत, तिनह हिमकर परजारै।
तुमहि चलत परदेस, नहीं कोइ सरन उबारै।
निग्रहन रत्त भर पञ्च सर, अरि अनंग अंगै वहै।
जौ कंत गवन सरदै कहै, तौ बिरहिनि लिष ह्वै दहै। छं० ४१

हेमंत :— छिन्नं बासुर सीत दिघ्घ निसया सीतं जनेतं बने।
सेज सज्जर बानया बनितया आनंग आलिंगने।
यों बाला तरुनी वियोग पतनं नलिनी हिमंते हिमं।
मा मुक्के हिमवंत मन्त गमने प्रमदा निरालम्बनं। छं० ४६

शिशिर :— रोमाली बन नीर निद्ध चरयो गिरिदंग नारायने।
पल्लय पीन कुचानि जानि मलया फुंकार झुंकारए।
सिसिरै सर्वरि वारुनी च विरहा माहद मुब्बारए।
मा कंते म्रिगवद्ध मध्य गमने किं दैव उच्चारए। छं० ५२
आगम फाग अवंत, कंत सुनि मित्त सनेही।
सीत अन्त तप तुच्छ, होइ आनन्द सब ग्रेही।
नर नारी दिन रैनि, मैन मदमाते डुल्लैं।
सकुच न हिय छिन एक, वचन मनमाने बुल्लैं।
सुनौ कंत सुभ चिंत करि, रयनि गवन किम कीजइय।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, रिति ससिहर किम जीजइय। छं० ६३

इन वर्णनों में हमें ऋतुओं की विशेषता के साथ बराबर इसका उल्लेख मिलता है कि संयोगिनें क्यों सुखी हैं और वियोगिनें क्यों दुखी। पृथ्वीराज की प्रत्येक रानी उन्हें अपना वियोग कष्ट सूचित कर रति के लिये आह्वान करती है और ऋतु का वर्णन तो एक मिस मात्र है। षट ऋतुओं का समूचा प्रकरण कामोद्दीपन भावना से ओत प्रोत है। काम-विरह का ताप और काम-पीड़ा का चित्रण करने में कवि को सफलता मिली है।

नख, शिख और शृङ्गार वर्णन

रासो के निम्न स्थलों पर हमें रूप सौन्दर्य के चित्र मिलते हैं। स० १२ (छं० २४८—५६) उस स्त्री का रूप जिसके द्वारा कैमास पर वशीकरण किया गया था। स० १४ (छं० ४८—६०) इंच्छिनी का शृंगार (छं० १३७—६२) इंच्छिनी का नख शिख। स० १६ (छं० ४—६) पुंडीरी दाहिमी का रूप। स० २१ (छं० ६८—६२) पृथा का शृंगार और नख शिख। स० ३२ (छं० ६—२०) इन्द्रावती का रूप। स० ३६ (छं० १५४—६० और १६१—६४) हंसावती की अवस्था, स्वाभाविक सौन्दर्य और शृंगार। स० ४५ (छं० ७६—८६, १०४—२०) अप्सराओं का सौन्दर्य। स० ४७ (छं० ६०—७३) संयोगिता का नख शिख; स० ६१ (छं० २५१४—२२), स० ६२ (छं० ५१—६४, १०४—२६ और १५३—६६) संयोगिता के अगों का सौन्दर्य, शृंगार और नख शिख। स० ६६ (छं० २००—१६)

संयोगिता का नख शिख।

निर्दिष्ट स्थलों में इंच्छिनी, पृथा, शशिवृता, इन्द्रावती, हंसावती, और संयोगिता के रूप का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। और इनमें भी संयोगिता के नख शिख का वर्णन चार स्थलों पर है। एक तो विवाह से पूर्व का उसकी वयःसंधि का दिग्दर्शन, दूसरा दिल्ली में विवाह से पूर्व उसका श्रृंगार, तीसरा विवाह के पश्चात् इंच्छिनी के सुए द्वारा (यह सबसे बड़ा और कुशल है) और चौथा कविचंद द्वारा गुरुराम की जिज्ञासा पर। इन प्रकरणों में स्नान से वर्णन प्रारम्भ किया गया है कि किस प्रकार केश आदि धोए गये, शरीर पर उबटन लगाया गया और फिर किस प्रकार फूलों से बेणी गूँथी गई और मोती बाँधे गये; माथे पर किससे बिंदी लगाई गई, किन अंगों में कौन कौन से आभूषण पहिने गये और कैसे वस्त्र धारण किये गये तथा अन्त में पैरों में जावक लगाया गया। किसी किसी स्थल पर स्वतंत्र रूप से नख शिख का वर्णन मिलता है अन्यथा वह श्रृंगार वर्णन के साथ मिश्रित है। इन वर्णनों में प्रायः प्रसिद्ध उपमानों का ही प्रयोग कवि ने किया है परन्तु कहीं कहीं अप्रसिद्ध उपमान भी आ गये हैं, जिनकी चर्चा आगे अलंकार प्रकरण में की गई है। इंच्छिनी के स्नान काल की शोभा का वर्णन देखिये :—

> बिन वस्तर रंग सुरंग रसी, सुहलै जनु साष मदन्न कसी।
> लव लोनह लोइ उवट्टन कौं, कि वस्यौ मनु कांम सुपट्टन कौं।
> द्रिग फुल्लिय कांम विरांमन के, उघरै मकरंद उदै दिन के।
> बिन कंचुकि अंग सुरंग धरी, सुकली जनु चंपक हेम भरी। छं० ९
> सुभरी लट चंचल नीर भरी, तिनकी उपमा कवि दिव्य धरी।
> तिन सौं लगि के जल बुन्द ढरै, सु छुटै मनु तारक राह करै।
> जु कछू उपमा उपजी दुसरी, मनों नाटय स्याम सुमुत्ति धरी।
> अति चचल ह्वै बिछुरे मुष तें, मनों राह ससी सिसुता बषतें। छं० ५२
> सुमनों सति स्वात असुत्त ह्यं, तिनकी उपमा वरनी न हियं।
> कबहूँ गहि सुक्क सिषंड वरें, मनों नंषत केसन सिंदु सरैं।
> जु सितं सित नीर लिलाट धसैं, सु मनो भिदि सोमहि गंग लसैं।
> जल में भिजि भूँह कला दुसरी, सु लरै मनु बाल अलीन परी।
> बुधि चित्त उपंम कितीक कहौं, जिन पाट अभै अत बेद लहौं। छं० ५१...
> करि मज्जन अगोछि तन, धूप वासि बहु अंग।
> मनो देह जनु नेह फुलि, हेम मोज जनु गंग। छं० ५३...स० १४

हंसावती के श्रृंगार वर्णन में कवि ने नख शिख का भी साथ ही वर्णन किया है तथा अंग प्रत्यंगों की शोभा के लिये कई कई उपमानों की छटा भी देखते ही बनती है।

> कियं सुरंग मज्जनं, नराच छंद रंजनं।
> सुगंध केस पासयौ, बिहथ्थ हथ्थ भासयौ। छं० १६१...
> जु केस मुत्ति संजुरे, ससी सराह दो जरे।
> मनीस बाल साच ज्यौं, कि कन्ह कालि नाचि ज्यौं। छं० १६२...

उपम्म नैन ऐन सी, मनौं कि मोन मैन सी।
कवी निसंक जानयौ, उपम्म चित्त मानयौ। छं० १६७...
रुलंत मुत्ति सोभई, उपम्म अत्ति लोभई।
अभ्रत्त तार विच्छुरी, दु चंद अग्ग निक्करी। छं० १६९...
रतन्न बिंब जानयं, सु चंद बी अमानयं।
त्रिवल्लि ग्रीव सोभई, जु पोति: पुंज लोभई। छं० १७१...
उपम्म ईस कुच्चयौ, अनंग रीति रुच्चयौ।
रोमंग तुच्छ राजयं, उपम्मता विराजयं। छं० १७४
उरज्ज पत्र काम कौ, लिषै जोवंत बाम कौ।
कटी अलप्पता भई, मनो कि रिद्धि रंकई। छं० १७५
कि सीम द्वै नृपं रही, तुला कि दंडिका कही।
रुलंत छुद्र घंटिका, सदंत सद्द दंडिका। छं० १७६
जु जेहरी जराइ की, घुरंत नद्द पाइ की।
नितंब अद्ध तुंबियं, प्रवाल रंग षुब्बियं। छं० १७७
कि काम रथ्थ चक्र ए, चलंत एड़ि वक्र ए।
उलट्टि रंभ जंघनं, करी सु नास पिंडनं। छं० १७८...स० ३६

अब अपने समय की अनन्य रूपवती और सर्वांग सुन्दरी संयोगिता का शृंगार-मिश्रित नख शिख भी देख लीजिये :—

संजोग जोग जप संत तंठ, आनंद गान जिन करिय कंठ।
बर रचिय केस बिचि सुमन पंति, बिच धरे जमन जल गंग कंति। छं० १०६
सिर मद्धि सीस फूलह सुभास, किय जमन अद्ध सुन गिरि प्रकास।
कुंडली मंद बंदन सु चंद, कसतूर ढिगह घनसार बिंद। छं० १०७
वर किरन भोम परसत प्रकार, मनों ग्रसित राह ससि सहित तार।
ओपमा भ्रूअ बेनी विसाल, नागिनी असित सित सहित बाल। छं० १०८..
सोभै कुरंग दंतन सु पंति, कदलीन केत कै मुत्ति कंति।
कै तरु सु बिंब लुंबी सुरंग, ससि भूम गंग जल सिंचि अनंग। छं० ११२..
कप्पोल कला कल नगज सीप, दुहुं परी होइ मयुषं समीप।
त्रिवली सुरंग विच पीत जोति, ओपम्म सुबर तित मझ्झि होत। छं० ११५...
नग माल बाल कुच पर विसाल, ओपम्म चंद चिंती सु साल।
चिंतिय सु बैर बर सिंभ पुब्ब, मनमथ्थ ऊक मुष फुंकि उद्ध। छं० ११८
निक्करि सुसाल उर बली भास, ओपम्म चन्द्र बरदाय तास।
बिय पंति सोम रचि अति सुलाह, ससि गहन चढत जनु उपति राह। छं० ११९
सोभै त्रिमाल कुच तट तरंग, जनु तिथ्थराज मँडलौ अनंग।
सोभै सुरंग कुंचकी बाम, जनु संभरेह पट कुटी काम। छं० १२०

राजीव रोम राजै सु कंति, उत्तरन चढन पप्पील पंति।
चित लोभ भरिग ग्रहराज जंति, दिठि राह मेर परसरि सुपंति। छं० १२१...
कटि घाट निठ्ठ मुठ्ठय समाय, मनु ग्रहन धनुष मनमथ्थ राय।
नितंब गरूअ द्रुघान कि काम, उदै अस्त भानु जनु पंति बाम। छं० १२३
बर जंघ रंभ विपरीत तंभ, कै पिंडि दिष्ट मनमंथ संभि।
ओपम्म बीय कविचंद सादि, मनमथ्थ हथ्थ उत्तरि षरादि। छं० १२४, स० ६२

कमर की उपमा सिंह की कटि से देते हुए फ़ारसी कवियों की भाँति कवि कहता है कि (पृथा की) कटि इतनी पतली है कि मुट्ठी में आ जाती है :—

वर लंक्किय लंकय सिंघ कित्तौ, वर मुठ्ठिय माँहि समाइ तित्तौ। छं० ८१ स० ६२

फिर एक स्थान पर वह संयोगिता की कटि की सूक्ष्मता मुट्ठी में आनेवाली कह कर उसे कामदेव के धनुष को पकड़ने का स्थल कहता है :—

कटि घाट निठ्ठ मुठ्ठिय समाइ, मनु ग्रहन धनुष मनमथ्थ राय। छं० १२३ स० २१

जाँघों की उपमा कदली और हाथी की सूँड से देकर उन्हें कामदेव द्वारा खरादा गया कहा गया है। गले की उपमा शंख और कपोत से देते हुए गले की त्रिवली की उपमा कृष्ण के पांचजन्य पकड़ने से दी गयी है।

कल ग्रीव त्रिवलिलय रेख बनं, सु ग्रह्यौ मनु कन्हर पंचजनं। छं० ७६, स० २१

नखों की उपमा स्वर्ण जटित मोतियों, फूलों पर पड़ी हुई जल की बूँदों, दर्पण की द्युति आदि से दी गयी है :—

...बरने नख की उपमा कविता सुजरे जनु कुंदन मुत्तियता। छं० ८६
जल बुंद पुहप्प कि द्रप्पन दुत्ति, कि तारक तेज कि हीर प्रभृति। छं० ८७, स० २१

उन्नत उरोजों के कारण उठी हुई कंचुकी को देखकर कवि को प्रतीत होता है कि मानों कामदेव जीवन दान के लिये त्रिपुरारि के पास जा रहा है :—

...उठी पट कुट्टिय कंचुकि बाम, कि जीयन को त्रिपुरं चलि काम। छं० ८० स० २१

रूप और सौन्दर्य के निर्दिष्ट स्थलों पर यद्यपि कई बार नख शिख का वर्णन किया गया है परन्तु नवीन उपमा देकर, भिन्न छंदों में वर्णन कर तथा वस्त्राभूषणों के अलंकरण मिश्रित करके कवि ने उनकी सरसता नहीं भंग होने दी है। फिर साथ ही इन वर्णनों के अन्तर्गत कुछ चमत्कारिक रूपक भी रख दिये गये हैं। एक स्थल देखिये :—

ऐरापति भय मानि, इंद गज बाग प्रहारं।
उर संजोगि रस मद्धि, रह्यौ दब्बि करत विहारं।
कुच उच्च जनु प्रगटि, उकसि कुंभस्थल आइय।
तिहि ऊपर स्यामता, दान सोभा दरसाइय।
विधिना निमंत मिट्टत कवन, कीर कहत सुनि इंच्छिनिय।
मनमथ्थ समय प्रथिराज कर, करज कोस अंकुस बनिय। छं० १५१, स०६२

वयःसंधि अवस्था स्त्रियों के जीवन और सौन्दर्य विकास की एक अप्रतिम घटना और एक अद्भुत व्यापार है। रासोकार ने संयोगिता की वयःसंधि का वर्णन इस प्रकार

किया है :—

तिहि तन बन ऋप सौं कहै, दुहु अंतर सिसु बेस।
जुब्बन तन उद्दिम कियौ, बालप्पन घटनेस। छं० ३७
बालप्पन तन मध्य वय, गादरि तन चष नूर।
ज्यों बसंत तरु पल्लवन, इछ उट्ठन अंकूर। छं० ३८
वय बालत्तन मध्य इम, प्रगट किसोर किसोर।
राकापति गोधूर कह, आभा उद्दित जोर। छं० ३९
ज्यों दिन रत्तिय संध गुन, ज्यों उष्णह हिम संधि।
ज्यों सिस जुब्बन अंकुरिय, कछु जुब्बन गुन बंधि। छं० ४०
ज्यों करकादिक मकर मैं, रात्ति दिवस संक्रान्ति।
यों जुब्बन सैसव समय, आनि सपत्तिय कांति। छं० ४१
यों सरिता अरु सिंध संधि, मिलत दुहून हिलोर।
त्यों सैसव जल संधि में, जीवन प्रापत जोर। छं० ४२
यों क्रम क्रम बनिता सु वय, सैसव मध्य रहंत।
सीत काल रवि तेज ससि, घाम रु छाँह सुहंत। छं० ४३
सैसव मध्य सु जोवनह, कहि सोभा कवि चंद।
पाव उठै तर छांह छवि, षोज न नीच रहंत। छं० ४४
जीति जंग सैसव सुवय, इह दिष्षिय उनमान।
मानों बाल बिदेस पिय, आगम सुनि फुलि काम। छं० ४५, स० ४७

यह वर्णन आगे छंद ५६ तक किया गया है जिसमें छं० ४६ से ५६ तक यौवन के क्रमशः विकास के अनुसार नायिका के आचरण में परिवर्तन और वसंत ऋतु से उसकी तुलना का चित्रण किया गया है।

सोलह शृङ्गार और बारह आभूषणों का उल्लेख तत्कालीन सामाजिक इतिहास पर प्रकाश डालता है। कवि ने कहीं सारा नख शिख एक छप्पय छंद में ही वर्णन करने की चेष्टा की है और कहीं विलक्षण उक्ति से रचना में अनूठापन पैदा कर दिया है। इन दोनों प्रकार के वर्णनों से हम एक एक छंद लेंगे :—

चंद बदन चष कमल, भौंह जनु भ्रमर गंधरत।
कीर नास बिंबोष्ठ, दसन दामिनी दमक्कत।
भुज अनाल कुच कोक, सिंह लंकी गति वारुन।
कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आरुन।
अलसंग नयन मयनं मुदित, उदित अनंगह अंग तिहि।
आनी सुमंत्र आरम्भ बर, देषत भूलंत देव जिहि। छं० २४६, स० १२

समुद्र मंथन से चौदह रत्न निकले थे। श्रीमद्भागवत स्कंध ८ के मंगलाष्टक के एक छंद में उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा।
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादि देवांगना।

अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखो मृतं चांबुधे ।
रत्नानीह चतुर्दशं प्रतिदिनं कुर्युः सदा मंगलम् ।

लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, पारिजात, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, रम्भा आदि देवांगनायें, उच्चैश्रवा, विष, हरि का धनुष (सारंग), पांचजन्य (शंख) और अमृत ये चौदह अमूल्य रत्न समुद्र से निकले थे। रासोकार ने इन सब की उपस्थिति रूप की राशि संयोगिता के शरीर में पा ली। संयोगिता का रूप रंभा (अप्सराओं) के समान है, उसकी लज्जा विष तुल्य है, उसके अंगों की सुगंधि पारिजात का बोध कराती है, उसकी ग्रीवा शंख (पाँचजन्य) के समान है, मुख चन्द्रमा के समान, चंचलता उच्चैश्रवा की भाँति, चाल ऐरावत सदृश, योवन सुरा की तरह मदहोश करनेवाला है, (पृथ्वीराज की इच्छाओं को पूरा करनेवाली) वह कामधेनु सदृश है, उसके शील को धन्वन्तरि और कौस्तुभमणि की भाँति समझो तथा उसकी भौंह को सारंग के समान जानो। यथा:—

जिहि उदद्धि मथ्थए, रतन चौदह उद्धारे।
सोइ रतन संजोग, अंग अंग प्रति पारे।
रूप रंभ गुन लच्छि, वचन अमृत विष लज्जिय।
परिमल सुरतरु अंग, संष ग्रीवा सुभ सज्जिय।
वदन चंद चंचल तुरंग, गय सुगति जुब्बन सुरा।
धेनह सु धनंतरि सील मनि, भौंह धनुष सज्जों नरा। छं० २१६ स० ६१

समुद्र के रत्नों को इस प्रकार एक स्त्री के सौन्दर्य वर्णन में समाविष्ट कर देना कवि की मौलिक सूझ का पता देता है। ऐसी अनूठी उक्तियाँ मन को आकर्षित और चमत्कृत तो करती ही हैं परन्तु साथ ही इन से रचना सौष्ठव की प्रगति को अपूर्व बल मिलता है।

कबंध-युद्ध-वर्णन

वेदों में 'कबंध आथर्वण' नामक ऋषि का वर्णन मिलता है (वेदिक इंडेक्स)। वाल्मीकीय रामायण में हमें श्री राम द्वारा कबंध नामक एक राक्षस के मारने का वृतांत मिलता है जिसके शरीर से मृत्यु के उपरान्त विश्वावसु नामक गंधर्व प्रकट हुआ था। महाभारत भीष्म पर्व अध्याय ५७ में मिलता है कि चारों ओर से असंख्य कबंध संसार के प्राणियों के विनाशकारी चिन्ह स्वरूप उत्पन्न हुए। यथा:—

उत्थितान्य गणेयानि कबन्धानि समन्ततः।
चिन्ह भूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत। २९

और प्रसिद्ध पौराणिक वार्ता है कि अमृत बँटते समय राहु वेश बदल कर देवताओं के बीच में जा बैठा और उसकी उपस्थिति का रहस्य सूर्य और चन्द्र को तब मालूम हुआ जब वह अमृत पान कर चुका था, फिर विष्णु के चक्र ने उसका सिर तो काट दिया परन्तु अमर होने के कारण उसके धड़ और सिर दोनों जीवित रहे तथा उसका वही कबंध आज भी सूर्य को ग्रसता है (अंतर्हितो भानुः)।

रासो में युद्ध वर्णन के अन्तर्गत कबंधों के उठने और नाचने का उल्लेख मात्र ही नहीं मिलता:—

...नच्चै कमंध च्यालीस रन, जै लभ्भी चहुआन भर । छं० २०

मंडलीक षीची पर्यो, तीकम त्यार सुबंध।
राम बाम पंमार परि, नचि सामंत कबंध । छं० २०५ स० ६

वरन् उनके द्वारा युद्ध करने का भी अलौकिक विवरण मिलता है —

१. नरसिंह दाहिम का सिर कट गया परन्तु उसके धड़ ने बढ़कर युद्ध किया :—

दाहिम्मै नरसिंह, रिंघ रष्षी रावत पन ।
सिर तुट्टै कर कट्टि, चढ्ढि धायौ धर हर घन । छं० १४८३ स० ६१

२. कन्ह चौहान के धड़ ने सिर कटने के उपरान्त तीन घड़ी तक युद्ध किया और तीस हज़ार को काट डाला —

लरत सीस तुट्यौ सु हर, धर उठ्यौ करि मार ।
घरी तीन लौं सीस बिन, कट्टे तीस हजार । छं० २२५३
बिन सीस इसी तरवारि बहै, निघटे जनु सावन घास महै ।
धर सीस निरास हुअंत इसे, सुभ राजनु राह रुकंत जिसे । छं० २२५४,

और इस धड़ की रण क्रीड़ा तभी समाप्त हुई जब वह टुकड़े टुकड़े होकर छिन्न भिन्न हो गया —

इहिविधि सु कन्ह रिन केलि किन्न, परि अंग अंग होइ छिन्न भिन्न । छं०२२६१ स० ६१

इसी प्रकार के अन्य स्थल भी हैं, परन्तु इन सबसे बढ़ कर अल्हन कुमार के कबंध का कार्य देखिये । महामाया का स्मरण और जाप करके उस वीर ने अपने हाथ से अपना सिर काटा फिर पृथ्वीराज के सामने उसे छोड़ कर उसका धड़ बायें हाथ में कटार लेकर युद्ध के लिये अग्रसर हुआ और पंगदल को अपनी मारकाट से विचलित कर डाला, यथा—

मह माइ चित्त चिंतीस आल, जंप्यौ सु मंत्र देवी कराल ।
आश्रम्म देवि किय निज्ज धाम, कट्टयो सीसे निज हाथ ताम । छं०२२८६
मुक्यो सीस निज अग्ग राज, हुंकार देवि किय निज्ज गाज ।
धायौ सुधरह बिन सीस धार, संग्रह्यौ बांह बामै कटार । छं० २२८७
उच्छ्यौ षग्ग वर दच्छ पानि, संमुहौ धीर धायौ परानि ।
कौतिग्ग सब देषंत सूर, दिष्यौ न दिठ्ठ कारन करूर । छं० २२८८
मार्भी पयट्ठ सा सेन पंग, बज्जै करूर बज्जंत जंग ।
कौतिग्ग सूर देषंत देव, नारद रुद्र रस हंस एव । छं० २२८९
धर परै धार तुट्टै सु थार, हल हले पंग सेना सुभार ।
दष्षनिय राय बीरया नाथ, गज चढ्यौ जुद्ध सब्बह समाथ । छं० २२९१स०६१

ऐसा प्रतीत होता है कि राहु के अमर कबंध की अपने शत्रु (सूर्य और चन्द्र) के प्रति प्रतिक्रिया ने शनैः शनैः साहित्य में नर कबंधों द्वारा युद्ध करने की परंपरा डालने की प्रेरणा की थी। साहित्यक वर्णनों में अतिशयोक्ति की अभिव्यंजना तो स्पष्ट है ही परन्तु इतना यह भी समझ में आता है कि रण की विषम मारकाट के बीच में परम उत्साही उद्भट

वीरों के सिर कटने पर उनके कबंध अपने जीवित प्रतिपक्षी अथवा अपने वार के संमुख आने वाले अन्य शत्रु आदि पर रक्त की क्षिप्रता और पूर्व जोश आदि के कारण कुछ समय तक प्रहार करते रहते होंगे। गौरैया पक्षी का सिर काट देने के उपरांत देखा गया है कि उसका धड़ काफ़ी दूर तक उड़ता गिरता रहता है और तब कहीं कुछ देर के बाद शांत होता है।

मुख्य कथानक को छोड़कर रासो में हमें अन्य अनेक वर्णन मिलते हैं जिनमें से कुछ तो प्रधान कथा के साधक न होकर बाधक बन बैठे हैं। इनमें स० १ (छं० ६५-२२२) में वर्णित महाभारत, भागवत् और भविष्यपुराण आदि के आधार पर

अन्य वर्णन

राजापरीक्षित के तक्षक दंशन, जनमेजय के सर्प यज्ञ और आबू पर्वत के उद्धार की कथा है और स० २ में श्रीमद्भागवत् आदि के आधार पर ५८६ छंदों में दशावतार की कथा है जिसका पृथ्वीराज से किंचित् भी लगाव नहीं है। ये दो स्थल काफी लम्बे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बीसों परन्तु छोटे छोटे स्थल हैं जो या तो प्रक्षेप हैं अथवा कथा प्रवाह में बाधा डालनेवाले होकर कवि के इस प्रकार की रीति ग्रहण करने का दोष ठहरानेवाले हैं। इन्हें छोड़ देने के उपरांत अब हम उन स्थलों पर आते हैं जो पृथ्वीराज की जिज्ञासा की पूर्ति हेतु चन्द ने वर्णन किये हैं। होली कथा स० २२ और दीपमालिका कथा स० २३ ऐसे ही वर्णन हैं। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में ये दोनों समय नहीं पाये जाते जिससे इनके प्रक्षेप होने का भी अनुमान किया जा सकता है, परन्तु इन दोनों प्रकरणों में भाषा की दृष्टि से दो चार छन्द काफ़ी प्राचीन समझ पड़ते हैं। जो भी हो ये दोनों कथानक मौलिक हैं, और साथ ही रोचक भी। इनके बाद पृथ्वीराज के प्रश्नों के उत्तर में समाधान स्वरूप अथवा वर्णन के किसी दूसरे प्रसंग में जो कुछ कवि ने कहा है वह उसकी जानकारी का स्पष्ट द्योतक है। रासो में देखते हैं कि महाराज टेढ़े मेढ़े अजीब प्रकार के प्रश्न कर दिया करते थे परन्तु कवि चंद भी ऐसा उद्भट था कि उन प्रश्नों का तत्काल ही उत्तर दे देता था। प्रश्नकर्ता को अधिकार है कि वह चाहे जिस प्रकार के भी प्रश्न कर सकता है परन्तु उत्तरदाता का समझ बूझ और पूर्ण गवेषणा के साथ उनका उत्तर देना अपेक्षित होता है। तत्कालीन इतिहास की सामग्री की कसौटी के आधार पर हमें चंद के कई ऐसे उत्तरों को कसने की आवश्यकता है परन्तु ऐसी किसी कसौटी या पृष्ठ भूमि का अभी तक अभाव है, क्योंकि वह तो भारतीय इतिहास का अंधकार युग है। अतएव हमें इन उत्तरों में अभी ऐतिहासिकता खोजने का विफल प्रयास न करना चाहिये। कई उत्तर पौराणिक आख्यायिकाओं के आधारभूत बना दिये गये हैं परन्तु अपनी अनोखी सूझ बूझ से कवि ने उन पर वह रंग चढ़ाया है कि बस देखते ही बनता है। कुछ समाधान ऐसे भी हैं जिनका आधार कवि की प्रत्युत्पन्न मति है और इनमें विनोद की मात्रा अधिक है। इन प्रश्नोत्तरों से जिनका अधिकांश भाग स० ६१ के अंतर्गत है हम कुछ स्थल लेंगे जिनसे इनकी चमत्कारिक विलक्षणता का अंदाज़ा लगाया जा सकेगा।

१. स० ६१ कन्नौज पहुँच कर गंगा के दर्शन करके पृथ्वीराज ने चंद से भागीरथी का माहात्म्य पूछा—

कइ महंत दरसंन तिन, कइ महंत तिन न्हान।
कइ महंत सुमिरंत तिन, कहि कवि चंद गियान। छं० ३११

इस माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में चंद ने जो कुछ कहा है उससे चार छंद दिये जाते

अंबुज सुत उमया विलोकि, बेद पढ़त षलि बीरज।
सहस बहत्तरि कुंअर, उपजि भीजंत गंगा रज।
आभूषण अंबर सुगंध, कवच आयुध रथ संतर।
रविमंडल के पास, रहत चौकी सु निरंतर।
चहुवांन चमू तिन समर जत, सु कवि चंद ओपम कथिय।
सामंत सूर परिगह सकल, उतरि तट्ट भागीरथिय। छं० ३१५

एक बार उमा को देखकर अंबुज सुत (ब्रह्मा) का वीर्य स्खलित हो गया जिससे बहत्तर हज़ार कुमार उत्पन्न हुए और वे गंगा की रेणु में पल कर बड़े हुए। इस समय वे वस्त्राभूषणों से अलंकृत कवच और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर सूर्य मंडल के रथ के समीप निरंतर चौकी में रहते हैं। हे चौहान, उनकी चमू (चतुरंगिणी सेना) समर विजयी है; (ऐसे वीरों का पोषण करनेवाली) भागीरथी के तट पर आप अपने शूर सामंतों और कुटुम्बियों सहित उतर पड़ें।

सोरंभं कमलं तज्यौ न मधुपं मध्ये रह्यौ संपुटं।
सो लै जाय सरोज संकर सिरं चढ्ढाइयं अच्छरी।
सिंचं तंत स उप्परं घट भरं गंगा जलं धारयं।
वारं लग्गि न चंद कब्बि कहियं संभू भयौ छप्पयं। छं० ३१६

एक भौंरे ने एक कमल को न छोड़ा और सायंकाल होने पर उसी के संपुट में बन्द हो गया। एक अप्सरा ने उसी बन्द कमल को ले जाकर शंकर के मस्तक पर जा चढ़ाया, तब तक किसी ने उनके ऊपर घट भर गंगा जल की धार छोड़ी। कवि चंद का कथन है कि तनिक देर भी न लगी और वह षट्पद तुरन्त शंभु हो गया।

इक्कं मृग्ग पियंत नीर डसियं काली समं पन्नगं।
सोई ब्यालय मृग्गछालय बही श्रंगी बही सुरसुरी।
धारे रूप पसूपती पसु तहां भागीरथी संगती।
आनंदी दुज बैल लेन क्रमियं कैलास ईसं दिसं। छं० ३१७

किसी नदी में जल पीते समय एक मृग को काली सदृश एक सर्प ने डस लिया और वह जल की धारा में गिर पड़ा फिर क्रमशः उसके मृगचर्म और सींग बहते बहते सुरसरि में जा गिरे; वहाँ भागीरथी के तट पर पशुपति (शिव का बैल) साधारण पशु रूप में विचर रहा था, उसने वह मृगचर्म ले लिया और बड़ी प्रसन्नता से कैलास जाकर शिव जी को उसे समर्पित किया।

ब्रह्मा कष्ष कमंडले कलिकले कांताहरे कंकवी।
तं तुष्टा ग्रयलोक संपद पदं तंबाय सहसंनवी।

अघ काष्टं ज्वलने हुतासन हवी अघ विष्णु आगामिनीं।
जंजाले जग तार पार करनी दरसाय जाह्नवी। छं० ३२०

ब्रह्मा के कल्प के कमंडल से निकल कर वे कांताहर (शिव) की जटाओं में आईं, फिर संतुष्ट होने पर त्रैलोक की संपदा प्रदान करनेवाली वे सहस्त्र धारा हो गईं, विष्णु के चरणों से निकलनेवाली गंगा, पापों को काष्ठवत् जला डालने के लिये हुतासन (अग्नि) हैं, इस जंजालमय संसार से पार कर देनेवाली जाह्नवी के हम दर्शन कर रहे हैं।

स० ६१, चक्रवर्ती कान्यकुब्जेश्वर पंग विरुदधारी जयचन्द की महारानी जुन्हाई की उत्पत्ति कथा भी सुन लीजिये —

सूर्य की किरणों से एक सुन्दर कन्या ने जन्म लिया। एक समय जब वह कैलाश के ऊँचे वृक्ष की डाल पर पड़े झूले में झूल रही थी तो उसे देखकर भूपति पंग उस पर मोहित हो गया। राजा ने अपने नेत्रों को नासिकाग्र पर दृढ़ करके एक पैर पर खड़े हो उसकी प्राप्ति हेतु तपस्या प्रारम्भ कर दी। ऋषि वाचिष्ट (संभवतः वशिष्ठ) ने प्रसन्न होकर सूर्य देव से प्रार्थना करके उस कन्या का राजा के साथ विवाह करा दिया। वरदायी का कहना है कि वही राजा जयचंद की रानी जुन्हाई के नाम से प्रसिद्ध है—

सूर किरनि तें प्रगटि, रुचिर कन्यका तपस्या।
तरवर तुंग कैलास, साष संग्रह करि सत्या।
झूलंती संपेषि, भयौ भुअपत्ति सु आसिक।
एक पाइ तब मंडि, धारि द्रग अग्ग सु नासिक।
वाचिष्ट रिष्षि सु प्रसन्न होइ, रवि प्रारथ्थि विवाह किय।
जैचंद राय वरदाइ कहि, तिहि साम जुन्हाइ लहिय। छं० ७५१

नोट—इस छंद के विषय में ना० प्र० स० के रासो संपादकों का कथन है कि यह कवित्त मो० प्रति में नहीं है और क्षेपक जान पड़ता है।

३. स० ६१, कन्नौज युद्ध में महाराज जयचन्द की ओर से 'शंखधुनी' योगियों को समर भूमि में अग्रसर होते देख कर (छं० १७८६-६०) पृथ्वीराज ने चन्द से पूछा कि ऋषि स्वरूप, शंखध्वनि करनेवाले, अत्यन्त पराक्रमी, माया से परे ये वैरागी जयचन्द की सेवा में क्यों रहते हैं?—

रिषि सरूप संषह धुनिय, अति बल पिथ्थ कहंद।
वैरागी माया रहित, किमि सेवै जयचंद। छं० १७८१,

चन्द ने उत्तर दिया कि इन सब को ऋषियों का अवतार जानो जिन्हें नारद ने प्रबोध किया था, इनकी कथा विस्तार से सुनाता हूँ (छं० १७६२)। पूर्व समय में तैलंग प्रमार नामक एक राजा था, अवस्था पाकर उसने वनवास ग्रहण किया और अपनी भूमि क्षत्रियों को बाँट दी (छं० १७६३-४)। यह बटवारा निम्न प्रकार से हुआ—

दिय दिल्ली तोंवरन, देई चावंड सु पट्टन।
दय संभरि चौहान, दई कनवज कमधज्जन।

परिहारन सुर देस, सिंधु वारडा सु चालं।
दै सोरठ जद्दवन, दई दच्छिन जावालं।
चरना कच्छ दीनी करग, भट्टां पूरब भावही।
बन गये नृपति बंटै धरा, गिरिजापति माला गही। छं० १७९५

राजा के एक हज़ार सुभटों ने भी बनवास ले लिया और ऋषि होकर बन में तपस्या करते हुए अजपा जाप (योगमार्ग) में अपना चित्त स्थिर किया (छं० १७९६)। हवन आदि कार्यों के लिये उन्होंने इन्द्र से कामधेनु माँग ली थी। परन्तु उस बन में दैत्यां का महान उपद्रव था यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने गाय को बछड़े समेत भक्षण कर डाला (छं० १७९७-८)। ऋषियों को उस स्थान पर दो सौ वर्ष बीत चुके थे जब कि उनकी गाय खाई गई; इससे वे अति क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने अग्नि में प्रवेश करने का संकल्प किया (छं० १७९९)। उसी समय वहाँ नारदमुनि आ उपस्थित हुए और उनको उपदेश किया कि हे ऋषियो, बीस वर्षों से तुम लोग अजपा जाप में लगे हो परन्तु तुम क्षत्रिय हो इसलिये धार (षड्ग) तीर्थ की साधना करो, दीर्घ काल तक तपस्या करने के उपरांत भी यदि कहीं इन्द्रिय विकार हो गया तो सारा कर्म नष्ट हुआ जानो। परन्तु जो क्षत्रिय धार तीर्थ का आदर करते हैं उनकी सुखपूर्वक तुरन्त मुक्ति हो जाती है। धार तीर्थ ही क्षत्रिय का प्रधान धर्म है, उसके लिये पृथ्वी पर अन्य सबको भ्रममात्र समझो; इस समय पृथ्वी पर उग्र रूप से तपनेवाला राजा जयचंद है, वह मानो इन्द्र का अवतार है और पृथ्वी का भार उतारने आया है, उसका एक शत्रु केवल चौहान है अन्यथा सारे राजे उसके सेवक हैं। संभरेश दिल्ली का राजा है, सौ सामंत उसकी सेवा में रहते हैं, वही तुम्हारे सम्मुख रण में खड़ा होगा, तुम सब लोग जयचंद की सेवा में रहो। वह एक लाख गढ़ों का अधिपति है, और अस्सी लाख उसके पास घोड़े हैं, इस उपदेश से उनको सुख और शान्ति की प्राप्ति हुई (छं० १८००-१०)। तदुपरान्त नारद राजा जयचंद के पास गये और योगियों की कथा कह कर उन्हें अपने यहाँ स्थान देने के लिये कहा जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया (छं० १८१३-२६)। ये योगी अपनी जटाओं में मोरपँख बाँधते थे, शंख और चक्र इन्होंने धारण कर रखे थे, मोहादि विकारों से ये दूर थे (छं० १८११-१२, १८२६)। इन एक हज़ार पराक्रमी शूरमाओं को जयचंद ने अपने यहाँ पर ठहराया (छं० १८२७-८)। राजा इनका बड़ा सत्कार करता है और अपने बड़े भाइयों के समान समझता है तथा ये भी राजा की रक्षा करते हैं, आज इनसे युद्ध में योगदान देने के लिये कहा गया है —

अति बर नृप आदर करै, जेठा बंधव जोग।
तिनहि राज रष्षह रहै, ते छुटि अज जुधजोग। छं० १८२९

४. स० ६१, कन्नौज युद्ध में अपने वीर सामंत अत्ताताई चौहान के विकट युद्ध मचा कर वीर गति प्राप्त करने पर पृथ्वीराज ने चंद से उसकी उत्पत्ति के विषय में प्रश्न किया —

अत्ताताइ अभंगवर, सब पहु प्राक्रम पेषि।
लगी टगटगी दुअ दलनि, श्रप कवि पुच्छि विसेष। छं० १९७०
अतुलित बल अतुलित तनह, अतुलित जुद्ध सु बिंद।
अतुलित रन संग्राम किय, कहि उतपति कविचंद। छं० १९७१

चंद ने कहा कि दिल्ली के राजा अनंगपाल तोमर के दीवान चौरंगी चौहान के घर में पुत्री का जन्म हुआ परन्तु उसकी स्त्री ने उसे पुत्र कहकर प्रसिद्ध किया (छं० १९७२)। यौवन काल आने पर उसको माता उसे हरद्वार ले गई और उसे शिव जी की सेवा और व्रत में लगा दिया —

अति तन रूप सरूप, भूप आदर कर उट्ठहि।
चौरंगी चौहान, नाम कीरति कर पट्ठहि।
द्वादस वरष सु पुज्ज, मात गोचर करि रष्यौ।
राज काज चहुआन, पुत्र कहि कहि करि भष्यौ।
हरद्वार जाइ बुल्यौ सु हर, सेव जननि संहर करिय।
नर कहै रवन रवनिय पुरुष, रूप देषि सुर उद्धरिय। छं० १९७३

जल और पवन के आधार पर रह कर उस बाला ने शिव जी का जप प्रारम्भ किया और छै मास बिना अन्न जल के ही बीत गये तब शंकर प्रसन्न हुए और प्रगट होकर वरदान माँगने के लिये कहा (छं० १९८४-६)। कन्या ने अपनी सारी कथा कहकर वर माँगा कि मेरे पिता का दोष मिटाइये (छं० १९८७-८)। शिव जी ने कहा कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी (छं० १९८९-९०) और बोले कि मैं तेरा नाम अत्ताताई रखता हूँ, तेरे पिता को तेरे रूप परिवर्तन की खबर नहीं होगी, तू महान पराक्रमी योद्धा होगा, युद्ध भूमि में तेरा सामना कोई न कर सकेगा...इत्यादि आशीर्वाद देकर वे अपने स्थान को लौट गये (छं० १९९१-९) —

जुत्तं जो सिव थान अनगति वरं कापाल भूतं वरं।
डौंरू डक्कय नद्द नारद वलं बेताल बेतालयं।
तूं जीता रन बारुनैत्र कमलं जै जै अताताइयं।
त्तातं मंत्रय छित्ति तारन तुही पुज्जै न कोई वलं। छं० २०००

दिल्ली लौट आने के एक मास छै दिन बाद उस कन्या को पुरुषत्व प्राप्त हुआ (छं० २००५-७)। यह अत्ताताई महान योद्धा हुआ। नर, नाग, सुर, असुर कोई भी युद्ध में इसे नहीं जीत सकता था (छं० २००१)। और भी —

अत्ताताइ उतंग, जुद्ध पुज्जै न भीम बल।
श्रुति धावत क्रै देव, चक्र वक्रैत काल कल।
गह गह गह उच्चार, मध्य कंपै मघवा भर।
अरु कंपै दगपाल, काल कंपै सु नाग नर।
उच्छाह तात संमुह करिय, जाप सपुत्तह पुत्त पह।
लम्भै सु कोटि कोटिह्न सु नन, सो लम्यौ सत्ती सु दहि। छं० २००२

शिव द्वारा वरदान प्राप्त करके वह राजा की सेवा में आ गया था, अपने शरीर पर भभूत मले हुए वह वक्षस्थल पर श्रृंगी (बाजा) धारण किये रहता था और तीखा त्रिशूल लिये रहता था, युद्धभूमि में उसकी किलकारियों के साथ किलकारियाँ मारती हुई योगिनी उसके साथ फिरती थी। यही चौरंगी चौहान के अत्ताताई नामक पुत्र की कथा है। यथा —

सिव सिवाह सिर हथ्थ, भयौ कर पर समथ्थ है।
सु विधि राज आदरिय, सत्ति स्वामित्त अथ्थ लै।
वपु विभूति आसरै, सिंगि संग्राह धरै उर।
त्रिजट कथं कंठरिय, तिष्षि तिरशूल धरै कर।
कलकंत बार किलकंति क्रमि, जुग्गिनि सह सथ्थै फिरै।
चौरंगि नंद चहुआन चित, अत्तताइ नामह सरै। छं० २००८

५. स० ६६, भोजन करते समय राजा को निम्न पशु पक्षियों को रखना चाहिये क्योंकि वे ज़हर की सूचना देते हैं —

कुर्कट नकुल करोंच कपि, हिरन हंस सुक मोर।
असन करत नृप रष्षि ढिग, सूचक जहर चकोर। छं० ३३५

कुर्कट (कुक्कुट=मुर्गा), नकुल (न्योला), करोंच (क्रौंच), कपि, हिरन, हंस, शुक, मोर और चकोर ज़हर सूचक हैं इसलिये भोजन काल में राजा को इन्हें अपने पास रखना चाहिये।

हंस होत गति भंग, मोर कटु सबद उचारै।
रोवत क्रौंच कुरंग, सुकवि छंडत आहारै।
सूआ वमन करंत, निकुल कुर्कट मित्राई।
ऐसे चरित करंत, जानि आगंम दिनाई।
चकोर परस्पर हित रहित, कहत चन्द पारष्ष लहि।
तिहि काज आनि रष्षत इनहि, भूपत भोजन साल महि। छं० ३३६

हंस की चाल भंग होने लगती है, मोर कटु शब्द करने लगता है, क्रौंच और कुरंग रोने लगते हैं, कपि आहार छोड़ देता है, सुआ वमन करने लगता है, नकुल, कुकुक्ट मित्र हो जाते हैं और ऐसे चरित्र करके भविष्य बता देते हैं। चंद का कहना है कि पारखियों ने यह भी देखा है कि चकोर परस्पर का प्रेमभाव छोड़ देते हैं। इसीलिये राजा लोग पाकशाला में इनको लाकर रखते हैं।

प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ 'वाग्भट' में विष परीक्षा हेतु पशु पक्षियों का निदान इस प्रकार किया गया है जिसमें हंस और चकोर के व्यवहार रासो सदृश हैं —

म्रियंते मक्षिकाः प्राश्य काकःक्षामस्वरो भवेत्।
उत्क्रोशन्ति च दृष्ट्वैतच्छुकदात्यूह सारिकाः। १४
हंसः प्रस्खलति ग्लानिर्जीवं जीवस्य जायते।
चकोरस्यातिवैराग्यं क्रौंचस्य स्यान्मदोदयः। १५

कपोत परभृद्दसचक्रवाका जहत्यसून् ।
उद्वेगं याति मार्जारः शकृन्मुंचति वानरः । १६
हृष्यैन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा मन्दतेजो भवद्विषम् ।
इत्यन्नंविषवज्ज्ञात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः । १७ अध्याय ७

वस्तुओं के ये विस्तृत वर्णन और व्यापार मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के आलंबन हैं। इनसे भिन्न भिन्न स्थायीभावों की उत्पति होने के कारण इनमें रसात्मकता का पूरा आभास मिलता है।

अध्याय ३

भाव-व्यंजना

रासो भारत के अंतिम वीर योद्धा हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज तृतीय के जन्म से लेकर उनके सर्वथा युद्धमय जीवन और मृत्यु पर्यन्त वर्णन विषयक काव्य है। महाराज के अतिरिक्त उनके शूर वीर सामंतों के भी हम विस्तृत वर्णन पाते हैं। और पृथ्वीराज के तत्कालीन महान प्रतिद्वन्दी गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य, कान्यकुब्जेश्वर जयचंद, ग़ज़नी के अधिपति सुलतान शाहाबुद्दीन गोरी के प्रधानतया युद्धमय कार्य कलापों का विकास पाया जाता है। रासो युद्ध प्रधान काव्य है और तदनुसार उस समय की आदर्श वीरता का इसमें श्रेष्ठ चित्रण है। ये युद्ध गाथायें जो संकलित हैं, क्षत्रिय वीरों की हैं क्योंकि उस समय राज्य कार्य और युद्ध बाने के अधिकारी ये ही पाये जाते थे। अस्तु प्रसंगानुसार उचित होगा कि हम रासोकार के शब्दों में ही क्षात्र-धर्म और स्वामिधर्म निरूपण करनेवाले रासो में यत्र-तत्र बिखरे हुए कतिपय विचारों को समझ लें जिससे इन तेजस्वी वीरों के युद्धोत्साह, इनके तुमुल और बेजोड़ युद्ध तथा इनके जीवन का आदर्श समझने में सरलता हो।

उत्साह

युगों से यह वार्ता चली आ रही है कि संसार में (गल्ह) यश ही सार है और यश ही रक्षा कर सकता है, शरीर कच्चा है और अवश्य नष्ट होगा, सूर्य आदि ग्रह तथा जो भी दृश्यवान है विनाश ही उसका सार है; वापी, वृक्ष, सर, गढ़, आदि सब मृगतृष्णायें हैं; पुरुष को गल्ह की सुमंत्रणा रखनी चाहिये —

सा पुरुष जीवतं विय प्रकार, संभरै एक कित्ती संसार। छं० ९
जीरन सु जुग्ग इह चलै वत्त, संसार सार गल्हां निरत्त।
इह कच्च पिंड लच्ची सुवत्त, जैहे सु जोग जौगाधि तत्त। छं० १०
जैहे सु भान सब ग्रह प्रकार, दिष्टिये मान सो विनसि सार।
वापी विरष्ष सर गढ़ प्रमान, मिलिहै सु सर्व अगतिस्न जान। छं० ११
छंडौ न वीर देवा सु मुष्ष, रष्षौ सुमंत गल्हां पुरुष्ष। छं० १२ स० ३१

इस प्रकार असार संसार में यश की श्रेष्ठता और प्रधानता बतलाकर उसकी प्राप्ति का उपाय निस्संदेह ही स्वामिधर्म पालन में निहित माना गया है। स्वामिधर्म की अनुवर्तिता का अर्थ है प्रतिपक्षी से युद्ध में तिल तिल करके कट जाना परन्तु मुँह न मोड़ना। इस प्रकार स्वामिधर्म में शरीर नष्ट होने की बात को गौण रूप देकर यश सिरमौर कर दिया गया है। और भी एक महान प्रलोभन तथा इस संसार और सांसारिक वस्तुओं से भी अधिक आकर्षक भिन्न लोक वास तथा अनन्य सुंदरी अप्सराओं की प्राप्ति है। धर्म भीरु और त्यागी योद्धा के लिये शिव की मुंडमाला में उसका सिर पोहे जाने तथा तुरंत मुक्ति प्राप्ति आदि की व्यवस्था है।

कर्म बंधन को मिटाने वाले विधि के विधान में संधि कर देनेवाले...युद्ध की भयंकर विषमता से क्रीड़ा करके रण भूमि में अपने शरीर को सुगति देनेवाले बलवान और भीष्म शूर सामंत स्वामी के कार्य में मति रखनेवाले हैं; स्वामि कार्य में लग कर इन श्रेष्ठ मतिवालों के शरीर तलवारों से खंड खंड हो जाते हैं और शिव उनके सिर को अपनी मुंड माला में डाल लेते हैं —

सूर संधि विहि करहि, क्रम्म संधी जस तोरहि ।
इक्क लष्ष आहुटहि, एक लष्षं रन मोरहि ।
सुबर वीर मिथ्था, विवाद भारथ्थह षंडै ।
विच्चि वीर गजराज, वाद अंकुस को मंडै ।
कलहंत केलि काली विषम, जुद्ध देह देही सु गति ।
सामंत सूर भीषम बलह, स्वामि काज लग्गेति मति । छं० ७८०
स्वामि काज लग्गे सु मति, षंड पंड धर धार ।
हारहार मंडै हिये, गुथ्थि हार हर हार । छं० ८२१ स० २५

जन्म के साथ ही कर्म बंधन घेर लेते हैं, सुख, दुःख, जय, पराजय, लोभ, माया, मोह आदि शरीर को आबद्ध रखते हैं और तब तक अंतकाल आ उपस्थित होता है । उस समय मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाई देता और अंत समय में कहीं ज्ञान (ध्यान, मति) भी शुद्ध रह सकता है ! कन्ह का कथन है कि क्षत्रिय शरीर का केवल स्वामिधर्म ही साथी है जो कर्मों के भोग से छुटकारा दिला सकता है —

जा दिन जीवह जम्म, क्रम्म ता दिज जम पच्छै ।
सुष्ष दुष्ष जय अजय, लोभ माया न न सुच्छै ।
काल कलह संग्रह्यौ, मोह पंजर आरुद्धौ ।
मुगति मग्ग सुझ्झै न, ग्यान अंतह किन सुद्धौ ।
प्रतिव्यंब अंब अंबह जु गति, भुगति क्रम्म सह उद्धरै ।
केवल सु ध्रम्म षित्रिय तनह, कन्ह कंक जौ सुद्धरै । छं० ६० स० ३६

सांसारिक वस्तुएँ स्वप्न सदृश नष्ट हो जानेवाली हैं...शूर सामंतों का स्वामिधर्म धन्य है जो कि वे लड़ना और मरना ही जानते हैं —

है संसार प्रमान, सुपन सोभै सु वस्त्र सब ।
दिष्टमान बिनसिहै, मोह बंध्यौ सु काल अब ।
काल कृत्य षट्टीक, आज बंध्यौ नर ग्रेही ।
दया देह सम्भवै, दया बंधै तिन देही ।
सामंत शूर साध्रम्म धनि, सज्जिय भज्जिय जानियै ।
संसार असत आसत्त गति, इहै तत्त करि मानियै । छं० २०२ स० ४४

*संशोधन—'वस्त्र' के स्थान पर 'वस्तु' पाठ उचित होगा

स्वामिधर्म में मति रखनेवाले क्षत्रियों को धन्य है जो कष्ट में पड़े हुए स्वामी को नहीं छोड़ते —

वरदाय चंद चिंतनु करै, धनि छत्री जिन ध्रम्म मति।
मुक्कहि न स्वामि संकट परै, ते कहिये रावत्त पति। छं० १५६६। स०६१

युद्ध भूमि पर रावल सामंत सिंह के वाक्य देखिये—विपथ पर वह है जो मोह में बँधा हुआ है, स्वामिधर्म में रत सुपथगामी है, राजा की आज्ञा और सेवा में प्रवृत्त रह कर स्वप्न में भी उसकी निंदा न करने वाला, अपने स्वामी को संकट से मुक्त करने के लिये अहर्निश मृत्यु की वांछना करने वाला, अनंत भ्रमण करने वाले मन को रोकने वाला युद्ध में मरने पर सूर्य मंडल में स्थान पाता है। उसकी सुगति होकर तुरन्त मुक्ति हो जाती है—

विपथ सु बंध्यौ मोह, सुपथ जिहि स्वामि निवरतै।
राज सु अग्या रवन, सेव तिन बज्र प्रवृतै।
स्त्रित सु स्वामि सो रत्त, नीय निंदा न प्रगासिय।
अह निस बंछहि मरन, सु पहु संकुरै निवासिय।
हा हंस हंस मंडल रुरै, मन अनंत अंतहि रूरत।
सामंत सिंघ रावर चवै, सुगति मुगति लभ्भै तुरत। छं० ६५३

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय ये चार अवस्थायें हैं, जिनके अन्तर्गत जीवन में सत् असत् की प्राप्ति होती रहती है; माता पिता को देवता मान कर उनकी सेवा करता हुआ स्वामिधर्म का आचरण करता रहे और दुष्टों के कार्यों पर ध्यान न दे, अपने सुकर्म हरि को समर्पित कर दे...इस प्रकार क्षत्रिय संसार सागर से पार उतर सकता है —

जाग्रत सुषपति सुपन, तुरिय अवस्था ये चारहि।
ता मध्ये वय ग्रहै, लहै सद असद सु सारहि।
मात पित्त मानै सु देव, देव करि आवध मानै।
स्वामि ध्रम्म आचरै, दुष्ट कृत धरै न कानै।
समपै सुक्रम्म सह हरि सहस, अगम गंम पायन धरै।
सुष्ष दुष्ष स्वामि निज सुद्धरै, इम षत्री पारह तरै। छं० ६५८

वेदों द्वारा निर्धारित नीति ग्रहण करे, स्वामिधर्म में न चूके...विधिवत् योग करे, हरि स्मरण न छोड़े, शब्द (ब्रह्म) और ज्योति (ब्रह्म) में लीन रहे, प्रतिदिन धार्मिक कार्य करे, युद्धकाल उपस्थित होने पर शत्रु के सामने आकर मोर्चा ले, मन को निरंजन ज्योति और सूर्य बिंब में स्थित कर स्वामी के लिये अपना सिर संकल्प दे, यही स्वारूप्य मुक्ति का मार्ग है —

वेद नीति घर चलै, स्वांमि ध्रम्मह न न चुक्कै।
जोग विद्ध जोगवै, अप्प हरि ध्यान न मुक्कै।
सबद जोति रहै लीन, ध्रम्म क्रत बासर क्रम्मै।
जुद्ध काल संपत्त, आय अरि जुत्तह सम्मै।

संकलपि सीस सांई सरिस, मनह निरंजन जोति द्रग।
मधि रचै सूर बिंबह सुमन, एह मुगति सारूप मग। छं० ९५९

शक्ति (देवी) शरीर का रक्त पियें, पिंड अग्नि का आहार बने, स्वामि कार्य में प्राण चले जायें और शंकर हृदय पर मेरा शीश धारण करें, आँतें पैरों में उलझें, डिंभ में शृगाल और गिद्ध लग जावें, अपने स्वामी की विजय की चाह हो, मन में ताली लग जाय, सूर्य मंडल में (मेरा) हंस (जीव) जुड़ जाय, जीवन के योग की गति (आवागमन) से उद्धार हो जाय और निराकार में ध्यान लगा रहे;इस प्रकार भव से मुक्ति मिल सकती है—

पियै सगति धर श्रोन, पिंड पावक आहारै।
सांइ समप्पै प्रान, सीस उर संकर धारै।
अंत तुट्टि पय चंपहि, डिंभ लग्गहि श्रग गिद्धिय।
जय बंछै निज स्वामि, लगै तालो मन बद्धिय।
मंडलह हंस हंसह जुरै, जीय जोग गति उद्धरै।
निरकार ध्यान राखै जु निज, इम भव सारूपह तिरै। छं० ९६०

सांसारिक जीवों के प्रति निर्वैर भाव रखे, मन को प्रसन्न रखे, काम क्रोध मद आदि से बचता रहे, चित्त में हित और अहित का विचार करता रहे, निंदा स्तुति समान समझे, स्वामी के लिये रणक्षेत्र में युद्ध से रमण करे तथा हाथ में वज्र (खड्ग) लेकर (उसकी) लज्जा का विचार रखता हुआ, अनहद नाद में ध्यान लगाये रहे...

नृवैर भूत भव सकल, अकल आनंद कलम मन।
काम क्रोध मद रहित, अहित हित चित्त ग्रेह तन।
निंदा अस्तुति समति, रमति स्वांमित्त समर रन।
लज्जा धर कर वज्र, अंग वज्रंग अरिन मन।
जंपौ सु एक जामानि जद, अनहद सद मत्ता मवन।
जानंत विदुष मति सकल तुम, बहुत बात जंपत कवन। छं० ९६१, स० ६६

शूर वही है जो स्वामिधर्म का अनुसरण करे; इस युग में स्वामिधर्म की बराबरी नहीं की जा सकती; दया, दान, दम, तीर्थ आदि सबका निरोध कर आगे जाने वाला स्वामिधर्म ही है; स्वामिधर्म (के आचरण) से निश्चय ही मुक्ति प्राप्ति होती है और उसकी विपरीतता से नरक निवास भी सुनिश्चित है; हे हमीर सुनलो, स्वामिधर्मानुयायी देवलोक में निवास करता है; स्वामिधर्म आनंददायी मुक्ति को दृढ़ करने वाला है; निश्चय ही यश और मुक्ति स्वामिधर्म के अन्तर्गत हैं; कीर्ति और अपकीर्ति तो विधाता के आधीन है परन्तु नरक वास से बचने का (एक मात्र) उपाय युद्ध में लड़ मरना है—

सोइ ज सूर सा ध्रम्म, जुग्ग सा ध्रम्म न पुज्जै।
दया दान दम तित्थ, सबै सा ध्रम मनि रुज्झै।
सामि ध्रम्म बर मुगति, नरक बर तित्थ निवासौ।
सुनि हमीर स्रा ध्रम्म, करै सुर पुर नर वासौ।

सा ध्रम्म सुगति बधै रवन, सांमि ध्रम्म जस सुगति वर ।
अब कित्ति किति करतार कर, नरक चूक झुक्झौति नर। छं ६६३ स० ६६*

उस युग की वीरता का यह आदर्श कि स्वामिधर्म ही प्रधान है कोरा आदर्शमात्र न था। उसका संस्थापन सेना के स्थायित्व तथा विशेष रूप से उसकी युद्धोचित प्रवृत्ति की जागरूकता को ध्यान में रखते हुए अति आवश्यक अनुशासन को लेकर हुआ था। अनुशासन ही सेना और युद्ध की प्रथम आवश्यकता है। आदि काल से लेकर आज तक सेना में अनुशासन की दृढ़ता रखने के लिए नाना प्रकार के नियमों का विधान पाया जाता है। आज्ञाकारिता को दासता से जोड़ना ठीक नहीं है क्योंकि उस युग में किराये के टट्टुओं से भारतीय सम्राटों की सेनायें नहीं सुजज्जित होती थीं। युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामिधर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करना कर्त्तव्य था। वहाँ दासता और धन के लोभ का प्रश्न उठाना तत्कालीन वीर युग की भावना को समझने में भूल करना है। सम्राट या सेनापति की आज्ञापालन के अनुशासन को चिरस्थायी और व्रत स्वरूप बनाने के लिए स्वामिधर्म का इतना उत्कट प्रचार किया गया था कि वह सामान्य सैनिकों की नसों में कूट कूट कर भर गया था और इसी आदर्श की रक्षा में उनका युद्ध में कट मरने का कार्य दुहाई दे रहा है। इसके अतिरिक्त स्वामिधर्म को दार्शनिक जामा भी पहिना दिया गया था। स्वामिधर्म हेतु युद्ध में वीर गति प्राप्त करने के उपरांत नाना प्रकार के उच्च लोकों में स्थान प्राप्ति के निश्चय का विधान असामान्य उच्च श्रेणी के योद्धाओं के लिए किया गया प्रतीत होता है।

निर्दिष्ट कतिपय उपदेशों तथा प्रतिदिन वैसे ही विचारों और दृढ़ विश्वासों के संघटन में पड़ते पड़ते तत्कालीन योद्धा की अंतर्मुखी वृत्ति असार संसार में यश की अमरता और स्वामिधर्म के प्रति जागरूक हो जाती होगी। तभी तो हम देखते हैं कि युद्ध काल इन योद्धाओं के लिए अनिवर्चनीय आनंद का क्षण उपस्थित करता था। लड़ मरनेवाले इन असीम साहसी योद्धाओं के उद्गार कितने प्रभावशाली हैं औरसाथ ही उनका विरचित उत्साह भी देखने योग्य है।

कर्तार ने हाथ में तलवार दी है और यही राजपूत के लिये तत्व है —

* नोट :— युद्ध भूमि की एक परंपरा राजाओं, सेनापतियों या पुरोहितों द्वारा अपने सैनिकों को ओजस्वी वक्तृता से प्रोत्साहित करने की थी। महाभारत के भीष्म पर्व अ० १७ में हम भीष्म को योद्धाओं का कर्त्तव्य समझाते हुये पाते हैं। कर्ण पर्व अ० ९३ में दुर्योधन अपने निराश सैनिकों को उपदेश करता है और शांति पर्व अ० १०० में राजा या सेनापति को युद्ध से पूर्व उत्साही वाक्यों द्वारा सेना का साहस बढ़ाने की मंत्रणा दी गयी है। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में तथा परवर्ती नीति ग्रंथों में इस प्रकार के प्रोत्साहन को महत्त्वपूर्ण ठहराते हुए युद्ध पूर्व का एक आवश्यक अंग मान लिया गया है।

रासो तो युद्ध पूर्ण काव्य है और युद्ध भूमि की इस परंपरा के दर्शन हमें अनेक स्थलों पर होते हैं।

करतार हथ्थ तरवार दिय, इह सु तत्त रजपूत कर। छं० १५१३, स० ६१

क्षत्रिय के लिये मृत्यु शत निधि है या (क्षत्रिय के लिए मृत्यु निश्चय ही निधि की प्राप्ति है) —

कहै राज प्रथिराज,मरन छित्रिय सत निद्धी। छं० १५०६ सं० ६१

और संसार में राजपूत के लिये मरना ही श्रेष्ठ है —

रजपूत मरन संसार बर...छं० १५७६ स० ६१

तथा —जिस प्रकार साले का घर आना, मेघ के लिये वायु, पृथ्वी के लिये जल, कृपण के लिये लोभ, पानी के लिये दान, साहसी के लिये सत्य में स्थिरता, मंगन के लिये प्राप्ति मंगलदायक है वैसे ही शूरों के तो मरने में ही मंगल है —

सूर मरन मंगली, स्याल मंगल घर आये।
वाय मेघ मंगली, धर्रान मंगल जल पाये।
क्रियन* लोभ मंगली, दान मंगल कछु दिन्नै।
सत मंगल साहसी, मगन मंगल कछु लिन्नै।.. छं० १५७४ सं०६१

फिर—धार तिथ्थ पहिले छत्री ध्रम्म, भूपर सबै और जानौ भ्रम।...छं० १८०६ सं० ६१

और देखिये वह पुकार उठता है—मरना जीना तो अवश्यंभावी है, युगों तक चलनेवाला यश ही है, अतएव श्रेष्ठ पुरुषों का थोड़ा जीवन ही अच्छा है —

मरना जाना हक्क है, जुग्ग रहेगी गल्हां।
सा पुरुसां का जीवना, थोड़ाई है भल्लां। छं० १६८ सं० ६४

तथा कितने अखंड विश्वास और उत्साह के साथ युद्ध-क्रीड़ा के लिए तत्पर योद्धा कहता है कि यदि जीवित रहे तो (पृथ्वी की) लक्ष्मी का उपभोग करेंगे, यदि मारे गये तो सुरांगणायें हमारा वरण करेंगी; यह शरीर क्षण में नष्ट हो जानेवाला है तब फिर युद्ध में मरने की चिंता कैसी ?

जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिंता मरणे रणे। छं० १८२५, स० ६१

कायरों में भी वीरता फूँक देनेवाले उस युग को हमारे साहित्यिकों ने उचित ही वीरगाथा-काल नाम दिया है। और हमारा प्रस्तुत काव्य पृथ्वीराज रासो उसी समय के वीरों की वीरोचित गाथा से परिपूर्ण है।

अस्तु, वीरगाथात्मक प्रस्तुत काव्य में वीररस खोजने का प्रयास नहीं करना होगा। ये स्थल अपने आप ही हमारे सामने आते रहेंगे और हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेंगे। अतः थोड़े से उत्कृष्ट स्थलों की विवेचना ही पर्याप्त होगी।

१. समय ७—

नाहर राय ने पहले पृथ्वीराज को अपनी कन्या देने का प्रस्ताव किया था परन्तु

* संशोधन— 'क्रियन' के स्थान पर 'क्रिपन' पाठांतर उचित होगा

बाद में वह बदल गया और उसने लिख भेजा कि तुम्हारा कुल आदि हमारे योग्य नहीं है (छं० २८-६) —

.. सगपन सुआदि समवर नृपति, समर जुद्ध साधै समर।
कुल ढुढ नाम दिज्जै नहीं, इह कलंक लग्गौ सुघर। छं० २८
षेतरपाल कौ पूजै कौन, जो परिहरि गौ विंदह मौनं।
परहरि सिव उमया गुन तंत्रं, को मंडै चंडाली मंत्रं। छं० २६

ऐसा पत्र सुनकर सामंत लोग अप्रसन्न हुए (छं० ३२-३) और पृथ्वीराज ने नाहर राय पर चढ़ाई करने के लिये सेना सजाई (छं० ३४)। सेना की सजावट और उत्साह देखिए —

हयग्गयं सजे भरं, निसांन बज्जि दूभरं।
नफेरि बीर बज्जई, मृदंग झल्लरी गई। छं० ३५
सुनंत ईस रज्जई, तनीस राग सज्जई।
सुभेरि भुंकयं घनं, श्रवन्न फुट्टि झंझनं। छं० ३६
...उषाह मध्य ते चलं, सगुन्न बंदि जे भलं।
ससूर सूर यं कलं, दिनं सु अष्टमी चलं। छं० ५४

यहाँ पर शत्रु नाहर राय आलंबन है; उसका पत्र कि तुम हमारे बराबर नहीं हो तथा तुम्हारा दानव कुल है, इत्यादि उद्दीपन है। पत्र सुन कर सामंतों का क्रोध तथा अपने पराक्रम का बखान अनुभाव है और धृति तथा गर्व संचारी हैं। फिर क्या था? सूर लोग हाथी घोड़े सजाने लगे, नगाड़े बजने लगे, नफ़ीरी, मृदंग, भेरी और झाँझ आदि के स्वरों से कान फटने लगे, कवच कसे जाने लगे, इत्यादि। युद्धार्थ परम उल्लास से सारे साज बाज प्रारम्भ हो गये और अष्टमी के दिन धावा बोल दिया गया।

२. समय ६ —

सुलतान गोरी के आक्रमण का समाचार पाकर (छं० ७६) पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों को बुलाकर मंत्रणा की (छं० ७७) और लड़ने की सलाह पक्की कर युद्ध की तैयारी आरंभ कर दी —

कहत सब्ब सामंत मति, चढ़ि दल सजौ समंकि।
सुनिव मंत्र कैमास कहि, करहु निसान टमंकि। छं० ७८
भय टामंक निसानं, पत्त निज ग्रेह सूर सामंतं।
बाजे बज्जि अनेकं, हय मंगे राज चहुआनं। छं० ७९

यहाँ सुलतान गोरी आलंबन है, उसके आक्रमण का समाचार उद्दीपन है। सामंतों का गर्व सूचक वाक्य कहना (छं० ७७) तथा 'चढ़ि दल सजौ समंकि' और मंत्री कैमास की सलाह कि 'करहु निंसान टमंकि' अनुभाव है तथा शत्रु से मोर्चा लेने के लिये धैर्य और आत्मविश्वास संचारी है। फल यह हुआ कि युद्ध के जुझाऊ नगाड़ों पर चोट पड़ी, अनेक अन्य बाजे बज उठे, चौहान नरेश ने घोड़े माँगे। इस प्रकार उत्साह की व्यंजना होकर वीर-रस का परिपाक हो गया।

उधर सुलतान गोरी की सेना का उत्साह देखते ही बनता है —

> सुनि चरित्त साहाब वर, दिय निरघोष निसान।
> चढ़्यौ सैन सज्जे सिलह, करिब फौज सुरतान। छं० ९२
> चढ़्यौ सुरतान सु सज्जिय फौज, बजै बर बज्जन वीर असोज।
> भयौ गज घुंमर घंट निघोर, मनौ झुमि झंझ भयौ सुर रोर। छं० ९३
> गजै गज मद्द मनौ घन भद्द, चिकार फिकार भये सुर रुद्द।
> तुरंग महीस कडक्क लगाम, षरक्किय पष्षर तोन सुतांन। छं० ९४
> चमंकत तेज सनाह सनाह, करै धर पद्धर राह बिराह।
> झलक्कत टोप सुटोप उतंग, ननों रज जोति उद्योत विहंग। छं० ९५
> दमंकत तेज कमान कमान, चितं चित मीर रहीम इमान।
> भले भर सांइय ध्रंम सगत्ति, लषें धर जीयन जत्तिन गत्ति। छं० ९६

इस स्थान पर पृथ्वीराज आलंबन हैं, दूत द्वारा उनका चरित्र (युद्ध की तैयारी आदि का समाचार) सुनना उद्दीपन है, नगाड़े बजवाना और ज़िरह बख्तर से सुसज्जित सेना लेकर सुलतान का चढ़ चलना अनुभाव है तथा गोरी के साहस और गर्व का न भंग होना संचारी है जिसके फलस्वरूप उसकी सेना बड़े जोश के साथ गज घंटों के स्वर और पक्खरों की खड़खड़ाहट से आक्रमण के लिये बढ़ी, सैनिकों के टोप और सनाह चमक रहे थे...।

इस प्रकार शत्रु की चाल ढाल और शक्ति से परिचित होने पर भी सुलतान का आगे बढ़ना उसके असीम उत्साह का प्रतीक है।

३. समय १३ —

सुलतान शहाबुद्दीन के आक्रमण का पूरा विवरण पाकर (छं० ११-२६) पृथ्वीराज ने अपनी तैयारी की —

> सुनत सुवन सोमेस, भैस भयभीत भयौ तन।
> रोस रंग प्रज्जलिग, मंगि संनाह अमर जन।
> हयन हुकुम करि देन, मंत गज अंदु न षुल्लिय।
> नालि गोल जुत जंत्र, हसम हाजुर सह बुल्लिय।
> लोहान बोलि आदर अनंत, विवरि वत्त दूतन कही।
> विफरि वीर डक्कन सुनत, जनु कि पुंछ भिडिय अही। छं० २७
> पुच्छ चंपि जनु चिल्ह, सिंह सोवत जग्गाइय।
> हक्कारयौ कि बराह, दंग जनु अग्गि लगाइय।
> बरड छता कै छेरि, गाय व्यानी बग्गांनिय।
> कै जगाये वीर, भीर भारथ मग्गानिय।
> बिरचयौ लोह लोहांन सुनि, जत्र कत्र मेछन करौं।
> सोमेस आन सुरतान धर, तर ऊपर गज्जन करौं। छं० २८

यहाँ पर सुलतान गोरी आलंबन है, उसके आक्रमण और उसकी सुसज्जित सेना का दूत द्वारा विवरण (छं० ११-२६) उद्दीपन है, सारा हाल जानकर पृथ्वीराज का रूप भयंकर हो जाना और उनका क्रोध से जलने लगना अनुभाव है, तथा पराक्रमी और प्रबल शत्रु का सामना करने का आयोजन महाराज की धृति आदि का सूचक होकर संचारी है। सामंत लोहाना अजानबाहु के वचन कि मैं म्लेच्छों को नष्ट कर दूँगा और सोमेश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि ग़ज़नी को उलट दूँगा, ये अति गर्व गर्भित वाक्य भी अनुभाव हैं। चौहान नरेन्द्र ने प्रबल शत्रु को आया जानकर अपने कवचधारियों, अश्वारोहियों, मदांध-गजाधिपतियों, नालीक और गोलों के चलानेवालों तथा नौकरों चाकरों को बुलाया और उन्हें शीघ्र ही प्रस्तुत होने का आदेश दिया। लोहाना से उनसे वाक्य कि सर्प की पूँछ दबायी गयी है, चील्ह की पूँछ नोची गई है, सोते सिंह को जगा दिया गया है, वाराह को हाँका है, बन में दावाग्नि लगादी है, बर्रों का छत्ता छेड़ दिया है। आदि उनके दर्पलक्षित वाक्य होने के कारण संचारी हैं।

रासो के युद्धस्थलों में लगभग इसी प्रकार के वीरोचित वाक्य तथा साज सज्जा के दर्शन होते हैं। अब हम किंचित् बदले हुए कुछ स्थलों में उत्साह का अवलोकन करेंगे।

समय ६१—

कन्नौज में महाराज जयचंद की अस्सी लाख सेना पृथ्वीराज और उनके वीर सामंतों को घेरे हुए युद्ध कर रही थी कि इसी बीच पृथ्वीराज और जयचंद की पुत्री संयोगिता का गंधर्व परिणय सम्पन्न हुआ। पृथ्वीराज ने संयोगिता से कहा कि मेरे साथ चलो (छं० १२७६-८०)। संयोगिता ने अपने पिता के बल और पराक्रम का विचार करके अपना संकोच प्रदर्शित करते हुए भीरुता दिखलाई (छं० १२८१-८७)। यह सुनकर गोविन्दराय, हाहुलीराय हमीर, चंदपुंडीर, कन्ह, बडगूजर, अल्हन कुमार, सलख प्रमार, देवराय बग्गरी, राम रघुवंश, पल्हन देव, नरसिंह दाहिम, सारंगदेव, भोंहा-राव चंदेल, निढ्ढर राय आदि पृथ्वीराज के वीर सामंतों ने उसे अपने उत्साह और अपने गर्व पूर्ण वाक्यों से प्रबोधा (छं० १२८८-१३१४)। फल यह हुआ कि वह चलने के लिये प्रस्तुत हो गई और पृथ्वीराज ने उसे अपने घोड़े पर बिठा लिया (छं० १३१५-२२)।

विस्तार भय के कारण इन सारे निर्दिष्ट छंदों का उल्लेख उचित न होगा। उदा-हरणार्थ हम इनसे चार पाँच छंद लेंगे। इन छंदों में सामंतों के वीरोचित वाक्यों में कुछ अतिशयोक्ति व्यंजना का भाव भले ही प्रतीत हो परन्तु इसी समय में आगे देखते हैं कि बात के धनी इन वीरों ने अपने प्रण का तो सफल निर्वाह किया ही साथ ही अपने स्वामि-धर्म, अपने कर्तव्य पालन तथा अपने प्रचंड पराक्रम और उद्भट वीरता का ज्वलन्त उदाहरण भी संसार के सामने रख दिया। देखिये —

हाहुलिराव हमीर कहि, सुनि पंगानी बत्त।
एक भिरै असि लष्ष सौं, सो भर किमि भाजंत। छं० १२९०

चवै चंद पुडीर इम, कह बल कथ्थहु पुब्ब।
पंग पंग पग नरिंद को, जग्य विध्वंसयौ सब्ब। छं० १२९२
तब बोले अल्हन कुमार, सब्ब ब्रह्मंड बीर बर।
जिहि मिलंत भर सुभर, होहि तन मत्त बीर सर।
मिलै सरित सब गंग, होइ गंगा सब अंगा।
भग्गै सब परपंच, मिलै ब्रह्म ब्रम्हह मग्गा।
ऐसे सुबीर सामंत सौ, ढील बोल बोलै बदन।
जानै न बत्त बर बंध को, पहुंचावै ढिल्ली सुधन। छं० १३००
पल्हन दे कूरंभ, लाज बडपन वड वीरं।
त्रिप लग्गै नन अंच, पंच को पंच सरीरं।
सोम चंद संभरी, सूर सो ध्रम्म न होई।
सौ में एकज होइ, तेज मुक्कै ग्रह जोई।
इक अग्ग पंच जो सत्त है, सत्त मेर सत जीन तजि।
मन डरहि चलहि प्रथिराज सँग, रषत कोटि कायरहि सजि। छं० १३०५
तब निढ्ढर उच्चरिय, सब्ब सामंत राज प्रति।
पंग सेन निरदरहु, प्रब्ब बोल्यौ सु देव भ्रित।
मनमथी गोबिंदचंद, होइ न कहि कालं।
मन पुच्छिरु कहौ जीह, काल धत्ते जिहि जालं।
जौ करै ढील ढिल्ली धनी, तौ जुग्गिनिपुर जल हथ्थ दै।
सत षंड जीह जंपत करों, पै चल्लि राज इह लल्ल दै। छं० १३१३
और, मानि मतौ सब सेन, गरुअ गोयंद कन्ह कहि।
सुजै अप्प जो चलै, चलै हम हथ्थ रंभ ग्रहि।
जो अप्पन आभंज, सबल बंधी अब बंधी।
ढील न करि सुंदरी, लीह अलथं कल संधी।
ढंढोरि ढाल पहुपंग दल, तन अस्त जिम तोरियै।
पहुंचाय सामि ढिल्ली धरा, जम्म जजर तन जोरियै। छं० १३१४

अपने बल और वीरता का ऐसा अखंड विश्वास और उसका उसी प्रकार प्रतिफलित भी हो जाना कठिनाई से ही देखने में आता है। वीरोचित आशा और साहस की मदमाती उमंगों के प्रतिरूप ये वीर अपने उत्साह और स्वामि धर्म में बेजोड़ हैं।

इसी समय के युद्ध काल में सामन्तों द्वारा सपत्नीक दिल्ली चले जाने के लिये अनेक प्रस्ताव और प्रार्थनायें की गईं परन्तु पृथ्वीराज ने एक न सुनी। ये (छंद १५६१-६३) भी एक अपूर्व स्थल के संयोजक हैं। इनमें हमें स्वामिधर्म, क्षात्रधर्म और जीवन-मरण विषयक सुन्दर व्याख्यायें पढ़ने को मिलती हैं। महाराज पृथ्वीराज के उत्तर परम उत्साहमय, तर्कपूर्ण, अकाट्य और एक श्रेष्ठ योद्धा के योग्य हैं।

इसी प्रकार के वीरोचित वाक्य हमें समय ६६ में वर्णित 'बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव'

में पृथ्वीराज के अपने बहनोई चित्तौड़ नरेश रावल समरसिंह को युद्ध में भाग न लेकर घर लौट जाने के प्रस्ताव पर मिलते हैं (छं० ३५१-६५)। रावल जी कथित एक छंद उद्धृत कर हम प्रस्तुत रस विवेचना को समाप्त करेंगे—

मो भग्गै संग्राम, मोहि भग्गै भग्गै अरि।
बसो लाज रन सूर, सुमत मुक्कै कलहं करि।
तत्त पांच पाहुना, भगत चुक्कियै न कित्ती।
नव ग्रह ग्रह फिरि ग्रहे, मुक्कि जीरन ग्रह जित्ती।
सगपन सुनेह सनमंध नहि, लज्ज अम्म धल चुक्कियै।
चित्रंग राव रावर चवै, तत्त पंथ नहि मुक्कियै। छं० ३६१, स० ६६

कुछ रसाचार्यों का कथन है कि 'वीर' पद का प्रयोग युद्धवीर रस में ही होना उचित है परन्तु 'साहित्य दर्पण' पृ० ६० में इसके निम्न चार भेद किये गये हैं —

अथ वीरः......स च दानधर्म युद्धैदयया च समन्वितश्चतुर्द्धास्यात् स च वीरः दानवीरो धर्मवीरो दयावीरो युद्धवीरश्चेति चतुर्विधः।

रस गंगाधर (पृ० ६३-८) में भी इन भेदों को स्वीकार किया गया है।

वीर रस की इस व्युत्पत्ति का आश्रय लेने से हमें रासो के अंतर्गत युद्धवीर के अतिरिक्त दयावीर की निष्पत्ति के प्रमाण भी मिलते हैं।

शूरवीरों के सिरताज महाराज पृथ्वीराज और उनके सामंतगण आदर्श योद्धा थे। उन्होंने हिन्दुओं की आदर्शवीरता की प्राचीन पद्धति और नियमों का अपूर्व पालन किया है। स्त्रियों पर वार न करने, गिरे हुए घायलों और पीठ दिखाने वालों को न मारने आदि के नियमों का यथेष्ठ संयम पूर्वक उनके द्वारा निर्वाह रासो में मिलता है। परन्तु इन सब से बढ़कर जो बात पृथ्वीराज ने कर दिखाई वह भी इतिहास की एक अमर कहानी है। वह है शत्रु को प्राणदान और प्राणदान ही नहीं वरन् ऐसे प्रबल शत्रु को जो कई बार अपमानित और दंडित होकर भी फिर फिर आक्रमण करता था, बंदी बनाने के उपरान्त मुक्त कर दिया और मुक्त ही नहीं वरन् आदर सत्कार के साथ उसे उसके घर भिजवाया। भारत का राजपूत काल ही ऐसी वीरता के नमूने पेश करने में समर्थ है। देखिये —

१. **बंधि साह सुरतान, राज दिल्लीपुर पत्तौ।**
दंड मंडि सु विहान, राज जस जस गुन रत्तौ।
चामर छत्त रषत्त, सकल लुट्टै सुरतानं।
मास एक बर वीर, रष्षि मुक्यौ सु विहानं।
जय जय सुमत्त कित्तिय कवित, ढोला राज नरिंदवर।
सामंत सूर प्रथिराज सम, भयौ न को रवि चक्कतर। छं० २४८, स० १६

२. **मास एक दिन तीन, साह संकट में रुद्धौ।**
करी अरज उमराउ, दंड हय मंगिय सुद्धौ।
हय अमोल नव सहस, सत्त सै दिन ऐराकी।
उज्जल दंतिय अठ्ठ, बीस मुर ढाल सुजक्की।

नग मोतिय मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि।
पहिराइ राज मनुहार करि, गज्जनवै पठयौ सुघरि। छं० १५०, स० २७

२. भाव भगति प्रथिराज नै, कीनी अति महिमान।
इक्क बाज सिर पाव दै, दंडि दियौ सुरतान। छं० १४३, स० २८ और

३. गहिय साहि आलम्म, गए प्रथिराज अप्प ग्रह।
पोस मांस पंचमिय, सेत गुरवार क्त्ति कह।
जोग सकल गहि साह, सज्जि दिल्ली संपत्तौ।
अति मंगल तोरन, उछाह नीसान घुरत्तौ।
दिन तीस रक्खि गोरी गरुअ, अति आदर आसन्न वर
करि दंड सहस अट्ठह सुहय, गय सु सत्त लिय मुक्कि कर। छं० २६६, स०५८

इन स्थलों पर दया का पात्र सुलतान गोरी आलंबन है; उसका बंदीखाने में रहना और उसका रखत बखत लुट जाना उद्दीपन है; उसकी मनुहार करना, उसको नग, मोती, माणिक्य, सिरोपाव आदि देना, आदर करना तथा अच्छे मुहूर्त में उसे उचित व्यवस्था के साथ उसके घर भिजवाना अनुभाव है और हर्ष यश आदि संचारी हैं।

भले ही राजनीति पृथ्वीराज के इस कार्य की भर्त्सना करे परन्तु धर्म नीति इस अंतिम हिन्दू वीर सम्राट के चरित्र में चार चाँद लगा देती है।

रासो में कई स्थल ऐसे आ गये हैं जहाँ वीररस की व्यंजना के अन्तर्गत शृंगार रस सम्बन्धी वर्णन तथा रति विषयक उपमायें पाई जाती हैं। उत्साह और रति दो भिन्न भाव हैं जिनका पारस्परिक विरोध है और यह विरोध इतना तीव्र है कि प्रतिपत्ती रस की उपस्थिति तो दूर उसका संकेत मात्र ही पत्ती की स्थिति में व्याघात पहुँचाता है। रसाचार्यों ने एक स्वर से इनकी मैत्री को ठुकरा दिया है।

पृथ्वीराज की सेना का उत्साह और चढ़ाई वर्णन करते हुए एक स्थल पर आया है कि घुँघरू क्या बज रहे हैं मानो 'भाद्रमास' में मेढक बोल रहे हों या सुहाग क्रीड़ा में स्त्री की कटि की घंटियाँ या पैर के कोई आभूषण घुँघरू आदि बज रहे हों—

जु घूघरं घमक्कयं, कि दादुरं सु भद्दयं।
दुती उपंम मेलयं, सुहागबाम केलयं। छं० ४३ सं० ७

युद्धकालीन धमकनेवाले घुँघरुओं से काम क्रीड़ा के अवसर पर साधारण स्वरों की उपमा बेमेल है तथा रसाभास उत्पन्न करनेवाली है।

पृथ्वीराज की सेना और तैयारी का वर्णन अपने गुप्तचरों से सुनकर (छं० ८०६, स० ६६) दिन रात धावा मारे चले आते हुए सुलतान गोरी का मन दहल गया और शरीर काँप उठा तथा वह व्याकुल मन से मंद गति पूर्वक वैसे ही आगे बढ़ा जैसे नवोढ़ा काम क्रीड़ा गृह की ओर बढ़ती है —

सुनिय बत्त गोरी गरुअ, तन मन कंप्पौ ताम।
चल्यौ मंदगति मन बिकल, ज्यों ग्रेह नऊढ़ा काम। छं०८०४ स० ६६

यहाँ भी गोरी के उत्साह की कमी की प्रतीकता नवोढ़ा के रति विषयक भय से

करने लगना सर्वथा अनुचित है।

इस प्रकार के स्थल कवि की रस निष्पत्ति विषयक अज्ञानता और रसों के पारस्परिक विरोध के अविचार के प्रतिपादक हैं। चंद जैसे उद्भट कवि से ऐसी भूलों की संभावना की दुराशा करते हुए हमें तो यह परवर्ती प्रक्षेपकों का ही कौशल प्रतीत होता है। इन विरोधी रसों के सामंजस्य की परंपरा हमें कई शताब्दियों बाद जायसी आदि कवियों की कृतियों में मिलती है। असम्भव नहीं है कि रासो के ये प्रक्षेप उस समय के हों।

युद्ध प्रधान काव्य होने के कारण रासो में रौद्र रस खोजने का प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। युद्धारम्भ के किसी स्थल पर वह सुलभता पूर्वक देखने को मिल सकता है। युद्ध के अतिरिक्त रासो के कुछ अन्य स्थलों पर क्रोध

क्रोध

की श्रेष्ठ अभिव्यंजना हुई है। उन पर दृष्टिपात करके और कवि कौशल की विवेचना करते हुए हम युद्ध वाले कतिपय स्थलों का अवलोकन करेंगे।

१. समय ६ —

सुलतान गोरी ने पृथ्वीराज के पास अरब खाँ द्वारा संदेश भेजा कि अपने शरणार्थी हुसेन खाँ को निकाल दो क्योंकि वह मेरा अपराधी है (छं० ४३-४)।

अभयदान दिये हुए व्यक्ति को निकालने का प्रस्ताव सुनकर पृथ्वीराज क्रोधावेश से भर गये। देखिये —

संभलिय वत्त प्रथिराज मंत, भ्रिकुटी करूर द्रिग रत्त जंत।
आरत्त मुष्ष स्रुत श्रोन बुंद, कल मलिय कोप रोमंत जिंद। छं० ४५

यहाँ पर सुलतान गोरी आलंबन है, शरणार्थी हुसेन खाँ को निकालने का प्रस्ताव उद्दीपन है और पृथ्वीराज की भृकुटि भंग होना, मुँह और नेत्रों का लाल होना, प्रस्वेद, रोमांच आदि अनुभाव हैं; मद और उग्रता संचारी है।

२. समय २७ —

बीर रोस बर बैर बर, भुकि लग्गौ असमान।
तौ नंदन सोमेस कौ, फिरि बंधौं सुरतान। छं० ५३

शत्रु सुलतान गोरी का आगमन (छं० ५२) आलंबन है। गोरी द्वारा अपने लाहौर के शासक चन्द पुंडीर का उच्छेदन (छं० ५२) उद्दीपन है। और यह वचन कि यदि मैं सुलतान को फिर बन्दी बनाऊँ तभी सोमेश्वर का बेटा हूँ, अनुभाव है।

३. समय ४४ —

पृथ्वीराज ने अपने पिता सोमेश्वर की मृत्यु का बदला भीमदेव चालुक्य से लेने के लिये चंद को उभाड़नेवाला संदेश देकर भेजा (छं० ९८-१०१)। चंद ने उस संदेश के अतिरिक्त इतना और किया कि जाल, नसेनी, कुदाल, दीपक तथा त्रिशूल और ले लिया फिर गुर्जरेश्वर के दरबार में जा पहुँचा। यह आडंबर देख कर भीमदेव ने पूछा कि इस प्रकार के रूप से क्या तात्पर्य है (छं० १०३)। उसने कहा कि पृथ्वीराज का कहना है कि —

एन जाल संग्रहौ, जाम जल भीतर पइयौ।
इन नीसरनी ग्रहौ, जाम अकासह चढ्यौ।
इन कुद्दालै षनौ, जाम पायाल पलट्टौ।
इन दीपक संग्रहौ, जाम अंधारै नट्टौ।
इन अंकुश असि बसि करौं, इन त्रिशूल हनि हनि सिरौं।
जगमगै जोति जग उप्परै, तौं डर प्रथम नरिंदरै। छं० १०३

यदि भीमदेव जल में जावेगा तो इस जाल से पकड़ूँगा, यदि आकाश में जावेगा तो यह नसेनी लगाऊँगा, यदि पाताल में जावेगा तो इस कुदाल से खोद निकालूँगा, यदि अँधेरे में छिपेगा, तो इस दीपक से खोज लाऊँगा, इस अंकुश से उसे अपने वश में करके इस त्रिशूल से हन डालूँगा।

ऐसे उत्तेजित करनेवाले वाक्यों से भीमदेव का क्रोध क्यों न उमड़ता और उसने निम्न करारा जवाब दिया —

जाल ज्वाल करि भसम, करस नीसरनी कट्टौं।
घन भंजौं कुद्दाल, दीप कर पवन झपट्टौं।
अंकुस अंकुर मोड़ि, तिनह त्रिसूल संकोड़ौं।
हनन कहै ता हनौं, जोति जग मछर मोड़ौं।
हौं भीम भीम कंदल करौं, मो डर डंक अचंभ नर।
मम करहु ग्रब्ब धरि लज्ज अब, बित्तक पुब्ब परच्चि पर। छं० १०४
रे डंदर[1] बिड्डाल, कोइ कारन भिर मच्चौ।
रे गिद्धिन सिर हंस, दैव जोगह सिर नच्चौ।
रे म्रग बघ संग्राम, लरै बर अप्पन आयौ।
रे अप्पह सो समर, करै मंडुक जस पायौ।
आचंभ ब्रह्म गति वह नहीं, बार बार तुहि सिष्षियै।
प्रज्जरै झार तरवर गिरह, का दीपक लै दिष्षियै। छं० १०५
बैन बाद सो करै, होइ भट्टह कौ जायौ।
गारि रारि सो भिरै, जे न रस षष्ष[2] न पायौ।
हथ्थ वथ्थ सो भिरै, घरह धन बंधव बट्टैं।
इह सोमेसर बैर, लेहु अप्पन सिर सट्टैं।
तुम कहौ जाई संभरि वयन, इन डिंभन डिंभरु डरैं।
संचयौ दरक हक्कै चरत, सज्ज फटक्कै निक्करैं। छं० १०६

यहाँ पर प्रतिपक्षी पृथ्वीराज आलंबन हैं क्योंकि उन्होंने भीमदेव को ऐसा उग्र संदेश भेजा। उनके वाक्य —

[1] संशोधन :—'डंदर' के स्थान पर 'उंदर' पाठांतर उचित होगा।
[2] संशोधन :—'षष्ष' के स्थान पर 'षड्ग' पाठ वांछित होगा।

...लै चल्लौ नृप भीम कौ, चंगी दोष रसाल।
एक सुरंगी पथ्थरी, इक कंचुकी भुजाल। छं० ९९
...राज भाट सुबर घट भंजि तुअ, सरित चलाऊँ रुधिर की।
धार सिंचि सोमेस कहुँ, तपति बुझाऊँ उअर की। छं० १०० और
...चालुक्क भीम उन सम सुनहु, तुमह जिवावन अब कवन। छं० १०१ तथा

पृथ्वीराज की ओर से चंद द्वारा भीमदेव को कहे हुए वाक्य जो सम्पूर्ण छं० १०३ में हैं, उद्दीपन हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप उपर्युक्त दिये छंदों १०४-६ में भीमदेव के कठोर वाक्य तथा अपने बल का बिक्रम —

...हौं भीम कलह कंदल करौं, मो डर डंक अचंभ नर।
मम करइ प्रब्ब धरि लज्ज अब, बित्तक पुब्ब परच्चि पर...।

अनुभाव है तथा उसके मद, अमर्ष और उग्रता संचारी हैं।

४. एक दूसरा स्थल देखिये। समय ६१ में वर्णित कान्यकुब्जेश्वर के दरबार में कविचंद ने राजा जयचंद की व्यंग्योक्तियों का उत्तर अपने स्वामी पृथ्वीराज के विपुल पराक्रम गर्भित कटु उक्तियों से दिया (छं० ५७८-८५)। जिन्हें सुनकर —

सुनत पंग कवि वयन, नयन श्रुत बदन रत्त बर।
भुवन बंक रद अधर, चंपि उर उससि सास भर।
कोप कलंमलि तेज, सुनत विक्रम अरि क्रंमह।
सगुन विचार कमंध, दिषि दिसि चंद सु पिम्मह।
आदर सुभट्ट राजिंद किय, अंग ऐंडाइ बिसतारि करि।
नन मिलत मोहि संभरि धनिय, कहौ बत्त सुष विरद वर। छं० ५८६

यहाँ कवि के वाक्यों में शत्रु पृथ्वीराज और उनका पराक्रम (छं० ५८४-५) आलंबन है। पृथ्वीराज द्वारा सुलतान गोरी, भीमदेव, मेवाती मुगल आदि राजाओं के मान मर्दन किये जाने का कार्य (छं० ५८५) उद्दीपन है। जयचंद के नेत्र, कान आदि का लाल और भृकुटी टेढ़ी होना, अधरों का दाबना इत्यादि अनुभाव है। शत्रु के विक्रम को सुनकर अमर्ष से कलमलाना संचारी है।

इस प्रकार देखते हैं कि उपर्युक्त छंद ५८६ के प्रथम तीन चरणों में रौद्र रस की निष्पत्ति हो जाती है परन्तु अंतिम तीन चरण उक्त रस की सर्वथा शान्ति का पता देते हैं। राजा जयचंद का रौद्र रूप हो गया परन्तु 'सगुन' विचार करके कमंध ने अपना क्रोध वास्तव में पी डाला और चंद की ओर प्रेम से देखा। फिर राजेन्द्र ने एक लम्बी अँगड़ाई लेने के बाद सुभट्ट का आदर करते हुए कहा कि हे श्रेष्ठ विरुदवाले, यह बात तो बतलाओ कि संभरि धनी मुझसे क्यों नहीं मिलते।

युद्ध स्थल पर वीर, रौद्र और वीभत्स तीनों रस प्रतिफलित होते हुए देखे गये हैं। वैसे रौद्र और वीभत्स को युद्ध वर्णनों के अंतर्गत वस्तुतः मिलाजुला ही समझना चाहिये। देखिये —

सजिय सकल सन्नाह, दाह जनु दंगल पट्टिय।
सुमरि साह इक देव, दुवन दल देषि दपट्टिय।
छुट्टिय पट्टिय नयन, भइ दुंदुभी गयन्ना।
तेग वेग झमझमिय, मच्च आरोठ भयन्ना।
फुल्लह सु धार धर कन्ह बर, कर पर छुट्टिय छह धरिय।
पग सट्ठि नट्ठि भीमंग दल, बल अभूत कन्हा करिय। छं० ६२...
झमकंत सु दंतन असिस झरी, जनु विज्जुलि पब्बत मेघ परी।
उडि धुंधरियं निय छाइ जनं, जनु सज्जिय जुग्ग जुगाद्दिपनं। छं० ६५
बजि डौंरुअ डक्क निसान घुरं, जनु बीर जगावत बीर उरं।
दुअ सेन बलं असियो बरषी, नचि जुग्गनि षप्पर लै हरषी। छं० ६६
जिनमें सिर भार दुझार झरै, बहुरयौ नन पंजर आय परै। छं० ६७ स० ३६

यहाँ सनाह आदि से सुसज्जित होने का उत्साहमय दृश्य वीर रसात्मक है, तेग झमझमाना रौद्र रस तथा पंजर कटना, योगिनियों का खप्पर लेकर नाचना वीभत्स है।

और देखिये—

बज्जे बज्जन लाग दल, उभै हाँकि जांगे बीर।
विकसे सूर सपूर बढ़ि, कंपि कलत्र अधीर। छं० २२६
छुट्टियं हथनारि दुअ दलगोम व्योमह गज्जियं।
उड्डियं आतस झार झारह धोम धुंधर सज्जियं।
छुट्टियं बान कमान पानह, छाह आयस रज्जियं।
निरषंत अच्छरि सूर सुब्बर, सज्जि पारथ मज्जियं। छं० २२७ और
परि सीस हक्कहि धर हहक्कहि अंत पाइ अलुझ्झरं।
उठि उट्टि क्ककसि केस उक्कसि सांइ सुथ्थल जुझ्झरं।
एकेक चंपहि पीठ नंषहि धरनि धर परिपूरयं।
हकियं सुवेगं अलिय महमद करिय द्रग्ग करूरयं। छं० २३१ स० ५८

इस स्थल पर छं० २२६ में युद्ध के उत्साहार्थ बाजे आदि बजना वीर रस व्यंजित करता है, छं० २२७ में दोनों पक्षों से हथनाल, आतसझार, वाण आदि का चलना रौद्ररस का स्रष्टा है और छं० २३१ में शिरों का चिल्लाना, कबंधों का हहकना, आँतों का पैरों में उलझना आदि जुगुप्सा के कारण वीभत्स रस का परिपाक करता है।

इन तीनों रसों की सिद्धि बड़ी लड़ाई समय ६६ के वर्णन में देखते ही बनती है—

मिलै चाय चौहान सुलतान षग्गं, मनो बारुनी छविक्कै बार लग्गं।
उठै हथ्थ हक्कं कहं कूह कालं, जुटै जोध जोद्धं तुटै ताल तालं। छं० ६३२
भए सेल मेलं दुहुं मार मारं, बढी संग लग्गी बजी धार धारं।
सुभट्टं सुपट्टं सुरीसं समेकं, भई सेल मेलं अनी एक एकं। छं० ६३३

परे घाइ अघूघाइ केके न सुद्धं, कटै अद्ध अद्धं कमद्धं कमद्धं।
परे सूर सम्भूक उतंगं सुधारं, अमै व्योम बिम्मान आरम्भ हारं। छं० ६३४...
स० ६६

युद्ध काल में इन तीनों रसों की संसृष्टि के विचार से रासो के सभी युद्ध वर्णन लगभग इसी ढंग के हैं। एक युद्ध काल में तीनों रसों की व्यंजना होने के कारण एक बात और यह परिलक्षित होती है कि इन रसों के स्थायी भावों के परिपाक का कार्य प्रायः आलंबन उद्दीपन या अनुभाव से ही लिया गया है।

जुगुप्सा

रासो में स्वतंत्र रूप से वीभत्स रस के प्रसंग का कोई स्थल नहीं है। युद्ध काल के अंतर्गत वर्णनों में जुगुप्सा की भावना पैदा करनेवाले स्थल आते हैं और रासो के अधिकांश समय एक नये युद्ध के विषय में हैं। ये युद्ध वर्णन प्रायः एक से हैं और लगभग यही हाल ग्लानि पैदा करनेवाले प्रकरणों का है। ऐसे चार छै स्थल उद्धृत किये जाते हैं —

१. भरं सुडं रक्तं सहं अंग डोरं, अवे बद्दली मेघ गेरून धारं। छं० ८८
घुमै मुक्कि सीसं भटं लोह छक्कै, उभै जानि भूतं महा मंत्र हक्कै।
फिरै रुंड बिन मुंड रस रोस राचे, मनो भग्गरं नट्ट विद्या कि नाचै। छं० ८९
परै अश्व हुंतं सिरं जोर सूरं, तुटै षुप्परी हड्ड ह्वै भूर भूरं।
लगै गुर्ज सीसं भजी भंति छुड्डे, मनो भषनं दद्धि मंथान उड्डे। छं० ९०
हुअै छीन छीनं छरी भार छक्कै, भरं रक्त डोरी महा मल्ल हक्कै।
भिरै सख बिन वथ्थ भर भीर भीमं, परैं लोथि जूथं बिनं जीव हीमं। छं० ९१
लरंतं जो दीसे परं तेन कोई, लगे षग्ग षग्गं अमे मल्ल होई।
तुटे दंत दंती कि रष्षा निनारे, मनो कज्जलं कूट तें चंद भारै। छं० ९२
दोऊ कन्न हस्ती चुवै रुद्धि भारी, मनो कूट तैं उत्तरी भूमि रारी।
वहै बान कम्मान मिटि थांन थांन, तहां पंति पंषीय पावै न जानं। छं० ९३
उतै षान गोरी इतै सिंघ राई, मनो वीय सिंघं पलं काज धाई।
चंपै गिद्धि मंसं उडै रुध्धि छुट्टै, मनो रक्त धारा नभं मेघ बुट्टै। छं० ९४स०२३

२. परे हिन्दु मेछं उलथ्थी पलथ्थी, करै रंभ भैरं ततथ्थे ततथ्थी।
गहे अंत गिद्धं वरं जे कराली, मनो नाल कट्टे कि सोभै म्रनाली। छं० १११ स० २७,

३ पत्र भरें जुग्गिनि रुधिर, गिध्धिय मंस डकारि।
नच्यौ ईस उमया सहित, रुंड माल गल धारि। छं० ६६ स० ३६,

४. रुंड मुंड षल षंड भुअ, मचि योगिनि बेताल।
चिल्हिन भष जंबुक गहकि, हर गुंथी गल माल। छं० १८४७
लै चिल्ही अंमिय सुभर, है हर सिद्धी रूप।
वीर सीस चुंगत्त चंपै, गय अधन्न अनूप। छं० १८४८ स० ६१

५. मिली जोगनी जोग नंचै त्रिघाई, फिकारंत फेकी पलं पूरि भाई। छं० २१७१
परै बिब षंड धरं तुंडं तुडं, हकै गिद्धि जाचं परै षोनि मुडं।

सिर वीर आवद्ध नंषै अपारं, नचै नारदं देषि कौतिग्ग भारं। छं० २१७२ स० ६१
दोय दीषे डलं, मेछ हिंदू थरं, एक एकं गरं, झारि बड्ड करं। छं० ११९२
कारिजा कप्फरं, गेन लग्गा बरं, गिद्धि जाला ज्वरं, दोमि नंचे घरं। छं० ११९३
सीस हक्का करं, दंति दंतं सरं, अंत आलुझ्झरं, इभ्भ सोहै परं। छं० ११९४
नाल कट्टै सरं, ढाल पीलं परं, केलि साषा ढरं, वीर सा बिंबरं। छं० ११९५
जानु कट्टै परं, कंध बंधं भरं, ताल बज्जे हरं, सट्टि कंठे तरं। छं० ११९६
पंच पंचं घरं, मुत्ति लद्धी नरं, राइ चामंडरं, बीर गोरी लरं। छं० ११९७
मुत्ति लद्धी भरं, पंथ षोली दरं, रुद्धि नद्दी षलं, पंक पंत्तं पलं। छं० ११९८
साहि साहु गलं, अस्सियं झलझलं। .... छं० ११९९ स०६६

इस प्रकार के स्थल दस पाँच नहीं वरन् पचासों होंगे। युद्ध भूमि में भयंकर वेषवाले योगिनी, डाकिनी, भैरव, भूत, प्रेत आदि के नृत्य और चीत्कार तथा कबंधों का दौड़ना, पलचरों का गाना इत्यादि के कारण बहुधा भय की उत्पत्ति भी हो जाती है और इस प्रकार भयानक तथा वीभत्स रसों का साहचर्य हो जाता है जो रसाचार्यों के अनुसार अनुचित भी नहीं ठहराया गया है।

उपर्युक्त स्थलों में रुंड मुंड अलग हो जाना, अंग छिन्न-भिन्न होना, फेफड़ों का फटना, आँतों आदि का बिखरना, रक्त की धारा बहना आदि आलंबन हैं। गिद्ध, चील्ह और श्रगालों का मांस खाना, आँतें ले लेकर भागना आदि तथा योगिनिओं का पीने के लिये रक्त से अपने खप्पर भरना आदि उद्दीपन है। अनुभावों का पता उनकी अनुपस्थिति ही है, युद्ध रत वीरों और घोड़े हाथियों की मृत्यु व्यभिचारी है।

भय स्वतंत्र रूप से भयानक रस का परिपाक रासो के कई स्थलों पर पाया जाता है। हम कुछ विशेष स्थल विचारणार्थ प्रस्तुत करेंगे —

१. ढूँढ़ कर मनुष्यों को खाने के कारण उस विकराल दानव का नाम ढूँढा पड़ा और उसने सुन्दर अजमेर नगर उजाड़ डाला —

ढूंढि ढूंढि खाये नरनि तातें ढूंढा नाम।
देव पुरी अजमेर पुर, रम्य करी बेराम।

अजमेर के बन में वह दानव बहुत दिनों तक रहा और उसके भय से उस बन की निम्न दशा हो गई —

सो दानव अजमेर वन, रह्यौ दीह घन अंत।
सुन्न दिसानन जीव कौ, थिर थावर जग मंत। छं० ५२६
तहँ सिंह न म्रग्ग न पंषि बनं, दिसि सून भई डर जीव घनं।
नह मातह मंत अमंत कियं, पिय की धरनी रह तंत लियं। छं० ५२७
तहँ ठाम भयानक सोच तयं, तहँ ठाम कलाकल सोधि बयं।
तिहँ ठाम भयं नर नारि नरं तिह ठाम न पंथिय पंथ कनं। छं० ५२८
तिहँ ठाम गजंवर बाजि ननं, तिहँ ठाम न सिद्धय साध कनं।
तिहँ ठाम न दारिद द्रव्य गनं, हिय मात न तात न मोह मनं। छं० ५२९

दानव के भय से उक्त वन में किसी जीव का प्रवेश न था और दिशायें भी शून्य हो गई थीं, यहाँ पर दानव की हिंसक वृत्ति ही आलंबन है। उसकी घोर हिंसकता के आगे मानव और अन्य जीवों की क्या चर्चा सिंह सदृश जन्तु भी पलायन कर चुके थे।

इस विकराल दानव के कृत्यों के उपरांत किंचित् उसके रूप को भी देखिये—रथी के बीच से मुँह से विष की ज्वालायें फेंकता हुआ असुर उठा और उसने मनुष्यों को खाना प्रारम्भ कर दिया —

.. जिन रथी मद्धि ऊठे असुर, धषै ज्वाल तिन मुष विषय।
नर भषय जहां लसकर सहर, मिले मनिष ते ते भषय। छं० ११ स०,१

यह दानव पाँच सौ हाथ ऊँचा था, हाथ में विकराल षड्ग लिये रहता था और मुँह से ज्वालायें फेंका करता था :—

अंगह मान प्रमान, पंच सै हथ्थ उनै केह।
छह ऊँचौ उनमान, विनय लछिछनह विवेकह।
हथ्थ खड्ग विकराल, मुष्ष ज्वालंघन सदृह...। छं० ५८० स० १

इस स्थल पर दानव का भयंकर रूप आलंबन है और उसका असहाय मनुष्यों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर खाना उद्दीपन है। अनुभाव और संचारियों के बिना ही कवि को भय पैदा करने में सफलता मिली है।

२. एक ऋषि की कृपा से चन्द ने बावन वीरों को अपने वश में कर लिया था। उसकी सिद्धि पर सामंतों ने विश्वास नहीं किया, जिसके फलस्वरूप चंद ने उनका आवाहन किया जिससे वे प्रकट होने लगे। परन्तु उनके आते ही आकाश से भयभीत करनेवाला शोर हो उठा, पृथ्वी डगमगाने लगी, दिग्पाल थर्रा उठे, तपस्वियों का ध्यान भंग हो गया, कायर काँप उठे...यथा—

किय जंप जाप सु होमं, आए वीर धीर आतुरयं।
गज्जै गयन गहीर, भय भै भीत सोर आघातं। छं० १५०
धमक्की धरा धम्म धग्मै धरक्की, कठं पिठ्ठ कमठ्ठ पिठ्ठै करवकी।
डिग्गै अडिग्गं सो दिगपाल दस्सं, तरक्कै चकै मुंनि जंनं तपस्सं। छं० १५१
भरक्कै सु बाजं सु बाजं बिछुट्टै, तरक्कैक एक उलट्टै सुलट्टै।
इसो आगमं भौ सु बावन्न वीरं, कपै काइरं धीर रष्यौ सुधीरं। छं० १५२ स०६

इन वीरों के रूप और कृत्य विलक्षण तथा भयप्रद थे —

अनरिति फल काहू करन, किहिकर अनरिति फूल।
दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना वरन अमूल। छं० ५१
संत्त मंत को दिष्षियत, रज मय के दीसंत।
तामस के पिष्षे प्रबल, क्रोध कलह किरतंत। छं० ५२
को इक कुंजर मद बहत, को इक सिंघ स्वरूप।
को इक पन्नग विष गरल, को इक दिष्षित भूप। छं० ५३

ब्रह्म रूप को इक वदत, को इक तापस भेष।
जूप रूप तसकर सुके, छिन में भेष अलेष। छं० ५४
अग्नि ज्वाल तन किन उठत, किन तन बरसै मेह।
चक्र पवन डंडूर के, के तन कंकर षेह। छं० ५५
सुमन वृष्टि केइक करत, के फल अंन रसंस।
रुधिर मंस तन चमकते, आप परस्पर संस। छं० ५६, स० ६

इन वीरों का घनघोर शब्द सुनकर सामंतों का चित्त चमक उठा, और उन्होंने विचारा कि बिना कारण इन्हें बुलाना अच्छा नहीं हुआ —

सुनिय बात बर वीर कौ, चमकौ चित सामंत।
इन आकर्षे कज्ज बिन, किन्नौ अप्प अमंत। छं० १५३, स० ६

इस स्थल पर रूप विरूप, खाद्य अखाद्य भक्षी, भयंकर शब्द करनेवाले वीर आलंबन हैं। दरबार में उपस्थित अनेक लोगों का काँप उठना अनुभाव है। सामंतों के चित्त में शंका आदि पैदा होना संचारी है।

३. अब रात्रि के समय स० ३८ वर्णित यमुना में वरुण के वीरों का भयप्रद रूप देखिये —

अति प्रचंड गहराइ जल, गल गज्जै बल वीर।
स्याम वरन भयभीत दिपि, धीरन छुट्टै धीर। छं० १८
अति उतंग ब्रज्रंग उदित, उर जोति रत्त द्रिग।
अरुन रुधिर नख अधर, वस्त्र नन अस्त्र सस्त्र ढिग।
दसन ऊंच सिर केस, वेस भय भग्गिय पासं।
अति उनाह जम दाह, कौन मंडै जुध आसं।
कल कलह बचन किलकंत सुर, सुर बाजत जनु धुनि धमनि।
हम करत केलि जल संचरत, तुम संमुह कोइ मत अवनि। छं० १६

यहाँ आलंबन और उद्दीपन के सहारे भय की निष्पत्ति निःसन्देह होती है परन्तु सोमेश्वर और उनके सामंतों का इनका कुछ भी भय न करना (छं० २३) और फिर वीरों के युद्ध प्रारम्भ करने पर (छं० २५) उनसे डटकर मोर्चा लेना (छं० २६) भय का नाश कर देते हैं, इसलिये यहाँ पर भयानक रस नहीं समझना चाहिये।

४. समय ६३ —

एक गुफा में सिंघ के धोखे से पृथ्वीराज ने खूब धुआँ करवाया (छं० १५१-२) उस धुयें से अति पीड़ित होकर एक मुनि क्रोध पूर्वक निकले (छं० १५३-४) और उन्होंने श्राप दिया कि जिसने मेरे नेत्रों को कष्ट पहुँचाया हो उसके नेत्र निकाले जावें।

कं अंजुलि कुस पकरि, कहै रिषराज सुनहु सब।
जिहि मो द्रिग दुष्षये, निरा अपराध आय अब।
ता जुग लोचन जोनु, अयन जुग बीतत कढ्ढय।
मन बयन्न नहि टरै, विप्र षिझ्झि षिझ्झि यों रट्टय।

जितिक पीर हम भोगवैं, भूमि लोक अवलोकि इहि।
सत गुनी विरधता होइ चष, चल्यौ चाइ मुनि ईस कहि। छं० १६२

ऋषि द्वारा ऐसा भयंकर श्राप पाकर पृथ्वीराज थर थर काँपने लगे। साथ के सामंत और शूरों के हृदय में त्रास पैठ गया। उनके मुँह कुम्हिला गये। बोल नहीं निकलता था। श्राप के कष्ट से दग्ध हो रहे थे। और राजा पृथ्वीराज न जंगल की ओर और न घर की ओर एक पग रखने में समर्थ थे—

सुनिय वयन्न श्रवन्न, कंपि प्रथिराज थरथ्थर।
जिते सथ्थ सामंत, सूर उर त्रास धरद्धर।
गये वदन कुमिलाय,सक्कि अति अधर अद्ध उध।
बोलत बोल न बनै, सनै संताप साप दध।
रिषि श्राप दाप कौ अंग में, कों ठिल्लै पग एक लगि।
जंगल न जाइ नन जाइ घर, भरि न सरक्कै भूप डग। छं० १६३

ऋषि का क्रोध और उनकी श्राप देने की शक्ति आलंबन है। ऋषि के सामने पृथ्वीराज की असहायता और मुनि का श्राप दे डालना उद्दीपन है। श्राप के भय से पृथ्वीराज का काँपना अनुभाव है। अन्य साथी सूर सामंतों के हृदय में त्रास होना संचारी है।

५. भय पैदा करनेवाले भूत प्रेतों, भैरव और योगिनियों आदि का नृत्य देखिये—

किलकारति भैरव भूत करैं, हलकारत षेतरपाल षरैं। छं० ६३ स० ३६ और
गलै राग गावंत सिंधू सगिंधू, गलै माल जा सूल कन्नैर बंधू।
अगे षेचरं षेतपालं वेतालं, तहां भैरवं नद्द जोगंहि कालं। छं० २६५
दोऊ कक्ष जोग्यंन कर पन्न मंडे, तिनं दर्शनं देषि साहस्स षंडे।
फिरै तिव्वि निष्षी पताका तिरत्ती, लुव जानि लग्गी सुग्रीष्मम्म तत्ती। छं० २६६ स० ६४

यहाँ भूत प्रेत आदिक अपने नाम से भय संचार करनेवाले होने के कारण आलंबन हैं। उनका किलकारना, नाचना और गाना उद्दीपन है। उन्हें देख कर साहस आदि का खंडित होना त्रास पैदा करने के कारण संचारी है।

युद्धकाल में रणक्षेत्र पर अति आमोद प्रमोद से क्रीड़ा करने वाले इन भूत, प्रेत, वैताल, खप्पर में रुधिर पान करने वाली योगिनी, शव भक्षी पलचर, क्षेत्रपाल, विरूपाक्ष रुद्र आदि के रूपों और कृत्यों का वर्णन रासो में बहुलता से पाया जाता है। एक बात इन स्थलों पर यह भी दृष्टव्य है कि भयानक और वीभत्स रसों की सहचारिता हो गई है।

६. निगम बोध में एक शिला के नीचे से प्रगट होनेवाले भीमकाय वीरभद्र का रूप भय की प्रतीति करानेवाला है—

वरंन्नति स्यामं, समंरत्ति कामं, नषं पंडि पीतं, भयं भीमं भीतं। छं० ४२६
जगं जानु रत्तं, हवी जानि लत्तं, कटिं नाभि नीलं, उरं सुभ्र पीलं। छं० ४२७
चषं धूम रूपं, मुषं जोग भूप, भुजा ग्रीव भूरी, सुरं सिद्ध मूरी। छं० ४२८
सिरं सेत नेतं, विरागी पवेतं, रजं ताम नैनं, सु सातुक्क हैनं। छं० ४२९

डकारंत डक्कं, द्रिगं कंप हक्कं, महावीर बल्ली, दया भ्रम्म पल्ली। छं० ४३०

वरं वप्पु जीहं, न को लोपि लीहं, गयं गात गेनं, बुलै चन्द्र बेन। छं० ४३१ स ६६

यहाँ वीरभद्र का रूप निश्चय ही अत्यंत भयंकर है परन्तु उद्दीपन अनुभाव और संचारी न होने के कारण भयानक रस की निष्पत्ति नहीं होती। पृथ्वीराज, सामंतगण या कविचंद, कोई भयभीत नहीं होता। वरन् चंद वीरभद्र के पास जाकर उनका परिचय जानना चाहता है (छं० ४३२)। इस प्रकार वीरभद्र का वेष भयप्रद नहीं वरन् कौतूहल-वर्द्धक मात्र है और इस प्रकार के स्थल अद्भुत रस की चर्चा के विषय हैं।

हास्य

रासो में हास्य रस के स्थल अधिक नहीं हैं। दो एक स्थलों पर जहाँ वाणी और वेष के कारण हास्य संभव हुआ है, नीचे दिये जाते हैं —

१. समय ६१—

चंद वरदाई कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचंद के दरबार में गया और पहुँचते ही उसने महाराज की विरुदावली पढ़ी तथा उसे यह कह कर समाप्त किया कि एक पृथ्वीराज को छोड़कर शेष सभी राजकुल आपके दरबार में आते हैं (छं० ५७१-७)।

सुनत नृपति रिपु को वयन, तन मन नयन सु रत्त।
दिय दरिद्र मंगन घरहु, को मेटै विधिपत्र। छं० ५७८

शत्रु का नाम सुनते ही नृपति (पंग) के तन मन और नयन रक्तवर्ण हो गये और उन्होंने विचारा कि जब दरिद्रता इसे दी गयी है और मंगन (भीख मांगने-वाले) के घर इसका जन्म हुआ है तब विधि का पत्र (लेख) कौन मिटा सकता है। तथा —

रतन बुंद बरषै त्रपति, हय गय हेम सुद्दद।
लग्गि न बुंद सुमग्ग तन, सिर पर छत्र दरिद्र। छं० ५७६

राजा चाहे असंख्य हाथी और घोड़े तथा सुवर्ण दे डाले और रत्नोंकी बूँदें ही क्यों न बरसा दे परन्तु जिसके सिर पर दरिद्रता का छत्र तना है उस पर एक बूँद भी नहीं पड़ सकती।

यह विचार कर जयचंद ने पृथ्वीराज को जंगलराव (भील) और चंद वरदायी को वरद्द (बैल) बनाते हुए निम्न व्यंग्य वाक्य कहे —

'मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगलराव सु हद्द।
बन उजार पशु तन चरन, क्यों दूबरो बरद्द। छं० ५८०

मुँह का दरिद्री और तुच्छ शरीर पाने वाला परन्तु जंगलराव की हद में रहने-वाला, तृण चरने और बन उजाड़नेवाला पशु वरद्द क्यों दुबला हो गया है। चंद ने उत्तर दिया —

चढि तुरंग चहुआन, आन फेरीत परद्धर।
तास जुद्ध मंडयौ, जास जानयौ सबर बर।
केइक तकि गहि पात, केइ गहि डारि मूर तरु।
केइक दंत तुछ त्रिन्न, गये दस दिसनि भाजि डर।

भुअ लोकत दिन अचिरिज भयौ मान सबर बर मरद्दिया ।
प्रथिराज षलन पद्धौ सु षर, सु यों दुब्बरो बरद्दिया । छं० ५८१

चौहान ने अपने घोड़े पर चढ़ कर चारों ओर अपनी दुहाई फेर दी (अर्थात् चारों ओर अपना राज्य स्थापित कर दिया), जिसे अपने को श्रेष्ठ लगानेवाला समझा और बलवान देखा उसके साथ युद्ध किया । शत्रुओं में से किसी ने पत्ते पकड़ लिए किसी ने डालें, जड़ें और वृक्ष पकड़ लिये, किसी ने दाँतों में तिनके दबाकर अपना दैन्य प्रदर्शित किया और अनेकों मारे भय के दसों दिशाओं में भाग गये । भू लोक में उस दिन बड़ा ही आश्चर्य माना गया जब कि श्रेष्ठों और सबलों का मान मर्दन हुआ । इस प्रकार पृथ्वीराज के शत्रुओं ने खर (तृण आदि घास फूस) दाँतों तले दबाने के लिए खोद डाला और बरद्दिया (बैल) दुबला हो गया ।

अपने व्यंग का करारा उत्तर तथा शत्रु की श्रेष्ठता का वैभव सुनकर महाराज जयचन्द ने दूसरे ढंग से आक्षेप किया—

हंस न्याय दुब्बरौ, मुत्ति लम्भै न चुनंतह ।
सिंघ न्याय दुब्बरौ, करी चंपै न कंठ कह ।
म्रग न्याय दुब्बरौ, नाद बंधियै सु बंधन ।
छैल छक्क दुब्बरौ, त्रिया दुब्बरी मीत मन ।
आसाढ गाढ बंधन धुरा, एकहि गहिह हरद्दिया ।
जंगर जुरारि* उज्जर षरन, क्यौं दुब्बरौ बरद्दिया । छं० ५८२ तथा—

पुरै न लग्गी आरि, भारि लद्यौ न पिट्ठ पर ।
गज्जवार गंमार, गही गठ्ठी न नथ्थ कर ।
अम्यौ न कूप भांवरी, कबंहुक सब सेन रुत्तौ ।
पंचधारि ललकारि, रथ्थ सथ्था नह जुत्तौ ।
आसाढ़ मास वरषा समय, कंध न कहौं हरद्दिया ।
कमधज्जराव इम उच्चरै, सु क्यों दुब्बरौ बरद्दिया । छं० ५८३

हंस का स्वभाव मोती चुनने का है उन्हें न पाने से वह दुर्बल होता है, सिंह को हाथी के गले का रक्त न मिलने से उसका दुबला होना स्वाभाविक है, मृग स्वभावतः संगीत प्रेमी होता है और नाद के कारण बंधन तक में जा पड़ता है, अतृप्त वासना से छैला दुबला होता है और मन का प्रेमी न मिलने से स्त्री दुर्बल होती है; आषाढ़ मास में बैल हल चलाने के परिश्रम से दुबला होता है परन्तु अकेले होने के कारण उसे यह भी नहीं करना पड़ता फिर जंगल और खर उजाड़नेवाला बरद्दिया (बैल) क्यों दुबला है ।

नोट—यहाँ पर जयचन्द का संकेत है कि बरद्दिया (बैल रूप चन्दवरदायी) के पास न तो हंस का न्याय है, न सिंह का शौर्य है, न मृग का एक निष्ठा प्रेम है, और न रसिकता आदि ही है । पृथ्वीराज के यहाँ बरद्दिया (वरदायी चंद) अकेला है (अर्थात्

*संशोधनः— 'जुरारि' के स्थान पर 'उजारि' पाठांतर उचित होगा

केवल एक बैल है) और इस अकेलेपन के कारण उसे हल में भी नहीं जोता जा सकता, क्योंकि हल में दो बैलों की आवश्यकता पड़ती है। इससे जयचन्द की उक्ति कि गुण रहित, उजाड़ने के अवगुणवाला और अःर्मी बैल क्यों दुबला है, बड़ी मार्मिक और चुभने वाली है। तथा—

पुरवट खींचना नहीं पड़ता, पीठ पर भार लादा नहीं जाता, गवाँर बोझा ढोनेवाले के हाथ पड़ा नहीं जो गाँठें लादे नथ खींचकर चलाता हो, कूप भाँवरी (रहट) में घूमता नहीं, रथों में जोत कर ललकार के साथ चलाया जाता नहीं, आषाढ़ का महीना है, वर्षा ऋतु है, हल में कंधा देना नहीं पड़ता, कमधज्जराज (जयचन्द) का कथन है कि फिर बरद्दिया (बैल) क्यों दुबला है।

यह सुनकर चंद ने अपनी उक्ति फिर पेश की —

फुनि जंपै कविचंद, सुनौ जयचन्द राजवर।
पुरै आर किम सहै, भार किम सहै पिठ्ठ पर।
नथ्थ हथ्थ किम सहै, कूप भाँवरि किम मंडै।
है गै सुर बर सुधर, स्वामि रथ भारथ तंडै।
बरषा समान चहुआन कै, अरि उर बरह हरद्दिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ सुषर, सु इम दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८४ तथा—
प्रथम नगर नागौर, बंधि साहाब चरिग तिन।
सोझते भर भीम, सीम सोधीत सकल बन।
मेवाती मुगल महीप, सब्ब पत्र जु षद्धा।
ठढ्ढा कर ढिल्लिया, सरस संमूर न लद्धा।
सामंत नाथ हथ्थां सु कहि, लरिकैं मान मरद्दिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ सुषर, यौं दुब्बरौ बरद्दिया। छं० ५८५

फिर कविचन्द ने कहा कि हे श्रेष्ठ राजन् जयचन्द सुनिये, बरद्दिया (बैल) पुरवट क्यों खींचे, पीठ पर भार क्यों लादे, नथ खींचकर क्यों चलाया जाय, रहट में क्यों जुते, स्वामी के रथ को युद्ध में क्यों खींचे, हमारे महाराज के पास ये सब काम करने के लिये श्रेष्ठ हाथी घोड़े हैं, चौहान के पराक्रम की चारों ओर समान वर्षा हो गई है फिर एक तो बरद्दिया को शत्रुओं के हृदय क्षेत्र पर हल से बरहा बनाने का कठिन परिश्रम करना पड़ा और दूसरे पृथ्वीराज के शत्रुओं ने सारा खर दाँतों तले दबा लिया, इसीलिये बरद्दिया दुबला हो गया। तथा—

पहिले नागौर नगर में साहाब (गोरी) बाँधा गया, उसने तृण चर लिया, सोझंते में योद्धा भीम ने हार खाई और सारे बन का सफाया कर दिया, मेवाती मुगल राजा ने सारे पत्ते खा डाले, दिल्लीश्वर के आगे बिना जड़ आदि पकड़े हुए कोई खड़ा न रह सका। सामंतनाथ से युद्ध करके (विपक्षियों) का मान मर्दित हो गया, पृथ्वीराज के शत्रुओं ने खर खा डाला और इसी से बरद्दिया दुबला हो गया।

इस प्रकरण में महाराज जयचन्द के रहस्य गर्भित श्लेषालंकृत व्यंग्य वाक्य, जंगल

राव (१ भील, २ जंगलेश = पृथ्वीराज) और बरद्दिया (१ बैल, २ चन्दवरदायी) आलंबन हैं, तथा मुँह दरिद्र, तुच्छ तन, बन उजार पसु आदि उद्दीपन हैं तथा 'क्यों दुब्बरौ बरद्दिया' संचारी है क्योंकि बैल के दुबले होने के भाव को लेकर ही सारी युक्ति पूर्ण चर्चा चलाई गई है।

चंद के उत्तर में व्यंग का वही रूप रख कर अपनी प्रतिभा से अपने स्वामी के पराक्रम जताने की चेष्टा में पृथ्वीराज के शत्रुओं को पशु रूप देना आलंबन है और इन पशुओं का जंगलेश का सारा बन खा डालना उद्दीपन है, बरद्दिया द्वारा शत्रु हृदय पर बरहा देने का व्यंग्य निर्देश अनुभाव है तथा उस थके हुए बरद्दिया को क्षुधा शांति के लिये खर भी न मिलने का संकेत संचारी है।

इस प्रकार रासो का यही एक मात्र व्यंग्य गर्भित हास्यरस का स्थल है।

२. समय ६४ में युद्ध वर्णन के अन्तर्गत निम्न स्थल आता है —

दुर्गा देवी को गोरी की सेना खदेड़ते और उस सेना को अचानक बिखरते और अचानक समिटते देखकर पृथ्वीराज, चंद और उनके सामंत हँस पड़े :—

द्दिसं अग्ग बढ्ढी सु चढ्ढी पुकारै, लिये लक्करी सेन गोरी निकारै।
लियं लष्ष सेना सुरत्तान सद्धी, रनं राह वाराह वरदाइ बढ्ढी। छं० २६८
हँसै सब्ब सामंत सम राज भट्टं, भई वारही फौज एकं सुबट्टं। छं० २६६

यहाँ पर प्रतिपक्षी सेना का विचित्र और पराधीनता, विवशता तथा जड़ता जन्य चरित्र आलंबन बनकर पक्षी के हास्य का कारण हुआ है।

नोट :—युद्ध भूमि में भूतों, प्रेतों, बैतालों, योगिनियों आदि की प्रसन्नता और किलकारियाँ हास्य नहीं उत्पन्न करतीं, स्थल विशेष के वर्णन के अनुसार वे भयानक और वीभत्स रस की संचारिणी हैं।

समय ४४, छं० १०२ में चन्द का गुर्जर नरेश के पास गले में जाल, नसेनी, कुदाल, दीपक, अंकुश और त्रिशूल लेकर जाना हास्य का उत्पादक नहीं वरन् आश्चर्य का है अतएव अद्भुत रस के अन्तर्गत है। इसी छंद में आया भी है कि —

'इह अचंभ जन देषि, मिल्यौ पेषन संसारह'। तथा
'हो पट्ट चट्ट बोलहु कयन, कहा इहै डंबर सयन'।

अर्थात् उसके अचम्भे में डालने वाले रूप को देख लोग उसके साथ लग गये और दरबार में जाने पर भीमदेव ने पूछा कि इस आडम्बर का क्या अर्थ है।

समय ५८ छं० ६१ में लगभग इसी या इससे भी कुछ बढ़े हुए वेश में दुर्गा केदार भट्ट पृथ्वीराज से मिलने आया। दिन में ही उसके पास सात जलते हुए दीपक, नसेनी, अंकुश, सिर पर सोने का छत्र और उस पर सर्प आदि थे। इस विलक्षण रूप को देखकर हास्य से आश्चर्य की भावना अधिक होने के कारण उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों का विचार रखते हुए अद्भुत रस की संभावना की कल्पना की जा सकती है।

रासो में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले अनेकों स्थल हैं। आप वश मनुष्य का मृत्यु

आश्चर्य — के उपरांत असुर हो जाना और मनुष्यों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर खाना, वीरों का वशीकरण, देवी की सिद्धि और साक्षात्कार, खट्टू बन के खजाने से दैत्य और पुतली आदि का निकलना, मंत्र तंत्र की विलक्षण करामातें, वरुण के वीरों के उपद्रव, वीर गति पानेवालों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न लोक वास, कबंधों का युद्ध आदि ऐसे ही प्रकरण हैं।

निर्दिष्ट कतिपय स्थलों पर हम विचार करेंगे और देखेंगे कि रस विशेष की सिद्धि कहाँ तक सम्भव हो सकी है क्योंकि कवि ने इन सब का वर्णन ऐसा किया है कि मानों ये अघटित घटनायें नहीं वरन् सत्य और साधारण हैं।

१. समय १ —

अजमेर नरेश वीसलदेव चौहान को अपना सतीत्व नष्ट करने के कारण तपस्विनी वैश्य पुत्री ने श्राप दिया कि राजा वीसल असुर होकर नर भक्षण करनेवाला हो। यथा —

पुत्री बनिक सराप दिय, भर पुहकर नर लोइ।
असुर होइ वीसल नृपति, नर पलचारी सोइ।

आश्चर्य का उद्भव यहीं से प्रारम्भ हो जाता है कि क्या ऐसे भीषण वाक्य सार्थक और संभव हैं। परन्तु आगे पढ़ते हैं कि तपस्विनी के श्राप से वीसलदेव की बुद्धि विकृत हो गई (छं० ५०७) और इसी बीच जूते में बैठे हुए सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हुई (छं० ५०८-१०) तथा रथी के मध्य से विष ज्वालायें उगलता असुर निकला जिसने मनुष्यों का भक्षण प्रारम्भ कर दिया।

···जिन रथी मद्धि ऊठे असुर, धषै ज्वाल तिन मुष विषै।
नर भषय जहाँ लसकर सहर, मिलै मनिष तेते भषय। छं० ५११

अतएव मनुष्य के मरने के उपरान्त असुर होने का प्रत्यक्षीकरण करा के कवि ने अद्भुत रस का परिपाक किया है। यहाँ असुर आलंबन है और उसकी उत्पत्ति रथी से होना उद्दीपन है।

इस दानव प्रसंग को किंचित् विस्तार से देखना उचित होगा क्योंकि इस स्थल पर साथ साथ अन्य रसों की भी निष्पत्ति हुई है।

दानव वीसल ने अपने पुत्र सारंगदेव को मारडाला (छं० ५१६)। ढूँढ़-ढूँढ़ कर मनुष्यों को खाने के कारण इस असुर का नाम ढूँढा पड़ा —

ढूँढि ढूँढि खाये नरनि, तातैं ढूँढा नाम।
देवपुरी अजमेर पुर, रम्य करी बेराम। छं० ५१७

आना (अर्णोराज) की माता ने उसे समझाया कि कुमंत्र मत ग्रहण करो। ढूँढ़ा तो मनुष्यों को खाने के लिए ढूँढ़ता है और तुम उनकी सेवा करने के लिए कहते हो :—

पुत्त अमंत जु सिष्यौ, सिष्यौ उरह दहंत।
ढुंढौ नर ढुंढै भषन, तू सेवनह कहंत। छं० ५१८

यह दानव एक दीर्घकाल तक अजमेर के बन में रहा। उसने मनुष्य और सारे जीव जन्तु-पशु पक्षी खा डाले। उसके क्रूर कर्म से दिशायें तक स्तम्भित और शून्य हो गईं (छं० ५२६-३१)। परन्तु आना ने बुद्धि से निर्भयता पूर्वक इस दानव को प्रसन्न कर लिया (छं० ५३२-५१) जिसके फलस्वरूप दानव उसे अजमेर का राज्य देकर आकाश में उड़ गया (छं० ५५२-३)।

ऐसे क्रूर कर्मी असुर को उसके भक्ष्य स्वरूप मानव का प्रसन्न कर लेना भी आश्चर्य-वर्द्धक होने के कारण अद्भुत रस के अन्तर्गत आता है।

आकाश में उड़ता हुआ वह दानव नेमि और हारीफ ऋषियों की प्रेरणा से निगम-बोध में तीन सौ अस्सी वर्ष तक कठोर तप में संलग्न हुआ (छं० ५५४-६८)। असंख्य जीव हत्या के भागी दानव का ऋषियों का आज्ञानुवर्ती होना कौतूहल बढ़ाने में समर्थ है।

निगम बोध में उस तपस्वी दानव की अति महिमा हुई और वह सिद्ध हो गया अनंगपाल की पुत्री की सेवा से प्रसन्न होकर उसने उसको वीर प्रसविनी होने का वरदान दिया (छं० ५६६-७४)। वर देकर ढुँढा काशी की ओर उड़ गया (छं० ५७५)। काशी में उसने अपने अंग काट काट कर हवन कर दिये (छं० ५७६)। उसके अंग प्रत्यंगों से पृथ्वीराज, संयोगिता तथा अन्य सामंतों ने जन्म लिया —

> **दिय वीसल वरदान, कुष्ष उपजै माहाभर।**
> **वीरा रस उत्तान, जुद्ध मंडै न कोई नर।**
> **वीर जोति अवतार, भट्ट जिह्वा तन भारिय।**
> **नयन जोति संजोगि, पत्ति कुल पिता संघारिय।**
> **दिष्षे सु नयन पुहकर प्रसिध, कियो पाप इन ध्रूव करि।**
> **उप्पजै नारि अवि रूप तिन, तेन लिन्न जायै सु घर।** छं० ५८२
> **वर दिन्नौ ढुंढा नरिंद, जाय कासी तट सिद्धौ।**
> **अस्त लियौ अवतार, भट्ट रसना रस पिद्धौ।**
> **सोमेसर परिगह, प्रबंध सित उपने षिति नर।**
> **हुए बीस अजमेर, वियै उप्पने अपर धर।**
> **सोमेस वीर सुत पिथ्थ हुए, ठौर ठौर ऊपजि बलिय।**
> **विधि विधि विनान अवलोकि गति, अवर सूर आये मिलिय।** छं० ५८३

इस प्रकार पापों से अपनी आत्मा का उद्धार करके उसने फिर पृथ्वी पर जन्म लिया और कविचंद ने छंदों में उसका वृत्तांत वर्णन किया —

> **इम आतम उद्धार करि, जनम लियौ भुअ आय।**
> **सो वृतंत कवि चंद कहि, वरन्यो कवित बनाय।** छं० ५७८

इस सम्पूर्ण दानव प्रकरण में अद्भुत, भयानक और वीभत्स रसों का सामंजस्य मिलता है। अद्भुत रस विषयक स्थलों की विवेचना की ही जा चुकी है। दानव के मुँह से विष ज्वालाओं का निकलना (छं० ५११) और पाँच सौ हाथ ऊँचे शरीर वाले उस असुर

का हाथ में बिकराल षड्ग लेने का दृश्य (छं० ५८०) भय का संचार करता है। स्वाभाविक हिंसक वृत्ति वाला दानव आलंबन है और उसका विष ज्वालायें फेंकना तथा खड्ग आदि उद्दीपन है जिससे भयानक रस की उत्पत्ति होती है। अब इस दानव के कर्म पर विचार कीजिये। उसका काम है नर भक्षण (छं० ५११,५१६-७) तथा आना का कहना कि यदि ढुँढा मुझे निगल जावेगा तो मैं अपनी तलवार से उसका पेट फाड़ कर बाहर निकल आऊँगा, जुगुप्सा पैदा करता है परन्तु और सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह स्थल हमें अद्भुत और भयानक रसों की प्रधानता स्वीकार करने के लिये बाध्य करता है। दानव का क्रूर नर भक्षण कार्य इतना बढ़ा कि अजमेर नगर उजड़ गया तब उसने अजमेर के बन को अपनी छावनी स्थिर किया, और कुछ ही समय में वहाँ के हिंसक जीव जन्तु, पशु पक्षी सभी खा डाले जिसके फल स्वरूप उस स्थान के चारों ओर की दिशायें स्तम्भित हो शून्य हो गईं, किसी को उधर जाने की गम्य न थीं। अस्तु देखते हैं कि कवि ने उसके जुगुप्सा पैदा करनेवाले नरभक्षण कार्य को आगे रंजित न कर उसे भयंकर रूप में रँग दिया है, और भी नर भक्षण आलंबन मात्र के आश्रय से बिना उद्दीपन, अनुभाव और संचारी के बीभत्स रस का परिपाक नहीं हो सका है।

रस निष्पत्ति के अतिरिक्त कवि ने इस दानव प्रसंग द्वारा प्रतिपादित किया है कि कामोन्मत्त राजा बीसलदेव ने सत असत का विचार त्यागने के कारण श्राप पाया, सर्प दंशन से उनकी मृत्यु हुई और श्राप के फलस्वरूप वे दानव हो गये तथा मनुष्य भक्षण करने लगे। अपने पुत्र सारंगदेव को भी उन्होंने मार डाला और अपने अजमेर नगर को उजाड़ दिया परन्तु कालांतर में इसकी प्रतिक्रिया हुई और पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित का समय आया। ऋषियों की प्रेरणा से वे तप में संलग्न हुए, तीन सौ अस्सी वर्ष तक तपस्या करने के उपरांत काशी में हवन कुंड में अपने अंगों को काट काट कर डालने के पश्चात् दानव देह से उन्होंने मुक्ति पाई और अनेक वीरों के रूप में अगले जन्म में अवतरित हुए। इस प्रकार तीन जन्मों का लेखा जोखा करने वाला यह अद्भुत प्रकरण यह व्यंगार्थ प्रभाव डाले बिना नहीं रहता कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। राजा की घोर कामान्धता और असत कर्म के कारण उन्हें असुर होना पड़ा, जिस रूप में उनकी सत असत विवेक बुद्धि नष्ट हो गई और उन्होंने अपने एक मात्र पुत्र को भी मार डाला तथा अन्य हिंसक कार्यों में प्रवृत्त हुए फिर घनघोर तपस्या और अंत में आत्म बलिदान ने ही इन्हें मुक्ति प्रदान की। इस वर्णन से ध्वनि निकलती है कि मनुष्य को सत और विवेक पथ का अनुसरण करना चाहिये, तथा यह भी प्रभाव पड़ता है कि उग्र तप और बलिदान या सच्चे प्रायश्चित क्रूर और घोर कर्मों को नष्ट करने में समर्थ हैं।

२. समय ६ में एक ऋषि की कृपा से चंद का बावन वीरों के वशीकरण का वर्णन, इन रूप विरूप गणों के आवाहन और इनके पराक्रम के प्रदर्शन का उल्लेख आदि आलंबन के सहारे विस्मय पैदा करनेवाले स्थल हैं और यही हाल चंद को देवी की सिद्धि तथा समय समय पर उनके द्वारा सहायता प्राप्ति का है।

२. समय २४ धन कथा में नागौर प्रदेश स्थित खट्टू बन के खजाने को जब

पृथ्वीराज खुदवा रहे थे तो एक भयंकर दानव निकल पड़ा (छं० ३६४)। जिसने नाना प्रकार की माया रच कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया (छं० ३६५-६)। देवी की सहायता से पृथ्वीराज ने उसे अपने वशीभूत किया (छं० ४००-११)। देवी ने देव की सारी पूर्व जन्म की कथा बताई (छं० ४१२-२)। वीर ने स्वयं अपना इतिहास कहा और धन निकालने की आज्ञा दी (छं० ४२१-३३)। खोदते खोदते एक पत्थर का घर निकला जिसमें सुवर्ण और हीरे के हिंडोले पर सोने की एक सुन्दर पुतली वीणा बजाती और नाचती हुई निकली —

षोदि थान पाषान, ग्रेह निकस्यौ अचम्भम् ।
हेम हीर हिंडोल, हेम पुत्तरी सुरम्भम् ।
हेम हथ्थ वाजित्र, नृत्य पुत्तरि जरि जंत्रिय ।
इह अचंभ पुत्तरिय, जानि सर जीवन मंत्रिय ।
आलिंग नयन करि सिथल गति, तिहि दिषषत मन नयन रुकि ।
आचंभ चंद देषत भयौ, रंभ कि नृत्यत तार चुकि । छं० ४४७
सुर उद्योत गुरराज तेहि, पुत्तरि दिष्षि अचंभ ।
रति पति मन संमुह धरै, घट सु घटिय आरम्भ । छं० ४४८
कहै चंद गुरराज सुनि, यह माया बल रूप ।
न करि मोह कर गहि सु दुज, मुरछि बहोरिय नूप । छं० ४४६

फिर इस पुतली के कटाक्ष पर चंद और गुरुराम मूर्च्छित हो गये —

मुच्छि पर्यौ कविचंद, मुच्छि दुजराज पर्यौ कल ।
नाच भंग तन भंग, अंष झलमलिय नैन जल ।
उष्ट कंप तन स्वेद, भेद बल बिन कवि किन्नौ ।
चढिय अंग पिंडुरिय, गात सोभत जल भिन्नौ ।
सिथल चरन गति भंग ह्वै, वै बिलास अभिलाष गति ।
जग्गेव मुच्छि दुजराज सब, देव एव चित्रं सुभति । छं० ४५८

यहाँ पत्थर के घर से सोने और हीरे के हिंडोले पर झूलती हुई पुतली का निकलना आलंबन है, उस पुतली का यंत्री बजाना, नाचना और कटाक्ष करना उद्दीपन है, गुरु और कवि की गति शिथिल होना तथा मन का स्तंभित होकर अचम्भे में पड़ जाना अनुभाव है तथा उन लोगों का उसके विषय में तर्क वितर्क करना संचारी है।

इस प्रकरण में पुतली वाले स्थल को छोड़कर अन्य स्थल आलंबन के सहारे आश्चर्यजनक स्थल मात्र हैं, वहाँ उद्दीपन, अनुभाव और संचारी नहीं हैं।

४. मंत्रों तंत्रों की विलक्षण करामातें और मारण, मोहन, उच्चाटन, और वशीकरण आदि विद्याओं के चमत्कार रासो के अनेक स्थलों पर पाये जाते हैं। इनमें अधिकांश स्थलों पर केवल आलंबन से ही काम चलाया गया है और कहीं कहीं अद्भुत रस का पूरा परिपाक भी हुआ है।

५. रासो में युद्ध वर्णन प्रधान है और इस युद्ध काल में ही वीर गति पाने वालों

का भिन्न भिन्न लोकों को प्रस्थान, अप्सराओं द्वारा उनका वरण तथा कबंधों का लड़ना मिलता है। इन विषयों के उदाहरणों की कमी नहीं है। कुछ वर्णन देखिये —

जैत बंध ढहि पर्‌यौ, लष्ष लष्षन कौ जायौ।
तहं झगरी महमाय, देवि हुंकारै पायौ।
हुंकारै हुंकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिन ते अपछरा, लियौ चाहतौ न पायौ।
अवतरन सोइ उतपति गयौ, देव थान विभ्रम वियौ।
जम लोक न शिवपुर ब्रह्मपुर, भान थान भानै वियौ। छं० १०६

सुलख को पैदा करनेवाला लखन जो जैत का सम्बन्धी था मारा गया। देवी महामाया ने उसके शव को हुंकारते और झगड़ते हुए पाया। अपनी हुंकार से उन्होंने लाश से गिद्धों के यूथों को उड़ा दिया। गिद्धों से एक अप्सरा ने उसे लेना चाहा परन्तु न पा सकी। महामाया दुर्गा उसे ले गयीं। आवागमन के बंधन से मुक्त होकर वह ऊपर चला गया और देव स्थानवालों को इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि (वीर लखन) यमलोक, शिवलोक और ब्रह्मलोक न जाकर सीधा सूर्यलोक जाकर सूर्य हो गया अर्थात् सूर्यलोक में स्थान पा गया।

तन झंझरि पावार, पर्‌यौ धर मुच्छि घटिय विय।
बर अच्छर विंट्यौ, सुरँग मुक्के सुरंग हिय।
तिहित बाल ततकाल, सलष बंधव ढिग आइय।
लिषिय अंग विय अथ्थ, सोई बर बंचि दिखाइय।
जनम मरन सह दुअ सुगति, नन मिंट्टै मिंटह न तुअ।
ए बार सुबर बंटहु नहीं, बंधि लेहु सुक्की बधुअ। छं० ११० स० २७

पामार का शरीर झँझरी हो गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अप्सराएँ (स्वर्ग में रहते रहते और देवताओं का वरण करते करते) ऊब उठीं अतएव उन्होंने स्वर्ग का निवास और देव वरण छोड़ दिया (और नीचे मृत्युलोक में युद्धस्थल पर आईं)। एक बाला तुरन्त सुलख के बान्धव (लखन प्रमार) के पास आई और उसके ललाट पर लिखा विधि का विधान पढ़कर सुनाया। (फिर बोली कि) जन्म और मरण साथ ही साथ है परन्तु (वीरों के लिये वे दोनों सुगतियाँ हैं) ये अवश्यम्भावी हैं (मिटनेवाली नहीं हैं) तुम अपनी मृत्यु पर निराश न हो। (जान पड़ता है कि सुलख के बान्धव ने पहले उसके प्रस्ताव का विरोध किया था क्योंकि वह कहती है कि) हे प्रिय, इस बार मेरे प्रस्ताव का विरोध न करो और मेरे समान सुख देने वाली (या सुन्दरी) बधू को स्वीकार ही कर लो।

पच्छै भौ संग्राम, अग्ग अप्छर विच्चारिय।
पुछै रंभ मेनिका, अज्ज चित्तं किम भारिय।
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औथान, सोझतह कंत न पाइय।

भर सुभर परे भारथ्थ भिरि, ठाम ठाम चुप जीति सथ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यौ, सुथिर समौ देषीय नथ। छं० १४४ सं० २७

संग्राम पीछे हुआ उससे पूर्व अप्सराओं ने विचार किया (अर्थात् अगले दिन युद्ध छिड़ने से पूर्व अप्सराओं में कुछ वार्तालाप हुआ)। रंभा ने मेनका से पूछा कि आज तुम्हारा चित्त क्यों भारी है। मेनका ने उत्तर दिया कि आज पहुनाई करने का दिन आया है; पाहुन रथों (विमानों) में बैठकर अन्य स्थानों (देवलोक) को जा रहे हैं; वहाँ (युद्ध भूमि में खोज कर) मैंने अपने कंत को नहीं पाया। श्रेष्ठ वीर योद्धा युद्ध में लड़ भिड़ कर और विजय प्राप्त कर (विजयी इसलिए कि शत्रु को मार कर मरे हैं) स्थान स्थान पर चुपचाप पड़े हैं तथा उधर वाले मार्ग पर (अर्थात् स्वर्ग लोक आदि की ओर) शीघ्रता पूर्वक चले जा रहे हैं। (मेरे लिए) सुस्थिरता की सम्भावना नहीं दिखाई देती (या मेरे लिए सुस्थिरता का समय नहीं दीखता)।

कहै रंभ सुनि मेनकनि, एरहु जिन मत जुथ्थ।
अरिय अनंमति जानि करि, जुति आवें ग्रह रथ्थ।
जुति आवें ग्रह रथ्थ, ब्रह्म शिवलोकहि छंडी।
विश्नलोक ग्रह करै, भान तन सों तन मंडी।
रोमंचि तिलक्कं बसि बरी, इन्द्र बधू पूजन जहीं।
ओपम्म जोग नन हुअ बहुरि, अब तारन बार है कहीं। छं० १४५ स० २७

रंभा ने कहा कि मेनका सुनो, उस जुथ्थ (लाशों के ढेर) में उस (अपने कंत) को मत खोजो, उसे शत्रु के सम्मुख न झुका जानकर ग्रह से रथ जुत कर आया था, ग्रह से रथ जुत कर आया और (उसे बिठाकर) ब्रह्म और शिवलोक छोड़ता हुआ (आगे) चला गया। अब वह या तो विष्णु लोक में वास करेगा या सूर्य के शरीर में अपना शरीर मिला कर शोभित होगा (अर्थात् सूर्यलोक में वास करेगा)। सुन्दर इन्द्रवधू (इन्द्राणी) (प्रसन्नता से) रोमांचित हो (अपने माथे पर) वश में करनेवाला सिन्दूर विन्दु लगाकर उसकी पूजा करने गई हैं। उस वीर की उपमा नहीं दी जा सकती। वैसा कोई न हुआ है और न अवतार (जन्म) लेगा (या उसकी बराबरी के योग्य जन्मा हुआ और कोई नहीं है)।

सिर तुट्यौ रुंध्यौ गयंद, कढ्यौ कट्टारौ।
तहां सुमरिय महमाइ, देवि दीनौ हुंकारौ।
अमिय सद्द आयास, लयौ अच्छरिय उछंगह।
तहां सुभई परतष्षि, अरित अरि कहत कहंगह।
अल्हन कुमार विभ्रम सुन्यौ, रन कि विमानह मनु मन्यौ।
तिहि दरस तिलोचन गंग धर, तिम संकर सिर धर धुन्यौ। छं० २२६७ स० ६१

टूटे सिरवाले कबंध ने हाथियों के बीच में फँसने पर अपनी कटार ले ली थी, देवी महामाया ने स्मरण किये जाने पर हुंकार किया था, आकाश से अमृत ध्वनि हुई और उन्होंने अप्सराओं की गोद से उसे ले लिया तथा वे प्रत्यक्ष हुई...अल्हन कुमार विभ्रम में पड़ गया, अंत में उसने विमान यात्रा मनोनीत की। गंगा को धारण करनेवाले त्रिलोचन ने यह

दृश्य देखा और उसके सिर को अपनी मुंडमाला में डाल लिया।

परयौ होय आजान, बाह त्रयषंड धरन्नी।
जै जै जै अपंत, मुष्ष सब सेन परन्नी।
धनि धनि जंपि सुरेस, सु धुनि नारद उच्चारं।
करिग देव सब किति, बुट्टिठ नभ पुहुप अपारं।
कौतिग्ग सूर थक्यौ सुरह, भइय टगट्टग भुअ भरनि।
आसंस करै अच्छरि सयल, गयौ भेदि मंडल तरनि। छं० १३०१ स०६१

लोहाना अजानबाहु तीन टुकड़े होकर गिरा, उसके गिरने पर सारी सेना के मुँह से जय जयकार निकल पड़ा, इन्द्र धन्य धन्य कहने लगे, नारद ने सुन्दर ध्वनि का उच्चारण किया (नारद ने भी धन्यवाद किया)। उस सूरमा के कौतुक पर देवता स्तंभित हो गये और इस लोक के योद्धाओं की टकटकी बँध गयी। सारी अप्सराओं को बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि वह सूर्य मंडल भेद गया है।

इन तथा ऐसे और स्थलों पर कवि ने जो चित्रण कर दिया है वह हृदय पर प्रभाव डालने वाला अमर चित्र है। इस चित्रण में कवि को ऐसी सफलता मिलने का कारण है। उसके ये वर्णन प्राचीन काव्य परंपरा के अंधानुकरण के आधारभूत नहीं हैं। उस राजपूत काल में क्षात्र धर्म अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। क्षत्रिय को जीवन का मोह न था, मरना उसके लिये खेल था, वीर गति पाना सदैव वांछित था क्योंकि स्वतंत्रता और वीरता के उस युग में उसका चरित्र विशेष निर्माण हो चुका था और जीवन का उज्ज्वल आदर्श स्थिर किया जा चुका था। युद्ध में मारे जाने पर अप्सरायें उसका वरण करेंगी यह पूरी आशा थी तथा स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक, सूर्यलोक में स्थान पाने का उसको पूरा विश्वास था। रासो के अनेक स्थलों पर इन विचारों का उद्गार पाया जाता है। अतएव अप्सराओं द्वारा वरण तथा भिन्न लोकों में सुनिश्चित बास का विधान कवि कल्पना अथवा काव्य परंपरा मात्र नहीं थी वरन् यह था राजपूत शौर्य काल के लोक प्रसिद्ध आशा और विश्वास का चित्रण। यही कारण है कि ये चित्र इतने सफल और इतने आकर्षक बन पड़े हैं।

हम देखते है कि कवि ने एक अवास्तविक घटना को चिरंतन और सत्य रूप दे दिया है। अघटित घटना को घटाकर कवि ने अद्भुत व्यापार मात्र की सृष्टि ही नहीं की है वरन् साथ ही उसने अपनी काव्य कुशलता का भी परिचय दे डाला है।

आधे अंग और कबंध युद्ध के दो उदाहरण दिये जाते हैं। यहाँ पर स्मरण रखना होगा कि असाधारण वीरों के कबंध ही लड़ते थे तथा अपने प्रतिपक्षियों पर ही वार करते थे।

समय ६१, कन्नौज युद्ध में महाराज जयचंद की विशाल चतुरंगिणी सेना का सबसे पहले मोर्चा रोकनेवाला पृथ्वीराज का सामंत लंगरीराय था। लंगरीराय को पृथ्वीराज ने अपना आधा वेश, आधा आसन और आधा ताम्बूल दे रखा था। वह बड़ा ही पराक्रमी और शूरवीर सामंत था। उसके मोर्चा लेते ही विकट युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध काल में

जयचंद के प्रधान सुमित्र के वार से उसका शरीर चिर कर आधा आधा हो गया। फिर आधे धड़ का तो कहीं पता नहीं लगा परन्तु दूसरे आधे धड़ ने तलवार से वह मार मचाई कि जयचंद की तीन लाख सेना का सफाया हो गया। देखिये —

अद्ध सु अंग इह कहां दिट्ठ, तरवारि झपट पारंत रिट्ठ।
मुह मुह चमक्कि दामिनि झपट्टि, त्रय लष्ष घटा लीनी लपट्टि। छं० ९९१
किलकिका नाल छुट्टी अवाज, लै चली लंग पर महल साज।
दस कोस परे गोला रनक्कि, परि महल कोटि गज्जी धनक्कि। छं० १००३
संजमह सुअन लै चली रंभ, सब लोक मद्धि हुऔ अचंभ। छं० १००४ तथा—
एक जुद्ध लंगरिय, आय चौकी सम जुव्यौ।
एक अंग लंगरिय, तीन लष्षह हथ षुव्यौ।
सार सार उछरंत, परी गिद्धारव भष्षन।
गज बाजित्र निहाव, बज्जि उत्तराधि दष्षिन।
इम भिर्‌यौ लंग पंगह अनी, हाय हाय मुष फुट्टयौ।
हल हलत सेन असि लष्ष दल, चौकी चौरंग जुट्टयौ। छं० १००६।

अब समय ६६ वर्णित और भी विलक्षण कबंध का युद्ध देखिये। वीर अल्हन कुमार ने अपना सिर काट कर पृथ्वीराज को दे दिया और उसके धड़ ने महा विकराल युद्ध मचाया —

तब झुकि अल्हन षग्ग गहि, भयौ अप्प बल कोट।
सिर अप्पौ कर स्वामि को, हनों गयंदन जोट। छं० २२८४
करी पैज अल्हन, कुमार रुद्धौ षग षुल्लै।
झरतु धार तन चार, भार असिवर नन डुल्लै।
रोहन नन मुंडयौ, वीर बर कारन उट्ठौ।
जनु अषाढ घन घोर, सार धारह निरछुट्ठौ।
पंगुरा सेन ऊपर उभरि, उभै भयन गज मुष दिय।
उच्चरै देव सिव योगिनिय, इह अचिज्ज सें राज किय। छं० २२८५
महमाइ आइ चितीस आल, जंप्यौ सु मंत्र देवी कराल।
आश्रम्म देवि किय निज्ज धाम, कट्टयौ सीस निज हथ्थ ताम। छं०२२८६
मुक्कयौ सीस निज अग्ग राज, हुंकार देवि किय निज्ज गाज।
धायौ सु धरह बिन सीस धार, संग्रह्यौ बांह बामै कटार। छं० २२८७
उच्छयौ षग्ग बर दच्छ पानि, संमुहौ धीर धायौ परानि।
कौतिग्ग सब्ब देषंत सूर, दिष्यौ न दिट्ठ कारन करूर। छं० २२८८

इन स्थलों पर वीरों द्वारा भिन्न भिन्न लोकों को प्रस्थान, अप्सराओं द्वारा उनका वरण और कबंध युद्ध के वर्णनों में क्रमशः भिन्न भिन्न लोकों के विमान, अप्सरायें और चलते फिरते कबंध आलंबन हैं, तथा विमानों का वीरों को ले जाना, अप्सराओं का वरण

और स्पर्द्धा तथा इन कबंधों द्वारा घमासान युद्ध उद्दीपन है। अन्य योद्धाओं द्वारा ये कौतुक अनिमेष देखे जाना अनुभाव है तथा तर्क, भ्रान्ति और हर्ष संचारी हैं।

निर्वेद

वीर गाथा काव्य होने के कारण रासो में शुद्ध शांत रस का प्रायः अभाव ही पाया जाता है। और वीर रस का विरोधी होने के कारण भी निर्वेद व्यंजना के लिये प्रस्तुत काव्य में उपयुक्त स्थल नहीं है।

"काव्य प्रकाश में शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद माना गया है। मम्मटाचार्य का मत है कि जो तत्त्वज्ञान से निर्वेद होता है वह स्थायी भाव है और जो इष्ट के नाश अनिष्ट की प्राप्ति के कारण निर्वेद होता है, वह संचारी है। नाट्य शास्त्र में शान्त रस का स्थायी भाव शम माना गया है।

साहित्य दर्पण में शांत रस की स्पष्टता करते हुए कहा है —

न यत्र दुखं न सुखं न चिन्ता न द्वेष रागौ न च कोचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनिन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शम प्रधानः॥

अर्थात् जिसमें न दुःख हो, न सुख हो, न कोई चिंता हो, न राग द्वेष हो और न कोई इच्छा ही हो उसे शांत रस कहते हैं। यहाँ शंका हो सकती है कि यदि शांत रस का यह स्वरूप मान लिया जाय तो शान्त रस की स्थिति मोक्ष दशा में ही हो सकेगी और उस दशा में विभावादि का ज्ञान होना असंभव हो जायगा। फिर विभाव, अनुभाव, संचारी आदि के कारण शांत रस की सिद्धि किस प्रकार मानी जा सकती है। इसका समाधान यह किया गया है कि वियुक्त और युक्त वियुक्त दशा में जो शम रहता है वही स्थायीभाव होकर शांत रस में परिणत हो जाता है और उस अवस्था में विभावादि का ज्ञान होना भी संभव है। यहाँ मोक्ष दशा या निर्विकल्प समाधि का शम अभीष्ट नहीं है।

शांत रस में जो सुख का अभाव कहा गया है वह विषय जन्य सुख का अभाव है न कि सभी प्रकार के सुखों का अभाव। क्योंकि —

यच्च काम सुखं लोके, यच्च दिव्य महत्सुखम्।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम्।

अर्थात् संसार में जो विषय जन्य सुख हैं तथैव स्वर्गीय महासुख हैं। वे सब मिलकर भी तृष्णाक्षय (शान्ति) से उत्पन्न होनेवाले सुखों के सोलहवें अंश के समान भी नहीं हो सकते। अतएव शम अवस्था में सुख अवश्य होता है और वह अनिर्वचनीय होता है।"
काव्य कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० २२६-३०

उपर्युक्त विवेचना के दृष्टिकोण को सामने रख कर हम रासो के शांत रस विषयक स्थलो का निरीक्षण और निरूपण करेंगे।

समय ६४ में युद्ध काल के अनन्तर शिव और पार्वती जी का वार्तालाप देखिये—

जिहि जीवन कारन जगत, बंछै लोक विचार।
करै सुध्रम्म सुकम्म अति, किम तजि छत्रिय सार। छं० ३११

तापस नष्ट अतोषौ, संतोषो नष्ट नरपति।
लज्जा नष्टति गनिका, अनलज्जा नष्ट कुल जाया। छं० ३२१[1]
धरा सहित नंषै सुधर, सीस जाय धर जीय।
मरन सीस लीनै वहै, कुला क्रम्म षत्रीय। छं० ३१३
कोन मरै जीयै कवन, कोन कहां विरमाय।
प्रानी वपु तरु पंषिया, तरु तजि अन तरु जाय। छं० ३१४[2]
ज्यों जीरन परधान तजि, नर जन धरत नवीन।
यों प्रानी तजि कायपुर, और धरै वपु भीम। छं० ३१५[3]
कबहूँ जीव मरै नहीं, पंच तत्व मिलि भेद।
पंचौ पंचन में समैं, जीव अछेद अभेद। छं० ३१६[4]
अछेद अभेद अषेद अपार, अजीत अभीत अप्रीत अमार।
अमोल अभोल अतोल अभंग, अकंज अगंज अलुंज अभंग। छं० ३१७
असेष अभेष अलेष अवीह, अरेष अभेष अद्वेष कबीह।
अमान अभान अजान अलिप्त, अचान असान अवान असिप्त। छं० ३१८
कर्म वस्य नरं जीवं, जं कर्म क्रियतं सो प्राप्ति।
कर्म सुभं च असुभं, कर्म जीव प्रेरकं प्रानी। छं० ३१९
न मे न बध्यते कर्म, कर्मे न बंध प्राप्तिकः।
यं कर्म क्रियते प्रानी, सो प्रानी तत्र गच्छति। छं० ३२०

उपर्युक्त छंदों में छं० ३१४-६ में जन्म मरण की व्याख्या है। छं० ३१७-८ में जीव या आत्मा का (संभवतः माया आदि प्रपंचोपशम से) निराकार अद्वैत ब्रह्म रूप में निरूपण है तथा छं० ३१९-२० में जीव के जन्म का भेद उसके कर्मों को ठहराया गया है। भूलना न होगा कि इस वर्णन में कवि की व्याख्या शास्त्रानुगत है या वेदांत ग्रन्थों का कहीं कहीं अविकल अनुवाद सा है।

नोट—रासो के ये छंद संस्कृत के निम्न श्लोकों के या तो हिंदी रूपान्तर हैं या बहुत कुछ उनके अनुरूप हैं :—

[1] असन्तुष्टो द्विजो नष्टः सन्तुष्टस्तु नराधिपः।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा तु कुलांगना।

[2] एक वृक्षे यथा रात्रौ नाना पक्षिसमागमः।
प्रातर्दशदिशो यान्ति तद्वद्भूत समागमः। ६-३६ चाणक्य राजनीति शास्त्रम्।

[3] वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। २२-२
श्रीमद्भगवद्गीता।

[4] संभूतः पंचधा कायो यदि पंचत्वमाप्नुयात्।
कर्मभिः स्वात्मचरितैस्तत्र का परिदेवना। ६-५६। चाणक्य राजनीति शास्त्रम्

यहाँ पर कर्मानुसार जन्म पानेवाले जीव (आत्मा) को नाना प्रकार के शरीर धारण करनेवाला ठहरा कर उस आत्मा और परमात्मा का एकीकरण करके ब्रह्म रूप की व्याख्या आलंबन है जिसके सहारे वक्ता की यह प्रतिपादित करने की चेष्टा है कि जीवन का मोह व्यर्थ है, शरीर मरण धर्मा है। केवल इसी विचार, इसी तथ्य, इसी तत्वोपदेश और इसी दृढ़ धारणा के लिये भारतवर्ष के ऋषि मुनियों ने जीव के मोक्ष के सदुद्देश्य से वेदों, अरण्यकों, ब्राह्मणों और उपनिषदों में बारंबार इसी ध्रुव सत्य को दोहराया है। श्रीमद्-भगवद्गीता में भी इसी निश्चय का बोध कराने के लिये नये और सरल तर्कों का आश्रय लिया गया है। यह उपदेश संसारोचित वैराग्य के उपरांत जीव को आवागमन के बंधन से छुड़ाकर मोक्ष दिलाने का प्रसाधन है। यह भाव विरक्ति अवस्था या निर्वेद से आगे एकनिष्ठा या शम बुद्धि करने में समर्थ है और इसी की व्यंजना को हमारे प्रधान रसाचार्यों ने शान्त रस का स्थायीभाव माना है। अस्तु, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस स्थल पर शुद्ध शान्त रस का परिपाक हुआ है। शांत रस के प्रसंग को लेकर हम रासो के दो अन्य स्थलों पर विचार करेंगे। एक तो ढुंढा दानव की कठोर तपस्या और दूसरे दिल्ली के राजा अनंगपाल का वैराग्य —

रासो के स० १ में ढूँढ़ ढूँढ़ कर मनुष्य खाने वाले ढुंढा दानव की कालांतर में अपने क्रूर कर्मों के संस्मरण से प्रायश्चित करने की तीव्र भावना और पापों से मुक्ति के विचार का उदय (छं० ५६३) तथा नेमि और हारीफ ऋषियों की प्रेरणा से उसकी कठोर तपस्या में प्रवृत्ति, निर्वेद के विधायक प्रतीत होते हैं।

परन्तु भयानक और क्रूर कर्मों से विराग करके तपस्या और भगवद्भजन में आसक्ति करना, जिसके फलस्वरूप दानव के पापों का क्षय हुआ और उसे असुर रूप से मुक्ति मिली, शांत रस के पोषक नहीं हैं। दानव की घोर तपस्या जीवन्मुक्त होने के लिये नहीं वरन् मानव जन्म पाने के लिये थी। देखिये —

सुप्रसन्नह देषित ईत तनं, नर रूप धरन्न कियौ सुमनं।
तुअ पुत्रह पौत्र बधू उरनं, जन मानस राज करों धरनं। छं० ५५२

उसने ऋषि से अपने शरीर को पापों के ताप से दग्ध होता बतला कर अपने उद्धार का उपाय पूछा। तब ऋषि ने कहा कि हे राजन्, बिना तपस्या के (या तपस्या के बिना राज्य) अन्न, धन, सुत, दारा नहीं मिलेंगे। यथा —

तब मुनिवर हँसि यों कहिय, बिन तप लहिय न राज।
अन धन सुत दारा मुदित, लहौ सबै सुष साज। छं० ५६४

इससे भी दानव की इन भौतिक भोगों की वांछना लक्षित होती है।

अपने अंगों को काशी में हवन करने पर उसे शिव का साक्षात् हुआ और उसने उनसे भी अपने शरीर से १० पुत्रों का जन्म माँगा (छं० ५७६)। अंत में कवि का कहना है कि इस प्रकार अपनी आत्मा (यहाँ शरीर) का उद्धार कर उसने भूलोक में जन्म पाया।

शांत रस का स्थायीभाव निर्वेद (वैराग्य) या कुछ आचार्यों के अनुसार शम

(एकनिष्ठा बुद्धि) है जिसका उद्देश्य आवागमन के बंधन से मुक्त होना है न कि ढूँढा की भाँति जन्म में पड़ना। यदि मानव जन्म लेने की भावना के स्थान पर आत्मोद्धार का निश्चय होता (जो कि शरीरोद्धार मात्र ही होकर रह गया) तो परमात्म चिंतन (छं० ५६५, ५६७) के आलंबन, गंगा, यमुना, निगमबोध तथा नेमि और हारीफ ऋषियों के आश्रमों के दर्शन (छं० ५५४-६१) से उद्दीपन, तथा प्रसंगानुसार संसार भीरुता से अनुभाव और निर्वेद से संचारी भाव लेकर शांत रस का परिपाक होना अवश्यम्भावी था।

रासो का दूसरा स्थल है समय १८ वर्णित दिल्ली नरेश अनंगपाल के वैराग्य का। इस वैराग्य के कारणों पर विचार करना आवश्यक होगा —

अपनी वृद्धावस्था में अनंगपाल तोमर ने एक रात्रि स्वप्न देखा कि सारे तोमर दक्षिण दिशा को जा रहे हैं (छं० १५)। फिर दो घड़ी रात्रि रहते दूसरा स्वप्न देखा कि यमुना तट पर एक सिंह क्रीड़ा कर रहा है। उसी समय एक दूसरा सिंह यमुना पार से तैर कर आया दोनों सिंह मिले और स्नेह पूर्वक क्रीड़ा करने लगे। फिर हाथ मिलाकर आमने सामने बैठ गये। यह देखने के उपरांत नींद टूटी और सबेरा हो गया (छं० १७)। दूसरे दिन दैवज्ञ को बुलाकर राजा ने अपने स्वप्नों की चर्चा की (छं० १८)। उसने विचार किया और कहा कि दिल्ली में चौहान का अधिकार होगा, जैसे तुमने सिंह को आते देखा था वैसे ही तोमरों को वह मिलेगा, यदि तुम अपना उद्धार चाहो तो तपस्या करके स्वर्ग की साधना करो, तोमरों का अतुल विनाश होनेवाला है (छं० १९)। सारे भविष्य पर विचार करके अनंगपाल ने अपने पुत्री के पुत्र चौहान को दिल्ली देने और कीर्ति प्रकाशित करने का मन में विचार किया। यथा —

सवै भविष्य विचारि मन, पुत्रि पुत्र चहुआन।
तिहि अप्पौं दिल्ली सुदत, पसरै कित्ति प्रमांन। छं० २०

तथा विचारा कि बाल्यकाल से युवावस्था आई और उसके व्यतीत होने पर मैं वृद्ध हो गया, यह समय है कि एकान्त में परब्रह्म में चित्त लगाया जाय; संसार में पुत्र भूमि का रक्षक, शत्रुओं का नाशक, वंश का विस्तारक और कीर्ति का प्रस्तारक होता है; अब योग की युक्ति करूँगा और हरि से मुक्ति का भोग माँगूगा तथा पृथ्वी अपनी पुत्री के पुत्र को दे दूँगा। यह विचार उसने मन में धारण किया। यथा —

बालप्पन पन ज्वांन, गतह व्रिद्धप्पन आयौ।
एक समे एकत, चित्त परब्रह्म लगायो।
पुत्र होइ ससार, भूमि रष्षै षल षडै।
बढै बंस विसतार, कित्ति दसहूं दिसि हंडै।
अब करों जोग जंगम जुगति, भुगति मुगति मंगो हरिय।
पुत्तीय पुत्त अप्पौं पुहुमि, इम चिंतन मन में धरिय। छं० २१

मंत्रियों ने राजा को विपरीत सलाह दी और भूमि न छोड़ने का प्रस्ताव रखा (छं०-२२-३२) परन्तु राजा ने (छं० २१ के वैराग्य विचार पर दृढ़ रहकर) निम्न पत्र अजमेर भेज दिया —

स्वस्ति श्री अजमेर द्रोन दुरगे, राजाधिपो राजनं ।
पुत्री पुत्र पवित्र पथ्थ अधनौ, षिश्री सबं ता बनं ।
मा वृद्धा इह वृद्ध तप्प सरनं, बद्री निवर्तं तनं ।
आभूमं पुर ग्रांम हय गय समं, संकल्पितं त्वार्थयं । छं० २

मैं वृद्ध हो गया हूँ और तपस्या की शरण लेने के लिये बद्रिकाश्रम जा रहा हूँ तथा पुर, ग्राम, घोड़ों, हाथियों सहित यह पृथ्वी तुम्हारे लिये संकल्पित कर चुका हूँ ।

अस्तु, देखते हैं कि अपने स्वप्न का फल भविष्यवाणी के अनुसार दृढ़ करने और दैवज्ञ कथित तपस्या द्वारा स्वर्ग साधना के उपदेश के कारण अनंगपाल के हृदय में त्याग और कीर्ति का भाव आया । फिर उन्होंने निश्चय किया कि मैं योग साधना में लग कर हरि से मुक्ति का भोग मागूँगा, मोक्ष प्राप्ति की साधना वैराग्य मूलक है और बिना राज-पाट का त्याग किये उस पथ का अनुगमन करना प्रायः असंभव है इसीलिये दिल्ली दान का विचार मन में आया और दान सत्पात्र को देने का संकल्प कर अपने दौहित्र पृथ्वीराज चौहान की ओर उनका ध्यान गया । इस प्रकार शांत रस की निष्पत्ति की प्रतीति होती है ।

परन्तु एक व्यवधान शेष है और उसका निराकरण आवश्यक है । राजा अनंगपाल के हृदय में प्रबल वैराग्य भावना ने अपनी नींव जमा दी । उस वैराग्य की प्रबलता यही थी कि अंत में वह विजयी हुआ और राजा अनंगपाल अपना राजपाट पृथ्वीराज को सौंप कर चल दिये । लेकिन स्वप्न देखने से पूर्व उन्हें अपनी वृद्धावस्था, एकांत में ब्रह्म चिंतन, योग साधना और मुक्ति का बिलकुल ही ध्यान नहीं आया । यह तो स्वप्न देखने और दैवज्ञ द्वारा उसका फल जानने के बाद आगामी भविष्य को भलीभाँति टटोल लेने के पश्चात् विचक्षण बुद्धि के व्यापार से प्रत्यक्ष हुआ था । ज्योतिषी के अनुसार स्वप्न फल यह था—

...तप सद्धि तुमह सद्धौ सरग, जो इच्छ्यो उद्धन अपन ।
तूंअर विनास अग्गह अतुल, सब भविष्य कारन सुपन । छं० १६

यदि तुम अपना उद्धार करने की इच्छा रखते हो तो तप सिद्धि द्वारा स्वर्ग की साधना करो, तुम्हारा स्वप्न भविष्य में घटनेवाले व्यापार का कारण स्वरूप है ।

अतएव इष्ट के नाश (अर्थात् तोमर कुल का विनाश और चौहान के दिल्ली के निश्चित अधिकारी होने के कारण राज्य का नाश तथा राज्य नाश से प्रतिष्ठा, गौरव, स्वाभिमान सभी का नाश) से विवेचित अनिष्ट की प्राप्ति संभाव्य देख कर निर्वेद (वैराग्य) ने जन्म पाया । श्री मम्मटाचार्य का मत है कि ऐसा निर्वेद स्थायीभाव नहीं होता वरन् संचारी कहलाता है । अनंगपाल का निर्वेद भी स्थायी नहीं था क्योंकि आगे समय २८ में पढ़ते हैं कि स्वजातीय तोमरों का अपमान आदि बद्रिकाश्रम में सुन कर उन्होंने पृथ्वीराज से अपना राज्य वापस ही नहीं माँगा वरन् युद्ध किया तथा पराजित हुए । अस्तु, आचार्य के मतानुसार हम प्रस्तुत वैराग्य प्रकरण को शांत रस का विधायक नहीं समझते ।

रति — रासो में जैसी प्रधानता वीर और रौद्र रसों की पाई जाती है, बहुत कुछ वही हाल शृंगार का है। वीर स्वभावतः रति प्रेमी पाये गये हैं।

किसी की रूपवती कन्या का समाचार पाकर अथवा कन्या द्वारा उसे अपने माता पिता की इच्छा के विपरीत आकर वरण करने का संदेश पाकर, उक्त कन्या का अपहरण कर उसके पक्ष वालों से भयंकर युद्ध और इस युद्ध में विजय प्राप्त करके कन्या का पाणिग्रहण तथा प्रथम मिलन आदि के वर्णनों में हमें वियोग और संयोग के चित्र मिलते हैं। नायक और नायिका के परस्पर श्रवण मात्र से अनुराग और तज्जनित वियोग कष्ट के वर्णन काम पीड़ा के प्रतीक हैं। संयोग के अनंतर वियोग का वर्णन आचार्यों द्वारा स्वीकार किया गया है, परन्तु संयोग से पूर्व ही वियोग का कष्ट वांछित प्रेमी या प्रेमिका को प्राप्त करने में बाधायें और कामोत्तेजना को लेकर ही पैदा होता है। वैसे ऊषा अनिरुद्ध और नल दमयंती के प्रेम की काव्य परंपरा का पालन भी रासो में कवि द्वारा संभव प्रतीत होता है।

विवाह के पूर्व और उपरांत सुन्दरी राजकुमारियों के नख शिख वर्णन और फिर उनके साथ काम क्रीड़ा और सहवास के वर्णन यद्यपि शृंगार रस के ही अन्तर्गत हैं परन्तु इनमें वस्तु स्थिति का संकेत द्वारा निर्देश न करने के कारण कहीं कहीं अश्लीलत्व दोष भी आ गया है। यह रतिभाव क्या है? केवल उद्दाम वासनाओं का नग्न चित्रण। इन स्थलों को पढ़ते ही उस युग की विलासिता का चित्र सामने आ जाता है। इस रति भाव को लेकर नख शिख तथा षट् ऋतु आदि के यद्यपि सूक्ष्म परन्तु विस्तृत और कुशल वर्णन कवि ने किये हैं जिन पर रासो के वस्तु वर्णन प्रकरण में यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका है।

रासो में नायिका भेद को सामने रख कर चित्रण नहीं किये गये हैं परन्तु वर्णनों के बीच स्वाभाविक रूप से हमें अनेक नायिकायें दिखाई पड़ जाती हैं। देखिये—

चित्ररेखा (वेश्या) को सुलतान गोरी ने बड़े आदर और प्रेम से अपने महल में लाकर रख लिया। उसके प्रेम के वह इतना वशीभूत हो गया कि अपनी सारी स्त्रियों को छोड़ कर अहर्निशि उसी के साथ महल में रहने लगा—

जिम जिम साह सु आदरिय, तिम तिम बढ्ढिय प्रेम।
क्रम क्रम फल गुन बद्ध इय, बेली नमैं सु तेम। छं० ३१
बसि कीनो सुरतान, चंग जिम भ्रमै डोरि कर।
ज्यौं भावी बसि लाइ, वचन उद्योत बाल सुर।
ज्यौं बसि जीवन मंन, प्रात बसि जेम कंम्म गुर।
ज्यौं बसि नाद कुरंग, बास बसि जेम मधुक्कर।
महिला सु मुक्कि सब बस्सि भय, महिला महिल सु मत्ति बसि।
एकंग एक अंदर महल, रहै साहि सुरतान रसि। छं० ३२, स० ७

इसे हम स्वाधीनपतिका परकीया नायिका कहेंगे।

ज्ञातयौवना, विश्रब्ध नवोढ़ा, स्वकीया हंसावती और पृथ्वीराज का प्रथम मिलन देखिये—

अगह गहन रमि रमन, रवन रमि रवन सु छुट्टिय।
दहिय वदन सहि रहिय, सरस रस सौर सु लुट्टिय।
महिय लहिय नहिं नहिय, हइय हय हइय यथा हह।
सहिय सेज कह कहिय, चंपि चिंचनिय संग थह।
कामंध अंध मुद्धह वृषभ, अमन अमावह तिलक सन।
इह अर्थ सर्थ जानम सुगह, अगह सुगद्धन मन हसन। छं० २३१ स० ३६

कनौज में प्रातः काल गंगा तट पर राजा जयचन्द की सुंदरी दासी के प्रति कवि की उक्ति में अभिसारिका भी देखते चलिये —

जरित रयन घट सुंदरी, पट कूरन तट सेव।
मुगति तिथ्थ अरु काम तिथ, मिलहि इथह हथलेव। छं० ३२३

जर्जरित रात्रि (रात्रि के चौथे प्रहर) में घट लिये, कूलों पर पट डाले यह सुन्दरी तट पर विचर रही है और इस प्रकार मुक्ति तीर्थपर काम तीर्थ का हथलेवा हो रहा है। तथा—

उभय कनक सिंभं भृंग कंठीव लीला।
पुहप पुनर पूजा विप्रवे काम राजं।
त्रिवलिय गंग धारा मद्धि घंटीव सबदा।
मुगति सुमति भीरे नंग रंगं त्रिवेनी। छं० ३२४ स० ६१

दो स्वर्ण श्रंगों को जिनके कंठ प्रदेश पर भौंरे क्रीड़ा कर रहे हैं उन्हें पुष्प सदृश कामराज के प्रसन्नतार्थ पूजा करने के हेतु लिये है, उसके उदर में त्रिवली है और वहीं उसकी कमर में घंटियों का मधुर स्वर हो रहा है। इस प्रकार अनंग रंग की भीर वाली उस सुमति (श्रेष्ठमति या सुंदरी) और मुक्ति का त्रिवेणी पर मेल हुआ है।

अपूर्व सुन्दरी मुग्धा नवोढ़ा स्वकीया पंग पुत्री संयोगिता को अत्यन्त सुकुमार जान कर पृथ्वीराज उसके साथ काम क्रीड़ा करने में झिझकते थे। सखियों से उनका संकोच छिपा न रहा। उन्होंने निम्न रूपक रच कर महाराज को प्रेरित किया —

भजै न राज संजोगि सम, अति सुच्छम तन जानि।
तब सु सषी पंगानि वर, रची बुद्धि अप्पान। छं० २५४७
मधि अंगन नव दल सु तरु, पत्र मौर घन उट्टि।
इक मंजर पर भमर भ्रमि, बास आस रस विट्ठ। छं० २५४८
भार भ्रमर मंजरिन मिग, तुट्टत जानि उटि पंषि।
कछु अंतर राजन सुनहि, बोलि बयन दिपि अंषि। छं० २५४९
रस घुट्टत लुट्टत मयन, नन डुलि मंजरि याह।
भार भगत कथ्थह सुनी, अलियल मंजरि याह। छं० २५५०
अप्पा आरुहि अंग, मम डरई मद्ध देषि झीनंग।
पत्तली षग्ग धारा, हय गय कुंभस्थलं हनई। छं० २५५१
जं केहरि नन झीनं, तं गज मत्त जूथयं दलए।
नव रमनि रमि राजं, एक पलं जम्म सुष्यांइ। छं० २५५२ स० ६१

पृथ्वीराज और संयोगिता की रति का वर्णन भी कवि ने किया है परन्तु उसमें उपमानों द्वारा स्थिति निर्देश करके अश्लीलता नहीं आने दी है। देखिये —

रस क्रीडत विपरीत, चिंत दंपति दंपति रिति।
पंच पंच सुठ्ठए, पंच लग्गेति पंच पति।
उठियवाल सज्जिय दुकूल, सुक्र पंजरसु धाम चित।
हर हराट उप्पज्यौ, तजिय अक्कौट कान कृत।
धरि कान कथ्थ सुक सौं कहिय, रही न लज्ज लज्जी विलग।
जग पुब्ब भाव भांवरि सु बत, सुबर बाल उठ्ठी सु द्रिग। छं० ७१ तथा—
ससि रुन्यौ मृग बह्यौ, कह्यौ सुक सस दीप तन।
तम सु देव पुलि पंग, जोति संदीप छिनहि छिन।
हुई लज्ज अचलीय, कलिय मुद्धं गति जानं।
छिम छिम तमह रतिपति, परलि पहुपंजलि थानं।
नृप तुष्टि काम कमला रमन, भवन द्रष्टि रुचि रमन मन।
जिम जिम सु विनय विलसिय प्रबल, तिम तिम सुक बुद्धिय प्रमन। छं० ७२, स० ६२

अब काव्य परम्परा सम्मत रासो के विप्रलंभ श्रृंगार के एक विशिष्ट स्थल की हम चर्चा करेंगे :—

समय ६६. महाराज पृथ्वीराज आक्रमणकारी सुलतान गोरी से मोर्चा लेने के लिये प्रस्तुत हुए। परिणय के पश्चात् उनका और संयोगिता का (अंतिम मिलन और) प्रथम वियोग था। इस स्थल पर कवि ने संयोगिता की विरह दशा और व्यथा का बड़ा विशद और मार्मिक चित्र खींचा है —

नृप पयान पोमिनि परषि, घटि साहस घटि एक।
सुकथ केलि पियूष पिय, जतन करहि सषि केक।
जतन करहि सषि केक, हाय करि जय जय जंपहि।
दंत कष्ट कर मिडि, थरकि थरहर जिय कंपहि।
इह प्रयान नृप करत, परी संजोगि धरा धपि।
सषी करत सब जतन, चलत पयान तहाँ नृप। छं० ६३३

नृपति का पयान जान कर उस (पद्मिनी) संयोगिता का एक घड़ी में ही साहस घट गया......सहेलियाँ कितने ही यत्न (उपचार) कर रही थीं, हाय के साथ जय जय मुँह से निकल जाता था, कष्ट के साथ दाँत बन्द हो पाते थे, शरीर थरथराता था और हृदय धड़कता था। नृपति के पयान करते ही संयोगिता धरती पर गिर पड़ी। सखियाँ अनेक प्रकार के यत्न कर रहीं थीं। राजा चल चुके थे।

बर बयार वज्जिग विषम, हलिग हिंदु दल हाल।
दुतिय चंद पूनिम जिमैं, बर बियोग बढि बाल।
बर बियोग बढ़ि बाल, लाल प्रीतम कर छुट्टौ।
है कारन हाकंत, आसं आसु जानि न फुट्टौ।

देषंत नैंन सुझ्झै न दिसि, परिय भूमि संथार।
संजोगी जोगिन भई, जब बज्जिग घरियार। छं० ६४३

घड़घड़ा कर विषम घड़ियाल के बजते ही हिन्दू सेना चल पड़ी। द्वितीया के चन्द्रमा को पूर्णिमा का होते देख कर उस बाला के वियोग रूपी सागर में ज्वार आ गया। वियोग सागर में ज्वार आया, प्रियतम का हाथ छूट गया।......नेत्रों में दृष्टि थी परन्तु कुछ दिखाई नहीं देता था। व्याकुल होकर वह भूमि पर गिर पड़ी। संजोगी (संयोगिता) जोगिन (वियोगिनी) हो गई जब घड़ियाल बजा।

इस छंद में 'विषम', 'देषंत नैंन सुझ्झै न दिसि', और 'संजोगी जोगिन' बड़े ही भाव पूर्ण अर्थ गर्भित प्रयोग हैं। घड़ियाल की समता और विषमता से क्या तात्पर्य हो सकता था परन्तु नहीं, प्रियतम के प्रवास-हेतुक-वियोग की निर्दिष्टि के कारण लक्षणा शक्ति का आरोप करके कवि ने संयोगिता की मानसिक अवस्था में विषमता घटित कर उसे वियोगावस्था का प्रारम्भिक चरण बना दिया।

बढ़ि वियोग बहु वाल, चंद बिय पूरन मानं।
बढ़ि वियोग बहु वाल, वृद्ध जोवन सनमानं।
बढ़ि वियोग बहु वाल, दीन पावस रिति बढ्ढै।
बढ़ि वियोग बहु वाल, लच्छि* कुल वधु दिन चढ्ढै।
बढ्ढै वियोग बालनि बिरति, उत रावन* सेना चढ़िय।
करकादि निसा मकरादि दिन, बाल वियोगत सम बढ़िय। छं० ६४४

उस बाला का वियोग ऐसे बढ़ा जैसे द्वितीया का चन्द्रमा पूर्णिमा का होने लगता है; जैसे यौवन वृद्धावस्था की ओर बढ़ने लगता है......जैसे दिन चढ़ने पर (अपने पति के पास से सोकर उठने में) कुल वधू की लज्जा बढ़ती है। उधर रावत की सेना के चलते ही इधर बाला की विरक्तता और वियोग बढ़े। जिस प्रकार कर्क रशि में क्रमशः रात्रि बढ़ती है और मकर राशि में दिन बढ़ता है उसी प्रकार उस बाला का वियोग बढ़ चला।

वही रत्ति पावस्स, वही मघवान धनुष्षं।
वही चपल चमकंत, वही बगपंत निरष्षं।
वही घटा घनघोर, वही पप्पीह मोर सुर।
वही जमी असमान, सही* रवि ससि निसि वासुर।
वेई आवास जुग्गिनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय।
संजोगि पर्यंपति कंत बिन, सुहि न कछू लग्गत रलिय। छं० ६४५

*संशोधनः 'लच्छि' के स्थान पर, 'लज्जि',
'रावन' के स्थान पर 'रावत' और
'सही' के स्थान पर 'वही' पाठांतर वांछित होगा।

यद्यपि वे ही पावस की रातें हैं, वही इन्द्रधनुष है, वही चपला चमकती है, वे ही बगुलों की पंक्तियाँ दिखाई देती हैं, वे ही घनघोर घटायें हैं, वे ही पपीहे और मोरों के स्वर हैं, वही पृथ्वी है, वही आकाश है, वे ही सूर्य और चन्द्र हैं, वे ही दिन और रात्रि हैं, वे ही योगिनिपुर के महल हैं और वे ही सहेलियों की मंडलियाँ हैं परन्तु संयोगिता कहती है कि प्यारे प्रियतम के बिना मुझे यह सब कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

संयोगावस्था में जो कुछ सुखदायक वस्तुयें थीं वियोग काल में वे ही सब कष्ट-दायक बन गईं, प्रवत्स्यत्प्रेयसी संयोगिता के वर्तमान-प्रवास-हेतुक वियोग का संकेत करके उस वियोगिन के भूत-प्रवास-हेतुक-विप्रलंभ-शृंगार का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन कवि ने किया है। दोनों प्रकार के वियोगों की संध्या बड़े कौशल से प्रस्तुत की गई है।

पृथ्वीराज और संयोगिता की क्रीड़ा की युद्धकालीन क्रीड़ा से समानता करके रति (प्रेम) और उत्साह, क्रोध, या जुगुप्सा की मिश्रित भाव व्यंजना रासो में मिलती है। यथा—

लाज गढ्ढ लोपंत, बहिय रद सन ढक रज्जं।
अधर मधुर दंपतिय, लुटि अब ईंव परज्जं।
अरस प्ररस भर अंक, षेत परजंक षटक्किय।
भूषन टूटि कवच्च, रहै अध बीच लटक्किय।
नीसान थान नूपुर बजिय, हाक हास करषत चिहुर।
रतिवाह समर सुनि इंछिनिय, कीर कहत बत्तिय गहर। छं० १४१

कर कंकन मुद्रिका, छुद्र घंटिका कटि तट।
बसन जघन पहिराइ, भार वित्तयौ सघन थट।
कुच निहार कंचुकिय, भुजनि बंधे बाजू बंध।
पग तोड़र नूपुरिय, हरे कपि अड़िग षेत सांध।
संग्राम काम जीते भरनि, करिय रीझ कनवज्जनिय।
तंबोल पान दीनों अधर, कीर कहत सुनि इंछिनिय। छं० १४२

तम रस तीय संजोगि, सुमन सहत्तीय त्रिसराइय।
पति को नव रस भंवर प्रीत पोमिनि सिर छाइय।
हाय भाय विभ्रम कटाच्छ, हंस सरह षग रज्जं।
नेह वीर वचननि पराग, लाज कोदिव सुष पज्जं।
जन जंत रूप लहरीति गुन, दुत्तिय थह थाहंमयन।
सक्कंत प्रेम उद्दित उदित, बर फुल्लित बर सुनि मयन। छं० १४३

मदन बयट्ठौ राज, काज मंत्री तिहि अग्गै।
हाय भाय विभ्रम कटाच्छ, भेद संचारि विलग्गै।
काम कमलनी बनिय, चक्कनिय निय नित्यंभर।
मोह विद्दि पिक्झक्ति, प्रज्ज मो मनिय पिंडवर।

बीनित मधुर तिहि लोभ बसि, बसि संजोग माया उरह।
ऊथपन मग्ग गहि अँगम गति, नृप क्रम सह छुट्टिय बरह। छं० १४४, स० ६२

'साहित्य दर्पण' तथा अन्य काव्य मीमांसक ग्रंथों में वीर, रौद्र, वीभत्स, आदि को शृंगार का विरोधी माना गया है। अतएव रस निष्पत्ति विवेचना के विचार से निर्दिष्ट स्थल दोषपूर्ण है।

शोक शोक के प्रसंग रासो में बहुत नहीं हैं।

१. कमधज्ज नरेश के भाई बालुराशव के युद्ध में मारे जाने के उपरांत (छं २२५-८ स० ४६) उसकी स्त्री ने बुरा स्वप्न देखा जिससे शोक के कारण वह अस्त व्यस्त हो गई—

सँवर काम चढ्यौ चहुआनं, कंपै भै त्रिय दुज्जन बानं।
बर छुट्टत नीबी न सम्हारै, लेहि उसास प्रहार प्रहारै। छं० २६८
अंगुरि एक ग्रहै कर बालं, दूजै कीर निवारति जालं।
थान थान विह्वल भइ बालं, मुत्तिन उर वर तुट्टित मालं। छं० २६६, स० ४६

यहाँ पति का मरण आलंबन है; उसकी स्त्री का काँपना, उच्छ्वास लेना, आदि अनुभाव; उसकी विह्वलता और हार टूटना आदि संचारी हैं।

२. कन्नौज युद्ध में हितैषी मित्र और सम्बन्धी सामंतों के मारे जाने का दुःख पृथ्वीराज को बराबर रहता था। देखिये —

जिन बिन नृप रहते न छिन, ते भट कटि कनवज्ज।
उर उप्पर रष्षत रहै, चढै न चित हित रज्ज। छं० १
कटे कुटुम्ब मन मित्त, हितकारी काका भट।
कटे सूर सामंत, सजन दुज्जन दहंन ठट।
कटे ससुर सारे सहेत, मातुलह पञ्जय फुनि।
कटे राज रजपूत, परम रंजन अवनी जन।
निसि दिन सुहाइ नह नृपति कौं, उच्च सास छंडै गहै।
अंतरित अग्नि उद्वेग अति, सगति सूल सालै सहै। छं० २, स० ६३

शूरवीर सामंतों का निधन आलंबन है; मित्र, हितैषी, मामा, साले, स्वसुर आदि के संबंध से तथा जो 'परम रंजन अवनी जन थे' उनका स्मरण उद्दीपन है; राजा को रात दिन न अच्छा लगना तथा उच्छ्वास आदि अनुभाव हैं।

३. सुलतान गोरी द्वारा युद्ध में पराजित और बंदी बनाये जाने तथा अंधे कराये जाने पर दारुण कष्टों का भोग करते हुए महाराज पृथ्वीराज के उद्गार देखिये।

पर्‌यौ बंधनं गज्जनै मेछ हथ्थं, विचारै करी अप्प करतूति पिथ्थं।
हन्यौ दासि के हेत कैमास बानं, गजं धून चामंड बेरी भरानं। छं० १६३२
बंधे कन्ह काका चषं पट्ट गाढ़े, विना दोस पुंडीर से अत्त काढ़े।
बरज्जंत चंदं चल्यौ हू कन्नौजं, तहां सूर सामंत कटि घटि फौजं। छं० १६३३

लिये राज लोकं रमंतं सिकारं, भ्रमं केहरी कंदरा रिष्ष जारं।
रह्यौ गैर महलं लिये राजलोकं, कटे सूर सामंत कीयौ न सोकं। छं० १६३४
भुलानौ सरूपं भयौ काम अंधं, निसा वासरं चित्त जानी न संधं।
दरब्बार मेटी अदब्बं बड़ाई, छरी ऊपरी सीस हम्मीर राई। छं० १६३५ ..
सहौ फूल की फूलनी नाहि नाथं, तुरत्तं तरायौ जु मालीन हाथं।
नहीं सूर सामंत परिवार देसं, नही गज्ज बाजं भंडारं दिलेसं। छं० १६३८
नहीं पंगजा प्रानतें अत्ति प्यारी, नहीं गोष महिला इतं चित्र सारी।
नहीं चिग्ग अग्गें सुनंषे परद्दा, नहीं श्लोक हम्मास गरसी सरद्दा। छं० १६३६
नहीं रेसमं के दुलीचे गिलम्मे, नहीं हिंदु बाटं सुवर्न्नं हिलम्मे।
नहीं सीरषं रूप रंके उसीसा, नहीं पस्समी तक्किये पलंग पोसा। छं० १६४०
नहीं मृग्ग नयनी चरन्नं तलासै, नहीं कूक कोका सबद्दं उलासै।
नहीं पातुरं चातुरं नृत्यकारी, नहीं ताल संगीत आलाप चारी। छं० १६ .२
नहीं कथ्थकं सथ्थ जंपै कहानी, पयं सक्करं दूत लग्गै सुहानी।
नहीं पाल बार्न्नं पवासं हजूरी, सबै मंडली मेछ लग्गै करूरी। छं० १६४३
निराधार आधार करतार तूही, बन्यौ संकटं आय मों जीव सोंही।
कली रुद्द गंगाय वृंदावनी को, संभालौ नहीं तौ कहा औ धनी कौ। छं०१६४६
......१६५८ स० ६६

इस स्थल पर पृथ्वीराज की अपनी पराजय, बंदी होना और शत्रु द्वारा अंधा कराया जाना आलंबन है; अपने दुर्व्यवहार आदि का स्मरण उद्दीपन है; उछ्वास आदि अनुभाव हैं तथा स्मृति, दीनता, विषाद और चिंता संचारी हैं। यहाँ सर्वनाश जन्य करुण रस का अच्छा परिपाक पाया जाता है।

४. वीरभद्र द्वारा युद्ध और पृथ्वीराज के बंदी बनाये जाने का समाचार (छं० १६७७-६६, स० ६६) पाकर कवि चंद का शरीर काँपने लगा और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। प्रबोधे जाने पर उसने महाराज और सामंतों के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए दुख प्रकाशित किया —

सुनिय बत्त कविचंद त्रप, तन मन कंप्पौ ताम।
परयो विकल छुक्किय धरनि, कटिट मूल तर जाम। छं० १७००
कवि आश्वासित वीर, बाहु धर धरनि उठायौ।
मुष आरोहिग पान, ग्यान गुर तथ्थ सुनायौ।
न करि दुष्ष हो भट्ट, काल गति कठिन दुरिय जय।
तुहि रुक्यौं जालप्प, काज त्रिप काज अरिय तय।
तुहि भयौ इष्ट आभिष्ट जे, सोइ क्रित कारन आनि जिय।
संचरहु दिल्लि मारग सुकवि, करहु राज उद्धारनिय। छं १७०१
कहै ताम कविचंद, अहो वीराधि वीर सुनि।
हम मनुच्छ मय मोह, उदधि बुड्डै सु तत्त तुनि।

हमहि राज इक बास, सथ्थ उतपन्न संग सदि ।
नेह बंध बंधियै, करिय अति प्रीति राज रिदि ।
सामंत सकल अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियौ ।
बलिभद्र नेह संसार सुख, किम सुनेह छंडै जियौ । छं० १५०२

इस प्रकरण में सामंतों का मारा जाना और दिल्लीश्वर का बंदी होना आलम्बन है; इन लोगों के साथ अपने विविध प्रकार के सम्बन्धों का स्मरण उद्दीपन है; कवि का काँपना और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिरना अनुभाव है तथा बाल्यकाल जन्य स्नेह का भाव संचारी है ।

५. रासो में करुणा का सबसे प्रधान स्थल सती होने वाला दृश्य है परन्तु वह इतना शांत और गम्भीर है कि हृदय पर एक अपूर्व वीतराग त्याग का प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । सामंत युग में विशेष कर राजपूत स्त्रियों में सती प्रथा समादृत थी । देखिये, बीसलदेव की मृत्यु पर उसकी पटरानी के सती होने का वर्णन कवि ने ऐसे साधारण शब्दों में किया है मानो वह एक लौकिक कार्य सरीखा हो —

राज मरन उप्पनौ, सब्ब जन सोच उपन्नौ ।
पट रागिनि पावार, गिकसि तबही सत किन्नौ । छं०, ५११ स० १

परन्तु कवि ने आगे इसे प्रेम पंथ का विधान कहा है । मंत्री कैमास का शव चंद ने बड़ी कठिनाई से पृथ्वीराज से उसकी स्त्री को दिलाया और वह सती हो गई—

अप्पौ सु कवि कैमास राज, वरदाय किंत्ति मन्यो सुकाज, ।
दीनौ सु हथ्थ सहगमनि तथ्थ, ले चली वाहि कतन्नि सथ्थि । छं० ३१४, स० ५७
तिहि तरुनि मिलित तारुनि करिनि, पेम पंसि विधि विधि करै ।
कवि चंद छंद इम उच्चरै, भावी गति को उब्बरै । छं० २७६, स० ५७

अब इस प्रसंग के उत्कृष्ट स्थल की ओर चलिये । युद्ध का दुखद अंत और महाराज पृथ्वीराज के बंदी होने का समाचार सुन कर रानी संयोगिता के प्राण छूट गये, चौहान की अन्य रानियाँ सती हुईं तथा रावल जी की पत्नी और दिल्लीश्वर की बहिन पृथा तथा युद्ध में वीर गति प्राप्त करनेवाले शूर सामंतों की सुकुमार सुन्दरी ललनायें अन्य लोकों में अपने प्रियतमों का अनुसरण करने के लिये बड़े उत्साह, दृढ़ता और संकल्प के साथ सती होने के लिये चल दीं ।

चर आये ढिल्लिय नयर, दसमि सुदिन अंगार ।
बुद्धवार एकादसी, चली वरन स्त्रगदार ।
चली वरन स्त्रगदार, सूर सामंत तीयवर ।
सब परिगह प्रथिराज, भयौ मंगल मंगल भर ।
षट सुर तिय चहुआन, अग्गि आलिंग अंग वर ।
ष्षदु बंधि संजोगि, जोग संजोग कहै चर । छं० १६१८

दशमी को दूत दिल्ली नगर आये । बुद्धवार एकादशी को ललनायें मालायें लेकर अग्नि का वरण (आलिंगन) करने चल दीं । शूरों और वीर सामंतों की श्रेष्ठ पत्नियाँ मालायें

लेकर वरने चलीं। पृथ्वीराज के परिगह (कुटुम्ब) के लोग मंगलाचार करने लगे। चौहान की स्त्रियों ने अपने शरीर अग्नि पर चढ़ा दिये। दुख के (प्रगाढ़) बन्धन में पड़ कर संयोगिता ने (पहिले ही) योग द्वारा संयोग किया।

निरषि निधन संजोगि, प्रिथी सज्जिय सु सामि स्थ।
हक्कि हंस तत्तारि, वीर अवरिय प्रेम पथ।
साजि सकल श्रंगार, हार मंडिय मुगतामनि।
रजि भूषन हय रोहि, जलज अच्छित उच्छारति।
है हया सद्द जंपत जगत, हरि हर सुर उच्चार वर।
सह गमन सिंघ रावर चले, तजि महि फूल श्रीफल सुकर। छं० १६२०

संयोगिता का निधन देख कर पृथा अपने स्वामी की सहचरी बनने के लिये प्रेम पथ का विधान करने लगी। उसने सारे श्रृंगार किये, मुक्ताओं का हार पहिना तथा भूषणों से अलंकृत घोड़े पर चढ़ कर वह कमल और अक्षत उछालती हुई चली। जगत 'है हया' शब्द कर रहा था और हर हर का श्रेष्ठ उच्चारण हो रहा था। रावलसिंघ की सहगामिनी अपने हाथों से पृथ्वी पर श्रीफल और फूल चढ़ाती चल दी।

प्रथा सथ्थ सह गवन, रवनि साजिय सु राज दह।
सघन कुसुम सुर बास, सिलिय मुष गुंज मुंज तह।
मुगता मनि उच्छार, झार आयौ सु समुज्ज्वल।
अंग रष्षि दुअ सत्त, तिके आवरिय अप्प हल।
बिम्मान बान सुर अच्छरिय, पहुपंजलि पुज्जै सघन।
सुर रिष्ष जष्ष तंत्रिय धरन, कल कौतिग देषहि सुतन। छं० १६२१

प्रथा के साथ सहगमन हेतु रावल नरेश की दस रानियाँ और तैयार हुईं, फूलों को ढेरों से सुगन्धि निकल रही थी, भौंरों के झुंड उन पर गूँज रहे थे, मोती और माणिक्य लुटाये जा रहे थे कि उज्ज्वल ज्वाला जल उठी... देवता और अप्सरायें विमानों से पुष्पांजलि दे रहे थे और देव ऋषि तथा तंत्रीधर यह श्रेष्ठ कौतुक देख रहे थे।

सहस पंच सह गवनि, अवर सामंत सूर भर।
चलिय मिलिय मनसंधि, सकल निज नाह सोइ वर।
भूषन सबन विराजि, साजि सिंगार सैल तन।
मन अनंत उद्धरिय, करिय हरि हरि जु दान दिय।
जहां जु थान सुनि प्रिय गवन, न करिय बिरम मन धरिय ध्रुव।
धनि धन्य सद्द आयास हुअ, लषि कौतिग अनभूत भुअ। छं० १६२२

अन्य सामंतों और शूर योद्धाओं की पाँच हज़ार स्त्रियाँ भी अपने अपने श्रेष्ठ पतियों से मिलने चल दीं, शरीर पर सारे श्रृंगार किये हुए भूषणों से सुशोभित अनंतगामी मन के उद्धार हेतु, हर हर करती और दान देती वे चलीं, जिसने जिस स्थान पर अपने प्रियतम का गमन सुना उसने तत्काल सती होने का निश्चय करने में विलंब नहीं किया, भूलोक के इस अभूतपूर्व कौतुक को देख कर आकाश में धन्य धन्य शब्द हो उठा।

चंदन मंदिर दार, रचिय वर दिघ्घ लघ्घु दर।
विवहकुसुम वर रोहि, सोहि पट बसन सुरह बर।
जिय जंबू नद दान, रथ्थ हय गय मुगता मनि।
विप्प वेद उच्चरहि, धेन सुरवर आयासनि।
किय लोक लोक अंजुलि कुसुम, सजि विमान सुर सिर फिरहि।
संक्रमिय अप्प साहागवनि, मंझि गवन हव्बिहि हरहि। छं० १६२३

(इन चिताओं पर) चन्दन के छोटे और बड़े मन्दिर बने हुए थे, नाना प्रकार के पुष्पों और वस्त्रों से वे अलंकृत थे, पृथ्वी, रथ, हाथी, घोड़े, मोती और माणिक्यों का दान दिया जा रहा था, ब्राह्मण वेदोच्चारण कर रहे थे, विभिन्न लोकों को पुष्पांजलियाँ दी जा रहीं थीं, देवता सजे हुए विमानों पर ऊपर घूम रहे थे और सहगामिनियाँ परिक्रमा करके अग्नि ज्वालाओं के बीच लोप होती चली जा रही थीं।

विविह तरुनि दिय दान, अवर सामंत सूर भर।
अप्प अस्स हय लीय, मिलिय रह हित धाम धर।
चित चितै रव रवनि, गवनि पावक प्रज्जारिय।
प्रेम प्रीति किये प्रेम, नेम गेमह प्रति पारिय।
उज्जलिय झाल आयास मिलि, हर हर सुर हर गोम भौ।
जहं जहां सुवास निज कंत किय, तहं तहां तियपिय मिलन भौ। छं०१६२४स०६१

इन तरुणियों ने नाना प्रकार के दान दिये और सामन्त तथा शूर योद्धा उनके हितैषी लोक में पहुँचाने के लिए उनके घोड़ों की लगामें पकड़ कर चल दिये। इन बालाओं ने प्रज्वलित ज्वालाओं में गमन करने का अपने चित्त में विचार किया और प्रेम को श्रेष्ठ ठहरा कर उस का निर्वाह करने के लिए वे चल दीं। उज्ज्वल ज्वाला आकाश में मिल गई। प्रत्येक दिशा में हर हर शब्द हो उठा। जहाँ जहाँ जिस लोक को उनके स्वामी गये थे वहीं उनकी पतिव्रता पतिपरायणायें जाकर मिल गईं।

वीर हिन्दू नारी का आत्मोल्लास से जलती हुई अग्नि चिताओं में प्रवेश परम प्रशांत पर अति मर्मभेदी हैं। यह आत्मोत्सर्ग की पूर्णाहुति स्वतंत्र भारत की हिंदू ललनाओं का चरित्र विशेष था। स्वतंत्रता की महान देन सामंत युग में स्त्रियों के इस आदर्श बलिदान के रूप में सुदृढ़ थी।

नोट :—सती प्रथा भारत की एक प्राचीन प्रथा है। वेदों, रामायण और महाभारत में इसका उल्लेख पाया जाता है। यदि इसे एक प्राचीन परंपरा मात्र कहा जाय तो न्यायोचित न होगा। क्योंकि परंपरा तो वही चल सकती है जिसमें हानि की मात्रा न्यूनतम हो और लाभ अधिकतम। परन्तु सती होने में हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पारलौकिक लाभ का संकेत भले ही हो अन्यथा उसमें हानि क्या सम्पूर्ण बलिदान ही है। अब सोचने की बात है कि आख़िर सती होने की, इस प्रकार जीते जी अपने को अग्नि में आत्मसात् करने की, दृढ़ प्रेरणा किस दिशा से मिलती थी? स्त्रियाँ तो स्वभाव और शरीर से कोमल होती हैं, उनके अंदर ऐसी दृढ़ता का संचार कैसे हुआ?

पाश्चात्यदेशी विद्वानों ने भारतीय रीतियों और प्रथाओं का जो उपहास किया है वह सर्वथा उनके अज्ञान का द्योतक है। उन्होंने अन्दर पैठ कर सूक्ष्म प्रेरक भावों का अजस्र स्रोत खोजने का प्रयत्न नहीं किया। उन लोगों का मत है कि प्राचीन काल में भारत में ही क्या सारे संसार में शारीरिक बल की प्रधानता थी जो पाशविक बल सदृश था; यही पशुबल उस समय के आये दिन होने वाले गृह युद्धों का कारण है और यही पशुबल सती होने का मूल है तथा इस प्रथा का अन्धानुकरण किया जाता था। लार्ड विलियम बैंटिंक के समय तक भले ही स्त्रियाँ जबरन सती की जाने लगी हों परन्तु १२ वीं और १३ वीं शताब्दी तक तो हम उनको स्वेच्छा से यह बलिदान करते हुए पाते हैं। पशुबल को सती होने का प्रेरक कहना सर्वथा नादानी है क्योंकि भयंकर से भयंकर पशु शारीरिक बल रखते हुए भी नंबरी डरपोक होता है और बुद्धि का उसके पास दिवाला होता है, परन्तु सतियाँ तो बहुत सोच समझ और विचार कर आनंदातिरेक से निर्भयतापूर्वक अग्नि प्रवेश करती थीं। अस्तु यह विचारणीय है कि आखिर वह कौन सी बात थी, वह कौन सा उत्साह था जो उनको ऐसे विकट बलिदान के लिये साहस और प्रेरणा प्रदान करता था।

शैव मत भारत का एक प्राचीन और व्यापक प्रभाववाला मत आज भी है। इसका मूल सिद्धान्त है कि संसार का संहार और प्रत्येक वस्तु का विनाश चिर सत्य और अवश्यम्भावी है। इस विनाश की असलियत ने ही यह मनोवैज्ञानिक प्रेरणा की कि जब मृत्यु निश्चित है तो वह आदर्शपूर्ण होनी चाहिये और इसी महान लक्ष्य को सामने रख कर भारत के उस स्वतन्त्र युग में जनता में एक चरित्र विशेष का निर्माण प्रारम्भ हो गया। अस्तु सती होने के लिये स्वतंत्रता का यह उपहार हिंदू ललनाओं का एक चरित्र विशेष था जिसमें विश्वास की दृढ़ता गर्भित थी न कि एक साधारण चली आई हुई परम्परा जो उन्हें खुशी-खुशी अग्नि प्रवेश करने के लिये प्रोत्साहित करती थी। जापान में बड़ी प्रसन्नता, उत्साह और निर्भयतापूर्वक 'हराकिरी' करनेवालों को कौन नहीं जानता। उनके यहाँ भी कोई इस प्रकार की प्रेरणा ही कारण है जो उनको ऐसा आत्मबलिदान सहर्ष कर डालने के लिये प्रस्तुत कर देती है। भारतीय सतियाँ विलाप नहीं करतीं थीं। जिन कवियों अथवा लेखकों ने उनसे अकारण विलाप करवाया है उन्होंने इन वीरांगनाओं का चरित्र समझने की ही चेष्टा नहीं की। पति की मृत्यु के उपरांत गर्भावस्था सरीखे कारण को लेकर यदि स्त्री सती नहीं हो पाती थी तभी वह दुःख, विलाप आदि करती थी अन्यथा वह शारीरिक सुख और मनोजनित मोद का विस्मरण कर आत्मिक आनंद से अग्निपथ का अनुसरण करती थी। विश्वास की दृढ़ता उन रमणियों का चरित्र बन गया था। परन्तु भारत की गुलामी के साथ ही दासता का प्रधान अवगुण कायरता अपना जाल फैलाकर शारीरिक सुखों और मन के मोद के ताने बाने बिन रही थी जिसके फलस्वरूप कालांतर में अनादिकालीन प्रतिष्ठित वह चरित्र नष्ट हो गया तथा स्वभावतः स्त्रियाँ सती होने में भयभीत पायी जाने लगीं। मुगल सम्राट अकबर ने स्वेच्छा से सती न होनेवाली स्त्रियों को जबरन सती करना दंडनीय अपराध घोषित करा दिया और लार्ड बैंटिंक ने यह प्रथा ही गैरक़ानूनी कर दी।

ग्रन्थारम्भ में कवि का कथन है कि मैंने रासो में नव रसों का वर्णन किया है। यथा—

उक्ति धर्म विशालयस्य, राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणंच, कुरानं कथितं मया। छं० ८३ स० १

तथा ग्रन्थ संहार में भी उसने रासो में अमृत सदृश छंदों में नव रसों के परिपाक की सूचना दी है —

रासौ असंभ नव रस सरस, चंद छंद किय अमिय सम।
श्रृंगार वीर करुना बिभछ, भय अद्भुत हसंत सम। छं० ५९६, स० ६७

रासो में नव रसों की निष्पत्ति विषयक विवेचना पृथक पृथक रस को लेकर की जा चुकी है। अब हम उन कतिपय स्थलों की चर्चा करेंगे जिनके निदर्शन में कवि की प्रतिभा निखर उठी है और रस-सिद्धि विषयक चमत्कार की अवतारणा हो सकी है। ये स्थल हैं नवों रसों की एक ही स्थान पर स्फुरणा के कुशल संकेत। देखिये —

१. भयंकर युद्ध बेला में नव रसों के परिपाक का अवसर कवि ने इस प्रकार निर्दिष्ट किया है—

हय हय हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
हय हय हय उच्चार, घाइ घाइं घट वज्जिय।
ग्रह ग्रह ग्रहत्रासंत, बहुल षग षग्गं गट्टन।
टूक टूक उत्तरिय, वाजि नर भर भर पट्टन।
हर हार वास हर हरु भुलिय, ध्रुव मंडल सद्दह डुलै।
मंगल धनेव भारथ्थ किय, जिन सु ब्रह्म साधन खुले। छं० ३५८
सर्वं ध्यांन बधन सु ब्रह्म, पंच पंच लै तत्त।
पंच पंच पंचह मिले, अप्प भूत अह बत्त। छं० ३५९
नव जंपि नऊ रस वीर नचै, भमरावलि छंद सुकित्ति सचै।
रस भौ छह तीय नवं नव थान, दिष्यौ मुष रूप सु चालुक पांन।
भयौ मुष वीर सु भूप नरिंद, भयौ रस कारुन कट्टत कंध।
भयौ अद्भूत भयानक ग्रत्त, भयौ रस हास उमा क्रत पत्त।
भयौ रस रुद्र अद्भुत युद्ध, भयौ तिन मध्य सिंगार विरुद्ध।
भयौ रस संत भई तिन मुत्ति, दिपै जनु पल्लव लालित गत्ति।
टगं टग चाह रहे पल हार, उठे तहां हंकि सु बीर हँकार। छं० ३६०, स०१२

...नरेन्द्र के मुँह पर युद्धोत्साह के कारण वीर रस देखा गया, कंध काटने का शोकाकुल दृश्य करुण रस का परिचायक हुआ, अद्भुत और भयानक वृत्त हो रहे थे उमा के हृदय में हास्य रस ने जन्म लिया, उस अद्भुत युद्ध में रौद्र रस (प्रत्यक्ष) ही देखा गया और (युद्धकालीन रसों के) विरोधी श्रृंगार की भी वहाँ उत्पत्ति देखी गई, जिन वीरों के हृदय में शान्ति रस दृढ़ हो गया (वीर गति पाने पर) उनकी मुक्ति हो गई...

२. देवगिरि के राजा भान की पुत्री राजकुमारी शशिवृत्ता, जिसकी मँगनी कमधज्ज से हो चुकी थी और जो बारात लेकर विवाह हेतु भी आ गया था, पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी। उसने इस अवसर पर उन्हें भी बुला रखा था। देवालय में पूजन हेतु गई (अभिसारिका) शशिवृत्ता का अपहरण कर चौहान नरेन्द्र चल दिये —

गहि शशिवृत्त नरिंद, सिर्ढा लंघत ढहि थोरी।
काम लता कल्हरी, पेम मारुत झकझोरी।
वर लीनी कर साहि, चंपि उर पुट्ठि लगाई।
मन सुरंग सोई बत्त, कंत लगि कान सुनाई।
नृप भयौ रुद्र करुना सुत्रिय, वीर भोग वर सुभर गति।
सगपन सु हास वीभच्छरिन, भय भयान कमधज्ज दुति। छं० ३८१ स० २५.

क्रोध के कारण पृथ्वीराज रौद्र रस में थे, प्रियजनों के आकस्मिक ध्यान से शशिवृत्ता के हृदय में शोक होने के कारण करुणा का संचार हुआ। श्रेष्ठ सुभटों में अविलम्ब युद्ध प्रारम्भ की आशा देखकर उत्साह उदय होने के कारण वीर रस का प्रादुर्भाव हुआ, पृथ्वीराज के इष्ट सम्बन्धियों के हृदय में यह अपहरण दृश्य देकर हास्य रस की उत्पत्ति हुई, युद्ध जनित मारकाट, खून खच्चर की कल्पना से वीभत्स रस का जन्म हुआ और अपनी अक्षुण्ण सेना के बीच से पृथ्वीराज को अपनी मँगेती शशिवृत्ता को ले जाते देखकर प्रतिपक्षी कमध्वज्ज और उसके पक्षवालों पर भय का आतंक होकर भयानक रस छा गया।

इस प्रश्न को लेकर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। फिर उस नर विनाश लीला में नव रसों के विषय में दूसरा रूपक देखिये —

भान कुंअरि शशिवृत्त, नैन श्रृंगार सु राजै।
वीर रूप सामंत, रुद्र प्रथिराज विराजै।
चंद अद्भुत जानि, भए कातर करुनामय।
वीभछ अरिन समूह, सात उप्पनौ मरन भय।
उप्पज्यौ हास अपछर अमर, भौ भयान भावी विगति।
कूरंभ रव प्रथिराज वर, लरन लोह चिंते तरनि। छं० ५०१, स० २५

राजा भान की राजकुमारी के नेत्रों में रति भाव के कारण श्रृंगार की शोभा हुई। युद्धोत्साह की पूर्णता से सामंतों में वीर रस का स्थायित्व था। इष्ट प्राप्ति की बाधा के कारण पृथ्वीराज रुद्र रूप थे। चंद आश्चर्यचकित होने के कारण अद्भुत रस में था और उसकी कातरता का भाव करुण रस का उद्भव कर रहा था। शत्रु समूह युद्ध की भयंकर मारकाट देखकर जुगुप्सा की भावना से भर जाने के कारण वीभत्स रस में था। मृत्यु के भय को आच्छन्न किये देखकर वीरों के हृदय में निर्वेद (वैराग्य) की भावना के कारण शांत रस था। युद्ध के कौतुकादि तथा उसके कारणों के लक्ष्य से अप्सराओं और देवताओं के हृदय में हास्य रस पैदा हो गया था। युद्ध की भवितव्यता हार या जीत का अनुमान भयानक रस की निष्पत्ति कर रहा था। पृथ्वीराज के श्रेष्ठ सामंत कूरंभ राव को तलवार से युद्ध करने और सूर्य मंडल में वास करने मात्र की चिंता थी।

३. मुग्धा नवोढ़ा हंसावती और पृथ्वीराज के प्रथम समागम के अन्तर्गत नवों रसों की सिद्धि की कल्पना और उसका चुटीला संकेत कवि की अनोखी और मौलिक सूझ-बूझ का परिचायक है। यथा—

रस विलास उप्पज्यौ, लषी रस हार सुरत्तिय।
ठांम ठांम चढ़ि हरम, सद्द कह कह तह मत्तिय।
सुरत प्रथम संभोग, हहं हहं मुष रट्टिय।
ना ना ना परि अबल, प्रीति संपति रति थट्टिय।
श्र ंगार हास करुना सु रुद्र, वीर भयान विभाछ रस।
अद्भूत संत उपज्यौ सहज, सेज रमत दंपति सरिस। छं० ८१ स० ३१

अश्लीलत्व दोष वर्द्धक होने के भय से उपर्युक्त रसों का पृथक्करण और उनका विश्लेषणात्मक विवेचन नहीं किया गया है। इस स्थल के भिन्न भावों की व्यंजना साधारणतः समझ ली जा सकती है।

४. कन्नौज में महाराज जयचंद के दरबार में कर्नाटकी वेश्या ने चंद कवि के साथ छद्मवेषी महाराज पृथ्वीराज को पहचान कर लज्जा से अपना घूँघट खींच लिया। अपनी पोल खुलते देख कर चंद ने संकेत से उससे कहा कि तेरे ही कारण मंत्री कैमास मारा गया और अब क्या तू महाराज को भी मरवाना चाहती है। संकेत का अर्थ समझ कर दासी कर्नाटकी ने तुरन्त ही अपना घूँघट खोल दिया। उसके इस विपरीत, विलक्षण और अपूर्व आचरण पर पंग दरबार में नवों रस पैदा हो गये —

करि कलकलह स मंत्री मार्यौ, नहि चहुआन सरं न विचार्यौ।
सेन सुवर कहि कवि समुझाई, अब तूं कलह करन इहां आई। छं० ७१८
समझि दासि सिरवर तिन ढंक्यौ, कर पल्लव तिन दगवर अंक्यौ।
कव[1] रस सवै सभा कमधज्जी, भैचकि भूप सिंगिनी सज्जी। छं० ७१९

बर अद्भुत कमधज्ज, हास चहुआन उपन्नौ।
करुना दिसि संभरी, चंद वर रुद्र दिपन्नौ।
वीभछ वीर कुमार, वीर वर सुभट विराजै।
गोष बाल झंषतह, द्रिगन सिंगार सु राजै।
संभयौ संत रस दिष्षिवर, लोहा लंगरि वीर कौ।
मंगाइ पान पहुपंगवर, भय नवरस नव सीर कौ। छं०७२०,स० ६१

कर्नाटकी केवल पृथ्वीराज को ही पुरुष मान कर अपना मुँह लज्जा से ढँकती थी और यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी अतएव उसके मुँह ढँकने और खोल देने पर पंग (जयचन्द) के दरबार में विभिन्न भावों का उद्रेक हो उठा।

महाराज कमधज्ज (जयचंद) कर्नाटकी के विलक्षण चरित्र को देखकर विस्मय में पड़ गये जिससे अद्भुत रस का परिपाक हुआ। चौहान (पृथ्वीराज) शत्रु दरबार में अपनी

१. संशोधन—'कव' के स्थान पर 'नव' पाठ उचित होगा।

पूर्व प्रेयसी को प्रगट होते तथा घूँघट खींचकर लज्जा का भाव प्रदर्शित करते देख, उसका अपने मंत्री कैमास से रमण कृत्य आदि का स्मरण करके हँस पड़े; उनकी इस अवचनात्मक हँसी के कारण वहाँ हास्य रस पैदा हुआ। कर्नाटकी के चित्त में नरेश के प्रति दया भाव की उपज ने करुण रस की स्फुरणा की। कवि चंद दासी के घूँघट खींचने के कार्य पर क्रोध से भर गया क्योंकि उसने विचारा कि देखो इसी के कारण मंत्री कैमास की जान गई और आज फिर यह पृथ्वीराज के प्राण लेना चाहती है; कवि की क्रोध व्यंजना ने रौद्र रस को पुष्ट किया। वीर कुमार के हृदय में तुरंत युद्ध होने की आशंका और उसके फल-स्वरूप रुधिर मांस आदि के दृश्य का विचार करके ग्लानि पैदा होने से वीभत्स रस का संचार हुआ। युद्ध होना निश्चय जानकर दरबार के वीर योद्धा उत्साहित हो उठे क्योंकि वीरों का प्रधान उत्सव उपस्थित हो गया था और उनके युद्ध जनित उत्साह के कारण (युद्ध) वीर रस की निष्पत्ति हुई। गवाक्षों से झाँकती हुई बालाओं के चित्त में कविचन्द के खवास रूपी सौन्दर्यमूर्ति पृथ्वीराज को देखकर अनुराग उत्पन्न हुआ। खवास वेशी होने पर भी पृथ्वीराज का रूप वैसे ही उन रमणियों को लुभानेवाला हुआ जैसे काई आदि लगे कमल का सौन्दर्य होता है और जैसे वल्कल पहिने हुए शकुंतला की कमनीयता ने महाराज दुष्यंत को आकर्षित किया था—

> **सरसिज मनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,**
> **मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।**
> **इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,**
> **किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्। छं० १७ प्रथमोऽङ्कः**
> **अभिज्ञान शाकुंतलं,**

अतएव उन कामिनियों के नेत्रों में शृंगार रस की शोभा हुई। महान योद्धा लोहा लंगरी राय ने युद्ध की अनिवार्यता और संसार की असारता का विचार करके जीवन और मरण का मोह छोड़ दिया; इस निर्वेद भाव के कारण शांत रस का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु साथ ही लंगरी राय का विकराल रूप आदि जयचंद के पक्षवालों के हृदय में भय उत्पन्न कर रहा था जिससे उस स्थल पर भयानक रस का भी विकास हुआ। पहुपंग ने पान क्या मगाये वहाँ नवों रसों की सिद्धि हो गई।

एक व्यापार से अनेक भावों की अवतारणा करनेवाला श्रीमद्भागवत् का भी एक स्थल देखिये—

> **मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,**
> **गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।**
> **मृत्युर्भोजपते विराडविदुषां तत्वं परं योगिनाम्,**
> **वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः। १७, ४३, १०**

कृष्ण को अपने भाई समेत कंस के रंग मंच पर देखकर मल्लों के हृदय में रौद्र, नरों में अद्भुत, स्त्रियों में शृंगार, गोपों में हास्य, राजाओं में वीर, (कृष्ण के) माता पिता में करुणा और वात्सल्य, भोजपति (कंस) में भयानक, अज्ञानियों में वीभत्स, योगियों में

शांत और बृष्णियों में भक्ति की उद्भावना हुई।

असम्भव नहीं है कि रासोकार को संस्कृत के उपर्युक्त तथा अन्य स्थलों से एक व्यापार द्वारा भिन्न भाव व्यंजना का काव्य वैलक्षण्य दिखाने की प्रेरणा मिली हो।

हिंदी साहित्य में चंद के परवर्ती कवि तुलसी भी इस काव्य कौशल की रीति से अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने एक व्यापार द्वारा नव रसाभिव्यंजना का सौन्दर्य न दिखाकर रामचरित मानस में, राम के जनकपुर के रंग मंच पर उपस्थित होने के अवसर का भाव—'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' लिखकर काव्य में इस प्रकार की भाव स्फुरणा विषयक ज्ञान की अपनी अभिज्ञता तथा उसके प्रदर्शन की अपनी समर्थता का कुशल संकेत किया है।

तुलसी के बाद कवि केशव ने अपनी रसिक प्रिया में नवरसात्मकता के ज्ञातक कृष्ण का रूप चित्रण इसी प्रणाली के अनुसरण पर किया है (यद्यपि आगे उन्हें अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत हो गई और वे रति भाव के अंतर्गत ही अन्य रसों के समावेश के चमत्कार निरूपण में लग गये) —

श्री वृषभानु-कुमारि हेतु शृङ्गार रूप भय।
वास हास रस हरे, मात बंधन करुणामय॥
केसी प्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान कियो वीभत्स बकी उर॥
अति अद्भुत वंचि विरंचिमति सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिक जन नव रस मै ब्रजराज नित॥

अध्याय ३

अलङ्कार

काव्य में व्यंग्यार्थ या ध्वनि का स्थान सबसे ऊँचा माना गया है, उसके बाद गुणीभूत व्यंग्य का स्थान है और फिर अलंकार का। अलङ्करोतीति अलंकारः, अर्थात् शोभा बढ़ाने वाले पदार्थ को अलंकार कहते हैं। आचार्य दंडी ने (काव्यादर्श २।१ में) कहा है कि काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दार्थ की रचना को अलंकार कहते हैं। आचार्य वामन (काव्यलंकार ३।१ में) गुणों को काव्य के शोभाकारक धर्म बतलाते हैं परन्तु दंडी अलंकारों को। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में गुणों को काव्य का साक्षात् धर्म और अलंकारों को काव्य का अंगभूत शब्द और अर्थ की शोभाकारक धर्म कहकर स्पष्ट किया है। काव्य की आत्मा रस है और काव्य शब्द तथा अर्थ के आश्रित है अतएव अलंकारों को काव्य का उत्कर्षक मानने में किसे आपत्ति हो सकती है।

अलंकार

आचार्य भामह ने (भामह काव्यालंकार १।३६ और २।८५ में) शब्दार्थ वैचित्र्य को वक्रोक्ति संज्ञा दी है और इस वक्रोक्ति को ही संपूर्ण अलङ्कारों में व्यापक बतलाते हुए उसे उनका एक मात्र आश्रय माना है। आचार्य दंडी ने (काव्यादर्श २।२२० में) इस उक्ति वैचित्र्य को 'अतिशयोक्ति' संज्ञा देते हुए उसे सारे अलङ्कारों का आश्रय कहा है। श्री अभिनव गुप्ताचार्य ने (ध्वन्यालोक लोचन पृ० २०८ पर) भामह की वक्रोक्ति और दंडी की अतिशयोक्ति के विषय में लिखा है कि लोकोत्तर अतिशय से कहना ही उक्ति वैचित्र्य है। अतएव किसी बात के चमत्कार पूर्ण वर्णन को ही काव्य का अलङ्करण कहा जाता है। यह उक्ति वैचित्र्य अथवा चमत्कृत करनेवाली शैली अनेक प्रकार की हो सकती है और इन्हीं शैलियों को गुणानुसार आचार्यों ने इनकी पृथकता का बोध कराने के लिए विभिन्न अलङ्कारों के नाम से प्रतिष्ठित किया है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ये सारी शैलियाँ नियमबद्ध हो गईं अब इनके अतिरिक्त और शैलियाँ नहीं हैं अथवा नहीं हो सकतीं। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की शैलियाँ संस्कृत साहित्य की देन हैं परन्तु योरोपीय साहित्य में हमें इनके अतिरिक्त और अनेक नवीन प्रभावक शक्ति संपन्न शैलियाँ देखने को मिलती हैं। अलङ्कार की नवीन शैलियों को जन्म देना असंभव तो नहीं है परन्तु इसके लिए असाधारण प्रतिभा और बुद्धि अपेक्षित है क्योंकि संस्कृत के आचार्यों ने इस विषय का पर्याप्त मंथन कर डाला है।

स्वाभाविक रूप से अलङ्कारों के प्रयोग से जहाँ काव्य की चेतनता और आकर्षण को बल मिलता है वहीं उनकी अनावश्यक ठूँस ठाँस से काव्य का सौन्दर्य भी नष्ट होजाता है। अलङ्कार प्रदर्शन जिस रचना में उसका गौण सहकारी न होकर प्रधान हो जाता है वहाँ रस भंग होने के साधन प्रस्तुत हो जाते हैं। रीतिकाल के अनेक कवियों की कृतियाँ

इस अलङ्कार ज्ञान प्रदर्शन की भ्रांति में पड़कर केवल विरसता को ही प्राप्त हो सकी हैं।

पृथ्वीराज रासो के अलङ्कारों को हमें इस दृष्टिकोण से देखना है और इस कसौटी पर कस लेना है। रासोकार ने इस मर्यादा का पालन कहाँ तक किया है यह भी विचारना है। हिन्दी के उस युग में रीतिकाल वाली भद्दी परंपरा का अंधानुकरण नहीं प्रारंभ हुआ था अन्यथा प्रक्षेपों की भरमार वाला रासो अलङ्कारों से ओतप्रोत और अतिरंजित हुए बिना कैसे बच सकता था। एक वाक्य में इतना कह देना उचित होगा कि कुछ अलङ्कारों को छोड़कर रासो में उनकी योजना स्वाभाविक रूप में है और व्यर्थ की ठूँसा ठाँसी से रिक्त है।

अलंकारों का इतिहास और क्रम विकास

परन्तु रासो के अलङ्कारों की समीक्षा करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि अलङ्कारों का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन किया जाय। अतएव प्रारंभ में अलंकारों की कितनी संख्या थी और क्या परिस्थिति थी फिर क्रमशः किस आचार्य ने उनकी वृद्धि की तथा अब क्या परिस्थिति है, इस पर प्रकाश डालना उचित है। अलङ्कारों के क्रम विकास में सर्व प्रथम संस्कृत साहित्य के अलङ्कार ग्रन्थों पर हम विचार करेंगे।

प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में श्री भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। नाट्य-शास्त्र के प्रसंगों से ज्ञात होता है कि भरत मुनि के पूर्व अनेक साहित्याचार्य हो चुके हैं परन्तु उनके नाम और कृतियाँ अज्ञात हैं। भरत मुनि का समय वेदव्यास से पूर्व माना गया है। नाट्य-शास्त्र में ४ अलङ्कार निर्धारित किये गये हैं। भरतमुनि के बाद वेदव्यास रचित अग्निपुराण में १५ अलङ्कारों का विधान पाया जाता है। इसके बाद लगभग ३५०० वर्षों तक का इतिहास अंधकार पूर्ण है। इस दीर्घकाल में रचा हुआ कोई ग्रंथ अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। भट्टि रचित भट्टि-काव्य रीति ग्रन्थ नहीं है परन्तु उसके तीसरे कांड के दसवें सर्ग में ३८ अलङ्कारों के उदाहरण दिए गए हैं। भट्टि का समय ५०० से ६५० ई० तक माना गया है। तदुपरांत ईसवी छठी शताब्दी का आचार्य भामह रचित काव्यालङ्कार मिलता है जिसमें ३८ अलङ्कारों का निरूपण किया गया है। काव्यालङ्कार में अनेक आलङ्कारिकों के नामोल्लेख होने के कारण यह स्पष्ट है कि आचार्य भामह के पहले बहुत से अलङ्कार ग्रन्थ रचे गये थे और अग्नि पुराण के बाद अलङ्कारों की संख्यावृद्धि तथा उनका विकास भट्टि, भामह और उनके पूर्ववर्ती विद्वानों के क्रमशः उद्योग और परिश्रम का परिणाम है।

अलंकारों के क्रम विकास का दूसरा काल ईसा की ६ठीं शताब्दी से ८वीं शताब्दी तक है, जिसे भट्टि से लेकर आचार्य वामन तक समझना चाहिये। ७वीं शताब्दी के अंतिम चरण में आविर्भूत होनेवाले महाकवि भारवि के प्रपौत्र आचार्य दंडी ने अपने काव्यादर्श में ३६ अलंकारों की विवेचना की, जिनमें आवृत्ति दीपक नवीन था। ८वीं शताब्दी के आचार्य उद्भट ने अपने काव्यालंकार-सार-संग्रह में ४१ अलङ्कार निर्दिष्ट किये जिनमें दृष्टांत, काव्यलिंग और पुनरुक्तवदाभास नवीन थे।

उद्भट के समकालीन आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में ३३ अलंकारों पर प्रकाश डाला जिनमें व्याजोक्ति और वक्रोक्ति नवीन थे। भट्टि और भामह द्वारा निरूपित ३८ अलंकारों के पश्चात् दंडी, उद्भट और वामन द्वारा १४ नवीन अलंकार निश्चित किए गये। इस प्रकार ८ वीं शताब्दी तक ५२ अलंकारों का विधान हो गया था। यद्यपि अलंकारों की संख्या में अधिक वृद्धि नहीं हुई परन्तु इस दूसरे काल के तीन आचार्यों (जिनमें मुख्यतः दंडी) ने अलंकार विवेचना विस्तृत और सुस्पष्ट कर दी।

८ वीं शताब्दी से अगली चार शताब्दियाँ अलङ्कार विकास का स्वर्ण युग सिद्ध हुईं। ९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में ५५ अलङ्कारों की व्यवस्था की। ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में धारानगरी के महाराज भोज ने अपने सरस्वती-कंठाभरण में ७२ अलङ्कारों का वर्णन किया जिनमें पूर्वाचार्यों की अपेक्षा ६ नवीन थे। भोज के बाद ११ वीं शताब्दी में ही आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में ७० अलङ्कारों का निरूपण बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया जिनमें अतदगुण, मालादीपक, विनोक्ति, सामान्य, और सम अलङ्कार नये थे। काव्य-प्रकाश को जो गौरव प्राप्त हुआ वह आज तक किसी दूसरे ग्रन्थ को उपलब्ध नहीं हो सका। १२ वीं शताब्दी के मध्यकाल में रुय्यक ने अपने अलङ्कार सूत्र में ८४ अलङ्कार स्थापित किये जिनमें उल्लेख, काव्यार्थपत्ति, परिणाम, विचित्र और विकल्प नवीन थे। इन आचार्यों के उपरांत १२ वीं शताब्दी में जैन विद्वान वाग्भट् प्रथम ने वाग्भटालङ्कार नामक सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा जिसमें ३९ अलङ्कारों पर प्रकाश डाला। १२ वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में ३५ अलङ्कारों का संक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण वर्णन किया। इस युग में अलङ्कारों की संख्या बढ़कर १०३ हो गई जो ८ वीं शताब्दी तक ५२ से अधिक न बढ़ पाई थी। संख्या वृद्धि के साथ विषय की विवेचना भी अधिकाधिक सूक्ष्म और गंभीर हो गई। अलङ्कार संप्रदाय को रुद्रट, भोज, मम्मट और रुय्यक इन चार आचार्यों ने परिष्कृत करके एक प्रतिष्ठित पद पर पहुँचा दिया।

१३ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक अलङ्कारों के क्रम विकास का अंतिम काल था। १२ वीं १३ वीं शताब्दी के अन्तर्गत होने वाले पीयूषवर्ष जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में ८ शब्दालङ्कार और ८२ अर्थालङ्कारों का निरूपण किया जिनमें से १६ पूर्ववर्ती ग्रन्थों में नहीं थे। १४ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में वर्तमान विद्याधर ने अपने एकावली ग्रन्थ की रचना ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश और अलङ्कारसर्वस्व के आधार पर की। विद्याधर के समकालीन विद्यानाथ ने अपने प्रतापरुद्रयशोभूषण ग्रन्थ में काव्यप्रकाश और अलङ्कारसर्वस्व का अधिकांशतः अनुसरण किया। १४ वीं शताब्दी के द्वितीय वाग्भट ने अपने काव्यानुशासन में अन्य और अपर अलङ्कारों को स्वतंत्र रूप से वर्णित किया। १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विश्वनाथ ने अपने साहित्य-दर्पण में १२ शब्दालङ्कार, ६६ अर्थालङ्कार ७ रसवदादि और संकर तथा संसृष्टि अर्थात् कुल ९० अलंकारों का निरूपण किया जिनमें ४ अलङ्कार नवीन अवश्य थे परन्तु महत्वपूर्ण नहीं। विश्वनाथ, आचार्य मम्मट और रुय्यक के बाद अलंकार शास्त्र के उल्लेखनीय रचयिता हुए। १६वीं

शताब्दी के अंतिम चरण और १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होने वाले अप्पय्य दीक्षित ने अपने सरल और सुबोध ग्रंथ कुवलयानंद में १०० अर्थालङ्कार, ७ रसवद आदि, ११ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणालङ्कार और १ संसृष्टि तथा १ संकर इस प्रकार १२० अलङ्कारों को निश्चित किया। दीक्षित जी ने अलङ्कार विषयक अपना आलोचनात्मक ग्रंथ चित्रमीमांसा भी महत्त्वपूर्ण रचा जो अपूर्ण है और जिसका थोड़ा सा अंश ही अभी तक प्रकाशित हो सका है। इन ग्रंथों में चन्द्रालोक का अनुकरण किया गया है। शोभाकर ने अपने ग्रंथ अलङ्कार-रत्नाकर में पूर्वाचार्यों से २७ अधिक अलङ्कारों की सृष्टि की, जो निरूपित अलङ्कारों के अन्तर्गत थे। पंडितराज जगन्नाथ ने इनके ग्रंथ का खन्डन किया है इससे शोभाकर को उनका पूर्ववर्ती मानना उचित होगा। यशस्क ने अपने अलङ्कारोदाहरण में ६ नये अलङ्कार लिखे जो महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इनका समय ज्ञात नहीं है। १७ वीं शताब्दी के प्रथम तीन चरणों में वर्तमान, शाहजहाँ के समकालीन पंडितराज जगन्नाथ 'त्रिशूली' ने अपना रस-गंगाधर एक अपूर्व आलोचनात्मक ग्रन्थ रचा। ध्वन्यालोक और काव्य-प्रकाश के बाद मौलिकता में इसी का स्थान है। पंडितराज ने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों की विशद और विवेचनात्मक मार्मिक आलोचनायें की हैं। परन्तु यह ग्रन्थ अपूर्ण है और इसमें उत्तरालङ्कार तक ७० अलङ्कार निरूपित हुए हैं। रस-गंगाधर अलङ्कार शास्त्र का अन्तिम ग्रन्थ है। इस समय तक विभिन्न आचार्यों के अध्यवसाय से अलङ्कारों की संख्या १८० से ऊपर पहुँच गई थी। पंडितराज के बाद संस्कृत साहित्य में कोई उल्लेखनीय विद्वान् नहीं हुआ। अस्तु, यह काल अलङ्कार विकास का उत्तर काल था।

अब हिन्दी साहित्य के अलङ्कार ग्रन्थों की कुछ ऐतिहासिक विवेचना समीचीन होगी। हिन्दी आदि अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत तो नहीं है परन्तु संस्कृत से उनका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य की प्राप्ति हिन्दी को पैतृक संपत्ति की भाँति हुई। हिन्दी के साहित्याचार्यों के सामने अलङ्कार विषयक वे समस्यायें नहीं आईं जैसी कि संस्कृत में अलङ्कारों के उत्तरोत्तर विकास में हम ऊपर दिखा चुके हैं। यहाँ तो संस्कृत साहित्य की अपूर्व पृष्ठभूमि आश्रय के लिए पहिले से ही प्रस्तुत मिली। सिद्धांत प्रतिपादित थे, ढाँचे तैय्यार थे, रूप निर्धारित था जिसमें अपनी भाषा को बिठाने मात्र की आवश्यकता थी।

परन्तु हिन्दी में अलङ्कार ग्रन्थों की भरमार है क्योंकि यहाँ तो एक युग वह आया जब कि कवि के लिए आवश्यक हो गया कि वह पहले अलङ्कार और नायिका भेद पर रचना करे। यह युग रीति काल के नाम से विख्यात है। उस काल में रीति ग्रन्थों की वह बाढ़ आई कि कविगण साहित्य के अन्य अंगों को प्रायः विस्मृत कर बैठे। आँधी के आमों की भाँति इन रचनाओं में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट सभी देखने को मिलती हैं। यहाँ हमारा अभीष्ट उन्हीं का उल्लेख करना मात्र है जो श्रेष्ठ और प्रचलित हैं।

सं० १६५८ वि० में रचित महाकवि केशव की कविप्रिया हिन्दी के उपलब्ध ग्रन्थों में श्रेष्ठ और प्रथम स्थान पर है। इसमें साहित्य सम्बन्धी अन्य उपयोगी विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है तथा ३७ अलङ्कारों का निरूपण किया गया है जिनमें काव्यादर्श

का प्रभाव परिलक्षित होता है। फिर जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह प्रथम की विक्रमीय १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना भाषा-भूषण काफ़ी प्रचलित और प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कुवलयानंद के आधार पर है। इसमें ४ शब्दालङ्कार और १०० अर्थालङ्कारों का विधान किया गया है। कविप्रिया और भाषा-भूषण उस समय की रचनायें हैं जब हिन्दी में अलङ्कार शास्त्र के ज्ञान के लिये कोई साधन न था। हिन्दी साहित्य में इनका नाम गौरव की दृष्टि से सदा लिया जायेगा।

सं० १७६६ वि० में उदयपुर के वंशीधर और दलपतराय रचित अलङ्कार रत्नाकर भाषा-भूषण का वैसा ही परिवर्द्धित रूप है जैसा कि चंद्रालोक का कुवलयानंद। प्रत्येक अलङ्कार के कई-कई उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया गया है। उक्त समयानुसार इसकी रचना का महत्व निर्विवाद है।

सं० १६०३ वि० में भिखारीदास रचित काव्यनिर्णय, काव्य प्रकाश और कुवलयानन्द के आधार पर लिखा गया है जिसका क्रम इन ग्रंथों के अनुसार न होकर रचयिता की इच्छा पर निर्भर रहा है। इसमें १०० अर्थालङ्कार और १२ प्रमाणालङ्कार हैं परन्तु विषय का स्पष्टीकरण विस्तृत विवेचना होते हुए भी अधिकांशतः भ्रामक है।

विक्रमीय १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में वर्तमान महाकवि भूषण रचित शिवराजभूषण हिन्दी का अपूर्व ग्रंथ है जिसमें कुवलयानन्द के आधार पर लक्षणों का विधान है। विषय विवेचना की परिपाटी रीतिकाल में थी ही नहीं अतएव उसका हम इन सभी ग्रन्थों में अभाव पाते हैं। हिन्दी साहित्य के गौरव की श्रीवृद्धि करने वाले मतिराम का ललितललाम, पद्माकर का पद्माभरण, दूलह का कविकंठाभरण, सोमनाथ का रसपीयूष, गोकुल की चेतचंद्रिका, गोविंद का कर्णाभरण, लछिराम का रामचंद्रभूषण और ग्वाल का अलङ्कार-भ्रम-भंजन आदि अन्य अलङ्कार ग्रंथ हैं जिनमें लक्षणों का आधार प्रायः कुवलयानन्द से ही लिया गया है।

हिन्दी के आधुनिक अलङ्कार ग्रन्थों में कविराजा मुरारिदान चारण का सं० १६-५४ वि० रचित जसवंतजसोभूषण विद्वत्तापूर्ण और उल्लेखनीय रचना है। सं० १६-५३ वि० में सेठ कन्हैयालाल पोद्दार रचित अलङ्कार-प्रकाश जिसका परिवर्द्धित संस्करण (सं० १६८३ विक्रम) काव्य-कल्पद्रुम है, हिन्दी के अभीतक प्रकाशित अलङ्कारग्रन्थों में श्रेष्ठ है। इसके बाद काल क्रम के अनुसार जगन्नाथप्रसाद भानु का काव्य-प्रभाकर, भगवानदीन दीन की अलङ्कार मंजूषा, डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' का अलङ्कार-पीयूष और सेठ अर्जुनदास केडिया का भारतीभूषण आदि अलङ्कार निरूपण विषयक ग्रन्थ हैं। परन्तु इन सब में जो सूक्ष्म प्रवेश, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन, विषय निरूपण का सरल ढङ्ग तथा लक्षणों की वास्तविक विवेचना प्रणाली हमें काव्यकल्पद्रुम में मिलती है वह अन्यत्र नहीं।

अलङ्कारों के क्रम विकास और संस्कृत तथा हिन्दी में उनके ऐतिहासिक विवरण के बाद हम रासोकार की प्रतिभा को कसौटी पर परखेंगे। रासो में किन-किन अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है तथा कवि को कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय करना हमारा उद्देश्य है। हम सर्व प्रथम शब्दालङ्कारों पर विचार करेंगे। रासो में इनमें अनुप्रास और

यमक का बहुलता से प्रयोग किया गया है और अनुप्रासों की तो भरमार ही समझना चाहिये। आचार्यों ने अनुप्रास के अबतक जितने भेद किये हैं प्रायः उन सबके प्रयोग रासो में मिल जायेंगे। वर्णानुप्रास के कुछ उदाहरण देखिए—

१. जंग जुरन जालिम जुझार, भुज सार भार भुअ। छं० ४० स० २०
२. प्रवीन कोक केलयं, कुकी कुकेक केलयं। छं० ८४ स० ४५
३. हहक्कार हंकार हक्कार हक्कं, हबक्कं हबक्का धरे धीर हक्कं। छं० २२१, स० ४८
४. न जानं न जानं न जानं प्रमानं, न रुद्रं न रुद्रं न रुद्रं न जानं।
न सीलं न सीलं न सीलं न गाहं, गुरं जा गुरं जा गुरं जा स राहं। छं० ६४
घनं जा घनं जा घनं जानि लोभी, मुकत्ती मुकत्ती मुकत्तीत सोभी।
छिमंते छिमंते छिमंते समानं, भ्रमंते भ्रमंते भ्रमंते भ्रमानं। छं० ६५
उरंगं उरंगं उरंगत्ति धारं, ततथ्थे ततथ्थे ततथ्थे सु भारं। छं० ६६ स० ५६
५. आसीनी सज्जानी विग्यानी, उल्लानी निरधानी ध्यानी उरथानी। छं० ७४ स० ६२
६. तं कंपन कुं पुनयं पुनयं, सनयं सनयं सिरयं धुनयं।
बलयं चलयं नकयं चकयं, अलि भारं मंजरियं भगयं। छं० ७६
लजनं रजनं भजनं भवनं, चतुरष्ट न तुष्ट रचै रवनं। छं० ७७
कलिनं अलिनं ललिनं वयनं, सयनं चलिनं चलिनं रचनं। छं० ७८ स० ६२
७. चढि कंध कमंधन जोगिनी सद्द मद्द उनमद्द फिरि।
नारद सु तुंमर जुद्ध चर, जै जै जै उच्चार करि। छं० १०२२ स० ६६
८. कट्टिय कुलाइ कलहंतरह, ढकी ढाल ढंढोरियै। छं० १३२६ स० ६६

वृत्यानुप्रास की तीनों प्रकार की वृत्तियों का अच्छा प्रयोग मिलता है। भिन्न-भिन्न रसों की अवतारणा में उनकी सिद्धि हेतु इन वृत्तियों का आश्रय कवि लिया करते हैं। रासो से दो वृत्तियों के नमूने लीजिये—

१. उपनागरिका या वैदर्भी—

जिम जिम तन जर जर्यौ, विहसि वर धायौ तिम तिम।
जिम जिम अंत रुलंत, लष्ष दल तिन गनि तिम तिम।
जिम जिम करि वर परत, उठत जिम सीस सहित बर।
जिम जिम रुधिर झरंत, सवन घन बरषत सद्धर।
जिम जिम सु षग्ग बज्यौ उरह, तिम तिम सुर नर मुनि मन्यौ।
जिम जिम सु चाव धरनीं पर्यौ, तिम तिम संकर सिर धुन्यौ। छं० २२७३, स० ६१

यहाँ वृत्ति तो उपनागरिका है परन्तु वर्णन श्रृंगार रस का न होकर युद्ध का है। अस्तु, वृत्ति विरोध दोष है।

२. परुषा या गौड़ी—

तारक मंत प्रगट्टिय, थट्टिय पंषियन।
अंषिन अद्ध उरद्धन, अद्धन निंद मन।

ढिल्लिय ढाल कुलाल, कुलाहल किन्नरम।
ढिल्लिय नाथ सु हाथ, समथ्थिय अथ्थियन। छं० १५४५ स० ६१
गह गह गह उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
रह रह रह उच्चार, नाग नागिनि मन लज्जिय।
बह बह बह उच्चार, सुरह असुरन धुनि सज्जिय।
अह अह अह तासंत, तुट्टि पायन पर तज्जिय।
मुह मुहह मुच्छ पर कन्ह तुह, चमर छत्र पट्टुपंग लिय।
सिर बंध कंध असिवर ढरिग, पहर एक पट्ट न दिय। छं० २२७४
पहर एक पर प्रहर, टोप असि बर बर बज्जिय।
बषर पषर जिन सार, पार बट्टन तुटि बज्जिय।
रोम रोम बर विद्ध, सिद्ध किन्नर लिज्जिय बर।
अस्त बस्त बभ्री, कपाट दद्धीच हीर हर।
रुधि मंस हंस हरिबंस नर, दिवि दिवंग मिलि अम्मिलित।
किन्नर कबंध घटि तंति तिन, सुवर पंग दिष्षिय षिलत। छं० २२७५ स० ६१

एक पद की आवृत्ति वाले शब्दानुप्रास [लाटानुप्रास] के उदाहरणों की भी कमी नहीं है—

१. त्रैनैनं त्रिजटेव सीस त्रितयं, त्रैरूप त्रीसूलयं।
अदेवं त्रिदिसा त्रिभू त्रिगुनयं, त्री संधि वेदत्रयं।
त्रैरग्निं त्रयलच्छि काल त्रितयं, ग्रामं त्रयं त्रैवयं।
गंगा त्रै त्रिपुरारि भासित तनुं, सोयं नमः संभवे। छं० २१७ स० ६१

२. नव बाजी नव हथ्थ रथ्थ नव नवति सुभ्र भर। छं० १५५ स० ३१

३. मनमथ बजार मनमथ्थ धाम, मनमथ तड़ाग कै प्रेम बाम। छं० ६० स० ४५

४. बंके मुष बंके चषन, बंकी करन कमान।
बंक दीह सम करि गनौ, बंके षग्ग अमान। छं० १४ स० ११

५. नव गति नव मति नव सपति, नव सति नव रति मंद। छं० ११७ स० ५५

६. लोहानी पग कढ्ढि कै, लज्जानी पग बंधि।
लज्जि लज्जि गुन लज्जि कै, तेग धरी बर कंध। छं० ४०८ स० ६६

७. घर घर मंगल बोलियै, घर घर दीजै दान।
सँमुष धनि धनि उच्चरै, भल छोर्‍यौ चहुआन। छं० ४०६ स० ६६

८. अय त्रिपुर जीति त्रिपुरारि हुअ। छं० ११७७ स० ६६

अनुप्रासों की प्रयास रहित स्वाभाविक अभिव्यंजना मनोहारिणी है। वाच्यार्थ विचित्रता से रिक्त केवल अनुप्रास के लिए शब्दाडंबर वैफल्य दोष कहा गया है, जिसे यदा कदा हम पा जाते हैं।

यमक का प्रयोग रासो के अनेक स्थलों पर मिलता है परन्तु संयम के साथ। कहीं-कहीं तो इतना सुन्दर प्रयोग हुआ है कि चित्त प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं —

१. अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुंदरि सीस।
गोरी ग्रहि गोरी गयो, बिना जुद्ध बुझि रीस। छं ३० स०११

२. वर गोरी पदमावती, गहि गोरी सुरतान।
निकट नगर दिल्ली गये, अमुजा चहुआँन। छं० ६८ स० २०

३. सपत सुर गान निपुना, नृत्यकला कोटि आलया मानं।
तार तरलेव भ्रमरी, भ्रमरी भ्रमरी सय सयसं। छं० ७३ स० ४५

४. समर सिंह रावर नरिंद, रति उथपि दीह थपि।
दीह धवल दिसि धवल, धवल उठ्ठहि सु मंत्र जपि।
धवल दिव्य सुनि कन्न, धवल कढ़्ढ धवली असि।
धवल वृषभ चढ़ि धवल, धवल बंधै सुब्रह्म वसि।
धवलिही लीह जस विस्तरै, धवल सेद संमुष लरै।
यों करौं धवल जस उब्बरै, धवल धवल बंधै बरै। छं० ६२ स० ५६

५. रन रत्तौ चित रत्त, वस्त्र रत्तेत ग्गग रत।
हय गय रत्तै रत्त, मोह सों रत्त वीर रत।
धर रत्तै पत रत्त, रूक रत्ते विरुझानं।
रत्त वीर पलचर सुरत, पिंड रत्ती हिय सानें।
विप्फुरे घाय अध्घाय फुट, पंग ठट्ट चम्पे सुभर।
दैवत्त जुद्ध चहुआन वर, षिजि कमान लीनी सुकर। छं० १७३४ स० ६१

६, हरि हरि हरि बन हरित महि, हरन पिष्षयै अंषि।
सारंग रुकि सारंग हने, साँरग करनि करष्षि। छं० १२६ स० ६२

७. कग्गर अप्पह राज कर मुष जंपह इह वत्त।
गोरी रत्तौ तुअ धरनि, तू गोरी रस रत्त। छं० २३७ स० ६६

८. है पानी ढिल्ली धरा, मनसा पानी रष्षि।
सो चिंत्यौ संभरि धनी, जन्म सुकित्तिय अष्षि। छं० ६६० स० ६६

अग्निपुराण, काव्यादर्श और सरस्वती कंठाभरण उल्लिखित अव्यपेत और सव्यपेत नामक यमक के दो भेदों में रासो के अधिकांश यमक प्रयोग सव्यपेत श्रेणी के हैं। पादावृत्ति और भागावृत्ति तथा इनके अनेक उपभेदों की विवेचना साधारण और गौण समझ कर नहीं की गई है।

वक्रोक्ति अलङ्कार का एक बहुत ही अच्छा स्थल रासो समय ६१ में जयचंद और कविचंद के वार्तालाप प्रसंग में है। इसकी चर्चा पिछले अध्याय १ में 'कवि की निर्भीकता' शीर्षक के अन्तर्गत की जा चुकी है। अतएव यहाँ पर पुनरावृत्ति न करके कुछ निर्देश मात्र कर देना यथेष्ट होगा।

विपक्षी चौहान दरबार के कवि चंद को भरे दरबार में अपने शत्रु पृथ्वीराज की प्रशंसा करते देख महाराज जयचंद ने चंद और उसके स्वामी की खिल्ली उड़ाने के उद्देश्य से निम्न बचन कहे—

मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगलराव सु हद्द।
बन उजार पसु तन चरन, क्यों दूबरौ बरद्द। छं० ५८० स० ६१

यहाँ जंगलराव [१. भील, २. पृथ्वीराज] और बरद्द [१. बैल, २. वरदायी चंद] पर श्लेष द्वारा कान्यकुब्जेश्वर ने चंद पर आक्षेप किया, परन्तु चंद भी उद्भट दरबारी था। उसने बैल वाला रूपक छोड़ा नहीं वरन् उसी के मिस अपने स्वामी के शौर्य की और प्रशंसा कर डाली। देखिए,

चढ़ि तुरंग चहुआन, आन फेरीत परद्धर।
तास जुद्ध मंडयौ, जास जानयौ सब रबर।
केइक तकि गहि पात, केइ गहि डार मूर तरु।
केइक दंत तुछ त्रिन्न, गए दस दिसनि भाजि डर।
भुअ लोकत दिन अचिरिज भयौ, मान सबर बर मरदिया।
प्रथिराज षलन षद्धौ जु षर, सु यौं दुब्बरौ बरदिया। छं० ५८१

परन्तु जयचंद इतने से ही हार मानने वाले न थे। उन्होंने फिर कटु उक्ति की [छं० ५८२-३] और वाग् वैदग्ध प्रतिभावाले कवि ने पृथ्वीराज का पराक्रम और भी ओजस्विता से वर्णन करके [छं० ५८४-५] उन्हें सर्वथा निरुत्तर कर दिया [छं० ५८५]।

यह वार्तालाप प्रकरण श्लेष वक्रोक्ति अलङ्कार का एक अच्छा नमूना है। वक्रोक्ति ने इसे पूरी मनोरंजकता प्रदान की है।

अब हम शब्द और अर्थ के आश्रित रहने वाले तथा अर्थ को चमत्कृत करने वाले अर्थालङ्कारों पर विचार करेंगे। अग्निपुराण [३४४।१] में कहा है कि अर्थों को अलंकृत करने वाले अर्थालङ्कार कहे जाते हैं तथा अर्थालङ्कार के बिना शब्द सौन्दर्य मनोहर नहीं हो सकता। अर्थालङ्कारों में सादृश्यमूलक अलङ्कार प्रधान हैं और सभी सादृश्यमूलक अलङ्कारों का प्राणभूत अलङ्कार उपमा है। अप्पय्य दीक्षित ने अपनी चित्र-मीमांसा में लिखा है कि काव्य रूपी रंगभूमि में उपमा रूपी नटी अनेक भूमिका भेद से नृत्य करती हुई काव्य मर्मज्ञों का चित्त रंजन करती है। यथा,

उपमैषा शैलूषी संप्राप्ता चित्र भूमिका भेदात्,
रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यंती तिद्विदां चेतः।

सादृश्य अलङ्कारों में सादृश्यता कहीं उक्ति भेद से वाच्य होती है और कहीं व्यंग्य से तथा सादृश्य ही उपमा है इसलिये उपमा अलङ्कार अनेकों अलङ्कारों का उत्थापक है।

इन अलंकारों में उपमेय और उपमान की विधि ही चमत्कारक होती है। रसात्मक प्रसंगों में यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रस्तुत [उपमेय] जिस प्रकार के भाव का उत्तेजक है उसी प्रकार अनुरूप भाव का उत्तेजक अप्रस्तुत [उपमान] भी है।

रासो में जहाँ कवि कुल और काव्य परंपरा का ध्यान रखते हुए प्रसिद्ध अनुरूप उपमानों का प्रयोग मिलता है वहाँ अनेक अप्रसिद्ध उपमान भी प्रयोग में लाये गये हैं और वे अधिकांशतः उत्प्रेक्षाओं के अंतर्गत हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

१. मणिजटित शीशफूल क्या है मानो अर्द्धरात्रि में बृहस्पति का उदय हुआ हो। यथा,

जस्यौ ससिफूल जर्यौ मनिबद्ध, उग्यौ गुरदेव किधौं निसि अद्ध। छं० ७० स० २१

२. मणिबंध इस प्रकार का है मानो कृष्ण काली नाग पर नाच रहे हों। यथा—

मनीस बाल साच ज्यों, कि कन्ह कालि नाच ज्यौ। छं० ११३

परीन बैन कथ्थयौ, जु कन्ह कालि मथ्थयौ। छं० १६४ स० ३६

मनिबंध पुहपति दीसए, जनु कन्ह कालिय सीसए। छं० २१३ स० ६६

जनु सीस फूलति अच्छयौ, मनु कन्ह कालिय सुच्छयौ। छं० २१५ स० ६६

३. कपोल इस प्रकार चमकते हैं मानो चन्द्रमा सूर्य में झलक रहा हो। यथा—

उपमा सु कपोलन की चिलकै, जु मनो ससि ह्वै रवि में झलकै। छं० ७७ स० २१

केशवदास ने भी दर्पण में मुख देखती हुई राधा के मुख को सूर्य के मंडल के अंदर दीखते हुए चन्द्रमा की उपमा दी है। यथा—

कहि केशव श्री वृषभानु कुमारि सिंगार सिंगार सबै सरसै।
स-विलास चितै हरि नायक त्यों रतिनायक सायक से बरसै।
कबहूँ मुख देखति दर्पन लै उपमा मुख की सुखमा परसै।
जिमि आनंदकंद सु पूरनचन्द दुर्यो रवि मंडल में दरसै॥

सूर्य मंडल में चन्द्रमा के दृश्य का होना असंभव होने के कारण यह अभूतोपमा है।

४. गले की त्रिवली ऐसी प्रतीत होती है मानो कृष्ण ने पांचजन्य पकड़ा हो। यथा—

कल ग्रीव त्रिवल्लिय रेष वनं, ग्रह्यौ मनु कन्हर पंचजनं। छं० ७६ स० २१

कल ग्रीव रेष सुभेष, हरि कंज अंगुल तेष। छं २५१ स० ६१ और

कल ग्रीव रेष त्रिवल्लया, जनु पंच जन्य सुथल्लया छं० २०८ स० ६६

५. गले में कंठश्री वैसी ही शोभा पा रही है मानो आठ ग्रहों को दाब कर चंद्रमा [चंद्रमुख] बैठा हो। यथा,

जगमगत कंठ सिर कंठ केस, मनु अठ्ठ ग्रह चंपि ससि सीसबैसि छं० ११७ स० ६२

६. घोड़ों के गले में हमेल ऐसी प्रतीत होती है मानो आठ ग्रह अपने तारक मंडल सहित उदय हो गये हैं। यथा—

अग बंधि सु हेम हमेल घनं, तव चामर जोति पवंन रुनं।

ग्रह अट्ट स तारक पीत पगे, मनों सुत के उर भान उगे। छं० ३४ स० २७

७. कुचों के बीच हार ऐसा शोभायमान हो रहा है मानो हरद्वार में दो पर्वतों के बीच से श्वेत धारा वाली गंगा बह रही हों। यथा—

कुच मद्धि हार विराज, हरद्वार गंग जु राज। छं० २५२ स० ६१

८. नितंब क्या हैं मानों कामदेव के रथ के चक्र हैं। यथा—

नितंब उत्तंग रज्जि, मनमथ्थ चक्र विसज्जि। छं० १५५ स० १४

और भी मानो दो उज्ज्वल सूर्य बिंब हों। यथा—

बरनी मनि बढ्ढि बढंत नितंब, सुभै जनु उज्जल द्रुवै रवि बिंब। छं०८४, स०२१

तथा—

नितंब तुंग सोभए, अनंग अंग लोभए।

मनौ कि रथ्थ रंभ के, सुरंभ चक्क संभ के। छं० ३२८, स० २५

फिर, आधी तोंबियों सदृश नितंब प्रवाल की भाँति चमकते हुए मानों कामदेव के रथ के चक्र के समान हैं और चलते समय वक्र हो जाते हैं। यथा—

नितंब अद्ध तुंबियं, प्रवाल रंग सुब्बियं। छं० १७७

कि काम रथ्थ चक्कए, चलंत एड़ि वक्कए। छं० १७८, स० ३६

और भी, बड़े नितंब मानो काम के दर्पण हों तथा मानो उदय और अस्त होनेवाले सूर्य हों। यथा—

नितंब गरूअ द्रप्पन कि काम, उदै अस्त भानु जनु पंति वाम। छं०१२३ स०६२

अप्रसिद्धि मात्र ही उपमा के लिये कोई दोष नहीं है। परन्तु अर्थ क्लिष्टता बढ़ा कर भाव को दुरूह करनेवाली अथवा रस के सामंजस्य को नष्ट करने वाली उपमा अवश्यमेव ही अति दोषपूर्ण है। अस्तु, नये उपमान का सारा उत्तरदायित्व कवि पर है। नई उपमाओं का प्रयोग अवश्य होना चाहिये परन्तु पूर्ण विचार के साथ।

राजस्थान के कवियों ने अपने को कवि परंपरा से चली आने वाली उपमाओं मात्र से नहीं बाँध रक्खा है वरन् उन्होंने नये उपमानों का प्रयोग पूरे साहस के साथ किया है। इनमें से वे प्रयोग जो अर्थ गौरव को बढ़ाने में समर्थ हो सके हैं निःसंदेह प्रशंसनीय हैं। ऐसे उपमान जो मनुष्य के ज्ञान की परिधि में आधुनिक युग में आ गये हैं प्रयुक्त किये जाने पर अर्थ सुलभ करने वाले होंगे। सादृश्यता मूलक अनेक ऐसी वस्तुयें हैं जो लोप हो गई हैं अथवा लोप होने के मार्ग पर हैं, वे चाहे पूर्ववर्ती साहित्य में प्रसिद्ध क्यों न रही हों परन्तु व्यवहार में अप्रसिद्ध होने के कारण भविष्य में प्रयुक्त किये जाने पर केवल अर्थ क्लिष्टता उपस्थित करेंगी।

रासो में ऐसे उपमान भी मिलते हैं जिनका प्रयोग नवीन होते हुए अर्थ सुलभता के कारण अति रोचक और हृदय ग्राह्य हो गया है। कतिपय स्थल देखिए—

१. **रहै न आनन्द कुँअर हिय, उमगत कन्ठ प्रमान।**

कहै न कासो बत्त वर, मानों दुद्ध उफान। छं० १३८, स० ६

२. घोड़े उलटे पैर रखते हुए ऐसे लगते हैं मानों वैशिक नायक को देखकर कुलटा चल रही हो। बलवान घोड़ों के मुँह पर झालरों का घूँघट पड़ा है और प्रतीत होता है कि मानो घूँघट काढ़े हुए कुल बधुयें चली जा रही हों। यथा—

पय मंडिहि अंसु धरै उलटा, मनौं बिंटय देषि चलै कुलटा।

मुष कढ्ढिन घूंघट अस्सु बली, मनों घुंघट दै कुल बद्धु चली। छं० ३५ स० २७

३. युद्धभूमि में वीर गति पाने वाले उस वीर को शची [इंद्राणी] ने बिना किसी लाज के वैसे ही ढूँढ़ निकाला जैसे मछली अपने बच्चे को देखकर खींच लेती है। यथा—

बिना लज्ज पष्षै सची ढुंढि पिष्षी।
मनों डिंभरू जानि कै मीन क्रष्षी। छं० १३७ स० २७

४. **फट्टै पुड्ड फुरमानं, धाये धराजित्त जिताइं।**
इम जुट्टे सब सेनं, ज्यौं भू नीर बढ्ढि सरिताइं। छं० १४ स० ३६

५. **औगुन अंग न स्वामित जंगं, ज्यों सहगोन दुहागिल रंगं।** छं० २२ स० ३६

६. **फिरत तुरी चालुक्क रन, वर रष्ष चिहु कोंन।**
न सु चंपै न सु ढिल्लवै, ज्यौं बंदर को छोंन। छं० १२६ स० ४४

७. **जितं तित ओन भरक्कत घाइ, फटै जनु नाव दृयाव मझाइ।** छं० १८७ स० ४४

८. **यों मिले सब्ब परिगह नृपति, ज्यों जल झर बोहिथ्थ फटि।** छं० ३१ स० ४७

९. **सुनि तमोर पठ्ठिय सुकर, मुष उत करि दिठ बंक।**
जनु छैलनि कुलटा मिलै, बहुत दिवस रस षंक। छं० ६१६ स० ६१

१०. **रह्यौ नही संभरि धनी, चढ्यौ चित्त अति चाव।**
उगमगि पहुमि पयान भर, ज्यों जल रीती नाव। छं० ११७ स० ६२

११. **गहि पाइ भुम्मि पटकै जु फेरि, धोबी कि वस्त्र सिल पिट्ट सेर।**
छं० २२६७ स० ६१

१२. रूपवती अप्सरा को देखकर मुनि पर कामदेव का प्रभाव हुआ और फलस्वरूप योग रूपी जहाज़ भग्न हो गया। यथा,

दिषंत मेंन लग्गयं, जिहाज जोग भग्गयं। छं० ८६ स० ४५

१३. नदी और सागर सम्मेलन में जैसे दोनों में हिलोरें उठती हैं वैसे ही संधि काल में शैशव रूपी जल में यौवन ज़ोर करता है। यथा,

यों सरिता अरु सिंध सँधि, मिलत दुहून हिलोर।
त्यौं सैसव जल संधि में, जोवन प्रापत जोर। छं० ४२ स० ४६

१४. **लगै गुर्ज सीसं दुअं हथ्थ जोरं, दधी भाजनं जानि हरि ग्वाल फोरं।**
छं० २५२, स० ५

रासो में कई स्थलों पर ग्रामीण प्रयोग मिलते हैं जो कि काव्य दोष माना गया है। अच्छे कवि अपनी रचनाओं में ऐसे प्रयोग न आने देने के लिये सतत सावधान रहते हैं। यह दोष चंद के अथवा प्रक्षेपकों के मत्थे मढ़ा जाय, इसे वर्तमान परिस्थितियों में कह सकना कठिन है परन्तु अधिक सम्भावना परवर्तियों के विषय में ही की जा सकती है क्योंकि चंद जैसा उद्भट कवि ऐसी भूलें कदापि नहीं कर सकता था। ग्रामीण प्रयोगों के दो तीन उदाहरण दिए जा रहे हैं—

अनग पाल पुत्री उभय, इक दीनी विजपाल।
इक दीनी सोमेस कौं, बीज बवन कलिकाल। छं० ६२१ स० १

अर्थात् अनंगपाल के दो पुत्रियां थीं, उन्होंने एक विजयपाल को दी और कलिकाल में बीज बोने के लिये दूसरी सोमेश्वर को।

यहाँ 'बीज बवन कलिकाल' बड़ा ही भद्दा और असाहित्यिक प्रयोग किया गया है।

प्रकाशित रासो पृष्ठ १३४ पर, इस विषय में, संपादकों की निम्न टिप्पणी ध्यान देने योग्य है—

चंद कवि का यह वाक्य 'बीज बवन कलिकाल' हमारे पाठकों के ध्यान देकर समझने योग्य है। यद्यपि चंद सोमेश्वर जी के घर का कविराज था परन्तु वह कैसा यथार्थ वक्ता था। क्या आज भी कोई कवि अथवा कविराज ऐसा स्पष्ट कह अथवा लिख सकता है?

विद्वान् संपादकों से मेरा मतैक्य नहीं है। ऐसा रद्दी प्रयोग किसी भी कवि की स्पष्ट वक्तृता का प्रमाण न होकर उसकी कवित्व शक्ति को लांच्छन लगाने वाला है। दूसरे एक स्थल पर समुद्र मंथन की कथा का वर्णन करते हुए लिखा है—

लिय रतन चवदसु वीनीयं, बँटि बंटि निज कर दीनयं।
वर विदरि विद्दरि वीरयं, सुर असुर मिलि जल फोरयं। छं० १०८ स० २

यहाँ जल फोड़ने का प्रयोग भी अत्यंत ही अनुचित हुआ है। और देखिए—

साज सज्जि चल्यौ सु फुनि, जनु ऊलौ दरियाव। छं० ६२० स० ६१

दरियाव [समुद्र या नद] की उत्ताल तरंगों को ऊलना कहना कहाँ तक साहित्यिक है, इसे पाठकों को समझने में देर न लगेगी।

इस प्रकार के प्रयोग रासो में बहुत से हैं। ये प्रयोग कवित्व में बट्टा लगाने वाले अश्लाघ्य और परम निंदनीय हैं। न इनकी उपेक्षा की जा सकती है और न समालोचक कवि को इनके लिए कभी क्षमा ही कर सकता है।

रासो के अनेक स्थलों पर वर्णित रस के विरुद्ध सामग्री मिलती है। यद्यपि साहित्याचार्यों ने साम्य से कहे गये विरोधी रस या भाव विभाव आदि को दोषाधायक नहीं माना है। परन्तु इस प्रकार के आरोप रस की प्रतीति में अवश्य ही बाधक होते हैं। वीर रस के अन्तर्गत शृंगार और शृंगार के अन्तर्गत वीर रसात्मक वर्णन भले ही चमत्कारी हों परन्तु उनसे वास्तविक रस की निष्पत्ति में व्याघात पड़ता है।

वीर गाथा काल में वीरों की प्रशस्तियाँ ही अधिक लिखी गई हैं और इन वीरों के जीवन में प्रेम [वासना जनित] और युद्ध की प्रधानता रही है। युद्ध और प्रेम का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अपने आश्रयदाताओं या युग प्रधान वीरों की रुचि का प्रभाव तत्कालीन कवियों पर होना अनिवार्य था और उन्होंने परस्पर विरोधी शृंगार और वीर रस का सम्मिश्रण यदा कदा करने में कोई बुराई नहीं देखी। इस प्रकार के वर्णनों का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य में इसी युग से प्रारम्भ हुआ और फिर आगे चल कर संभवतः इसे एक चमत्कृत करने वाली शैली मान लिया गया। जायसी के पद्मावत में भी हमें ऐसे वर्णन मिलते हैं जो वीर गाथा काल से निकली हुई परम्परा के प्रतिपादक हैं।

रासो के कुछ स्थल लीजिये—

सार सार मच्ची कहर, दोउ दलनि सिर मंधि।
प्रौढ़ा नायक छयल रमि, प्रात न वंछै संधि। छं० ३८

दोनों दलों में तलवार बज रही थी और वे एक दूसरे को उसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहते थे जैसे प्रौढ़ा नायिका और छैला नायक रमण कार्य में प्रवृत्त होकर संधि भय के कारण प्रातःकाल की वांछना नहीं करते।

युद्ध कालीन विपक्षी दलों की विषम संलग्नता की रति से तुलना चमत्कारपूर्ण भले ही प्रतीत हो परन्तु वह रसाभास उत्पन्न करने वाली है।

समर जुद्ध मच्चिय समर, हाला हल बर मत्ति।
कोलाहल पंषिन कियौ, काम रूप बर जित्त। छं० ४६२
बरंत काम रूपयं, असी वहै अनूपयं।
लगै सु गौरि पासयं, परक्रिया कटाछयं। छं० ४६३
सरंत वीर सोहयं, उरंद मुट्ठि छोहयं।
हला हलं हलं मलं, मिलंत अंग संभिलं। छं० ४६४ स० २५

यहाँ भी युद्ध वर्णन के अन्तर्गत परकीया के कटाक्षों और रमण कालीन शरीर आदि हिलने के उल्लेख किये गये हैं।

बर बसंत बर साज, सूर लग्गा चावद्दिसि।
रत्त रुधिर लमरंग, छित्त राजै अवृत्त वसि।
फेरि अहूयौ सुरतान, चंद बध्यौ उड्डगन बर।
निसि नछित्र ज्यौं प्रात, सेन दिष्यौ जु मंभ्र बर।
नर गिरहि भिरहि उठ्ठहि लरत, षट षट्टंति न सुभट षट।
पाहुनौ सुभट गोरी कियौ, दाहिम्मै चावंड थट। छं० १३३
सु त्रिय हार सम परि सुथिर, यौं सु बरे संमेत।
सार धार बर देखिए, सार प्रहारन प्रेत। छं० १३४ स० ५२

यहाँ पर युद्ध वर्णन में वीभत्स की तुलना हेतु शृङ्गार रस के संचारी बसंत ऋतु को लाया गया है तथा एक स्थान पर उपमान स्वरूप सुंदरी का हार भी उपस्थित है।

शृंगार में वीर रस संबंधी कई उदाहरण प्रस्तुत पुस्तक के अध्याय २ के 'भाव व्यंजना' प्रकरण में 'रति' के अंतर्गत दिये जा चुके हैं।

अर्थालंकारों में उपमा अलंकार पहला और बहुत प्राचीन है। वेदों में भी इस अलंकार का प्रयोग मिलता है। भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र में सर्व प्रथम जिन चार अलंकारों का उल्लेख किया गया है उनमें उपमा भी एक है। रासो में इस अलंकार का प्रयोग बहुलता से मिलता है। रासोकार ने नवीन उपमानों की योजना में इस सादृश्य मूलक अलंकार का भी प्रयोग किया है जिसके कई उदाहरण उक्त उल्लेख में देखने को मिल जायेंगे। कुछ अन्य स्थल देखिये —

माया मोह विरत्त मन, तन तिनुका सम डारि।
जुटे पिथ्थ दरबार महि, करि तरवार दुधार। छं० ५६ स० ५

यहाँ तन उपमेय है, तिनुका उपमान है और 'सम' आर्थीउपमा वाचक शब्द है। अतएव आर्थीपूर्णोपमा है।

इसौ कन्ह चहुआन, जिसौ भारथ्थ भीम बर।
इसौ कन्ह चहुआन, जिसौ द्रोनाचारज बर।

इसौ कन्ह चहुआन, जिसौ दससीस बीस भुज ।
इसौ कन्ह चहुआन, जिसौ अवतार वारि सुज ।
जुध बेर इस्स तुट्टै जु रिन, सिंध तुट्टि लखि सिंधनिय ।
प्रथिराज कुंवर साहाय कज, दुरजोधन अवतार लिय । छं० १०१ स०५

यहाँ कन्ह चौहान को भीम, द्रोणाचार्य, रावण आदि की उपमायें दी गई हैं परन्तु उपमानों का धर्म नहीं कहा गया है इससे लुप्त धर्मा है । छंद की पाँचवीं पंक्ति में 'तुट्टै' समान धर्म अवश्य दिया गया है परन्तु संपूर्ण छंद में लुप्त धर्म की प्रधानता है । अस्तु, यह निरवयवा-लुप्तधर्मा मालोपमा है ।

बर रचिय केस विचि सुमन पंति, बिच धरे जमन जल गंग कंति । छं० १०६ स० ६२

यहाँ केश और सुमन उपमेय हैं तथा जमुना और गंगा क्रमशः उपमान हैं, रचिय और कंति साधारण धर्म हैं परन्तु उपमा वाचक शब्द नहीं है अतएव वाचक लुप्तोपमा है ।

उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलङ्कार कहा गया है । तद्रूपारोपाद्रूपकम् (साहित्य दर्पण) । रूपक न्याय के आधार पर इस अलंकार का नाम रूपक पड़ा है । इसमें उपमेय में उपमान का आरोप अर्थात् एक वस्तु में दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है । उपमेय में उपमान का आरोप अपह्नुति में भी होता है परन्तु वहाँ उपमेय का निषेध करके । रूपक में निषेध नहीं होता । यही रूपक और अपह्नुति में भेद है ।

रासो में सादृश्य मूलक अलङ्कारों के प्रयोगों में उत्प्रेक्षा के बाद रूपक की ही गणना होनी चाहिये । रासो जैसे बृहदाकार को पहुँचे हुए ग्रन्थ में जहाँ रूपकों की बाढ़ है प्रायः रूपक के सारे भेद और विभेद देखे जा सकते हैं परन्तु इनमें अभेद और सावयव (सांग) रूपक का प्रयोग अधिक मिलता है । कुछ उदाहरण देखिए —

आसा महीव कव्वी, नव नव कित्तीय संग्रहं ग्रंथं ।
सागर सरिस तरंगी, बोहथ्थयं उक्तियं चलियं । छं० ७६ स० १

कवि के महान आशा रूपी सागर में (उत्ताल) तरंगें उठ रही हैं जिसमें उक्ति रूपी बोहिथ चलाये गये हैं ।

काव्य समुद्र कवि चंद कृत, मुगति समप्पन ग्यान ।
राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान । छं० ८० स०१

कवि चंद कृत काव्य रूपी समुद्र ज्ञान रूपी मोती समर्पित करनेवाला है और राज-नीति रूपी बोहिथ सफलता से उस काव्य सागर के पार उतारने वाला यान है ।

तत्त हीन पुत्तरी, पंच बंधी कर नंचै ।
आसा नदी सपूर, जीय मनोरथ संचै ।
बहु तरंग तिस्नाह, राग बहु ग्रेह कुरंगी ।
का चहुआना किति, कंत धीरज तिरभंगी ।
मन मेह मूढ विस्तरि रह्यौ, चिंता तट घट भंजइय ।
उत्तरहि पार दुत्तर कवी, का चहुआना रंजइय । छं० ५५ स० १

पुतली रूपी शरीर निरर्थक है और पंच तत्वों से बँधकर यह पुतली सदृश नाचता

रहता है। आशा रूपी वेगवती और गहरी नदी है जिसमें मनोरथ रूपी जीव संचित हैं। अनेक तृष्णा रूपी तरंगें उठ रही हैं और राग मोह आदि ग्राह हैं तथा चिंता इसके तटों को नष्ट करती रहती है। कवि के लिये इसका पार पाना कठिन है।

यहाँ शरीर के धर्म में नदी के अवयवों का आरोप किया गया है।

विषम जग्य आरंभ, वेद प्रारंभ शस्त्र बल।
है गै नर होमियै, शीश आहुत्ति स्वस्ति कल।
क्रोध कुंड विस्तरिय, कित्ति मंडपे करि मंडिय।
गिद्धि सिद्धि बेताल, पेषि पल साकृत छंडिय।
तुंबर सु नाग किंनर सु चर, अच्छरि अच्छ सु गावहीं।
मिलि दान अस्स अप्पन जुगति, भुगति मुगति तत पावहीं। छं० ४५३ स० २५

युद्ध रूपी विषम यज्ञ प्रारंभ होगया, शस्त्र बल प्रहार रूपी वेद पाठ होने लगा, हाथी, घोड़ों और नरों का हवन होने लगा, शीश कटने के रूप में स्वस्ति वाचन आहुति दी जाने लगी, उस हवन कुंड का क्रोध रूपी विस्तार हुआ, कीर्ति रूपी मंडप तना था, गिद्ध सिद्ध वैताल रूपी दर्शक थे और इस युद्ध रूपी यज्ञ में वीरों को मुक्ति रूपी तत्व के भोग की प्राप्ति हुई।

यहाँ उपमेय युद्ध में उपमान यज्ञ का आरोप है। प्रत्येक के प्रायः सभी अवयवों का उल्लेख किये जाने के कारण समस्त वस्तु विषय-सावयव है।

समुद रूप गोरिय सुबर, पंग ग्रेह भय कीन।
चाहुआन तिन विबध के, सो ओपम कवि लीन।
सो ओपम कवि लीन, समर कग्गद लिय हथ्थं।
भिरन पुच्छि बट सुरँग, बंधि चतुरंग रजथ्थं।
समर सु मुक्कलि सोर, लोह फुल्यौ जस कुमुदं।
रा चावंड जैतसी, रा बड़ गुज्जर समुदं। छं० ५५ स० २६

श्रेष्ठ योद्धा सुलतान गोरी रूपी समुद्र में पंग रूपी ग्राह का भय लगा हुआ था। चौहान की वहाँ पर देव रूप में शोभा हुई। उन्होंने युद्ध का परवाना हाथ में ले लिया और शत्रु से भिड़ने के लिये सुंदर बट के आकार में अपनी चतुरंगिणी सेना सजाई। फिर तो युद्ध भूमि में रक्ताभ तलवार रूपी कमल खिल उठे।

यद्यपि यहाँ पर सावयव रूपक है परन्तु अच्छा निर्वाह नहीं हो सका है। समुद्र और ग्राह का रूपक तथा चौहान को देवता उपमान और बट आदि लाकर कवि ने समुद्र मंथन का ठाट बाँधा परन्तु इससे आगे निर्वाह न कर सका। समुद्र मंथन से चौदह रत्नों की प्राप्ति के उपमान स्वरूप मुक्ति रूपी जय आदि के उल्लेख पूर्णतः संभव थे परन्तु उसने रण में मारकाट करने वाली रक्त से लाल तलवारों को कुमुद रूप देकर संपूर्ण रूपक की इतिश्री कर दी। फिर समुद्र में कुमुद खिलाने का उपमान अप्राकृतिक होने के कारण असंगत दोष वाला भी होगया है।

बाल नाल सरिता उतंग, आनंग अंग सुज।
रूप सु तट मोहन तड़ाग, भ्रम भए कटाच्छ दुज।
प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसन।
दुति ग्रह नेह अथाह, चित करषन पिय तुट्टन।
मन बिसुद्ध बोहिथ्थ बर, नहि थिर चित जोगिंद तिहि।
उत्तरन पार पावै नहीं, मीन तलफ लगि मत्तविहि। छं० ५६ स० ४५

वह बाला उत्तुंग सरिता है, रूप जिसका तट है, आकर्षण रूपी तड़ाग है, कटाक्ष रूपी भँवर हैं, प्रेम रूपी जिसका विस्तार है, योग रूपी मनसा का वह विध्वंस करने वाली है, उसकी द्युति ही ग्राह है, स्नेह रूपी अथाहता है, स्थिर चित्त वाले योगेन्द्र भी विशुद्ध मन रूपी बोहिथ पर चढ़ कर उस रमणी रूपी नदी के पार नहीं जा सकते।

यहाँ नायिका में नदी के अवयवों के आरोप द्वारा सांग रूपक का चित्रण हुआ है।

देषि तथ्थ संजोगि, नेह जल काम करारे।
हाय भाय विभ्रम कटाच्छ, दुज बहु भंति निनारे।
रचि तरंग झंकोर, बयन अंदोल कसय सब।
हरन दुष्ष द्रुम रूम सिवाल, कुच चक्रवाक सोदि सब।
द्रिग भवर मकर बिंबर परत, भरत मनोरथ सकल सुनि।
बर बिहुर अपति अनाल में, नन जानों किहि घटिय गुनि। छं० ११६८ स० ६१

संयोगिता को देखकर पृथ्वीराज ने प्रेम रूपी जल में काम रूपी कगार देखे, हाव भाव कटाक्ष आदि व्यापार भँवर रूप थे जिसमें उसके शब्द झंकोर द्वारा लहरों का आंदोलन कर रहे थे, द्रुम और सिवाल रूप दुखों का हरण करने वाले कुच रूपी चक्रवाक थे और दृग रूपी भँवरों में मकर बिंब सारे मनोरथों को पूर्ण करने वाले थे।

यहाँ संयोगिता को नदीरूप कहा गया है। संयोगिता उपमेय में उपमान नदी का आरोप है और उपमेय नायिका के अवयवों [प्रेम, काम, हाव, भाव, कटाक्ष, वाणी आदि] में उपमान नदी के अवयवों [जल, तरंग, भँवर, चक्रवाक आदि] का आरोप किया गया है। अस्तु सावयव रूपक है। परन्तु नदी और नायिका के सारे अवयवों का उल्लेख और आरोप न होने के कारण समस्त-वस्तु-विषय नहीं है।

रूप समुद्र तरंग दुति, नदि सबकी भलि आनि।
गुन मुत्ताहल अप्पि कै, बस किन्नौ चहुआन। छं० १४६ स० ६२

रूप रूपी समुद्र में द्युति रूपी तरंगें उठ रही हैं; गुण रूपी मोती अर्पण करके उसने चौहान (रूपी हंस) को अपने वश में कर लिया। यहाँ चौहान को हंस रूप नहीं कहा गया है फिर भी अन्य अनुरूप आरोपों के संबंध द्वारा अर्थ बल से वह सुस्पष्ट है। काव्य परंपरा में हंस मोती चुनने वाला प्रसिद्ध है अतः एकदेशविवर्ति-सावयव है।

शुद्ध-निरवयव-रूपक के भी दो स्थल देखिए—

चंद बदनि म्रग नयनि, भौंह असित कोवंड बनि।
गंग मंग तरलति तरंग, बैनी भुअंग बनि।

कीर नास अगु दिपति, दसन दामिक दारमकन।
छीन लंक श्रीफल अपीन, चंपक बरनं तन।
इच्छति भतार प्रथिराज तुहि, अह निसि पूजति सिव सकति।
अध तेरह बरष पदंमिनी, हंस गमनि पिष्षहु त्रपति। छं० ३६,स० ४७

उस चंद्रवदनी मृगनयनी की धनुष रूपी काली भ्रकुटि है, तरल तरंगों वाली गंगा रूपी माँग है, भुजंग रूपी वेणी है, कीर रूपी नासिका है, दाड़िम के दानों रूपी दाँत हैं, क्षीण (पतली) कटि है, चंपक वर्ण शरीर है। अहर्निशि शिव और पार्वती का पूजन करती हुई वह बाला, हे पृथ्वीराज, तुम्हें पति रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा कर रही है। हे नृपति, साथ ही उस पद्मिनी को तेरह वर्ष की अवस्था वाली और हंस गामिनी भी जान लो। यहाँ नायिका के अंग प्रत्यंगों में भिन्न भिन्न उपमानों का आरोप किया गया है।

उदै अनंदिय बीर, बाजि रन जंग बीर बर।
क्रोध लोभ मद उतरि, मद पिन्नो मुगत्ति सर। छं० ६१३ स० ६१

वीरों में आनन्द का उदय हुआ और रणभूमि में युद्ध छिड़ गया। क्रोध और लोभ का मद उतर गया और मुक्ति रूपी सरोवर का मद उन्होंने पी लिया।

यहाँ एक उपमेय मुक्ति में अवयव रहित एक उपमान सरोवर का आरोप होने से शुद्ध निरंग रूपक है।

भर अरत्त साईं, विरत्त गोरी सुलतानं।
संझ रूप संजोगि, गिल्यौ चहुआन सु भानं। छं० १३६ स० ६६

सारे भट स्वामी से विरक्त हो गये हैं तथा सुलतान गोरी विशेष रूप से अनुरक्त हो गया है। संध्या रूपी संयोगिता ने चौहान रूपी सूर्य को निगल डाला है।

यहाँ चौहान रूपी सूर्य को निगलने के लिये कवि ने संयोगिता को संध्या रूप देकर परंपरित रूपक का अच्छा उदाहरण रक्खा है। संध्या काल में रवि अस्ताचल को पहुँच जाता है। प्रकृति के इस स्वाभाविक व्यापार को लेकर कवि की अनुभूति ने सुंदर रूपक का सृजन कर डाला है।

हरित कनक कांतिं कापि चंपेव गोरी।
रसित पदम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा।
उरज जलज सोभा नाभिकोसं सरोजं।
चरन कमल हस्ती लीलया राज हंसी। छं० ११८ स० ४५

अधर मधुर बिंबं कंठ कलयंठ रावे।
दलित दलक अमरे भ्रिंग भ्रूकुटीव भाव।
तिन सुमन समानं नासिका सोभयंती।
कलित दसन कुंदं पून चंद्रानन च। छं० १२० स० ४५

यहाँ दूसरे छंद की तीसरी पंक्ति में 'समान' शब्द आर्थी उपमा वाचक है परन्तु संपूर्ण छंद निरंग रूपक का अच्छा उदाहरण है। 'समान' को अन्य उपमानों के साथ जोड़ना भूल होगी।

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में संभावना की जाना उत्प्रेक्षा है। 'उत्कटा प्रकृष्टस्योपमानस्य ईक्षा ज्ञानं उत्प्रेक्षा पदार्थः' (काव्यप्रकाश) अर्थात् उपमान का उत्कटता से ज्ञान किया जाना। संभावना भी एक कोटि का प्रबल ज्ञान है। कवि प्रतिभा उत्पन्न चमत्कारक समान कोटि का ज्ञान संदेह अलङ्कार का प्रतीक है परन्तु किसी संशय ज्ञान में जहाँ एक कोटि का प्रबल ज्ञान या निश्चित ज्ञान होता है उसे संभावना कहा गया है—"उत्कटैककोटिःसंशयः सम्भावनम्" (काव्यप्रकाश)। अस्तु उत्प्रेक्षा अलंकार में उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

रासो में उत्प्रेक्षायें भरी पड़ी हैं परन्तु इनका अनुपम सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। रूप शृंगार और युद्ध वर्णनों के अंतर्गत वस्तूत्प्रेक्षाओं की भरमार समझनी चाहिये। शृंगार और युद्ध के स्थल जैसा कि पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है रासो में सबसे अधिक संख्या में हैं। इन वर्णनों में कवि परंपरा का निर्वाह तो किया ही गया है साथ ही अनेक नवीन और अप्रसिद्ध उपमानों का भी जी खोलकर प्रयोग किया गया है। इनकी यथास्थान चर्चा की जा चुकी है। नवीन उपमानों ने कहीं कहीं भाव को अति सरल और प्रभावोत्पादक बना दिया है। सबसे पहिले हम कुछ वस्तूत्प्रेक्षायें देखेंगे—

कै दशरथ ग्रह राम, कै धाम वसुदेव कृष्ण वर।
कै कलि कस्यप कूष, जानि उपज्यौ किरनाकर।
कृष्ण ग्रेह कै काम, कै काम अंगज जनु अनुरध।
कै नल कस्यप अवतार, किधौं कौमार इस्व रुध्र।
लषिन बतिस बहुतरि कला, बाल वेस पूरन सगुन।
क्रीडत गिलोल जब लाल कर, तब मार जानि चापक सुमन। छं० ७२७ स० १

यहाँ बालक पृथ्वीराज के विषय में अनेक संभावनायें की गई हैं। यह उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा है। और 'कै' प्रयोग जिससे संदेह अलङ्कार का भ्रम हो सकता है 'मानो' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा इस उत्प्रेक्षा वाचक शब्द के कारण इसे वाच्या भी जानना चाहिये।

छुटि म्रगमद कै काम छुटि, छुटि सुगंध की बास।
तुंग मनौ दो तन दियौ, कंचन षंभ प्रकास। छं० ३०६ स० २५

यहाँ उपमेय स्वरूप उरोजों का कथन न होने के कारण रूपकातिशयोक्ति न समझनी चाहिये क्योंकि स्वर्ण खंभ को प्रकाशित करने वाले दो तुंगों (उपमान रूप शिखरों) की संभावना की गई है। नायिका के शरीर को रूपक द्वारा स्वर्ण खंभ कल्पित किया गया है। यह वाच्या वस्तूत्प्रेक्षा है। और उत्प्रेक्षा का विषय न कथन करके संभावना किये जाने के कारण अनुक्त विषया है।

गहत बाल पिय पानि, सु गुर जन संभरे।
लोचन मोचि सुरंग, सु अंसु बहे परे।
अपमंगल जिय जानि, सु नैन मुष बही।
मनों षंजन मुष मुत्ति, भरक्कत नंषही। छं० ३७५

दुहु कपोल कल भेद, सुरंग ढरक्कही।
सज्जन बाल बिसाल, सु उरज परक्कही।
सो ओपम कविचंद, चित्त में बस रही।
मनु कनक कसौटी मंडि, म्रगमद कस रही। छं० ३७६ स० २५

अपहरण करते समय पृथ्वीराज द्वारा हाथ पकड़ते ही राजकुमारी शशिवृता की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। कपोलों से गिरने वाले उन अश्रु बूँदों में कवि ने पहले मोतियों की उत्प्रेक्षा की फिर उन बूँदों के कुचों के मध्य प्रदेश की श्यामता पर गिरने के उपरांत इस उपमेय में कनक कसौटी पर म्रगमद (कस्तूरी) कसे जाने के उपमान की संभावना की। कुचों के अग्र भाग की श्यामता और स्वर्ण कसौटी का काला वर्ण लक्षणा द्वारा निर्दिष्ट है जिसका सुप्रसिद्धि मात्र के कारण उल्लिखित किया जाना अनावश्यक था। यह वाच्या, उक्त विषया, वस्तूत्प्रेक्षा का सुंदर स्थल है। इसी उत्प्रेक्षा योजना के अन्य स्थल भी देखिए—

जीति जंग सैसव सु बय, इह दिष्षिय उनमान।
मानों बाल बिदेस पिय, आगम सुनि फुलि काम। छं० ४५ स० ४६

वय (किशोरावस्था) की शैशव पर युद्ध में विजय ऐसी दिखाई पड़ी मानो विदेश से प्रियतम का आगमन सुनकर बाला प्रसन्नता से खिल उठी हो।

पान देइ दिढ हथ्थ गहि, बर करि हथ्थ दिवंक।
मनु रोहिनि सो मिलिग ज्यों, बीय उदित्त मयंक। छं० ६१६ स० ६१

छद्मवेशी पृथ्वीराज बायें हाथ में पान लेकर महाराज जयचंद को इस प्रकार दे रहे थे मानो द्वितीया का चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र से मिलने के लिये उदय हुआ हो।

हँसि आलिंगन देत, उपजि आनंद अपारह।
कनक लता जनु उमड़ि, लपटि लग्गी सहकारह।
नृप पयान सुनि कान, अंसु फिरि उअर समावत।
मानो आगम झरमंडि, बिरह पावक बुझ्झावत।
चहुआन चलत संयोगिता, पंग आनि करि कै कहै।
संदेश सास संभरि धनी, पलन प्रान पच्छै रहै। छं० २७८ स० ६१

पृथ्वीराज और संयोगिता के आलिंगन (उपमेय) में स्वर्णलता के सहकारी वृक्ष पर लिपट जाने (उपमान) की संभावना की गई है, फिर आँसुओं का हृदय प्रदेश पर गिरना (उपमेय) (आगामी) विरह रूपी अग्नि को बुझाने के लिए वर्षा की झड़ी (उपमान) से संभावित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के अध्याय २ में शृंगार रस के अंतर्गत नख शिख के कई उदाहरण दिये गये हैं, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षाओं के कुछ अच्छे प्रयोग सहज ही देखने को मिल जावेंगे। पुनरावृत्ति भय के कारण यह निर्देश मात्र कर देना उचित समझा गया।

प्रतीयमाना या गम्योत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण भी मिलते हैं—

बाला बेनी छोरि करि, छुट्टे चिहर सुहाइ।
कनक थंभ तें ऊतरी, उरग सुता दरसाइ। छं० २६६ स० २५

इस स्थल पर बाला की खुली वेणी से उन्मुक्त केशों की शोभा की संभावना सोने के खंभे से उतरती हुई उरग सुता (सर्पिणी) से की गई है। नायिका के शरीर को स्वर्ण खंभ आदि के उपमान देना प्रसिद्ध है। यहाँ 'सुहाइ' क्रिया उत्प्रेक्षा सिद्ध करने में सहायक है। उत्प्रेक्षा वाचक मनु, जनु आदि का प्रयोग न होने के कारण और उत्कट संभावना की स्थिति से यहाँ गम्योत्प्रेक्षा सिद्ध होती है। दो अच्छे और स्थल लीजिये —

बाला संभरि बलि बयन, सीत सीत रति रंक।
राह केत मंगल विचें, जमुन सरस्वती गंग। छं० १६८
मरवल अंबर वदन सौ, लोयन सो करषाइ।
ईह अपूरब चरि अरक, पंती अटट कलाइ। छं० १६६ स० ६२

कविराज विश्वनाथ के मत से प्रतीयमाना फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा ही हो सकती हैं वस्तूत्प्रेक्षा नहीं, क्योंकि वस्तूत्प्रेक्षा में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अतिशयोक्ति की प्रतीति होने लगती है। परन्तु पंडितराज जगन्नाथ उत्प्रेक्षा वाचक शब्द के अभाव में भी गम्योत्प्रेक्षा मानते हैं न कि अतिशयोक्ति। उनका मत है कि उत्प्रेक्षा की सामग्री वर्तमान रहने पर अतिशयोक्ति की कल्पना करने लगना भ्रम है। पंडितराज का मत औचित्यपूर्ण है।

भवननि लगत कटाच्छ, जनु पवन दीपक अंदोलित।
मुसकनि विकसत फूल, मधुर बरसति मुष बोलति।
इठलनि अलसति लसति, सुरति सागर उद्धारति।
रति रंभा गिरिजादि, पिष्षि तां तन मन हारति।
तिहि अंग अंग छवि उक्ति बहु, छंद बंध चंदहु कहिय।
चीरंत जुग महि अजर इह, कलू एक कीरति रहिय। छं० ५६ स० १४

इस छंद के प्रथम चरण के द्वितीयार्द्ध में आया 'जनु' शब्द छंद रचना के नियमों के आधार पर अधिक प्रयुक्त हुआ है। वैसे भी 'जनु' को हटा देने से अर्थ की पूर्ति में बाधा नहीं पड़ती और कवि की उत्प्रेक्षा सिद्धि में कोई अंतर नहीं आता केवल इसके कि 'जनु' के बिना प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है और 'जनु' के रहने पर वाच्या वस्तूत्प्रेक्षा। छंद के दूसरे चरण में कवि ने सिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा का बड़ी खूबी के साथ प्रयोग किया है। फूल विकसित अवश्य होते हैं और मधुर वर्षा भी होती है परन्तु संयोगिता की मुसकान से उनका विकास और उसकी वाणी से मधुर वर्षा का जो हेतु कहा गया है वह कवि कल्पित है तथा इस हेतु का आधार 'सौन्दर्य' सिद्ध है।

प्रतीयमाना हेतुत्प्रेक्षा के दो उदाहरण देखिए—

सम नहीं इसिमती जोइ, छिन गरुअ छिन लघु होइ।
देषंत ग्रीय सुरंग, तब भयौ काम अनंग। छं० १६२ स० ६२

कवि का कथन है कि संयोगिता की सुंदरता को देखकर ही कामदेव अनंग हो गया।

परन्तु काम के अनंग होने की कथा शिव द्वारा भस्म किये जाने वाली है। अस्तु यहाँ कवि कल्पित हेतु है जिसका आधार लज्जित होना सिद्ध न होने के कारण असिद्ध विषया है और उत्प्रेक्षा वाचक शब्द के अभाव में प्रतीयमाना है।

उप्पनौ देषि सु हंस, जौ लियौ बन कौ अंस।
सुनि कोकिला कल राव, भयौ वरन स्याम सुभाव। छं० १६१स० ६२

संयोगिता का सुंदर स्वर सुनकर यहाँ कोयल का श्याम वर्ण होना कहा गया है। कोयल काली अवश्य होती है परन्तु उसका काला वर्ण प्राकृतिक है न कि जैसा इस स्थल पर वर्णित है। कोयल के काले होने का जो हेतु कहा गया है वह कवि कल्पित है और उस हेतु का आधार ईर्ष्या होना सिद्ध है क्योंकि ईर्ष्या वश वर्ण परिवर्तन के उदाहरण अंग्रेज़ी साहित्य में भी मिलते हैं, इसीलिये यह सिद्ध विषया है। यदि इस हेतु का आधार लज्जित होना कहा जाय तो असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा हो जावेगी क्योंकि लज्जा से श्याम वर्ण होना सिद्ध नहीं होता। उत्प्रेक्षा वाचक शब्द का प्रयोग न होने कारण प्रतीयमाना है।

संयोगिता की रति और स्वेद कणों को लेकर कवि ने शुक मुख द्वारा मयंक और मन्मथ की उत्प्रेक्षा कराई है। स्थल देखने योग्य है—

देषि वदन रति रहस, बुंद कन स्वेद सुम्भ भर।
चंद किरन मनमथ्थ, हथ्थ कुड्डे जड्डु डुक्कर।
सुकवि चंद वरदाय, कहिय उप्पम श्रुति चालह।
मनो मयंक मनमथ्थ, चंद पुज्यौ मुत्ताहय।
कर किंरनि रहसि रति रंग दुति, प्रफुलि कली क्रलि सुंदरिय।
सुक कहै सुकिय इंछिनि सुनव, पै पंगानिय सुंदरिय। छं० ८८ स० ६२

उदाहरण अलंकार के अनेकों प्रमाण रासो से दिये जा सकते हैं। सामान्य रूप से कहे गये अर्थ को भलीभाँति समझाने के लिये जहाँ उसका एकअंश (विशेषरूपसे) दिखलाकर उदाहरण दिखाया जाता है वहाँ यह अलंकार माना गया है। "दृष्टांत अलंकार में उपमेय और उपमान का बिंब प्रतिबिंब भाव होता है और इव आदि उपमा वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। किन्तु उदाहरण अलंकार में सामान्य अर्थ को समझाने के लिये उसके एक अंश का दिग्दर्शन कराया जाता है। प्रायः साहित्याचार्यों ने इवादि का प्रयोग होने के कारण उदाहरण अलंकार को उपमा का एक भेद माना है। पंडितराज जगन्नाथ के मतानुसार यह भिन्न अलंकार है। उनका कहना है कि उदाहरण अलंकार में सामान्य विशेष्य भाव है उपमा में यह बात नहीं। और सामान्य विशेष भाव वाले अर्थान्तरन्यास में इव आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता और उदाहरण में इव आदि शब्दों का प्रयोग होता है, इसलिये उदाहरण को भिन्न अलंकार मानना युक्ति संगत है।" (काव्य कल्पद्रुम, पृ० ७६)।

रासो के कुछ स्थल देखिये—

१. **सरस काव्य रचना करौं, खल जन सुनि न हसंत।**
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसंत। छं० ५१ स० १

२. आनें चिंतिय राम, जो मुहि ढुंढा निगलिहै।
इंद्र व्रतासुर जेम, निकसौं उदर विदारि षग। छं० ५४१ स० १

इसमें पूर्वार्द्ध में कही गई सामान्य बात का उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिया गया है।

३. बसि कीनौ सुरतान, चंग जिम भ्रमै डोरि कर।
ज्यौं भावी बसि लाइ, बचन उद्योत बाल सुर।
ज्यों बसि जीवन मंन, प्रात बसि जेम क्रंम्म गुर।
ज्यों बसि नाद कुरंग, बास बसि जेम मधुक्कर।
महिला सु मुक्कि सब बस्सि भय, महिला महिल सुमत्ति बसि।
एकंग एक अंदर महल, रहै साहि सुरतान रसि। छं० ३२ स० ११

यहाँ पूर्वार्द्ध में सुलतान को वशीभूत करने वाली सामान्य बात के उत्तरार्द्ध में कई उदाहरण दिये गये हैं।

४. बालप्पन तन मध्य वय, गादरि तन चष नूर।
ज्यौं बसंत तरु पल्लवन, इछ उठ्ठन अंकूर। छं० ३८ स० ४६

५. ज्यों करकादिक मकर में, राति दिंवस संक्रांति।
यों जुब्बन सैसव समय, आनि सपत्तिय कांति। छं० ४१ स० ४६

६. यों क्रम क्रम वनिता सु वय, सैसव मध्य रहंत।
सीतकाल रवि तेज ससि, घाम रु छांह सुहंत। छं० ४३ स० ४६

७. यों सैसव जुब्बन समय, विधि वर कीन प्रकार।
ज्यों हथलेवहु दंपती, फेरे फिरिअ न पार। छं० ४७ स० ४६

८. यों राजत अवनी कला, सैसव में कछु स्याम।
ज्यों नभ परिवा चंद तुछ, राह रेह बल ताम। छं० ४८ स० ४६

९. नृप मन धन दक्खिय सनेह, देह दुष काम बाम अगि।
ज्यों कुलाल घट अग्गि, पचषयौं उमझि उठ्ठि लगि।
दंपति नेह दुष दुहुन कहि, बिछुरि साथ चक्रवाक्र जिम।
ज्यौं सहै दुहन जिहि कुल बधू, कहत साष पंजर सु तिम। छं० १२१६ स०६१

प्रतीप अलंकार में उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है। काव्य प्रकाश (मम्मट, दशम उल्लास) में लिखा है —

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कार निबन्धनम् ॥१३३॥

१. अस्य धुरं सुतरामुपमेयमेवं वोढुं प्रौढमिति कैमर्थ्येन यदुपमान माक्षिप्यते,

२. यदपि तस्यैवोपमानतया प्रसिद्धस्य उपमानांतर विवक्षयाऽनादरार्थमुपमेयभावः कल्प्यते तदुपमेयस्योपमानप्रतिकूलवर्तित्वादुभयरूपं प्रतीपं।

रासो से दो उदाहरण दिये जाते हैं—

बैनि नाग लुट्टयौ, वदन ससि राका लुट्यौ।
नैन पदम पंषुरिय, कुंभ कुच नारिंग छुट्यौ।

मद्धि भाग प्रथिराज, हंस गति सारंग मत्ती।
जंघ रंभ विपरीत, कंठ कोकिल रस मत्ती।
ग्रहि लियौ साज चंपक वरन, दसन बीज दुज नास वर।
सेना समग्र एकत करिय, काम राज जीतन सुधर। छं० २०१ स० ३६

रणथंभौर की राजकुमारी हंसावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उसके अंग प्रत्यंगों का उत्कर्ष, उपमानों का अपकर्ष करके दिखाया है।

ससि रुन्नौ अग बढ्यौ, काम हीनौति भीन रति।
पंकज अलि दुम्मनौ, सुमन सुम्मनौ पवन पति।
पतंग दीप लगिय न, मीन दुम्मनौ जीय नम।
सुकिय सषिय सुष दिष्ट, चित चिंतति नेह भ्रम।
सुष सक्ति हीन सो दान त्रप, हाव भाव विभ्रम श्रवन।
यों रति चरित्त मंगल गवन, सुनि इंछनि इंछनि रमन। छं० १५० स० ६१

इस स्थल पर अपूर्व सौन्दर्य राशि संयोगिता के अंगों की सुंदरता अनुरूप प्रसिद्ध उपमानों की लघुता करके दिखाई गई है। यहाँ उपमेय का निगरण करने वाले उपमानों का कथन किया गया है जिससे रूपकातिशयोक्ति सिद्ध होती है परन्तु उपमानों का अपकर्ष दिखाने के कारण अप्रत्यक्ष उपमेय की प्रशंसा हुई है इसलिये प्रतीप अलङ्कार है। साथ ही 'इंछनि इंछनि' में यमक का प्रयोग भी कवि ने किया है।

प्रकाशित रासो पृ० १६८० में इसे 'अतीयालङ्कार' संभवतः भूल से छप गया है क्योंकि वैसा किसी अलङ्कार का नाम नहीं है। प के स्थान पर य प्रेस की असावधानी का परिणाम है। स्मरण अलङ्कार का रासो में प्रायः अभाव ही है परन्तु कुछ स्थल इस प्रकार के हैं कि इस अलङ्कार का भ्रम होना बहुत संभव है। अस्तु उसके निवारण हेतु निम्न विवेचना आवश्यक हो गई है।

(समय ६१ वर्णित) कन्नौज युद्ध में अपने सगे सम्बन्धी परम हितैषी और वीर सामंतों के मारे जाने का दुःख पृथ्वीराज को निरंतर रहता था। देखिये —

कटे कुटुंब मन मित्त, हितकारी काका भट।
कटे सूर सामंत, सजन दुज्जन दहंन ठट।
कटे सुसुर सारे सहेत, मातुलह पच्छय फुनि।
कटे राज रजपूत, परम रंजन अवनी जन।
निसि दिन सुहाइ नह नृपति कौं, उच्च सास छंडै गहै।
अंतरति अगनि उद्वेग अति, सगति सूल सालै सहै। छं० २ स० ६३

इस स्थल पर स्मरण जन्य दुख का वर्णन अवश्य है परन्तु पूर्वानुभूत वस्तु सदृश किसी वस्तु के देखने पर उसकी स्मृति का कथन नहीं है जो स्मरण अलंकार में वांछित होता है।

पृथ्वीराज सुलतान गोरी से युद्ध हेतु चल दिये। परिणय के उपरांत उनका और संयोगिता का यह अंतिम वियोग था। वियोगिनी संयोगिता को संयोग काल की वस्तुयें निरर्थक लगीं—

वही रत्ति पावस्स, वही मघवान धनुष्षं ।
वही चपल चपकंत, वही बगपंत निरष्षं ।
वही घटा घन घोर, वही पप्पीह मोर सुर ।
वही जमी असमान, सही रवि ससि निसि वासुर ।
वेई अवास जुग्गिनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय ।
संजोगि पयंपति कंत विनं, मुहि न कछू लग्गत रलिय । छं० ६४५ स० ६१

पूर्वानुभूत और सुखद वर्षा की रातें, इन्द्रधनुष, बिजली, बगुलों की पंक्तियाँ, घन-घोर घटायें, पपीहों और मोरों के स्वर आदि प्रिय स्वामी के वियोग में संयोगिता के लिए आकर्षण विहीन हो गये । सब कुछ तो है परन्तु प्यारे प्रियतम नहीं हैं । संयोगकालीन सुखद वस्तुओं की उपस्थिति ने वियोग में पति का स्मरण तीव्रतम कर दिया और हृदय की व्याकुलता 'मुहि न कछू लग्गत रलिय' में प्रगट हो गई । यहाँ हमें स्मरण अलङ्कार की ध्वनि मिलती है परन्तु स्मृति संचारी भाव में विशिष्ट रूप से विद्यमान है ।

वीरभद्र द्वारा पृथ्वीराज की पराजय और बंदी होने का समाचार पाकर चंद शोका-कुल हो उठा । प्रबोधे जाने पर उसने वीरभद्र से कहा कि मैं राजा और सामंतों के साथ बाल्यकाल के संबंधों का स्मरण कर दुखी हूँ —

कहै ताम कविचंद, अहौ वीराधि वीर सुनि ।
हम मनुच्छ मय मोह, उदधि बुड्डै सु तत्त तुनि ।
हमहि राज इकवास, सथ्थ उतपन्न संग सदि ।
नेह बंध बंधियै, करिय अति प्रीति राज रिदि ।
सामंत सकर अति प्रेम तर, वाल नेह उर धुर कियौ ।
बलिभद्र नेह संसार सुष, किम सुनेह छंडै जियौ । छं० १७०२ स० ६६

यहाँ सारे सामंतों का मरण और राजा के बंदी होने के दुखद समाचार ने कवि के हृदय में इन सब के साथ के बाल्य कालीन संबंधों की स्मृति पनपा कर हरी कर दी और उक्त स्मृति का कथन 'हमहि राज इकवास, सथ्थ उत्पन्न संग सदि' इत्यादि भी वर्तमान है परन्तु सदृश वस्तु के देखे बिना ही स्मृति होने के कारण स्मरण अलङ्कार नहीं माना जा सकता ।

नेत्रहीन किये जाने पर पृथ्वीराज ने परम दुख के आवेग में अपने पूर्व कर्मों, अपने राजोपयोगी जीवन, प्यारी संयोगिता आदि का स्मरण करके बड़ा विलाप (छं० १६३१-५८ स० ६६) किया है । इस स्थल पर भी सादृश्य के अभाव में केवल स्मृति होने के कारण स्मरण अलंकार अथवा उसकी ध्वनि नहीं है । स्मृति संचारी भाव के रूप में है ।

भ्रांतिमान अलंकार का एक बड़ा ही अच्छा स्थल रासो में मिलता है । अप्रकृत (उपमान) के समान प्रकृत (उपमेय) को देखने पर अप्रकृत की भ्रांति होने में भ्रांतिमान अलंकार होता है । एक वस्तु को भ्रम के कारण दूसरी वस्तु समझ लेना ही भ्रांति है । यह सादृश्य मूलक चमत्कारक भ्रांति कवि कल्पित होती है और इस भ्रम की उत्थापक उसकी प्रतिभा है ।

कुंजर उप्पर सिंघ, सिंह उप्पर दोय पब्बय।
पब्बय उप्पर भ्रंग, भ्रंग उप्पर ससि सुभ्भय।
ससि उप्पर इक कीर, कीर उप्पर म्रग दिठ्ठौ।
म्रग उप्पर कोवंड, संध कंद्रप्प बयठ्ठौ।
अहि मयूर महि उप्परह, हीर सरस हेम न जर्यौ।
सुर भुअन छंडि कविचंद कहि, तिहि धोषै राजन पर्यौ। छं० ११८६ स० ६१

कन्नौज में गंगा तट पर मछलियाँ चुनाते समय पृथ्वीराज ने संयोगवशात् समीपस्थ जयचंद के महल के गवाक्ष पर युग सुंदरी राजकुमारी संयोगिता को देखा और वे उपर्युक्त भ्रांति में पड़ गये।

कवि ने भ्रांतिमान अलंकार की सिद्धि में रूपकातिशयोक्ति का भी सहारा लिया है, यहाँ यह जान लेना उचित होगा।

समय ६३ में एक गुफा में सिंह होने के अनुमान से पृथ्वीराज द्वारा धूम कराने और उससे एक ऋषि के निकलने तथा श्राप देने का वर्णन है। देखिए—

कंदर अंदर धूम किय, सिंह भरम प्रथिराज।
पुब्ब पुरान नहीं सुन्यौ, अति गति होंत अकाज। छं० १५० और
केहरि भरंम हम धूम किय, पायक बसिइय देव हुअ।
सँकुचि नरिंद कप्पै डरपि, थरपि हथ्थ सिर सोम सुअ। छं० १६४

इस वर्णन में अनुमान में भूल हुई है और वह निःसंदेह भ्रमात्मक सिद्ध हुई परन्तु कवि कल्पित सादृश्य मूलक चमत्कार के अभाव के कारण यहाँ भ्रांतिमान अलंकार नहीं माना जा सकता।

संदेह अलंकार का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है। देखिए—

दै दुज्जनि दुज उत्तरह, दुहू रूप चमकंत।
कोइ कहै प्रतिब्यंब है, को कहै प्रीति अनंत। छं० ३५ स० ४६

दुज और दुजी के चमकते हुए रूपों को कोई प्रतिबिंब कहता था और कोई अनंत प्रीति का अनुमान करता था।

रात्रि में कर्नाटकी के साथ रमण कार्य में प्रवृत्त मंत्री कैमास ने जब अपने समीप से निकलते हुए एक घातक बाण का शब्द सुना तो उसके हृदय में शंका हुई कि अर्जुन का यह शायक नहीं है, दशरथ भी दिखाई नहीं देते, स्वामी (पृथ्वीराज) ने आखेट की वृत्ति ले रक्खी है; न ये तीनों नर हैं और न (शब्दवेधी) बाणही; (तब यह बाण कैसा)?—

अर्जुनः सायको नास्ति, दशरथो नैव दृश्यते।
स्वामिन आषेटकं वृत्ति, न च वाने न त्रयो नरः। छं० ८८ स० ५७

चमत्कारिक उक्ति द्वारा संदेह कथन करके कवि ने संदेह अलंकारकी स्थापना की है।

कन्नौज के राज दरबार में छद्मवेशी पृथ्वीराज को पहिचानकर कर्नाटकी ने लज्जा के कारण घूँघट खींच लिया। उसके इस विचित्र और विपरीत व्यवहार से पंग दरबार में संदेह पैदा हो गया। कोई कहने लगा कि पृथ्वीराज है और कोई खवास का अनुमान करने

लगा तथा शत्रु रूपी दुष्ट ग्रह को ग्रसित करने की चर्चा चल उठी—

अप्प अप्पभट अटकि, षटकि पट दासि मंडि सिर।
इक्क चवै क्रत बदन, एक षल नथ्थ जानि थिर।
इक्क कहै प्रथिराज, इक्क जंपय षवास बर।
दिष्षि दरस रयसिंघ, कहत दीवान अज्ज भर।
कढ़्ठिया विकट केहरि कहर, जहर भार अंगय मनह।
संग्रहौ आय रिपु दुष्ट ग्रह, समय सद्ध रा पंग कह। छं० ७१६ स० ६१

यहाँ वास्तविक संदेह का संयोग कवि कल्पित चमत्कार से होने के कारण संदेह अलङ्कार का निश्चय करना चाहिये। दूसरे से भिन्नता करनेवाले धर्म को न कहकर केवल संशय का कथन किये जाने के कारण इसे 'भेद की अनुक्ति में संशय' या शुद्ध-संदेह कहेंगे।

अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग रासो में पर्याप्त है। 'अतिशयतः अतिक्रान्ते' (शब्द चिंतामणि) अर्थात् उल्लंघन। लोक मर्यादा का उल्लंघन करने वाली उक्ति में अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। शब्द और अर्थ की विचित्रिता अतिशयोक्ति के ही आश्रित है। आचार्य दंडी ने तो कहा है कि अतिशयोक्ति के बिना कोई अलङ्कार हो ही नहीं सकता और उन्होंने संदेह, निश्चय, मीलित आदि अलङ्कारों को पृथक न लिखकर अतिशयोक्ति के अन्तर्गत ही लिखा है। रासो के कुछ स्थल देखिए—

जैसे नर पंगुरौ, बिनु सु अंगुरी न हल्लहि।
आधारित अंगरी, हरू वह बत्त न चल्लहि।
तैसे रा जयचंद, असंष दल पार न पायौ।
चालुक इक सर सरित, दलन हरबल्ल अधायौ।
दिसि उभय गंग जमुना सु नदि, अद्ध कोस दल तब बह्यौ।
कविचंद कहै जैचंद न्रप, तातें दल पंगुर कह्यौ। छं० १०२८ स० ६१

इस स्थल पर उदाहरण अलङ्कार का प्रयोग करते हुए जयचंद के असंख्य दल की प्रतीकता अतिशयोक्ति द्वारा कराई गई है।

करत पंग पायान, षेह उड्डत रवि लुक्कै।
महुरै जल पुठ्ठै सु, पंक सरिता सर सुक्कै।
पानी ठाहर षेह, एह उड्डती विराजै।
बर पंयान छावंत, भान खिर पट्ट कविज्जै।
दिगपाल कंपि हलि दसो दिसि, सेस पयानो नहि सहै।
बर न्रपति सीस ईसं सु सुनि, भौ पंगुर तातें कहै। छं० १२८७ स० ६१

यहाँ पंगराज की चढ़ाई के आतंक वर्णन में दिग्पालों का काँपना, दिशाओं का हिलना आदि असंभव व्यापारों को निश्चित रूप से कहा गया है अतएव निर्णीयमाना-सम्बन्धातिशयोक्ति है।

युद्ध में वीर गति पाकर तुरंत मोक्ष पद प्राप्त करने वाले अतुलित वीरों की मुक्ति के व्यापार में भी कवि ने अतिशयोक्ति का कितना प्रभावोत्पादक चित्रण कर डाला है कि

देखते ही बनता है —

गंग डोलि ससि डोलि, डोलि ब्रह्मंड सक्र डुल।
अष्ट थान दिगपाल, चाल चंचाल विचल थल। छं० १४६३ स० ६१

एक चमत्कारक रूपकातिशयोक्ति भी देखिए —

तजि भूखन वर बाल, एक आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चंद, उभै खंजन ढिग चिन्हौ।
श्रीफल उरज विसाल, बाववर अंग सुपत्तौ।
सुकि सुत रंग अरज्जि, करी भग्गावल वत्ती।
सोभंत उरगपति भुअ सरन, हंस मुत्ति चर बर करी।
सुध काज चढ़ै पप्पील सुत, काम पॅत्तिनी दुख हरी। छं० ३०० स० २५

यहाँ पर राजकुमारी शशिवृत्ता के अंग प्रत्यंगों (उपमेय) का वर्णन न करके उनके प्रसिद्ध उपमानों का कथन है। आरोप्यमाण के द्वारा उपमेय वर्णन के कारण गौणी-साध्यवसाना-लक्षणा भी समझ लेनी चाहिए।

रासो में रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग अधिक किया गया है। कहीं कहीं वह स्वतंत्र रूप में है और कहीं अन्य अलंकारों के साथ मिश्रित है। दूसरे अलंकार की सिद्धि हेतु इसके द्वारा सहारा पाने के कई उदाहरण भी वर्तमान हैं जिनकी यथास्थान चर्चा की गई है। वस्त्रों की सूक्ष्मता न कहकर एक स्थान पर कवि कहता है कि दिन में भी उनके तार नहीं दिखाई देते —

अष्ट मंगलिक अष्ट सिध, नवनिध रत्न अपार।
पाटबर अंमर बसन, दिवस न सुझ्झहि तार। छं ४६ स० २४

दिन में सब वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं परन्तु ये वस्त्र इतने महीन हैं कि दिन में भी उनके तार नहीं दिखाई देते। इस चमत्कारक आनक्रांत उक्त द्वारा अतिशयोक्ति अलंकार का प्रतिपादन हुआ है। वस्त्र की सूक्ष्मता उपमान है जिसके प्रतिपादन हेतु 'दिवस न सुझ्झहि तार' का प्रयोग करके भेदेप्यभेदः द्वारा बड़ी ही खूबी से रूपकातिशयोक्ति सिद्ध की गई है।

रासो में लंबी चौड़ी सेना आदि के अतिरंजित वर्णन बहुत हैं परन्तु चमत्कार विहीन होने के कारण वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार समझने का भ्रम नहीं करना चाहिये। ऐसे वर्णनों को हम अतिशयोक्ति या अत्युक्ति मात्र कह सकते हैं।

अनेक वस्तुओं को स्पष्ट दिखाने के लिये प्रत्येक वस्तु के समीप दीपक द्वारा प्रकाश डाला जाता है, इस दीपक न्याय के अनुसार आवृत्ति दीपक में एक ही क्रिया द्वारा अनेक पद, अर्थ और पद-अर्थ दोनों प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसे पद की आवृत्ति होना जिसमें वही शब्द और वही अर्थ हो, पदार्थावृत्ति दीपक कहलाता है। रासो के दो उदाहरण देखिए—

सेव देव रंजियै, सेव रष्षस बसि सब्बह।
सेव सिंघ पत्तियै, सेव विष जरै न जल्लह।

सेव बैर भंजियै, सेव रच्चि पति पाइन।
सेव दहै नह दहन, सेव बहु द्रव्य उपावन।
जिहिं सेव देव रष्षस धरहि, जियन मात तन जाइ नन।
आमूढ ढुंढ धावत भषन, नहि सु देव नहि दानवन। छं० ५२४ स० १

यहाँ एक ही अर्थ वाले 'सेव' (सेवा करना) क्रिया वाचक पद की कई बार आवृत्ति है।

भयौ जनम प्रथिराज, द्रुग्ग घर हरिय सिषर गुर।
भयौ भूमि भूचाल धमकि धम धम्म अरिनि पुर।
गढन कोट सें कोट, नीर सरितन बहु बढ्ढिय।
भै चक भै भूमिया, चमक चक्रित चित चढ्ढिय।
षुरसान थान षलभल परिय, ग्रब्भपात भय ग्रब्भनिय।
बेताल बीर बिकसे मनह, हुंकारत षह देवनिय। छं० ७१६ स० १

यहाँ 'भयौ' क्रिया वाचक पद की कई बार आवृत्ति है।

आवृत्ति दीपक अलङ्कार यमक और अनुप्रास के अंतर्गत ही समझना चाहिये, अलग नहीं। कुछ आचार्यों का मत है कि दीपक में क्रिया-वाचक-पद और पद-अर्थ दोनों की आवृत्ति होती है किन्तु यमक और अनुप्रास में क्रिया वाचक पद और पदार्थों का नियम नहीं होता। परन्तु महाराज भोज ने अपने सरस्वती-कंठाभरण में क्रिया वाचक शब्दों के बिना भी आवृत्ति दीपक का होना निर्धारित किया है। यदि भोजराज की सम्मति मान लें तो रासो से लगभग तीस छंद इस अलङ्कार योजना के अवश्य दिये जा सकेंगे। उदाहरण स्वरूप दो छंद देखिए—

जुगति न मंगल बिना, भुगति बिन शंकर धारी।
मुगति न हरि बिन लहिय, नेह बिन बाल वृथा री।
जल बिन उज्जल नथ्थि, नथ्थि ग्रिम्मान ग्यान बिन।
कित्ति न कर बिन लहिय, छित्ति बिन सस्त्र लहिय किन।
बिन मात मोइ पावै न नर, बिनय बिना सुख प्रसिन तन।
संसार माह बिनयौ बड़ौ, बिनय बयन मुहि श्रवन सुनि। छं० ७३ स० ४६

यहाँ एक ही अर्थ वाले 'बिना' पद की कई बार आवृत्ति है। साथ ही उदाहरण अलङ्कार भी जान लेना उचित होगा।

पेट काज चढि बंस, परैं फर हरैं अवनि पर।
पेट काज रिन भौम, मरैं मारैं सु ढुरैं धर।
पेट काज बहि भार, पार पाहारन पारैं।
पेट काज तस ढुंग, त्रिस परि धर पर डारैं।
इति पेट काज पापी पुरष, वधै बद लच्छी हरन।
नर वर सुक्रम्म कहा नह करै, इहै उदर दुम्भर भरन। छं० ७६४ स० १

यहाँ 'पेट काज' पद की कई बार आवृत्ति है। इस पद में उदर पोषण हेतु मनुष्य क्या नहीं करता इसको दृष्टांत के ढंग पर कथन किया गया है।

दृष्टांत अलङ्कार का प्रयोग रासो के बीसों स्थलों पर पाया जाता है। 'दृष्टोऽन्तः निश्चयो यत्र स दृष्टान्तः' काव्यप्रकाश। अर्थात् दृष्टांत दिखाकर किसी बात का निश्चय कराना। दृष्टांत में उपमेय उपमान और साधारण धर्म का बिंब प्रतिबिंब भाव रहता है। पंडितराज जगन्नाथ ने प्रतिवस्तूपमा और दृष्टांत को भिन्न अलङ्कार न मानकर एक ही अलङ्कार के दो भेद माने हैं परन्तु काव्य कल्पद्रुम पृ० १०५ में उनकी पृथकता का उचित निराकरण कर दिया गया है। रासो के कुछ उदाहरण देखिये—

मेह बिना नहि तेह, नेह बिन गेह अस्स रस।
पिय बिन तिय न उमंग, अंग शृंगार रूप रस।
नायक बिन नह सेन, दंत बिन भुक्ति न होई।
तेग त्याग तैं रहित, कहै कीरति को लोई।
बिन नीर मीन राजत कहूँ, छत्री बिन सूरत्तरिन।
मन बच्च क्रम्म तिम जानि जिय, नहै मुक्ति हरि भक्ति बिन। छं० ७६५ स० १

यहाँ मेह से तेह, नेह से गेह, पिय से तिय, नायक से सेना, दाँतों से भोग आदि के कारण का दृष्टांत दिखाते हुए हरि भक्ति से मुक्ति का निश्चय कराया गया है। पद का अंतिम चरण उपमेय है और पहले के चरण उपमान हैं। उपमेय और उपमान वाक्यों का बिंब प्रतिबिंब भाव स्पष्ट है। यह माला दृष्टांत का अच्छा उदाहरण है।

तब कहंत संजोगि, इक्क बन मझ्झ सरोवर।
तहँ पंकज्ज प्रफुल्लि, सरस मकरंद समोभर।
आय इक मधुकरह, तथ्थ विश्रामि गुंजारत।
रैनि प्रपत्तिय ताम, रह्यौ मधि भँवर विचारत।
ह्वैहै बित्तित जामनि सबै, तबै गमन इह बुद्ध किय।
बिन प्रात होत बिधि इहि करिय, से कलिका गजराज लिय। छं० १३०६ स० ६१

पृथ्वीराज के साथी सामंत कन्नौज में राजकुमारी संयोगिता से साथ चलने का आग्रह कर रहे थे। संयोगिता ने यहाँ दैव की अदृश्य गति को कमल संपुट में बंद हो गये भ्रमर को एक हाथी द्वारा खा लिये जाने का दृष्टान्त देकर कथन किया है। उपमेय का उल्लेख प्रस्तुत छंद से आगे है।

बन रष्षै ज्यौं सिंघ, बिंभ बन राषहि सिंघहि।
धर रष्षै यौं भुअंग, धरनि रष्षैति भुअंगह।
कुल रष्षै कुल बधू, बधू रष्षैति अप्प कुल।
जल रष्षै ज्यौं हेम, हेम रष्षैति सब्ब जल।
अवतार जबहि लगि जीवनौ, जियन जम्म सब आवतह।
रावत्त तेहरा रष्षनौ, राजन रष्षहि रावतह। छं० १५६७ स० ६१

इसमें बन और सिंह, धरती और भुजंग, कुल और बधू, जल और हिम का पारस्परिक रक्षा धर्म अन्योन्य द्वारा दृष्टांत स्वरूप कथन करके रावत और राजा का संबंध भी तदनुसार निश्चित कराया गया है। यहाँ तेहरा शब्द बड़ा ही सार्थक प्रयुक्त हुआ है।

एन एक आरन्य, चरन पारद्धिय दिष्षिय।
ता पछ औसर पाई, फंद पारद्धिय षंचिय।
दिस दच्छिन कूकरन, करत घुर घुरा सिंह सम।
उत्तर दिसा असाध, दंग लग्गौ करार दम।
चिहु दिसा रुक्कि आरिष्ट चव, कहां जान पावै हिरन।
तिहि बार एण इम उच्चर्यौ, मो गुपाल रष्षहु सरन। छं० ६७
अनल उट्ठि आवात, अनल उड़ि फंद दहे तिन।
तब बलाह बरसंत, बुझ्यौ दावानल सो बन।
स्वान होत सनमुष्ष, धये जंबुक लगि पुट्टै।
जात देषि म्रगराज, रीस करि पारधि रुठ्ठै।
तानंत धनुष गुन तुट्टयौ, चलयौ एन बिन संक मन।
करुना निधान रष्षन करहि, ताहि मारि सक्कै कवन। छं० ६८ स० ६४

यहाँ महाभारत वर्णित पारधी, जाल, कुत्ते और दावाग्नि के मध्य में फँसे हुए हिरन की रक्षा की कथा का दृष्टांत देकर कवि का कथन है कि 'अरक्षितं तिष्ठाति दैव रक्षितम्'।

सुन हमीर इक अलुक, गरुर गाढ़ी मित्राई।
तब्ब उलूकह देषि, गरुर जोरा मुसकाई।
तब उलूक भय भयौ, गरुर अग्गैं कर जोरै।
मोहि तहां लै जाहु, जहां कोई जीव न तोरै।
धर पंषि ढंकि साइर गुहा, तहं बिलाव भष्षह भरन।
सनमंध देह जथ्थह परन, मिटै न सो राजन मरन। छं० ७०३ स० ६१

यहाँ महाभारत की उल्लू और गरुड़ की कथा का दृष्टांत देकर कवि हमीर को बोध कराता है कि राजन् मृत्यु नहीं मेटी जा सकती, इत्यादि।

अरनि मद्धि धसि कूप, परत नर पथिक अद्धफर।
बटबल्ली अवलंबि, नाग अवलोकि चरन तर।
सिर पर सिंधुर आय, सुंड गहि साष हलावत।
तुह छत्ता मुह आलि, उड्डि तिहि तन पलटावत।
मधु बुंद परत चट्टत अधर, सकल दुष्ष जिय भुल्लइय।
इम विषय सुष्ष कविचंद कहि, किम हमीर मन डुल्लइय। छं० ७११ स० ६६

अरन्य कूप में गिरे परन्तु नीचे सर्प देखकर बट की वल्लरी से लटके हुए व्यक्ति को संयोगवशात् हाथी के शाखा हिलाने के कारण उड़ी हुई मधुमक्खियों ने काटा। ऐसे असहनीय और दारुण कष्ट में पड़े हुए उस व्यक्ति के मुँह में जब कुछ मधु की बूँदे गिरीं तो वह अपना सारा दुःख भूल गया। इस दृष्टांत द्वारा कवि का हमीर को संकेत है कि क्षणिक विषय सुखों के लिये तुम्हें दासता सदृश कठिन बंधन सहन करना पड़ेगा अस्तु अपना चित्त उधर मत झुकाओ। यहाँ सुख और दुख के वैधर्म्य साम्य में बिंब प्रतिबिंब भाव प्रदर्शित किया गया है।

एक ही क्रिया द्वारा दो वस्तुओं की परस्पर कारणता दिखाने वाले अन्योन्य अलंकार के रासो से दो उदाहरण देखिए—

नृप ढकन इल होइ, इलह ढंकन सु राज भर।
षह ढंकनवर देव, देव ढंकन वर अंबर।
अपजस ढंकन किति, किति ढंकन जस धारिय।
औगुन ढंकन विद्य, सुगुन विद्या उच्चारिय।
ढंकनह काल बर भ्रंम को, भ्रंम काल ढंकन करिय।
मावत्ति गुरू ढंकै सु सिसु, सिसु ढंकन पितु उच्चरिय। छं० ३२८ स० १

यहाँ नृप और इला (पृथ्वी) आदि का परस्पर समान व्यवहार 'ढकना' क्रिया द्वारा दिखाया गया है।

धर तिय हरि उर बास. बास धर उर तिय धारिय।
दिग कज्जल लगि धार, धार कज्जल दिग धारिय।
रच्यौ हार हिय मद्धि, मद्धि हिय हार सु रंमिय।
नूपुर पय सो श्रवत, श्रवत नूपुर पय अंगिय।
अविसय न पुहप धन बन रसिय, रसय बनो धन पुष्फ सम।
भू इंद रहसि रसि बसि रमिय, बीसल रस भू इंद रम। छं० ४७६ स० १

इस स्थल पर हार और हृदय, नूपुर और चरण आदि को परस्पर धारण करना एक जाति की क्रियाओं का उत्पादक कहा गया है।

पूर्व कहे हुए पदार्थ जहाँ उत्तरोत्तर कहे हुए पदार्थों के कारण कहे जाते हैं वहाँ कारणमाला (कारणों की माला) अलंकार होता है। रासो का एक स्थल देखिए—

कहै सूर सामंत, सत्त छंडै पति छिज्जै।
पति छिज्जत छिज्जैत, नाम छिज्जत जस छिज्जै।
जस छिज्जै छिज्जै सुगति, सुगति छिज्जत क्रम बढ्ढै।
क्रम बढ्ढै बढ्ढै अकिति, अकिति बढ्ढै त्रक दिज्जै।
दिज्जियै त्रक्क कढ्ढन कुमति, करनी पति तै जान भ[illegible]।
छित्री निछित्ति सत गरुअ निधि, सत छंडै छत्री निगर। छं० १५६२ स० ६१

'सादृश्य सम्पर्क अभावम' (रस गंगाधर पृ० ३२८) होते हुए भी एक क्रिया में अन्वय होने का धर्म नहीं है इसलिये उपर्युक्त उदाहरण में माला-दीपक समझने का भ्रम न करना चाहिये।

उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन करने को सार या उदार अलंकार कहते हैं। रासो के कई स्थलों पर यह पाया जाता है। एक स्थल देखिए—

हय कट्टत भू भयौ, भये भू पयन पलट्यौ।
पय कट्टत कर चल्यौ, करहि सब सेन समिट्यौ।
कर कट्टत सिर भिर्यौ, सिरह सरमुष होय फुट्यौ।
सिर फुट्टत धर धर्यौ, धरह तिल तिल होय तुट्यौ।

धर तुट्टि फुट्टि कवि चंद कहि, रोम रोम बिंध्यौ सरन।
सुर नरह नाग अस्तुति करहि, बलि बलि बलि छग्गन मरन।

छं० २२१४ स० ६१

यहाँ उत्तरोत्तर कारणों का कथन अवश्य किया गया है परन्तु साथ ही उत्कर्ष की प्रधानता है। वीर छग्गन का घोड़ा कट जाने पर वह पैदल होकर युद्ध करने लगा, पैर कट जाने पर उसने हाथों से सारी शत्रु सेना को त्रस्त किया, हाथ कट जाने पर उसका सिर भिड़ पड़ा और सिर कटने पर उसके धड़ ने तब तक टक्करें लीं जब तक वह टुकड़े टुकड़े न हो गया। देवता मनुष्य और नाग उसका धन्यवादन कर रहे थे। इस प्रकार कवि ने दिखाया है कि किस भाँति उक्त वीर ने स्वामि-कार्य हेतु अपूर्व युद्ध करके अपने प्राणोत्सर्ग किये। युद्ध वीरता का अतीव उत्कर्ष यहाँ पर प्रतिष्ठित होने से सार अलङ्कार की मान्यता हुई।

सराहनीय पदार्थों के उत्कर्ष तथा अश्लाघ्य पदार्थों के उत्कर्ष अर्थात् उत्तरोत्तर अपकर्ष में भी सार अलङ्कार माना गया है। रासो का एक उदाहरण लीजिये —

तिन तें तुस तें, तूल तें, फेन फूल तें जानि।
हसि जंपै गोरी गरुअ, मंगन है हरुआन। छं० ४६ स० ५८

इसमें क्रमशः त्रण, तूश, तूल, फेन से मंगन (याचक) का हलकापन या तुच्छता प्रदर्शित की गई है।

रासो में लोकोक्तियों का सफल प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए—

१. नीच बान नीचह जनिय, विउसन कित्ति अभग्ग।
सुनहु सरूप सु मुत्ति कर, दासि चरावति कग्ग। छं० ८५ स० ५७

२. कर कुवंड लीनौ तमकि, अरुचि दान विधि जोय।
चरिय कग्ग तरवर सबै, हंसनि हंसन होय। छं० ८६ स० ५७

३. मानों उरग छछोंदरी, डारै बनै न षाय। छं० ४४ स० ५८

४. भिदै न जाहि माया प्रबल, मनों नीर मम्भैं कमल। छं० ४६ स० ५८

५. जल महि ज्यों गति जोक, भेद कोई नन जानं। छं० १६१ स० ५८

६. कर सांप काल मुष को धरै, को जम पानि पसरि लय। छं० ४० स० ६०

७. ज्यों विधिना वर त्रिंमयौ, जम कग्गद चढि हथ्थ। छं० १०१ स० ६१

८. जौ जंपौ तौ चित्त हर, अनजंपै विहरंत।
अहि डढ्‌ढै छुच्छुंदरी, हियै बिलग्गी बंति। छं० ११६४ स० ६१

९. जो अलम्भ लोकनि कह्यौ, जिहि मरि मारिय अप्प। छं० १०१ स० ६१

१० हुं पैज काज बंधन सहिस, तुम बंधन चष्षै नहीं।
ज्यों तेल नीत्रु बपु तिलछही, ते साहि इसी बत्ती कही। छं० १०१ स० ६२

११. ......जब उंदर जम ग्रहै, गुरब सों लत्ता बाहै।
पैज पटंतर सब सही, जब कछु देषि दिषाइये।

हुं हूं करंत अप्पन मुषै, रासभ ओपम गाइये। छं० ११७ स० ६४

१२. अहि ग्रहिय छछुंदरि जो तजै, नैन जठर भष छुज्जियै।

१३. दाहिम्म मिल्यौ इमि दासि सम, षीर मद्धि जिम नीर मिलि।

छं० ३६ स० ५७

१४. काग जाइ मुत्तिय चरै, हरति हंस का होइ। छं० ६० स० ५७

१५. आवद्ध साहि सन्नाह कसि, षग्ग मार मच्चायहौं।

गहि साहि आन चहुआन पै, बंदर जेम नचाइहौं। छं० १२० स० ६४

१६. जल जात घात रष्षौ जलै, दूध विनट्टौ दूध हिय। छं० १३२ स० ६४

१७. दरबार राज भर भीर घन, मन उल्लास मेख्यौ धनी।

भुअ भंग दुःष दुःषांह गत, जनो कि नाग लद्धी मनी। छं० १८६ स० ६४

१८. जब फुट्टै आकास, कौंन थिगरी सू रष्षै*। छं० ७०२ स० ६६ और

१९. डुबि हमीर दल हाम करि, मन करि अग्गो पच्छ।

दूधै दद्धो ज्यौं पियै, फूंकि फूंकि के छच्छ। छं० ६५७ स० ६६

इस प्रकार प्रसंग प्राप्त लोक कहावतों का उल्लेख करके रासोकार ने रचना के भावों को अधिक बल समन्वित कर दिया है। आचार्यों ने इस प्रकार के प्रयोगों का नामकरण लोकोक्ति अलङ्कार कर रक्खा है।

स्वाभाविक चेष्टाओं और प्रकृतिक वर्णन के सुंदर चित्रण रासो में पाये जाते हैं। राजकुमार आना (अर्णोराज) के बाल्यकालीन चरित्र देखिए —

अति बल बंड प्रचंड, हिंड आषेटक षिल्लै।
हिरन रोज बाराह, बंधि बागुर बर मिल्लै।
बन परबत्त फिरना, निवान राइ राजन संग हिंडै।
राग रंग भाषा कवित्त, दिव्यं बानी चित मंडै।
हय हथ्थि देय संकै न मन, षग्ग मग्ग षूनी वहै।
चहुआन वंश अवतंस इम, रंग अनेक आना रहै। छं० ३१५ स० १

ढुंढा दानव द्वारा अजमेर की नष्ट भ्रष्ट अवस्था और सारंग देव का विलाप इत्यादि कवि ने पर्याप्त सफलता के साथ चित्रित किया है —

अति उद्यान सब थान, भये गढ धाम भयानक।
दिष्ट देखि सारंग, दैव चिंतै तव बानिक।
ताकै कुल उपनीय, तपनि हम कौ कुल षोयौ।
तात पुकारे नीर, भरे नैंनह घन रोयौ।

* आकाश फटने पर न सिये जा सकने वाली कहावत का प्रयोग कबीर के नाम से भी इस प्रकार मिलता है —

दिल का महरम कोउ न मिलिया, जो मिलिया सो गरजी।
कह कबीर असमानै फाटा, कहँ लग सीवै दरजी।

दिन तीन रहत हुअ कोट मधि, असुर नयन दिष्यौ नहिय।
तब सुचित भये सारंग दे, पुरी बसाऔं इह कहिय। छं० ५१५ स०१

ग़ज़नी के दुर्गम मार्ग की प्राकृतिकता तथा विषमता का वर्णन देखने योग्य है—

सम चल्यौ भट्ट गज्जन सु राह। बन विषम सुषम उग्गाह गाह।
रह उंच नीच सम विषम थान। गह बरन सैल रन जल थलान। छं० ६६
द्रिग जोति लग्ग मन सबद भीन। भुल्यौ सरीर निज मग्ग षीन।
रत्तौ सु जोग मग्गह सरूव। जगमगत जोति आवास भूव। छं० ६७
भिट्यौ सु प्रीति प्रथिराज अंग। निरकार जीय रत्तौ सुरंग।
भुल्यौ सु मग्ग गज्जनह भट्ट। बन चल्यौ थान उद्यान थट्ट। छं० ६८
उम्भरत इम्भ सम अभ्भ नद्द। के लरत भिरत भज्जत समद्द।
उद्यान तज्जि संग्रहै एक्क। गुंज हिति बद्ध मग्गह अनेक। छं० ६६
जुग देति दंति सिंघहि सुरभ्भ। भ्रिग बध्ध पंषि अजगर अदम्भ।
सा पंच चिल्ह संग्रहै सास। सा बद्द बनंचर विषम भास। छं० १००
गुंजरत दरिय संमीर सद्द। निझ्झरत झरत नद रोर नद्द।
बन विकट रंभ की चक्क राह। सहहि सु ताम संमीर गाह। छं० १०१,
१०५ स० ६७

इन प्रसंगों के अतिरिक्त स्वाभाविक चेष्टाओं के अनेक सुंदर चित्र रासो में देखने में आते हैं। युद्ध भूमि में अतिशय उमंग से भरे हुए क्षत्रियों के स्वाभाविक कार्य कलापों की व्यंजना कवि की विशेष क्षमता है। रासो में चरित्र चित्रण का अश्रृंखलाबद्ध विकास आसानी से भले ही हमारी समझ में न आवे परन्तु स्वभाव चित्रण की अनुरंजकता और प्रभावोत्पादकता में पाठक को कभी शंका नहीं होगी।

आचार्यों ने ऐसे वर्णनों में स्वभावोक्ति अलङ्कार माना है। 'वक्रोक्ति जीवित' (उन्मेष १।१४) कार राजनक कुन्तक ने यद्यपि इस अलंकार का विरोध किया है परन्तु उनका आक्षेप एक हठ मात्र समझा जायगा क्योंकि प्राकृतिक दृश्य और स्वाभाविक अभिव्यंजनायें वास्तव में चमत्कारक और मन हरण करने की शक्ति से अभिभूत होती हैं।

अर्थांतरन्यास अलंकार के अनेक प्रकरण रासो में पाये जाते हैं।

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो, वस्तु प्रस्तुत किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः। १६६ काव्यादर्श, दंडी।

सामान्य विशेष सम्बन्ध में अर्थान्तरन्यास और कार्य कारण संबंध में काव्यलिंग माना जाना उचित है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन होता है और समर्थ्य समर्थक भाव प्रधान रहता है। दो छंद देखिए —

पैज काज पारथ्थ, नाथ दुरजोधन भंज्यौ।
पैज काज श्रीराम, लंक दसकंधर गंज्यौ।
पैज काज श्रीकृष्ण, कंस मथुरा महि मार्‍यौ।
पैज काज बलिराय, रूप बामन करि गाह्यौ।

हूं पैज काज बंधन सहिस, तुम बंधन बध्ये नहीं।

ज्यों तेल नीब वपु तिलछही, ते साहि इसी बत्ती कही। छं० १११ स० ६१

यहाँ पार्थ, राम, श्रीकृष्ण, बामन की पैज अर्थात् विशेष वृत्तांत द्वारा धीर पुंडीर अपनी पैज अर्थात् सामान्य वृत्तांत का समर्थन करता है।

उदाहरण अलंकार में 'इव' आदि शब्दों का प्रयोग होता है, अर्थान्तरन्यास में नहीं (रस गंगाधर)। उपर्युक्त छंद के अन्तिम चरण में आये हुए 'ज्यों' से वैसी शंका न होनी चाहिए क्योंकि पूर्व वर्णित अलङ्कार से इस चरण के अर्थ में असम्बद्धता है।

सुन हम्मीर नरिंद, मरन आवै अभाग मति।

अंत काल बिक्कम नरिंद, भष्षि वायस अबिद्धि गति।

मरन बार वर भोज, भ्रम्म मुक्के मलेच्छ भौ।

मरन काल पंडवन ग्यान, छुट्टौ मोहि लम्भौ।

चित्तौ न चित चिंतइ नहीं, नरक निवासी होंहि नर।

धिग धिग सु वीर बसुधा करै, तौ न छुट्टै नर काल कर। छं० ६८६ स० ६६

यहाँ विक्रम, भोज, पांडव आदि के विशेष वृत्तांत का "मृत्युकाल में मोह प्राप्ति और अविवेक पूर्ण कर्म" इस सामान्य द्वारा समर्थन किया गया है।

उपमान का सर्वथा अभाव बर्णन असम अलंकार कहा जाता है। रासो के दो स्थल देखिए—

महारानी संयोगिता के घूँघरवाले केशों के लिए कवि का कथन है कि—

कच वक्र चक्रति कुंतल, तस ओपमा नह भूतलं। छं० २१३ स० ६६

'भूमण्डल पर उसकी उपमा नहीं है' कहकर कवि ने उसका निषेध कर दिया है और इस प्रकार उपमान के सर्वथा अभाव वर्णन के कारण यहाँ असम अलङ्कार की स्थिति हुई है। सांग रूपक के अन्तर्गत असम अलङ्कार का चित्रण देखिए—

रूपं नदि कटाच्छ कूल तट्यौ, भायं तरंग बरं।

हावं भावति मीन आसित गुनं, सिद्धं मनं भंजनी।

सोयं जोग तरंग रूवति वरं, त्रीलोक्य ना ता समा।

सोयं साहि सहाब दीन अहियं, आनंग क्रीड़ा रसं। छं० २६ स० ११

यहाँ 'त्रीलोक्य ना ता समा' कहकर कवि ने अप्रस्तुत की अनुपस्थिति का संकेत करके असम अलङ्कार का विधानात्मक निर्देश किया है।

रासो में विशेष रूप से प्रयुक्त होने वाले तथा विशेष स्थलों पर प्रयुक्त हुए अलङ्कारों पर कुछ प्रकाश डाला गया है। परन्तु इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि इनके अतिरिक्त अन्य अलङ्कारों का प्रयोग नहीं किया गया है। अन्य अलङ्कार भी व्यवहार में लाये गये हैं परन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है और वे इतने प्रसिद्ध भी नहीं हैं। अतएव अनावश्यक समझ कर उनकी चर्चा नहीं की गई है।

जैसा प्रारंभ में कहा जा चुका है कि अलङ्कार एक प्रकार की शैली विशेष है और ऐसा नहीं कहा जा सकता कि आचार्यों ने जितनी शैलियाँ या अलङ्कारों का विधान कर

दिया है उन्हें छोड़कर अन्य नवीन शैलियों को जन्म नहीं दिया जा सकता। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त संसार की अन्य भाषाओं के साहित्य में निःसंदेह नवीन शैलियाँ पाई जाती हैं।

"यूरोपीय साहित्य में अलंकारों का उद्भव भिन्न कारणों को लेकर हुआ था। वक्तृता को इच्छानुसार प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अलंकारों अथवा विशेष शैलियों को जन्म मिला था। सिराक्यूज नगरवासी कोरैक्स रिटारिक को एक कला रूप में जन्म देने के लिए प्रसिद्ध है। सन् ४६६ ई० पूर्व में सिराक्यूज़ में एक प्रजातन्त्र की स्थापना होते ही मुक़दमों की बाढ़ आ गई और कोरैक्स की कला को बड़ा प्रश्रय मिला। प्राचीन यूनान में यह शास्त्र अति महिमान्वित हुआ था। कोरैक्स के शिष्य टिसियाज़ ने इसका समुचित विकास किया है परन्तु इस कला का विस्तृत और गहरा अध्ययन अरिस्टाटल की रिटारिक (३२२-३२० ई० पू० रचित) से होता है। इसके बाद (११० ई० पू० में) हरमैगोरस ने इस विषय को उन्नत करके उसे प्रौढ़ बनाया। तदुपरांत सिसरो का नाम उल्लेखनीय है जिसने शास्त्रोक्त अध्ययन की अपेक्षा अपनी प्रतिभा से इन शैलियों की सौष्ठवता बढ़ाई। सन् ६० ई० के लगभग होने वाले क्विंटिलियन, हरमोजिन्स, ऐफ्थोनियस (चौथी-शताब्दी) और ऐलियस थियोन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहेंगे।

रोमन साम्राज्य की प्रथम चार शताब्दियों में इस कला की विशेष उन्नति दृष्टिगोचर होती है। रिटारिक का शिक्षक सोफिस्ट उपाधि भूषक हो गया था। हेड्रियन और ऐन्टोनाइन्स के राज्यकाल (सन् ११७-१८० ई०) में रिटोरिक के शिक्षकों का स्थान न केवल महत्वपूर्ण ही था वरन् वह एक आकांक्षित पद भी प्राप्त कर चुका था। रिटोरिक की शिक्षा के लिये सोफिस्ट और पोलिटिकल दो विभाग बना दिए गये थे। सोफिस्ट के अंतर्गत अलंकरण कला के साहित्यिक रूप का अध्ययन कराया जाता था और न्यायालयों में प्रयोग में लाई जाने वाली राजनैतिक आलंकारिक शैलियाँ पोलिटिकल विभाग में थीं। वैसे पोलिटिकल से सोफिस्ट विभाग की महिमा कहीं अधिक थी। इस कला के शिक्षकों को राज्य की ओर से अन्य कई प्रकार की सुविधायें प्राप्त थीं। इस के साहित्यिक विभाग को समुन्नत करने में ईसवी प्रथम शताब्दी के डिओ क्रिज़ोस्टम, दूसरी शताब्दी के एलियस अरिसटीडस और चौथी शताब्दी के थेमिस्टियस, हाइमेरियस और लाइबेनियस जैसे विद्वानों के नाम चिरस्मरणीय रहेंगे।

मध्यकालीन शताब्दियों में पाँचवी शताब्दी के मार्टियानस कैपेला और कैसियोडोरस तथा सातवीं शताब्दी के इसीडोरस ने रिटोरिक्स पर उल्लेखनीय ग्रन्थ लिखे हैं। रिनेसाँ के उपरांत कई नवीन ग्रन्थ निर्मित हुए और विद्वत् समाज का ध्यान एक बार फिर इस शास्त्र की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। सोलहवीं शताब्दी के लेओनार्ड काक्स, टामस विल्सन, टांकुलियन और कौरसेलेस की प्रसिद्ध रचनायें प्राचीन ज्ञान को लुप्तावस्था से पूर्ण प्रकाश में लाने में सफल हुईं। इस युग में यूरोप और इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में पुरातन श्रेष्ठ कलाओं की पुनरावृत्ति और इस उद्योग द्वारा उनकी रक्षा के प्रयत्न स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। १८ वीं शताब्दी से रिटोरिक के अध्ययन को हम गौण

रूप को प्राप्त होते देखने लगते हैं। रिटोरिक का शिक्षक लिखित विषयों का सुधर मात्र करने में लगा दिया गया था परन्तु उसकी प्राचीन पदवी आगे पर्याप्त समय तक चलती रही।

यही कारण था कि परवर्ती विद्वानों ने इस उपेक्षित दिशा में अपनी क्षमता का उपयोग करना श्रेयस्कर नहीं समझा और इसी से आधुनिक शताब्दियों में यूरोप में अलंकाराचार्य नहीं हुए। परन्तु बेकन के संग्रहों का उल्लेख किये बिना हम नहीं रह सकते क्योंकि उनमें हमें अरिस्टाटल की प्रतिभा के दर्शन होते हैं। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित व्लेयर की रिटोरिक की महिमा उसकी लेखन शैली के ढंग के कारण है न कि विषय से परिचित कराने के लिये। परन्तु आधुनिक काल की श्रेष्ठ रचना ह्वाटली रचित 'इलीमेन्टस आव रिटारिक' है जिसमें ह्वाटली ने अरिस्टाटल के सिद्धांत 'रिटोरिक तर्कशास्त्र की एक प्रशाखा है' से लेकर उसकी 'वादात्मक लेखन कला' तक पूर्ण समीक्षात्मक ढंग से विवेचना की है। प्रेस की श्रेष्ठतम व्यवस्था ने आधुनिक युग में भाषण की प्रतिभा और कला को पुरातन कालीन प्राप्त गौरव के शिखर से बिलग अवश्य कर दिया है परन्तु नाना प्रकार के प्रजातन्त्रों वाले वर्तमान युग में उक्त कला की उपादेयता सदा लाभदायक सिद्ध होगी'। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, चौदहवाँ संस्करण, भाग १६ के 'रिटारिक' शीर्षक लेख के आधार पर।

इस प्रकार देखते हैं कि अलंकारों का जन्म और उनकी योजना यूरोप में भिन्न कारणों वश हुई थी परन्तु भाषण को अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप ढाल कर वैसा ही श्रोताओं का चित्त भी कर देने के प्रयत्न में जिन शैलियों का जन्म हुआ उनका प्रयोग वक्तृताओं तक ही सीमित नहीं रहा वरन् साहित्य में और विशेष कर काव्य में उनके बहुलांत प्रयोग हुए।

आज विज्ञान के अन्यतम आविष्कारों ने संसार की विभिन्न जातियों और उन के साहित्यों के परस्पर आदान प्रदान और अनुशीलन की अधिक सुविधाएँ प्रस्तुत कर दी हैं तो कोई आश्चर्य नहीं कि विभिन्न देशी साहित्यकार अपनी रचनाओं में अन्य भाषाओं के साहित्यों में उपलब्ध शैलियों को न अपना लें। वैसे यह विश्वास तो सत्य है परन्तु इसकी सफलता की आशा कम इन अर्थों में है कि आधुनिक युग की प्रवृत्ति अलंकरण की ओर नहीं है। जो भी हो इन चमत्कारक शैलियों में सदा से आकर्षण रहा है और सतत रहेगा। भले ही हम अस्त्र का प्रयोग न करें परन्तु इससे उसकी शक्ति के लोप होने का विश्वास तो कोई क्योंकर कर सकता है।

अध्याय ४

छंद-समीक्षा

"साधारणतः भारतीय छंदों का वर्गीकरण १. संस्कृत और २. प्राकृत—दो भागों में किया जा सकता है। पहिले कोटि के छंदों में वर्ण गणना प्रधान है और दूसरे में मात्रा गणना।

"संस्कृत' छंदों से भी प्राचीन 'वैदिक' छंद हैं जिनमें वर्ण विचार की प्रधानता रहती है। उन छंदों में केवल वर्णों की संख्या ही मुख्य है और उनमें ह्रस्व या दीर्घ मात्रायें लगाने से कोई अंतर नहीं माना जाता जबकि 'वैदिक' छंदों से विकसित होनेवाले 'संस्कृत' छंदों में वर्ण विचार तो प्रधान रहता ही है परन्तु साथ ही उनमें कुछ मात्रिक विचार भी सन्निविष्ट रहता है।

'प्राकृत' छंद अपने प्रारम्भ काल से ही मात्रावृत्त रहे हैं। इनमें सबसे प्राचीन 'गाथा' है जो अपने संस्कृत रूप में 'आर्या' नाम से प्रसिद्ध है। इन छंदों में मात्रिक गणना ही प्रधान होती है परन्तु कवि की इच्छा और आवश्यकतानुसार प्राकृत छंदों के वर्णों को ह्रस्व या दीर्घ किया जा सकता है। कभी कभी दीर्घ वर्ण (ए और ओ) में केवल एक ही मात्रा की गणना की जाती है। वर्ण वृत्तों की अपेक्षा मात्रा वृत्तों में कवि को अधिक स्वच्छंदता का अवसर रहता है और साथ ही वे संगीत के लिए भी उपयुक्त होते हैं। संगीत में ताल का निदान प्रधान है और ताल का विचार मात्राओं पर अवलम्बित है न कि वर्णों पर। संभवतः इन्हीं दो कारणों से 'प्राकृत' काव्य की प्रारंभिक अवस्था में साधारण वर्ग से आने वाले, प्राकृत कवियों ने मात्रा वृत्तों को अपनाया था। संगीत जन साधारण पर प्रभाव डालने वाली कला है और संस्कृत नाटकों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक के प्रारंभ में नटी द्वारा गाये जाने वाले गीतों में प्राचीन मात्रावृत्त 'गाथा' (या 'आर्या') छंद का ही प्रयोग किया गया है। नाटक संघों के संयोजक चारण या शैल्यूष यदि कवि थे तो जन साधारण को समझ में आने वाले प्राकृत काव्य के और इन गीतों के रचयिता पहिले तो संभवतः यही लोग रहे होंगे; यह दूसरी बात है कि बाद में इन्हें दक्ष नाटककार रचने लगे हों। जो कुछ भी हो अशिक्षित भाट और चारणों ने साधारण जनता के मनोरंजन और आमोद प्रमोद के लिए जिन प्राकृत छंदों को जन्म दिया था वे अति प्राचीन काल से संगीतमय ही थे।

'प्राकृत' छंदों के निर्माण का श्रेय केवल लोक कवियों को ही नहीं है। जब प्राकृतों ने साहित्यिक और लौकिक या व्यावहारिक रूप धारण कर लिए तब विद्वान् पंडितों ने भी इन भाषाओं में अपनी रचनायें कीं और संभवतः यही कारण है कि मध्यकाल की प्राकृत रचनायें संगीत विहीन हैं। परन्तु अपभ्रंश कालीन रचनाओं पर दृष्टिपात करते

ही हम पाते हैं कि ये कृतियाँ जिनका सृजन सर्वसाधारण के लिये हुआ था और जिनके रचयिता सदैव साधारण भाट लोग ही नहीं थे, संगीतमय हैं और इन्हें एक ढफली पर गा सकने योग्य बना दिया गया है। 'पज्झटिका' छंद को ही देखिये। अपभ्रंश काव्य में इसके प्रयोग की भरमार है। इस छंद में ८ मात्राओं के बाद स्वभावतः ही ताल लगने लगती है।

अपभ्रंश छंदों में कुछ ऐसे छंद भी हैं जिनका प्रयोग नृत्य में किया जाता है। 'घत्ता' और 'मदनगृह' ऐसे ही छंद हैं जिनके गाये जाने पर नर्तकों के एक विशेष क्षण पर गति परिवर्तन का रहस्य भलीभाँति समझ में आ जाता है।" 'अपभ्रंश मीटर्स' प्रोफे० एच० डी० वेलणकर, बंबई युनि० जर्नल, १९३३-३४, भाग २, पृ० ३२-४ के आधार पर।

पृथ्वीराज रासो के छंद एक समस्या उपस्थित करते हैं। इस ग्रंथ में अनेक छंद ऐसे हैं जिनके रूप का पता छंद ग्रंथों में अवश्य मिलता है परन्तु जिनके नाम छंद क्षेत्र में सर्वथा नये हैं जिससे समस्या और भी उलझ जाती है। अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें छंद के रूप के विपरीत उसका कोई नाम दिया हुआ है। अतएव रासो के छंदों के वास्तविक रूप की विवेचना और उनका वर्गीकरण एक परम कष्ट साध्य विषय बन गया है।

सौभाग्य से संस्कृत के 'पिङ्गल छंदः सूत्रम्' और प्राकृत तथा अपभ्रंश छंदो के लिये १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित 'प्राकृत पैङ्गलम्' के अतिरिक्त प्रोफेसर एच० डी० वेलणकर द्वारा सुसंपादित और प्रकाशित प्रथम ईसवी सदियों के नंदिताढ्य रचित 'गाथा लक्षणम्', ९वीं-१०वीं शताब्दी के विरहाङ्क रचित 'वृत्तजाति समुच्चयः', १०वीं शताब्दी के स्वयंम्भू रचित 'श्री स्वयंम्भूछंदः', १३ वीं शताब्दी की अज्ञात रचना 'कवि दर्पणम्' और १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रत्नशेखर सूरि रचित 'छंदः कोशः' देखने में आये, और इन अपूर्व छंद ग्रथों की सहायता से रासो के छंदों की समीक्षा का कार्य सरल हो गया। इन प्राकृत छंद ग्रन्थों का विवरण सहायक ग्रन्थों की सूची में दे दिया गया है।

१२वीं-१३वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य विरचित 'छंदो ऽनुशासनम्' ग्रंथ प्रकाशित होने पर भी अलभ्य रहा, उक्त ग्रंथ के चौथे, पाँचवें, छठें और सातवें अध्याय प्रोफेसर वेलणकर ने बंबई की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित कराये हैं, वे ही सुलभ थे और उन्हीं का उल्लेख किया जा सका।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्री हरमन जाकोबी द्वारा संपादित धणयपाल का 'भविसत्त कहा' और श्री आल्सडोर्फ द्वारा संपादित 'हरिवंश पुराण' और 'कुमार पाल प्रतिबोध' तथा उनकी मौलिक रचना 'अपभ्रंश स्टडियन' ग्रंथों के छंद प्रकरण बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। इन विदेशी विद्वानों ने भारतीय छंदों की विवेचना में अकथ परिश्रम किया है जिससे न केवल इस प्रकार के कार्य के लिये एक मार्ग खुल गया वरन् यह काम सरलतर भी हो गया। प्रस्तुत छंद विवेचना में इन विद्वानों के निर्णयों से लाभ उठाया गया है।

१२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या अधिक से अधिक १३वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुलतान के मुसलमान कवि 'अब्दुल रहमान' द्वारा अपभ्रंश भाषा में रचित 'संदेश रासक' को संपादित और सन् १९४५ ई० में प्रकाशित करने का श्रेय भारतीय विद्या भवन बंबई के संचालक वयोवृद्ध पंडितप्रवर श्री मुनिराज जिन विजय और प्रो० हरिवल्लभ भयाणी एम० ए०

की है। इस ग्रंथ की भूमिका बड़े ही परिश्रम के साथ प्रस्तुत की गई है। 'रासक' के छंदों का विचार प्रकरण मेरे लिये पृथ्वीराज रासो के छंदों पर खोज कार्य करने का प्रेरक और आदर्श बन गया।

रॉयल एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल के हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थागार से १८वीं शताब्दी में जयकृष्ण रचित 'रूप दीप पिंगल' नामक हिंदी छंद ग्रन्थ भी सहायक हुआ और स्वर्गीय श्री जगन्नाथ प्रसाद जी भानु द्वारा १६वीं शताब्दी में रचित आधुनिक और मान्य हिंदी छंद ग्रन्थ 'छंद प्रभाकर' बड़े काम का सिद्ध हुआ। इसकी उपेक्षा से प्रस्तुत छंद विचार अधूरा ही रह जाता। इनके अतिरिक्त एक स्थल पर विराज छंद प्रकरण में डा० आरनोल्ड रचित 'वेदिक मीटर' से भी सहायता ली गई है।

रासो में प्रयुक्त छंदों की क्रमशः नामावली—

१. साटक	२६. गीता मालती
२. वथूआ	२७, त्रिभंगी
३. भुजंगप्रयात	२८. मोतीदाम
४. पद्धरी	२६. कुंडलिया
५. गाहा या गाथा	३०. चन्द्रायना
६. दूहा	३१. जुतिचाल
७. कवित्त	३२. सोरठा
८. विराज	३३. चालि
६. श्लोक	३४. करषा
१०. अरिल्ल	३५. विज्जुमाला
११. हनुफाल	३६. छंद फारक
१२. त्रोटक	३७. छंद मोदक
१३. चौपाई	३८. भ्रमरावली
१४. भुजंगी	३६. आर्या
१५. बाधा	४०. बेली मुरिल्ल
१६. बिअष्षरी	४१. वार्ता
१७. मलया	४२. मुकुंद डामर
१८. मुरिल्ल	४३. कंठा भूषन
१६. रसावला	४४. माधुर्य
२०. काव्य जाति	४५. उधोर
२१. वृद्धनाराच	४६. वचनिका
२२. लघुनाराच	४७. कवित्त विधान जाति
२३. नाराच	४८. रोला
२४. दंडमाली	४६. दुमिला
२५. वेली भुजंग	५०. निसांनी

५१. काव्य
५२. लघुत्रोटक
५३. कंठशोभा
५४. दोधक
५५. कमंध
५६. दंडक
५७. मधुराकल
५८. अर्द्धनाराच
५९. ऊधो
६०. अर्द्ध मालची
६१. मालिनी
६२. रासा
६३. वृद्ध भ्रमरावली
६४. वेली विद्रुम
६५. वस्तबंध रूपक
६६. तारक
६७. युक्त
६८. पारस
६९. मालती
७०. दुर्गम
७१. चावर नाराच और
७२. लीलावती

रासो के छंदों की दी हुई तालिका से नीचे दी योजना के अनुसार उनका विभाजन करके उनपर क्रमशः विचार किया गया है। इस स्थान पर छंद नामों की दी हुई संख्याओं से अगले प्रकरण में उन्हें सूचित किया गया है —

(अ) मात्रावृत्त—

१. गाहा या गाथा
२. आर्या
३. दोहा या दूहा
४. पद्धरी
५. अरिल्ल
६. हनुफाल
७. चौपाई
८. बाधा
९. बिअष्षरी
१०. मुरिल्ल
११. काव्य
१२. वेली मुरिल्ल
१३. रासा
१४. रोला
१५. अर्ध मालची
१६. मालती
१७. दुमिला
१८. ऊधो
१९. उधोर
२०. चन्द्रायना
२१. गीता मालती
२२. सोरठा
२३. करषा
२४. माधुर्य
२५. निसांणी
२६. वेली द्रुम
२७. दंडमाली
२८. कमंध
२९. दुर्गम
३०. लीलावती
३१. त्रिभंगी और
३२. फारक या पारक

(ब) संयुक्त वृत्त—

३३. बथूआ
३४. कवित्त
३५. कवित्त विधान जाति
३६. वस्तु बंध रूपक
३७. तारक और
३८. कुंडलिया

(ख) वर्णवृत्त—

३६. साटक
४०. दंडक
४१. भुजंग प्रयात
४२. भुजंगी
४३. वेली भुजंग
४४. मोतीदाम
४५. विराज
४६. श्लोक
४७. त्रोटक
४८. लघु त्रोटक
४६. विज्जुमाला
५०. मलया
५१. रसावला
५२. नाराच
५३. नाराचा
५४. वृद्ध नाराच
५५. अर्द्ध नराज
५६. लघु नाराच या लघु नराज
५७. चावर नाराच
५८. युक्त
५६. वृद्ध भ्रमरावली
६०. भ्रमरावली
६१. कलाकल या मधुराकल
६२. कंठशोभा
६३. कंठ भूषन या कंठाभूषन
६४. पारस
६५. मोदक
६६. मालिनी
६७. मुकुंदडामर और
६८. दोधक

(ग) फुटकर—

६६. चालि
७०. त्रुतिचाल
७१. वार्ता और
७२. बचनिका

(अ) मात्रावृत्त—

१. गाहा या गाथा—

स्थितिः—(गाहा) स० १ छं० ४३-६, ७६, ८३, ६१, ११३, ११६, २४१-२ ३१७-८, ३३२, ५७३; स० ५-छं० ४५ (गाथा); स० ६ छं० १८, २२-४, (गाथा); स० ७-छं १८४; स० ८ छं० २८, ३३, ५३; स० १४ छं० ७१, १०३-७, ११६; स० २३ छं० १६; स० २४ छं० १६८, २६८-६; स० ६८ छं० ३१;

(गाथा) स० १-छं० १६६, १८८-६, ५४०, ५६७, ६४८, ७३१; स० २-छं० ३३६, ३३८, ४१६, ४१८-२०; स० ३-छं० १२, ५७; स० ४-छं० १८; स० ५-छं० ६, ११, १०३-४; स० ६-छं० १४४, १५० (गाहा), १६१, १६५-६, १७२-४, १७७; स० ७-छं० १५, १२८, १३७; स० ६-छं० १५, ७६, १५६-७, १६८-६; स० ११-छं० १७; स० १२-छं० ५, ७, १४-६, २४-५, ३६, ८५, ८८, ६६, १०३, ११६, १२३, १४६, २१३, २२६, २३२-३, २५७, २६०, ३००; स० १३-छं० ३, ५, १३७; स० १६-छं० २; स० १७-छं० ७५; स० १८-छं० ११, ६५; स० १६-छं० १३, ७६-८०, ६३-४, १३५, १३८-४०; स० २०-छं० १४-५; स० २३-छं० १०; स० २४-छं० १००, १०२, २७३-४, २८२-३, २६०, ३३६, ३६३, ३६६, ३८०, ३६०, ४१५, ४३३, ४५२, ४७१, ४८७, ४८६, ४६३; स० २५-छं० ४-५, ७, १७-६, २३, ४८, ५५-६, ८७, १२३, १६२, १७१, २००, २६१, २६८,

२७१, २७७, २८४, २९६, ३३१, ३३८, ३४५, ३५१, ३७७-८०, ३९७, ४१०-१, ४३२, ४५६, ४६१, ४७०-२, ४७५, ४७७, ४८१, ४८३, ५१९, ५२१, ५२४, ५२६, ५४२, ५४४, ५३०, ५८२, ५८७, ५८९, ६०५-६, ६१६, ६२२, ६२५, ६२८, ६३९, ६४८, ६५२, ६६१, ६६९, ६७१, ६७६, ६७९, ६८१, ६८३,६८७, ६९०, ६९३,७२२-३,७२७, ७५०-१, ७५३, ७५५,७८१, ७८५-६;स० २६-छं० २६; स० २७-छं० ८; स० २८-छं० ९८, १११-२; स० २९-छं० ४९; स० ३०-छं० ४१; स० ३१-छं १०३,१५८,१६०; स० ३६-छं०-४, १३९, १४३, २३९-४७; स० ३७-छं० ३, ३५, ३७, ४०, ५९, ८४; स० ३९-छं० ९, १४, ३७-४१, १०३, १२१-२, १४८; स०४३-छं० १-२; स० ४४-छं० ७, २७,४५,५३-४, ५९, ६८,७५, ८९, १२३, १४४, १४७, १५६, १६१,१७०-१,१९३-४; स० ४५-छं०२८, ६६, ७२, १५४, १७१, १८०, १८३, १९९, २१४; स० ४६-छं० ८७, ९१-२,९९, १०४; स० ४७-छं० १०, ३२, ४६, ९०; स० ४८-छं० ९, ११, ७५, ८०, ८३, ८६, १२२, १२४, १५३, १५७ (गाथा), १८२; स० ५०-छं० २१; स० ५१-छं० ४९-५०; स० ५२ छं० १५३; स० ५५-छं० १६९-७०; स० ५६-छं० ३२; स० ५७-छं० ६६,७०,९१, १०९, १३६, १९१, २३५, २३८, २६२-३, २७३; स० ५८, छं० ३६, ३८-९(गाथा), ६४ ८०, ९३; स० ६०-छं० ४७-८; स० ६१-छं० २५७-८, ३१२-३, ३५१, ३७१-४, ३९७-८, ५०७, ७४४-५, ७८२, ७८७-९, ८०९, १०५४-५, ११६५, १२०९-१०, १२७९, १२८४, १३४५, १३५१, १५८८, १५९७, १६२८, १६३८, १६८०, १७०८, २२१५, २५४६, २५५१-२; स० ६२-छं० १७४; स० ६३-छं० १४४-५, १६१, १७७-८०; स० ६४ छं० ४७-९, ३१२, ३१९, ३२९; स० ६६-छं० ६३, ८४-५, ९४-५, १२१, १२९, १३३, १३५, १३७, २०१, ४१०, ७०५, ७१८-२८, १५५६, १६१९, १६५९; स० ६७-छं० १८८, २६६, २६८-७०, ३४६.

'गाहा' या 'गाथा' चंद प्राकृत काल का सुप्रसिद्ध छंद है। उस काल में इस छंद का प्रचार और प्रयोग इतना अधिक हुआ कि 'गाहा' नाम लेते ही प्राकृत रचना समझी जाने लगी थी। साथ ही प्राकृत युग का यह एक अति प्राचीन छंद है। इस छंद की सार्वभौमिकता से प्रभावित होकर प्राथमिक ईसवी सदियों के छंदशास्त्रकार 'नंदिताढ्य' ने अपने छंद ग्रन्थ का नाम 'गाथा लक्षणम्' दे डाला, जो रासो के प्रस्तुत छंद निरूपण में हमारा एक सहायक ग्रन्थ है। यह सत्य है कि 'गाथा लक्षणम्' में विस्तार पूर्वक गाथा छंद और उसके भेद उपभेदों पर विचार किया गया है परन्तु साथ ही प्राकृत कालीन अन्य छंदों पर भी प्रकाश डाला गया है। (छं० प्र०) पृ० १०० के अनुसार यह स्मरण रखना उचित होगा कि संस्कृत के 'आर्य्या' छंद का ही 'गाहा' नाम से प्रयोग हुआ है।

प्राकृत काल के उपरांत अपभ्रंश काल में इस छंद की प्रतिष्ठा कम अवश्य हुई परन्तु उसकी सर्वथा उपेक्षा नहीं हुई वरन् 'गाथा' छंद काफी देखने में आते रहे। इस युग के छद शास्त्रकारों ने इस छंद का भी सम्मान किया है। प्राकृत कालीन प्रभाव 'गाथा छंद पर इस अंश में भी अक्षुण्ण रहा कि थोड़े अपभ्रंश शब्द रूपों के अतिरिक्त इन छंदों की भाषा प्राकृत बहुला पायी जाती है।

"प्रायः सभी छंदकार गाथा की निम्न योजना से सहमत हैं और इसी का प्रयोग अधिकता से किया गया है।

४+४+४/४+४+।ऽ। (या ।।।।)+४+ऽ

४+४+४।४+४+।+४+ऽ" संदेश रासक, भूमिका पृ० ७०

रासो के कतिपय गाहा छंद देखिये जो काफ़ी प्राचीन प्रतीत होते हैं—

गाहा— पय सक्करी सुभत्तौ, एकत्तौ कनक राय भोयंसी।
कर कंसी गुज्जरीय, रब्बरियं नैव जीवंति। छं० ४३
सत्त खनै आवासं, महिलानं मद्द सद्द नूपरया।
सतफल बज्जुन पयसा, पब्बरियं नैव चालंति। छं० ४४ स० १

गाथा— कायर मुष्ष प्रमानं, नर कंमोदयं मोदयं मुष्षं।
सत सित पत्र प्रमानं, उघारियं वीर वृंदायं। छं० १२८ स० ७
तिहि सषि बोलि सुथानं, चित्रनि चित्र केसरी समुषं
लीला विमल सु बुद्धी, सा बुद्धी लग्गि चरनायं। छं० ७४५ स० ६१
पति अग्गिनि विग्भाई, बिन चतुरथी समर सा बुद्धं।
पंचमि कला सगुर और, कार्य कविचंद सद्द निज धाम। छं० १५५६ स० ६६

२. आर्य्या—

स्थितिः—स० १२-छं० ३६४; स० ४५-छं० ७३ अर्य्या; स० ६१-छं० १२८०, ११२८, २०४७; स० ६२-छं० ३-८, ५०; स० ६६।छं० १३६६ (आर्या)।

आर्य्या छंद का प्रयोग विशेषकर संस्कृत और महाराष्ट्री भाषा में पाया जाता है। प्राकृत काल में इसका नाम 'गाहा' हुआ और अपभ्रंश काल में 'गाहा' या 'गाथा' नाम प्रसिद्ध हुए।

आर्य्या छंद मात्रिकार्द्धसम या विषमांतर गत प्रकरण के अंतर्गत (छं० प्र०) में वर्णित है। इसके पहिले और तीसरे चरण में १२-१२ और दूसरे तथा चौथे में १८ और १५ मात्रायें होती हैं। इसके पूर्वार्द्ध में चतुष्कलात्मक ७ गण और एक गुरु (ऽ) होता है तथा इन सात गणों में से विषम गणों में जगण का निषेध किया गया है। छठवाँ गण जगण (।ऽ।) हो या चार लघु (।।।।) हों। इसके उत्तरार्द्ध में छठवाँ गण एक लघु मात्रा का ही मान लिया जाता है और अन्य नियम पूर्वार्द्ध के सदृश्य रहते हैं।

इस छंद का विशेष विस्तृत वर्णन (पिं० छं० सू०) पृ० ४३-६८ में देखने को मिल सकता है। प्राकृत छंद ग्रन्थों में 'आर्य्या' नाम से इस छंद का वर्णन नहीं है वरन् 'गाहा' या 'गाथा' नाम से है।

रासो के 'आर्य्या' छंद के तीन उदाहरण दिये जाते हैं—

आर्या— एकथ्थोय संजोई, एकथ्थी होइ समर नियोसौ।
अनि लेय यथा पदमं, अंदलोए राज रिद एवं। छं० ११२८ स० ६१
पन्नगी ग्रसित सामुद्दं, त्यों पंग सेन ग्रिसतो रायं।
ग्रित सुग्रित आहुठ्ठं, नवमी निसी अद्ध उपायं। छं० २०४७ स० ६१

मिलि सा सुष सयानं, मानि गानि अञ्ज इत्तिम निधानं।
सत्त विहंग विहंगर बानं, मज्जन संजोगि रच्चि रहि ठानं। छं० ५० स० ६२

संशोधन :—

१. स० १२-छं० ३६४ में एक तो किसी भ्रम से दो छंदों को एक संख्या में रख दिया गया है और दूसरे इनमें ७ वर्ण, १२ मात्राओं (और २ रगण+एक गुरु) का क्रम पाया जाता है। सहायक छंद ग्रन्थों में इन प्रमाणों का कोई छंद नहीं है। 'विमोहा' छंद में दो रगण होते हैं, उसमें एक गुरु लगाकर इस नवीन छंद की रचना हुई है। 'आर्य्या' छंद तो इसे कहा ही नहीं जा सकता। रासो के इस नये छंद को उचित नाम देना होगा।

२. स० ४५-छं० ७३, वस्तुतः 'आर्य्या' छंद है। इसके चौथे चरण में 'सयसं' के स्थान पर 'सयेसं' या 'सुयेसं' उचित होगा।

३. स० ६१-छं० १२८०, 'आर्य्या' नहीं है वरन् कोई सोरठा इस बिगड़े हुए रूप में पहुँच गया है। छं० १३२८, किंचित् संशोधन से आर्य्या प्रकरण का 'उपगीति' (१२+१५, १२+१५) नामक छंद है जिसे प्राकृत काल में 'गाहू' कहा गया है। (छं० २०४७) 'आर्य्या' छंद है परन्तु बहुत ही अस्त व्यस्त है; इसमें संशोधन का प्रस्ताव साहस मात्र होगा।

४. स० ६२-छं० ३-८, आर्य्या नामधारी छंद वास्तव में 'चौपाई' छंद हैं। छं० ५० के तीसरे चरण में एक 'विहंग' शब्द अधिक है तथा दूसरे चरण में 'गानि' के स्थान पर 'गुनिय' या 'गनिय' कर देने पर यह छंद 'आर्य्या' प्रकरण का 'गीति' (१२+१८, १२+१८) छंद ठहरता है जिसे प्राकृत काल में 'उग्गाहा' या 'उद्गाथा' नाम से वर्णन किया गया है।

५. स० ६६-छं० १३६६, 'आर्य्या' प्रकरण का 'गीति' छंद है जिसके दूसरे चरण में 'षान' और 'ढान' के बीच में दो लघु का एक शब्द छूट गया है।

३. दोहा या दूहा—द्विपथक7द्विपथा7दुवहअ7दोहा)।

स्थितिः—पृथ्वीराज रासो में इन छंदों की भरमार है अतएव इनकी स्थिति का निर्देश करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

रासो में हम 'दोहा', 'दुहा' और 'दूहा' नामों का प्रयोग पाते हैं। (वृ० जा० स०) और (स्वं० छं०) में हमें 'दुवहअ' रूप मिलता है जिससे किसी प्रकार की शंका का स्थल नहीं रह जाता कि 'द्विपथक' से 'दुवहअ' होता हुआ कालांतर में 'दोहा' हो गया।

जिस प्रकार प्राकृत काल में 'गाहा' या 'गाथा' छंद का अत्यधिक प्रयोग किया जाता था उसी प्रकार अपभ्रंश काल में 'दोहा' का पाया जाता है।

"अपभ्रंश नीति काव्य का यह अति प्रचलित छंद है और यह कहकर कि यह प्राकृत गाथा का अपभ्रंश प्रतिरूप है इसकी वास्तविक स्थिति समझी जा सकती है।"

इस छंद में २४, २४ मात्राओं के दो चरण होते हैं तथा १३, ११ मात्राओं पर यति का नियम है। (क०द०) II 'अवदोहक' या 'दोहक' छं० १५, (छं० को०) छं० २१,

(प्रा० पै०) I छं० ७८-६, (रू० दी०पिं०) 'दोहाक' छं० ३६ और (छं०प्र०)पृ० ८४-६ में उपर्युक्त योजना स्वीकार की गई है तथा यह (६+४+३/६+४+१) गण विस्तार का माना गया है। परन्तु (गा०ल०) छं०८४, (वृ०जा०स०) 'द्विपथक' (7दुवहअ = ४+४+४+S/४+४+SS) छं० २७, (स्वं०छं०) 'दुवहअ' छं० ७ और (छंदो०) 'दोहक' छं० १०० में पादांत की मात्रा सदैव दीर्घ निर्धारित करने के कारण प्रति चरण में १४,१२ के विश्राम से २६ मात्राओं का नियम कहा गया है।

स्वसंपादित 'कुमारपाल प्रतिबोध' पृ० ७२ में श्री आल्सडोर्फ ने श्री जाकोबी तथा अपने द्वारा 'दोहा' छंद की मात्राओं का तुलनात्मक विशद विवेचन किया है। इस संबंध में श्री आल्सडार्फ संपादित 'हरिवंश पुराण' पृ० १८८-६ भी देखा जा सकता है।

रासो के दोहा छंद १३, ११ की यति से २४ मात्राओं का नियम पालन करते हैं और उनके चरणांत में सदैव लघु मिलता है। कुछ उदाहरण देखिये —

दूहा— ग्रह सुपंच चव हंस इथ, लगन सु अष्टम मंद।
दुतिया गुरु मेषह तरनि, चित्रह जनम नरिंद। छं० ७०४ स० १,
आरब पति अर सिंध तट, बिन सलाम सुरतान।
तिन उप्पर सज्जिय सयन, कहर छंडि फुरमान। छं० ४ स० ११,
गिरे मेच्छ हिन्दू सुभर, हय गय घाइ अघाइ।
सुंड रुंड मुंडन झरत, रत्त झाकि झुकि ताइ। छं० ११५ स० ३७,
लौ झंपौ लौ चित्त हर, अनजंपै विहरंत।
अहि डड्ढै छुच्छुंदरी, हियै बिलग्गी बंत्ति। छं० ११९४ स० ६१,
करि जुहार ढिल्लिय नयर, मुक्कि नयर जुगिनेस।
जस भावी तस त्रिम्मयौ, करि न बीर अंदेसु। १६६६ स० ६६

४. पद्धरी:

स्थिति :— स० १-छं० १६-२८, ३१-४१, १४६-५३, १८१-७ (पद्धरि), १६३-६ (पद्धरी), २२३-४०, २४८-६, २८२-३०५, ३२१-३, ३४१-४ ३४९-६० ,३६४-६, ३७१-८३, ४२०-३२, ४३४-७, ४३६-४८, ४७४-७, ४८५-६०, ४६६-५०४, ५३४-७ ५५५-८, ५७५-७, ५८५-६०२, ६०५-१५, ६१६-२८, ६५७-६७, ६७२-६, ६६७-७००, ७०५-१५, ७१६-२६, ७३०-७; स० २ छं० ३०४-६, ३६७-७४; स० ३ छं० २७-४०, ४८-५२; स० ४-छं० १०-७; स० ५-छं० १३-२७, ६७; स० ६-छं० ३-१०, ३५-४८, ६६-६२, १०७-२०, १३२-६, १६७-६; स० ७-छं० ६-११, ५५-६३, ६४-१०१, १७२-५ (पद्धरि); स० ८- छं ४-१५; स० ६-छं० २६-३८, ४३-५५, ८०-६०; स० ११-छं० १८-२५; स० १२-छं० १८-२२, ७०-५, १६५-२०६, २६७; स० १३-छं० १५-२५; स० १४ छं० १८, २८-६, ३५-४१, ६६-९, ६७, १२२-७ (पद्धरि); स० १५-छं० १०-७, ३४-५; स० १७-छं० १३-२०, ३२-५, ४३-८; स० १८- छं० २२-३०, ५८-७६, ८३-६१, ६८; स० १९-छं० २१-४, ३७-४२, ४५-५८, ६२-७३, ८४-८,११५-७ १४१-६, २०६-११, २२६-३९; स० २०-छं० १६-२१, ४२-५१,५५-६; स० २१-छं० १३६-४२,१४६-६; स०

२४-छं० ८-११, ५२-६, २६४-६, ३११-३; स० २५-छं० ३६-४२, ४५,१२०-२, १९३-८, २४७-५६, २५८-६ ७३६-४२, ७४७-९ ; स० २६- छं० ३६-४३; स० २८-छं० ४-७, ८५-६७; स० ३०-छं० २६-३२; स० ३१-छं० २-१२; स० ३२ छं० ५८-६१; स० ३३-छं० ३५-४२; स० ३५-छं० २६-३०, ३३-४२; स० ३६-छं० ३२-८; स० ३७-छं० २७-६, ३१-४; स० ३८-छं० २७-३१, ५२-४; स० ३६-छं० २-७, १२६-३३; स० ४०-छं० ७-१०; स० ४१-छं० १८-२०, २३-४; स० ४२-छं० ६-१२, ८२-३; स० ४३-छं० १८-२२; स० ४४-छं० ६-१७, ३१-४२, ८२-५, ६२-७; स० ४५-छं० ६०-४, १३०-४२, १६४-८, १७४-८; स० ४६-छं० ३१; स० ४७-छं० १७-२२, ४६-५६, ६०-७३, ८१-४, १०५-१३, १२२-७, १२६-३७; स० ४८-छं० १२-७, १६-३२, ४३-७, ४६-६१, ६५-७४, ८१-२, ६१-१००, १०६-२०, १२७-५०, स० ४६-छं० २-१४, १८-२१, २३-३१; स० ५१-छं० ५१-६, ६६-८; स० ५२-छं० ७३-८३, १०५-६; स० ५४-छं० ७-११, २१-३; स० ५५ छं० २८-३२, ४१-४, ११५-६; स० ५६-छं० २-४, २२-६, ८७-६०, १०२-५; स० ५७-छं० ६३-६, २११-८, २५१-६, २८३, ३०५, ३१४-२१, स० ५८-छं० ८-२३, ६६-६, ८६-६२, १३१-४४, १६६-७५; स० ५६-छं० ६३-७६, ७८-६६; स० ६०-छं० २७-३२, ५६-६४-६६-७७; स० ६१-छं० १५८-७५, २०७-१७, २२१-८, २७६-८४, २६०-८, ४११-४, ४५६, ५१६-२३, ५२६-४८, ५६०-६, ६०३-७, ६६५-८५, ७४७-५०, ६३५-७३, ६८३-१००४, १०३४-४१, १११३-४, १३६४-५, १४५६-६१, १५३८-४२ १६०७-१६, १६३३-६, १७५८-६६, १७६७-८, १८५७-६२, १६५०-६, १६६३-६, १६६१-६, २२३६-४६, २२६७-७१, २२८६-६६, २३८५-६१, २४०६-२०, २४६६-७६, २४६५-२५०५, २५२४-३४; स० ६२-छं० १०६-२६, १८४-५; स० ६३-छं० ८-१५, ११८-२५, १५१-८; स० ६४-छं० १४-२३, ५५-६५, ८०-५, २०३-८; स० ६५-छं० ३-१२; स० ६६ छं० ११-२२, ७५-८२, १४७-६२, २५६-६६, ३३६-५०, ५२०-३१, ५३५-४५, ६०३-७, ६४६-५४, ८०७-१६, ८३५-४४, ८४६-५२, ८६१-७०, ६००-२७, ६६३-७०, ६७२-८६, ११५४-६२, १२३६-४४, १५०८-१२, १५१४-२०, १६६०-६, १६८८-६८; स० ६७-छं० ६६-१०५, १७६-८१, १८६, २०२-१६, २२४-३४, २३६, २४२-५, ३३२-४१, ३४७, ३५५, ३७७ (मुरिल्ल, अरिल्ल, पद्धरी), ३८८, ३६१-५, ४०१, ४३२-४, ४५६-६२, ४७५-८४, ५२७, ५३१-६; स० ६८-छं० ३४-४७, ५१-२, ५७-६६, ८४, ८६, २२२-३६; स० ६०-छं० ४-१४, ५८-७२, १७१-८३, २०३-१८, २२५-३६, ३४५-५७, ४०६-१६, ४३४-५६, ५०३-१०, ५३७-४८, ५७३-८१, ६३१-४२, ७४४-५५, ८१६-२५।

'पद्धरि', 'पद्धरी', 'पद्धडिया' या 'पज्झटिका' छंद अपभ्रंश महाकाव्य का आदर्श छंद है अतएव उसके साहित्य में इसका विस्तृत प्रयोग मिलता है और इसीलिये उस के सभी छंदकारों ने विस्तार पूर्वक परन्तु भिन्न नियमों के साथ इसकी विवेचना की है। इसके प्रत्येक चरण में ४ चतुष्कल गणों का नियम है, अंतिम गण जगण (।ऽ।) या (।।।।) चार लघुवाला होना आवश्यक है, दूसरे गण में इन दोनों रूपों का प्रयोग हो सकता है परन्तु पहिले और तीसरे गणों में ये वर्जित हैं।

इस छंद के विषय में श्री आल्सडोर्फ ने स्वसंपादित 'कुमारपाल प्रतिबोध' पृष्ठ ७३ पर लिखा है—

"पद्धटिका छंद की भित्ति में जगण (।ऽ।) है और यद्यपि उसके नियम का कभी-कभी अतिक्रमण पाया जाता है फिर भी उसकी स्थिति अति स्पष्टता से देखी जाती है। इसके प्रथम चरण में योजना विषयक स्वच्छंदता अत्यधिक होती है परन्तु छंद समाप्ति की ओर नियम की कड़ाई आ जाती है तथा विभिन्न गणों का मूल रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। तीसरा और पहला गण समान होता है तथा चौथा और दूसरा। पहिले तीसरे और दूसरे चौथे गणों के मध्य में कुछ भेद देखा जाता है जिससे छंद में क्रमिक विभिन्नता स्थापित हो जाती है परन्तु गतिवान जगण की लय होने पर इस विभिन्नता का विचार न करके जगण का ही प्रयोग कर लिया जाता है।"

(गा० ल०) छं० ७६ में 'पद्धडिय' छंद १६ मात्राओं वाला, वर्ण क्रम रहित और प्रत्येक चरण में विशुद्ध यमक वाला वर्णित है। (स्वं० छं०) VI छं० १६० में 'पद्ध-डिया' को १६ मात्राओं और ४ चौकलों वाला कहा गया है। (क० द०) II छं० २२ में 'पज्झडिया' ४ चतुर्मात्राओं, अंत और मध्य में चौकल तथा विषम चरणों में जगण रहित बतलाया गया है। (छं० को०) छं० ३६ में 'पद्धडिय' को १६ मात्राओं, अंत में जगण तथा कुल ६४ कलाओं वाला लिखा गया है। (प्रा० पै०) I छं० १२५ में 'पज्झ-टिका' के लक्षण (छं० को०) छं० ३६ के अनुरूप हैं। (रू० दी० पिं०) ४६ में 'पद्धड़ी' को १० में ६ मिलाकर प्रति चरण में १६ मात्राओं और अंत में जगण रखकर प्रस्तुत करने का लक्षण दिया है। (छं० प्र०) में 'पद्धरि' छंद पृ० ४९ पर १६ मात्राओं वाले संस्कारी समूह के अंतर्गत, अंत में जगण वाला मात्र लिखा गया है।

रासो के पद्धरी छंदों के प्रत्येक चरण में १६ मात्राओं, ४ चौकल और जगणांत का नियम पाया जाता है। उदाहरणार्थ कुछ छंद देखिये—

पद्धरी— त्रयगुनह तेज त्रयपुर निवास, सुर सुरग भूमि नर नाग भास।
फुनि ब्रह्म रूप ब्रह्मा उचार, कथि चतुरवेद प्रभु तत्त सारि। छं० १७ स० १
सजि चल्यौ समर रावर सु तथ्थ, जानै कि सरित सागर समथ्थ।
बज्जै निसान दिसि दिसि प्रमान, मानो समुद्द गिरि गजिय थान। छं० ३२ स० ३६

पद्धरी— सिंगार सकल किय राज जाम, उच्चार वेद किय विप्रताम्।
वाजित्र बज्जि मंगल अनेव, माननि उचार सामुन्न गेव। छं० २५२४ स० ६१
बन द्रग्ग भयौ चहुआन रान, मन मंझि रोस मुझ्झिग परान।
उद्दास रोस घुंटहि नरिंद, आहार पान जल तजिग निंद। छं० १६६१ स० ६६

परिमाण के विचार से पद्धरि छंद का प्रयोग रासो में छप्पय और दोहा के बाद है तथा 'भुजंग प्रयात' और 'गाथा' के लगभग बराबर है। नियमों के अनुसार ये छंद बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट हैं तथा रचयिता का विशेष अधिकार जताते हैं।

संशोधन :—अनेक स्थलों पर मात्राओं के न्यूनाधिक दोष दृष्टियोचर होते हैं जिन्हें अल्प प्रयास से बिना अर्थ भंग के शुद्ध रूप दिया जा सकता है।

५. अरिल्ल.

स्थिति:—स० १-छं ८५, ६३-४ २५४, ३२५, ३२६, ३६८-४००, ४०२-४, ४६२-७, ४८१, ७३९-४२, ७४९, ७५३-७; स० २-छं० ५४५-६; स० ३-छं० १०, २२-३; स० ४-छं० ४-५; स० ६-छं० १४० (चन्द्रायना), १४३, १४५, १६३; स० ७-छं० २६, १८२-३; स० ८-छं० २६; स० ९-छं० ६६; स० १०-छं० २८; स० ११-छं० २८; स० १२-छं० २३, १२२, २११, २३६, २३८, २४०, २६६, ३०३, ३४२; स० १३-छं० ३६, १५५; स० १४-छं० १३५ (अरिल्ल); स० १८-छं० ३१; स० १६-छं० २०, ८३, ६८, ११६-२१; स० २४-छं० ८४, १०३, १०५, १०७-८, ११३-४, ४३२, ४३५; स० २५-छं० २, २८, ३१, ४६, ५०, १२५, २०२, २३६, २७२, ३५६, ३६६-७०, ३८४, ४१२, ४४५, ५४६, ५६६, ६१७, ६८४, ७३७; स० २७-छं० ४; स० २८-छं ७१, १४८, १५५; स० ३५-छं० १४; स० ३६-छं० ५; स० ३७-छं० १७ ५३-६२; स० ३८-छं० ३४; स० ३९-छं० ३६, १२५; स० ४२-छं० ६, २०-५; स० ४४-छं० ४९ (मुरिल्ल), ५७; स० ४५-छं० १५६, २१६; स० ४६-छं० ३५, ५३; स० ४७-छं० २७; स० ४८-छं० ७९, १२३, १८३-४; स० ४९ छं० १७ (अरिल्ल); स० ५१-छं० ४४; स० ५२ छं० १०३ (पृष्ठ १३८५ पर भ्रष्ट छंद है), १३१; स० ५५ छं० ३७; स० ५६-छं० १०; स० ५७-छं० ३५, १३७, १७१, १९६, २१९, २२४, ३११; स० ५८-छं० १०३-५, १७८-९, १८३-७, १९०; स० ६१-छं० १९३, ३१४, ३२१, ५१३, ७१५, ७१८-९ ७३१-२, ७५२, ७८१, ८१६-२०, ८२२, ८६३, ८७७, १०१८, ११०७, ११४९, ११६७-८, १२६७-८, १३१७; स० ६२-छं० १, ४५, ९३, १७९; स० ६४-छं० २२१-२, २२८-३६, ४०३, ४५२, स० ६६-छं० ११५, ६१०; स० ६७-छं० ४५, ६८-७५, २७१-२, ३७०, ३८२-३, ५२८।

इस छंद के रूप के विषय में हमें विभिन्न मतों का सामना करना पड़ता है। इस बात से प्राय: सभी छंदशास्त्रकार सहमत हैं कि इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं जिनमें से अन्तिम दो लघु होती हैं। (छं० प्र०) पृ० ४९ में इस छंद के चरण के अंत में दो लघु या एक यगण (।ऽऽ) का नियम दिया गया है। (वृ० जा० स०) IV छं० ३३-४, (स्वं० छं०) IV छं० ३२, (छंदो०) V छं० ३९ और (प्रा० पै०) I छं० १२७ में 'अडिल्ला' छंद के चारों चरणों में एक यमक की व्यवस्था पायी जाती है तथा जहाँ पहिले और दूसरे चरण के लिये एक यमक तथा दूसरे और चौथे चरण के लिये दूसरे यमक का प्रयोग किया जाता है, उस छन्द को 'मडिल्ला' नाम दिया गया है। (क० द०) II छं० २१ तथा (छन्दो०) V छं० ४०-१ में 'मडिल्ला' में दो और 'अडिल्ला' में एक यमक माना जाता है।

गण योजना के विषय में (प्रा० पै०) और (छं० प्र०) इस छंद के किसी चरण में जगण (।ऽ।) प्रयोग का निषेध करते हैं। (प्रा० पै०) के एक टीकाकार के अनुसार 'अडिल्ल' की यह (६+४+४+॥) गण योजना होनी चाहिये।

(रू० दी० पिं०) छंद ४१ में 'अडिल्ल' को लघु दीर्घ के नियम से रहित १६ मात्राओं और ४ चरणों वाला छन्द मात्र कहा गया है।

'संदेश रासक' की भूमिका पृ० ५१ पर इस छंद के विषय में विद्वान् संपादकों का अनुशीलन ध्यान में रखने योग्य है—

"एक प्राचीन परंपरा चली आ रही थी (वृत्तजाति समुच्चयः, ४, ३२ तथा छन्दः-कोशः ४१) कि किसी अच्छे छंद के चरण चाहे समान हों अथवा असमान यदि आभीर (या अपभ्रंश) भाषा और यमक का व्यवहार किया जाय तो उसे अडिल्ला कहा जायगा। वृत्त जाति समुच्चयः, अध्याय ४ छंद ३४ में आये 'अडिल्ला नक्कडयभेयम्' का अर्थ है कि अडिल्ला आभीरी में यमक के साथ नकुटक का एक रूप है। परन्तु अडिल्ला की उपर्युक्त परिभाषा के बाद ही दूसरे छन्द में अन्य परिभाषा मिलती है जिसका पाठ दुर्भाग्य से स्पष्ट नहीं है परन्तु छंद की योजना इस प्रकार है—[६+।ऽ।+ऽऽ+।।] और उसके चारों चरणों में एक यमक की व्यवस्था है। अस्तु, देखते हैं कि प्रारंभ में अडिल्ला किसी छंद विशेष का नाम न था वरन् वह एक लाक्षणिक युक्ति थी जिसके अनुसार किसी भी छंद को अपभ्रंश में रचकर तथा यमक का प्रयोग करके अडिल्ला में परिवर्तित किया जा सकता था। परन्तु इस (६+४+४+।।) योजना को इस छंद में विशेष सुविधा प्राप्त हो जाया करती थी इसलिये कालांतर में अडिल्ला साधारण नाम न रह गया और इस विस्तार में ही उसका प्रयोग सीमित हो गया। कालांतर में कुछ समय के उपरांत यमक और अनुप्रास (छन्दःकोशः में अनुप्रास के अर्थों में यमक का व्यवहार किया गया है तथा स्वयम्भूः छंदः में भी यही द्रष्टव्य है, पृष्ठ १२८ का उदाहरण छन्द भी देखिये) का भेद मिटने पर यह १६ मात्राओं का छन्द यमक के बिना भी अडिल्ला नाम से विख्यात हो गया। फिर इसने प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणों में एक सी तुक ग्रहण कर ली।"

रासो के अरिल्ल छंदों के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं, चरणांत में दो लघु (।।) पाये जाते हैं परन्तु कहीं कहीं यगण (।ऽऽ) भी प्रयुक्त हुआ है। जगण का प्रयोग नहीं मिलता है। और चार छै स्थलों पर उसके दर्शन लिपिकारों के भ्रम अथवा प्रक्षेप-कर्ताओं के अज्ञानवश होते हैं। यमक के लिये हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाते, उसका भी अभाव स्पष्ट है। अनुप्रासों की छटा से बिना प्रभावित हुए नहीं रहा जा सकता। कतिपय छंद देखिये:—

अरिल्ल—तर्क वितर्क उतर्क सु जत्तिय, राज सभा सुभ भासन भत्तिय।
कवि आदर सादर बुध चाहौ, पढ़ि करि गुन रासौ निर्बाहौ। छं० ८५ स० १,
आरब षान तत छन मानिय, ज्यौं सुकिया पिय आग्या जानिय।
लै फुरमान बंदि सिर धारिय, चित्ररेष दीनी सो नारिय। छं० २८ स० ११,
च्यारि प्रकार पिष्षि बन बारुन, भद्र मंद मृग जाति सधारन।
पुच्छि चंद कवि को नरपत्तिय, सुर वाहन किम आइ धरत्तिय। छं० ४ स० २७,
सज्जि सेन सामंत सूर वर, गज्जे गेन सु लग्गि महाभर।
वंधे गरट चले गति मंदं, मानि सूर सामंत अनंदं। छं० १८४ स० ४८,
गुरु जन गुर निंदरियं सुंदरि, राजपुत्ति पुच्छियै न दुरि।
अमहि पुच्छि तौ दुत्ति पठावहि, कुन अच्छै पुच्छ बिकरि आवहि। छं० ११६८ स० ६१,

उठ्यौ मंत चित्त करि राजन, जै जै जै बानी आयासन।

बक्यौ धीर वीर रस ताजन, सुनिय मंत्र किलकान सुतासन। छं० ६१० स० ६६

संशोधनः—रासो के इस प्रकरण के छन्द अनेक प्रकार के दोषों से तो भरे ही हैं जिनका विस्तार भय के कारण विवेचन नहीं किया जा सकता, साथ ही १६ मात्राओं वाले पद्धरि, चौपाई आदि को भी अरिल्ल नाम दे डाला गया है तथा दूसरे प्रकार के छंद भी यही नाम पा गये हैं। जैसे स० ४५ छं० १५६। स० ५२ छं० १०३, 'अरिल्ल' नहीं है; उसके चरणों में क्रमशः साटक, गाथा, उल्लाला और रोला के लक्षण विद्यमान हैं।

रासो के आगामी संस्करण में ये महान भूलें सुधारी जाना परमावश्यक होगा।

६. हनुफाल या हनूफाल—

स्थितिः—स० १-छं० ६५-१०७; स० २ छं० ३०६-१०; स० ११-छं० १६२-४; स० १३-छं० ७१-८ (हनूफाल); स० १४-छं० ११७-८, १३८-५८; स० १६-छं० ४-६; स० २१-छं० ४३-६; स० २४-छं० ६५-७१; स० २५-छं० ३५८-६८, ५६६-६००; स० ३१-छं० १६३-४; स० ३२-छं० ६-२०; स० ३६ छं० ८६-६८, १८८-६४; स० ३७ छं० १८-२४, १२६-३१; स० ३६-छं० ५३-७; स० ४३-छं० ३-७, ६-११; स० ४५-छं० ५-१०; स० ४६-छं० १०-२३; स० ४७-छं० ४; स० ४८ छं० १५६-६८; स० ५१-छं० १०२-११; स० ५७-छं० १३८-४१, १५७-६४; स० ५८-छं० ३१-५, ६४-८, २१६-२३; स० ६१-छं० ६५-७१, १३३, १४६-५४, २३१-४२, २४४-५३, ७५५-६५, ८६०-८, १२०२-५; स० ६२-छं० १५३-६७; स० ६३-छं० ५६-६४; स० ६४-छं० ३७६-८२, १०८-१४; स० ६६-छं० ५६७-७६, १७६-८२, १४८५-६७, १५३४-५; स० ६७ छं० ५३८-४७; स० स०-छं० ७४-६२, २४५-५६, ५८४-६०।

उपलब्ध छंद ग्रन्थों में इस नाम का छंद नहीं मिलता। रासो के इन छंदों की परीक्षा करने पर विदित होता है कि इनमें वर्णों का क्रम नहीं है परन्तु इनके प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें हैं, ३ चौकल हैं और अंत में जगण है; कहीं कहीं पर स ज ज (IIS+ ISI+ISI) गण योजना भी पाई जाती है। इस प्रकार इतना स्पष्ट है कि ये १२ मात्राओं वाले आदित्य प्रकरण के अंतर्गत के छंद हैं।

(प्रा० पै०) II छं० ८६-७ और (रू० दी० पिं०) छं० ४२ में (स ज ज) योजना वाले 'तोमर' छंद को वर्णवृत्त माना है परन्तु (छं० प्र०) पृ० ४४ में 'तोमर' को मात्रावृत्त माना गया है। (छं० प्र०) पृ० ४४ के आदित्य प्रकरण में 'तोमर, ताण्डव, लीला और नित' छंद पाये जाते हैं। 'नित' छंद के नियमों को छोड़ कर शेष तीनों प्रकार के छंदों के लक्षण रासो के 'हनुफाल' छंदों में पृथक पृथक मिलते हैं, कई स्थलों पर उपर्युक्त कोई दो छं० मिश्रित रूप में एक ही छंद के अन्तर्गत पाये जाते हैं, वैसे 'लीला' और 'तोमर' छंदों के लक्षण अधिकांश स्थलों पर मिलते हैं।

अनुमान है कि 'हनुफाल' या 'हनूफाल' नामक कोई स्वतंत्र छंद १२ मात्राओं ३ चौकलों और अंत में निश्चित रूप से जगण वाला रासो रचना काल में व्यवहृत होता रहा है। दो छंद देखिये—

हनुफाल— सुनि श्रवन संभरि राज, वर वज्जि विजयत वाज।
तन अविधि तूल तरंग, विधिमडि वीर विजंग। छं० ५५ स० ३६,
परिधाय सूर प्रकार, पांवार वज्र सु भार।
कढि खोलि पग्ग विहथ्थ, भारथ्थ ज्यों सुनि पथ्थ। छं० १०२ स० ५१

संशोधनः—१. स० १२-छं० १६४ का छंद ८ चरणों का है, जिसे वास्तव में चार चार चरणों का एक एक मान कर दो छंद समझने चाहिये।

२. स० ३७-छं० १२६-३१ और स० ४५-छं० ८-१०, १४ मात्राओं और अंत में ऽ। वाले मानव समूह के मात्रावृत्त 'कज्जल' छंद हैं।

३. स० ६१ छं० १३३ में १६ मात्रायें और अंत में ।ऽ है।

४. स० ६१-छं० २४३ को 'हनूफाल' छंदों के अन्तर्गत रख दिया गया है परन्तु वह वास्तव में 'दोहा' छंद है।

७. चौपाई—

स्थितिः—स० १-छं० १२४, २१३-६, ४१०; स० २-छं० २, ३२३, ४०७, ४१४; स० ७-छं० ५६; स० १०-छं० ७; स० १२-छं० ३२-३, ३०८; स० १४-छं० १०८-६; स० १८-छं० ४, ७-८, ३८-६; स० २१-छं० ३, १०, १८८; स० २४-छं० १६; स० २५-छं० ७३-८०, ८५, २५७, ४८४-६, ४६०, ५४३, ५६७, ६:०-१, ६८०, ७५२, ७७८; स० २६-छं० ८, ८०, ८६; स० २८-छं० ६१; स० ३२-छं० ४२, ८२; स० ३३ छं० ६५; स० ३४-छं० ४१, ४३; स० ३५-छं० १०-३; स० ३६-छं० १३७, १४०; स० ३७-छं० ४३-५; स० ४३-छं० ६५-६; १२६; स० ४४-छं० ६४-५, १७२, १७४; स० ४५-छं० ५६ (चोपाई), १८५; स० ४६-छं० ३, ८४; स० ४८-छं० २३७; स० ५०-छं० १२-३, २३, ६५-६; स० ५१-छं० ३६, ४१, ११६; स० ५२-छं० २१ (चोपाई); स० ५६-छं० ४८; स० ५७-छं० २२२, २५०, २६४-६; स० ५८-छं० ६२, १०१, १२७; स० ६०-छं० १-३, ८-१०; स० ६१-छं० ७६, ८६-७, ३७६, ३६६, ४६०-१, ४६७-५०३, ५०५, ५१०, ५५२, ७१४, ७४३, ७८३, ६२२, ६२१, ६३३, १०३३, ११०२, ११५०, १२१२-५, १२२१, १२३१, १२५१-२, १२५६, १२७६-७, १३३१, १३३३, १५८५, १८५५, २०५३-४, २०५६, २३७४; स० ६२-छं० ६५, १८६; स० ६३-छं० २५, १६६-७०; स० ६४-छं० ३६८; स० ६६-छं० ७३४, १६१४-५; स० ६७-छं० ७६, १४२, १८५, २००, २६६, ३३१, ३६१, ३६८, ४०६-७, ४२४; स० ६८-छं० १७२; म० स०-छं० ३७, ५५, ११०, १३२-४, १३६, १३८-४३, १४७, १४६-५६, १६०-२, १६४, १६७-६, १८५-६१, १६७-२००, २२१-२, २४०, २६३-५, २६७, २८५, २६०, ३००, ३०३-१५, ३२८, ३३२-६, ३३६-४१, ३४४, ३५८, ३७८-६, ४२१, ४३०-२, ४६४-६, ४६८-६, ५०१-२, ५११, ५१६-२०, ५२३, ५३५, ६४४-५, ६६२-३, ७१२, ७१५, ७४२, ७८६ ८०८-११।

'चौपाई' मात्रिक छंद है और (छं० प्र०) में १६ मात्राओं वाले संस्कारी समूह के अंतर्गत वर्णित है। इसकी १६ मात्राओं में गुरु लघु का अथवा चौकलों का कोई क्रम

नहीं होता; अंत में जगण (।ऽ।) या तगण (ऽऽ।) न होना चाहिये अर्थात् गुरु लघु (ऽ।) न हों। इसमें चार पद होते हैं (छं० प्र०, पृ० ५१-३)। रासो के प्रस्तुत छंद इन्हीं लक्षणों के अनुरूप हैं।

(छं० को०) छं० ३७ तथा (प्रा० पै०) I छं० ६७-८ का 'चउपइया' छंद प्रति चरण में ३० मात्राओं के क्रम से कुल १२० मात्राओं का वर्णित है। (छं० को०) का 'लघु चउपइया' छं० ४० तथा (रू० दी० पिं०) का 'चौपई' छं० ४० प्रत्येक चरण में १५ मात्राओं वाला कहा गया है।

उदाहरणार्थ रासो के कुछ 'चौपाई' छंद देखिये —

चौपाई—मछ्छ कछ्छ वाराह प्रनम्मिय, नारसिंघ वामन फरसम्मिय।
सुअ दसरथ्थ हलद्धर नम्मिय, बुद्ध कलंक नमो दह नम्मिय। छं० २ स० २
तात मात आग्या परमानहि, ता समान नह ध्रम्म प्रमानहि।
गुरु द्रोही पति द्रोही जानं, सो निहचै नर नरकहि थानं। छं० ५६ स० ७
दीह च्यारि ढिल्ली नृप भारी, वर चहुआन संमुहै हारी।
गोतं चर फिर रावर छंडिय, बद्री छोर सरन ग्रह मंडिय। छं० ६१ स० २८

संशोधन :—१. स० १-छं० १२४; स० १४-छं० १०८; स० २१-छं० १०, १८८; स० २५-छं० ८५, ५४३, ५६७, ६४०-१, ६८०, ७५२, ७७८; स० ५१-छं० ३१; स० ६३-छं० १६६-७०; ये 'चौपई' छंद हैं। इनके प्रत्येक चरण में १५ मात्रायें और अंत में (ऽ।) है।

२. स० ४८ छं० २३७ के प्रथम दो चरण 'भुजंग प्रयात' छंद के हैं और अंतिम दो चौपाई के।

३. स० ६३ छं० १६६के प्रथम दो चरण १५ मात्राओंवाले 'चौबोला' छंद के हैं।

४. इसके अतिरिक्त अन्य छंदों में अनेक स्थलों पर मात्राओं की घटा बढ़ी पाई जाती है। कहीं किसी चरण में १४ मात्रायें हैं और कहीं १७ तथा कहीं १८ तक पाई जाती हैं। इन सब को साधारण परिश्रम से उचित रूप में लाया जा सकता है।

८. बाघा—

स्थिति :—स० १-छं० १३६-४७, २५७-७६; स० २५-छं० १६५-७०; स० ३०-छं० ६-६; स० ४८-छं० १८०-१, २६८-७०; स० ५५-छं० १७३-८२; स० ५७-छं० ४६-५२; २४०-८; स० ६१-छं० १०६५-७२; स० ६२-छं० ६४-१००; स० ६६-छं० १२५-३४, ५८७-६०१।

रासो के इन छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनमें वर्णों का क्रम नहीं है वरन् मात्राओं का है। अस्तु, ये मात्रिक छंद हैं। इनके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं और अंत में अबाध रूप से एक यगण (।ऽऽ) है। अन्य गणोंका कोई क्रम नहीं है। प्रायः प्रत्येक गण का उपयोग किया गया है और जगण तो वस्तुतः प्रत्येक छंद में मिलता है। कतिपय छंद देखिये —

बाघा— गाज्जव रिषि सिष्ष उतंग, दिय विद्या बुध क्रम क्रम अंग।
गुर दष्षिन कज्जै गुर जच्चै, गुर पतनी तब मंगि विरच्चै। छं० १३६स० १,

संभलि वत्त सुयं प्रथिराजं, अति अंगनि विद्याबल साजं।
कला सपूरन पूरन चंदं, पूरन हाटक वरन बिबंदं। छं० ६ स० ३०,
इह भविष्य बीतय दिलेसं, आवरि वीर अंग अल हेसं।
मंनि काल क्रित कारन रूपं, सादैवत्त आदि गति ओपं। छं० ५८७स० ६६

उपलब्ध छंद ग्रन्थों में वाघा नाम का कोई छंद नहीं मिलता। वैसे तो इन छंदों को 'चौपाई' कहना उचित होता परन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उपर्युक्त लक्षणों वाला यह कोई स्वतंत्र छंद रहा हो।

संशोधनः—

स० ६१ के 'वाघा' नामी छंद १६ मात्राओं के नहीं वरन् १२ मात्राओं के ही हैं जो (छं० प्र० पृ० ४४ के अनुसार) मात्रिक आदित्य प्रकरण के अंतर्गत आते हैं। इन छंदों के अधिकांश चरणों के आदि और अंत में लघु है जिसे आदित्य समूह का 'ताण्डव' छंद कहा गया है। कुछ चरणों के अंत में लघु गुरु होने से 'तोमर' छंद का नियम मिलता है और कुछ के अंत में जगण होने से 'लीला' छंद का। इन अंतरों का कारण प्रत्यक्ष ही लिपिकारों का भ्रम है और स० ६१ के 'वाघा' छंद वास्तव में 'तांडव' छंद कहे जाने चाहिये।

९. विअष्षरी —

स्थितिः—स० १-छं० १७३-६; स० ६-छं० १२०-६; स० १२-छं० १८५-६१; २१७-२७, २४१-४; स० १६-छं० १२२-३१ (दुवैअष्षरी), २१३-७; स० २४-छं० ३१६-२२; स० ३६-छं० १५-२७; स० ५२-छं० २-१२; स० ५५-छं० ६५-६; स० ६१-छं० १०२१, १७६६-१८००, १८०३-१०, १८१३-९; स० ६६-छं० ६६७-१००५, १३५५-६८।

'विअष्षरी' या 'दुवैअष्षरी' नाम के किसी छंद का पता उपलब्ध छंद ग्रन्थों में नहीं लगता। पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं और अंत में अन्य गणों का विचार करने से एक कर्ण (ऽऽ) तथा उक्त विचार न करने से एक यगण (।ऽऽ) रहता है। इस प्रकार ये लक्षण वैसे ही हैं जैसे कि रासो के 'वाघा' नामक छंद के (छं० प्र० पृ० ५१ के अनुसार) ये छंद मात्रिक संस्कारी समूह के अंतर्गत 'चौपाई' छंद के अनुरूप हैं। संभव है कि चौपाई छंद के इस रूप विशेष को रासो रचना काल में 'वाघा' या 'विअष्षरी' छंद कहा जाता रहा हो। यहाँ पर यह स्मरण रखना अनुपयुक्त न होगा कि रासो में 'चौपाई' छंद भी अपने इसी नाम से बहुलता से प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ रासो के कतिपय 'विअष्षरी' छंद दिये जाते हैं —

विअष्षरी— चिंते रिषि देखि विल दुक्तित, उर लग्गी अति चिंत मझिझ हित।
पूछवि रिष्ष सिष्ष क्रत कामं, लहै न कोइ बुद्धि बल तामं। छं० १७३ स० १

दुवैअष्षरी— कसै हेम सोनार, सुबीरं, कोइ न कसी दरिद्र सरीरं।
भै निरभै संसार सुजानं, सुनि सुनि राज वृत्त सुरतानं। छं० १२७ स० १६,

विअष्षरी— तुं धर तेज नेज दल लोहं, तू राषै दच्छिन गिरि सोहं।
तो पच्छां जैहों वर वीरं, है सुर है राजै तौ नीरं। छं० ६६८ स० ६६

तिमिर गज मृगेन्द्रं चन्द्रकांतं प्रमाथी।
विकसि अरुन प्राची भास्करं तं नमामी। छं० २३६
अमृतमय शरीरं सागरा नंद हेतु।
कुमुद वन विकासी रोहीणी जीव तेसं।
मनसिज नस वंधुमानिनी मान मर्दी।
रमति रज निरमनं चंद्रमा तं नमामी। छं० २३७ स० ३६,

काव्य— उभय कनक सिंभं भृंग कंठीव लीला।
पुहप पुनर पूजा विप्रये कामराजं।
त्रिवलिय गंग धारा मद्धि घंटीव सब्बदा।
सुगति सुमति भीरै नंग रंग त्रिवेनी। छं० ३२४ स० ६१

इन छंदों की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि स० २५-छं० ११४ के प्रत्येक चरण में २१ वर्ण हैं, ७-७-७ वर्णों पर यति है तथा (म र भ न य य य) या (SSS+SIS+SII+III+ISS+ISS+ISS) गण योजना है। ये लक्षण (पिं० छं० सू०) पृ० २१४, (क० द०) IV २१ 'प्रकृति' ६१-६२ सद्धरा, (प्रा० पै०) II 'सद्धरा' छं० २००-१ और (छं० प्र०) पृ० १६७ में वर्णित 'स्रग्धरा' छंद के हैं। अस्तु, रासो के इस छंद को २१ वर्ण वाले प्रकृति समूह के अन्तर्गत 'स्रग्धरा' नाम देना उचित होगा।

शेष चार छंदों के प्रत्येक चरण में १५ वर्ण हैं, ८-७ वर्णों पर यति है और (न न म य य) या (III+III+SS/S+ISS+ISS) गण योजना है। ये लक्षण (पिं० छं० सू०) पृ० २०६, (स्वं० छं०) I 'मालिणी' छं० २७-८, (क० द०) IV छं० १५ (अतिशक्करी ७२-७३) और (छं० प्र०) पृ० १७५ में 'मालिनी' छंद के दिये गये हैं। अतएव इन छंदों को १५ वर्णवाले अतिशर्करी समूह के अंतर्गत 'मालिनी' नाम देना उपयुक्त है।

अब यहाँ पर यह भी विचारणीय प्रश्न है कि रासो के इन वर्णवृत्तों को मात्रावृत्त 'काव्य' संज्ञा कैसे दे दी गई। 'काव्य छन्द के लक्षण (गा० ल०) 'वत्थुओं' छं० ८२-३, (छंदो०) V 'वस्तुवदनकम्' २५, (क० द०) II 'वत्थुवयण' छं० २५, (प्रा० पै०) I 'कव्व' छं० १०६, (छं० को०) 'वत्थुव' छं० १३ और (छं० प्र०) 'रोला' के अंतर्गत काव्य' पृ० ६१ में इसे ११-१३ के विश्राम से २४ मात्राओं वाला माना गया है। (प्रा० पै०) I छं० १०६ में इसकी (६+४+IISI+४+६) यह योजना निर्धारित की गई है। दूसरे और चौथे गणों में जगण न होना चाहिये और अंत में दो लघु (II) हों। श्री ऑल्सडार्फ ने स्वसंपादित 'कुमारपाल प्रतिबोध' पृ० ७४-५ पर लगभग १०० 'वस्तु वदन' छन्दों की परीक्षा करके यह निर्णय किया है कि इसके प्रत्येक चरण में ३ गणों या १४ मात्राओं के बाद एक यति पाई जाती है जो कालांतर में विकसित होते होते ११ मात्राओं के बाद होने लगी। (प्रा० पै०) में ११ मात्राओं के बाद ही यति बताई गई है। (छं० प्र०) के ११-१३ की यति से २४ मात्राओं वाले 'रोला' छंद में ११वीं मात्रा लघु होने पर उसे 'काव्य' नाम दिया गया है।

इस सूक्ष्म विवेचन से स्पष्ट है कि 'काव्य' और 'मालिनी' तथा 'स्रग्धरा' छंदों में महान अंतर है। फिर इस प्रकार की भूल कैसे संभव हो सकी कि वार्णिक छंदों को मात्रिक 'काव्य' छंद लिख डाला गया। अनुमान है कि छंदशास्त्र से अनभिज्ञ परवर्ती प्रक्षेपकारों ने अपने अज्ञान का यह कौशल प्रदर्शित किया है।

संशोधन :—

स० २५-छं० ११४, पहिला चरण—'उरजा' के स्थान पर 'उर्जा',
स० ३६-छं० २३६, दूसरा चरण—'सम सज' या 'समं ससं सज' के स्थान पर 'सरसिज ससि';
" " —'कीरा' के स्थान पर 'क्रीड़ा',
तीसरा चरण—'चन्द्रकातं' के स्थान पर 'चन्द्रकांतं',
स० ३६ छं० २३७ पहिला चरण—'सागरा नंद' के स्थान पर 'सागरानंद',
दूसरा चरण—'रोहीणी' के स्थान पर 'रोहिणी',
" " —'जीव तैसं' के स्थान पर 'जीवितेशं',
चौथा चरण—'रज निरमनं' के स्थान पर 'रजनि रमनं' या
'रमनि रमन';
स० ३६ छं० २३८ तीसरा " —'सबदा' के स्थान पर 'सब्दा' या 'शब्दा'

१२. वेली मुरिल्ल—

स्थिति:—स० १२-छं० ३६६७३।

प्रस्तुत छंदों को 'वेली मुरिल्ल' नाम दिया गया है जिससे इनके 'मुरिल्ल' छंदों के निकटवर्ती होने का भ्रम हो जाता है। रासो के एक स्थल मात्र पर ये ८ छंद मिलते हैं।

इनकी परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण और ४ भगणों का नियम है जो कि वार्णिक 'मोदक' छंद का प्रसिद्ध लक्षण है। रासो की छंद समीक्षा के वर्ण वृत्त प्रकरण में 'मोदक' छंद पर स्वतंत्र रूप से विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

सहायक छंद ग्रंथों में 'बेली मुरिल्ल' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। उदाहरण स्वरूप एक छंद देखिये :—

बेली मुरिल्ल— **पानि निषेध बजी भरसों भर।**
जानति ना जननी पिय बंभर।
सें हथ वाह सयं भर सुम्भिय।
गोहिल मुझिझ परे पय रंभिय।
हथ्थिय इंकि भिर्‌यौ प्रभु भीमिय।
लष्ष सवाय जिहीं दल जीमिय।
उत्तर उत्त तुरंगति छंडिय।
जद्दव षग्ग वियं करि मंडिय। छं० ३६७ स० १२

संशोधन:—उचित यह होगा कि 'बैली मुरिल्ल' नामधारी इन छंदों को 'मोदक नाम दे दिया जाय।

'मोदक' छंद ४ चरणों का होता है परन्तु रासो के प्रस्तुत छंदों को ८ चरणों का एक छंद मान कर संख्या दी गयी है, जो अशुद्ध है। इन्हें शुद्ध रूप में लाना आवश्यक है।

कतिपय अन्य साधारण पाठांतर भी वांछित हैं।

१३. रासा—

स्थिति:— स० ५०-छं० २२; स० ५७-छं० १७६; स० ६१-छं० १६२२-४।

रासो के ये छंद निम्न रूपों में प्राप्त होते हैं —

रासा— अलस नयन अलसायत आदुर प्रप्पकिय।
किम बुद्धिय मो तात सकिल्लिय एक हिय।
तव वाले वर तात सयंवर मंडइय।
कहि वर उतकंठाइ माल उर छंडइय। छं० २२ स० ५०,
कनक दंड चामर छत्र विराजत राज पर।
रयन सिंघासन आसन सूर सामंत भर।
राजस तामस सत्त त्रयं गुन भिन्न पर।
मनहुं सभा मंडि बंभ विय छिन अप्प कर। छं० १७६ स० ५७,
इसी राति प्रकासी, सर कुमुदिनी विकासी।
मंडली सामंत भासी, किवन कल्लोल लासी। छं० १६२२
पारसं रज्जि चंदं, तारस्स तेज मंदं।
कातरा क्रति बंधे, सूर सूरत्तन संधे। छं० १६२३
वियोगिनी रैनि लुट्टी, संजोगिनी लाज छुट्टी। छं० १६२४ स० ६१

उपर्युक्त छंदों की पिंगल परीक्षा से पता लगता है कि स० ५०-छं० २२ के प्रत्येक चरण में २१ मात्रायें और अंत में तीन लघु या नगण (।।।) है, स० ५७-छं० १७६ के प्रथम दो चरणों में २३-२३ मात्रायें हैं और अंतिम दो चरणों में २१-२१ हैं तथा चारों चरणों के अंत में तीन लघु (।।।) पाये जाते हैं और स० ६१ छं० १६२२-४ के तीन छंदों में क्रमश: मात्राओं का क्रम इस प्रकार है—११-१२, १४-१२, १२-१२, ११-१२, १३-१४, इन सब चरणों के अंत में दो गुरु (ऽऽ) या एक कर्ण है।

(छं० को०) छं० १७ में 'आहाणउ' (<आभाणक) २१ मात्राओं का छंद वर्णित है जिसमें पंचकल का निषेध है और अंतिम मात्रा सदैव लघु कही गयी है। इस छंद के टीकाकारों का मत(Notes on छं० को० १७) है कि इसके चरणांत में तीन लघु होना चाहिये। और ये लक्षण रासो के उपर्युक्त प्रथम दो 'रासा' छंदों में अक्षरशः पाये जाते हैं। (छं० को०) में गण योजना और यति विषयक निर्देश नहीं है परन्तु उसके उदाहरण छं० १७ में ११ मात्राओं पर निरंतर यति पाई जाती है। रासो के प्रस्तुत छंदों में इस यति का कोई नियम नहीं है। किसी चरण में १२ मात्राओं के बाद यति है और किसी में ११ के बाद। 'अब्दुल रहमान' कृत 'संदेश रासक' छं० २९ की व्याख्या में (छं० को०) का १७ वाँ छंद दिया गया है जिसमें 'आभाणक' के दूसरे नाम 'रासउ' का उल्लेख है परन्तु प्रोफेसर वेलणकर द्वारा संपादित (छं० को०) के छं० १७ में यह पाठ

नहीं है। और भी इस व्याख्या में जो (६+४+४+३) गण योजना दी गई है वह रासो के 'रासा' छंदों पर नहीं लागू होती।

(स्वं० छं०) VIII छं० ५० में 'रासा' छंद २१ मात्राओं, अंत में तीन लघु (।।।) और १४ मात्राओं के बाद यति वाला माना गया है। (छंदो०) V २६ (उदा० छं० ३४) और (क० द०) II छं० २५ में 'रासावलय' नामक छंद २१ मात्राओं और (६+४+६+५) मात्रा विभक्ति वाला वर्णित है। (छं० को०) का 'आभाणक' छंद पंचकल का निषेध करता है जो 'रासावलय में विद्यमान है। अस्तु, इन दोनों छंदों की एकता में सन्देह हो सकता है। परन्तु जैसा कि श्री आल्सडोर्फ ने अपनी पुस्तक 'अपभ्रंश स्टडियन' पृष्ट ४६ में बतलाया है कि उपर्युक्त छंद ग्रंथ. के पारिभाषिक और उदाहरण वाले छंदों के चरणों में १२ मात्राओं पर यति का नियम पाया जाता है, इससे वास्तव में इन दो नाम वाले छंदों को भिन्न मानना उचित न होगा। (छं० प्र०) में 'रास' नामक छंद (८, ८, ६ =२२) मात्राओं और अंत में सगण वाला कहा गया है। परन्तु इससे और हमारे 'रासा' छंद से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता।

'रासा' छंद के अन्य नाम रासक, आहाणय, आभाणक और रासावलय भी समझना चाहिये।

'धणुपाल' रचित 'भविसत्त कहा' के संपादक जर्मन विद्वान् श्री याकोबी का उक्त ग्रंथ के पृ० ७१ पर कथन है कि 'रासा' नागर-अपभ्रंश भाषा का प्रधान छंद है।

संशोधन :—

१. स० ५७ छं० १७६, पहिला चरण 'विराजत' के स्थान पर 'रजत',
दूसरा " 'सिंघासन' " " 'सिँघासन',
" " 'सूर' " " 'सुर'

२. स० ६१-छं० १६२२-४ बड़े भ्रष्ट रूप में हैं। इनमें न तो वर्णों का क्रम है, न मात्राओं का और नगणों का। इनका प्रत्येक चरण एक स्वतंत्र छंद का चरण है। अनुमान है कि ये किसी अन्य छंद के अति बिगड़े हुए रूप में आ पहुँचे हैं।

१४. रोला —

स्थिति:—स० २१-छं० २०४ (चौपाई); स० ५७ छं० ६३ (चौपाई), २६१; स० ५८-छं० १२५ (चौपाई); स० ६१-छं० ५०।

(छं० प्र०) पृ० ६३ के अनुसार 'रोला' छंद २४ मात्राओं वाले अवतारी समूह के अंतर्गत है, तथा इसके सम पदों में १३ (=३+२+४+४ या ३+२+३+३+२) और विषम पदों में ११ (=४+४+३ या ३+३+२+३) मात्राओं का क्रम होता है।

रासो के उपर्युक्त स्थलों में प्रयुक्त 'रोला' छंद इसी लक्षण के अनुरूप है। केवल स० २१ छं० २०४ बहुत ही बिगड़े हुए रूप में है और उसमें संशोधन का प्रस्ताव साहस मात्र होगा। और भी इन 'रोला' छंदों को रासो की कतिपय अन्य प्रतियों में जो 'चौपाई' नाम दिया गया है, वह भूल है क्योंकि 'चौपाई' के लक्षण इन छंदों में नहीं मिलते। साथ ही प्रस्तुत छंदों के प्रत्येक चरण की ११वीं मात्रा लघु है इसलिये (छं० प्र०) के अनुसार

इन्हें रोला के स्थान पर 'काव्य' छंद कहना उपयुक्त होगा।

प्राचीन छंद ग्रन्थों में 'रोला' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। हाँ, काव्य, वस्तु वदनक, वत्थुय, वत्थुश्रो, वत्थुवयण और कव्व छंद लगभग इसी के अनुरूप हैं। रासो के 'काव्य' छंद की विवेचना में इन सब पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

रासो के दो 'रोला' नामधारी छंद उदाहरण स्वरूप नीचे दिये जा रहे हैं—

रोला— **चंद बदनि ये चंद सीष कोमंगी उचारी।**
मरन टरै जो भट्ट राज कैमास विचारी।
हम तुम दुहुन मिलंत सुनो अंगन तुम धारी।
दंपति सम्हौ वचन तब्ब बर बरनि उचारी। छं० २६१ स० ५७;
कुच वर जंघ नितंब निसा बढ्ढत धन बढ्ढी।
लंक छीन उर छीन छीन दिन सीत सु चढ्ढी।
गिर कंदर तब जुगति जागि जोगीसर मनं।
ते लम्भे कबि चंद वाम कामी सर धंनं। छं० ५० स० ६१

संशोधनः—प्रस्तुत छंदों को 'काव्य' संज्ञा देने के उपरान्त कतिपय न्यूनाधिक मात्रिक दोष शुद्ध करना आवश्यक होगा।

१५. अर्द्ध मालची —

स्थितिः—स० ४५-छं० १०५-१७।

रासो के एक स्थल मात्र पर इस नाम के छद मिलते हैं। परीक्षा करने से इनके प्रत्येक चरण में १४ मात्राओं और चरणांत में एक रगण (ऽ।ऽ) का क्रम निरंतर पाया जाता है। (छ० प्र०) पृ० ४७ के अनुसार ये लक्षण १४ मात्राओं वाले मानव समूह के अंतर्गत 'मधुमालती' नामक मात्रिक वृत्त के हैं। 'अर्ध मालची' नाम का कोई छंद सहायक छंद ग्रन्थों में नहीं है। इस छद के दो उदाहरण देखिये—

अर्ध मालची— तल चरन अरुनति रत्तए, जल नलिन सोक सपत्तए।
नष पंति कंतिय मुत्तए, जनु चंद अम्रत जुत्तए। छं० १०५
नग जरति नूपुर बज्जए, कलहंस सबद विलज्जए।
गति मत्त गरब गयंद ए, छवि कहत कविवर चंद ए। छं० १०६ स० ४६

संशोधन—रासो के इन छंदों को 'मधुमालती' संज्ञा दी जानी चाहिये।

१६. मालती —

स्थितिः—स० ६६-छं० २०२-१५।

'मालती' छद वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के होते हैं। रासो के प्रस्तुत छदों के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें और अंत में एक रगण (ऽ।ऽ) है। परन्तु 'मालती' छद के ये लक्षण नहीं हैं।

(छ० प्र०) पृ० ४७ के १४ मात्राओं वाले मानव समूह में 'मधु मालती' छंद के नियम रासो के 'मालती' नामधारी छदों से मिल जाते हैं। अतएव इन छदों को 'मधु-मालती' नाम देना उचित होगा।

उदाहरणार्थ रासो के दो छंद दिये जाते हैं —

मालती— कुरु पंच सत्तति चामरे, चहुआन अच्छर धाम रे।
सत पीय पिंगल बंधये, गिय मालती अति छंदये। छं० २०२
संजोगि जोवन जंबनं, सुनि सर्वदा गुरु राजनं।
नग हेम हंस जुथप्पनं, गै म्रग्ग हंस उथप्पनं। छं० २०३ स० ६६

संशोधन—छ० २१२ तीसरा चरण, 'म्रग्ग' के स्थान पर 'म्रग' उचित होगा।

१७. दुमिला —

स्थितिः—स० २४-छ० ७३-५।

संस्कृत छंद ग्रन्थों में इस छद का उल्लेख नहीं है। चारणकाल में हमें इस छंद के दुर्मिला, दुम्मिला, डुमिला, डोमिलिय आदि नाम मिलते हैं। यह छद चार चरणों का होता है।

(प्रा० पै०) I दुम्मिला छं० १६६-८ और (छं० प्र०) पृ० ७७ में इस छद को मात्रावृत्तों के अंतर्गत रखा गया है परन्तु (छ० को०) 'डुमिला' छ० १६ और (प्रा० पै०) II छ० २०८ में इसे वर्णवृत्त भी कहा गया है।

मात्रा वृत्त 'दुर्मिल' छद के प्रत्येक चरण में ३२ मात्रायें और १०,८,१४ मात्राओं पर यति होती है तथा इसमें जगण वर्जित है। वर्णवृत्त के प्रत्येक चरण में २४ वर्ण, ३२ मात्रायें, ८ सगण और ८,६,१० वर्णों पर यति का नियम है।

परीक्षा करने पर रासो में प्रयुक्त तीनों छंद मात्रावृत्त 'दुर्मिल' छंद प्रमाणित होते हैं। दो छद देखिये :—

छंद दुमिला— छहै गुर लहु पायं अछिर दायं बिचि बिचि रायं इंदोई।
दुमिलानय छंदं पढय फुनिंदं कहि कविचंदं गुनगोई।
वज्जै रन तालं असिवर झालं भर भर हालं भंभीरं।
पारस सुविहानं छुट्टिय थानं चढि मध्यानं छुटि तीरं। छं० ७३
गंजी जननं जरि भंगै द्विकरि लरि रज उच्छरि गगनेदं।
धर धीर धरंतं जोग जुगंतं लरि लरि जोरं जरि मेछं।
किरवांन करक्कै विज्ज तरक्कै छिच्छ उछक्कै इन भेसं।
दो उप्पम भासं माधव आसं अति उल्हासं दुति केसं। छं० ७४ स० २४

संशोधनः—छ० ७३ प्रथम चरण, 'अछिर' के स्थान पर 'अच्छिर' पाठ से यति का स्थान ठीक हो जाता है और अर्थ भी भंग नहीं होता।

१८. ऊधो —

स्थितिः—स० ४५-छं० १६-२१।

रासो के इन छदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में ७, ७ के विश्राम से १४ मात्रायें हैं तथा अंत में गुरु लघु हैं। (छ० प्र०) पृ० ७७ में इन लक्षणों वाले छद को मानव समूह के अंतर्गत 'सुलक्षण' नाम दिया गया है।

सहायक छंद ग्रन्थों में 'ऊधो' नाम का कोई छद नहीं मिलता। संभव है कि रासो

काल में 'सुलक्षण' छद का नाम 'ऊधो' भी रहा हो। रासो का एक 'ऊधो' छद देखिये—

ऊधो — **कंपिय कोपि कंप करूर, मागति गोप गरनि गरूर।**
अनुचित लच्छि रघुपति चेत, किंनर नाद नारद केत। छं० १८

संशोधनः—छ० १३ के तीसरे और चौथे, छ० २० के दूसरे और छ० २१ के तीसरे चरणों में १४ के स्थान पर केवल १२ मात्रायें ही हैं। इनमें संशोधन करना कठिन होगा।

१६. ऊधोर—

स्थितिः—स० ६-छं० १६१-२०१ (विज्जुमाला); स० १८-छ० ४१-५६; स० १६-छं० १०६-१२ (उधौर)।

रासो में इस छद का नियम निर्धारित करने वाला निम्न छद है —

उधोर— **पयो हर पाइ पाइह अंत, दह जुग मत्त रत्त गुरंत।**
भाषंत छंद चंद उधोर, प्रति षग कही पन्नग जोर। छं० ४१ स० १८

प्रस्तुत छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनमें वर्णों का क्रम नहीं है वरन् प्रत्येक चरण में १३ मात्रायें तथा अंत में एक जगण (।ऽ।) है। सहायक छंद ग्रन्थों में इस नाम और लक्षणों का कोई छंद नहीं मिलता, वैसे इस छंद को (छ०प्र०) के १४ मात्राओं वाले मानव समूह में रखने से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। इसी समूह में 'कज्जल' नामक छंद १४ मात्राओं और अंत में गुरु लघु के प्रमाण वाला माना गया है तथा 'सुलक्षण' नामक दूसरा छंद है जिसमें ७,७ के विश्राम से १४ मात्रायें, अंत में लघु गुरु और ४ मात्राओं के पश्चात् गुरु लघु का क्रम होता है। रासो का 'उधोर' छंद इन्हीं 'कज्जल' और 'सुलक्षण' छदों का समीपवर्ती प्रतीत होता है।

दो छंद देखिये —

छंद उधोर— **है गै तरुनि द्रव्य सुदेस, तिन वर तजिय राज नरेस।**
संवत ईस तीस रु अठ्ठ, चलि नृप हेम गहि कर कठ्ठ। छं० ५६ स० १८,

छंद उधोर — **मास विित्तय मद्धिय रेर, नद्द निसांन थानह भेर।**
है गै गुंजि नाना भंति, छत्र विराज छत्रनि मंति। छं० १०८ स० १६

संशोधनः— १. स० ६-छं० १६१-२०१ को रासो की कुछ प्रतियों में 'विज्जुमाला' नाम दिया गया है, जो अशुद्ध है। ये भी रासो के उधोर' छंद ही हैं।

२. निर्दिष्ट 'उधोर' छंदों के कई चरणों में १२, १५ और १६ मात्रायें तक पायी जाती हैं जो अनुमानतः लिपिकारों के भ्रमवश हो गई हैं, थोड़े प्रयास से इन्हें शुद्ध रूप में लाया जा सकता है।

२०. चंद्रायना (∠चंद्रायना)—

स्थितिः— स० २-छ० ४०६-१० (चंद्रायना, चंद्रायणा); स० २५-छ० २६०, ३७५-६, ६७२; स० २८-छ० ५१-२; स० ३४-छ० २४; स० ४६-छ० ८६ (चंद्रायन), १०७ (चंद्रायन); स० ४८-छ० ७७-८ (चंद्रायन); स० ५०-छं० ३०; स० ५२-छ० २८ (चन्दायन, चौपाई); स० ५६-छ० ६१ (चान्द्रायन, मुरिल्ल); स० ५७-छ० ७४-६ (चान्द्रायण, रासा), २६० (चंद्रायन), ३१३ (चान्द्रायन, मुरिल्ल); स० ५८-छं० १२६; स० ६१-

छं० ११, ३३५-६, ८०८, १०१७, ११४४, ११६६, ११७०-१ (चन्द्रायणा),११७४,११६५ १३११, १३१६, १३२२, १५४२, १५४५, १५४६, २०६४, २५४२-४५; स० ६२-छं० ४८-६; स० ६६-छं० २०७, २३२ (चद्रायना); स० ६७-छं० ४६१, ५१०; स० ६८-छं० ७६; म० स०-छं० २३८।

रासो के ये छंद क्रमशः चन्द्रायना, चंद्रायणा, चंद्रायना, चंद्रायन, चान्द्रायन, और चान्द्रायणा नामों से सम्बोधित मिलते हैं। इनका शुद्ध और वास्तविक नाम 'चन्द्रायण' होना चाहिये।

पिंगल परीक्षा से पता लगता है कि इनके प्रत्येक चरण में ११, १० के विश्राम से २१ मात्रायें हैं परन्तु अन्य कोई समानतायें नहीं पाई जाती। अधिकांश छंदों के चरणों में ११ मात्राओं के अंत में जगण और १० मात्राओं के अंत में रगण मिलता है।

सभा द्वारा प्रकाशित रासो पृ० २३५ की टिप्पणी १३६ में लिखा है—"जो आजकल पवंगम नाम से प्रसिद्ध है वह यह चंद्रायना २१ मात्रा ५ ताल और ११+१० यति का छंद है।"

'प्लवंगम' छं० २१ मात्राओं का होता है (प्रा० पै०) I छं० १८७-६; और उसमें ८, १३ पर यति, आदि में गुरु (ऽ) अंत में ज ग (।ऽ।+ऽ) होता है छं० प्र०) पृ० ५७; परन्तु (रू० दी० पिं०) छं० ४७ में २१ मात्राओं और अंत में रगण का नियम दिया है।

(छं० प्र०) में 'प्लवंगम' और 'चान्द्रायण' छंदों को भिन्न माना गया है। (गा० ल०) का 'चंदाणण' छं० ७८ तथा (छं० को०) के चंदायण' और 'चंदायणि' क्रमशः छं० ३२ और ३६ वास्तव में 'कामिणी मोहन' या 'मदनावतार' छंद के नाम हैं और उनका रासो के 'चान्द्रायण' छंदों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

रासो के 'चान्द्रायण' छंद प्रायः निम्न रूप में हैं —

चन्द्रायन— **भये पङ्गुली मंस सब्ब वल मुक्कई।**
काजी कत्थ कुरान भम्म नन चुक्कई।
तजि हांसीपुर जीव लम्भ बंधी सही।
हिंदवान गढ़ मुक्कि गहा अप्पा रही। छं० २८ स० ५२

संशोधनः—

स० ५२-छं० २८ को चौपाई; स० ५६-छं० ६१ को मुरिल्ल; स० ५७-छं० ७६-६ को राशा और छं० ३१३ को मुरिल्ल नाम जो रासो की भिन्न प्रतियों में पाये जाते हैं, अशुद्ध हैं, ये सारे छंद 'चान्द्रायण' ही हैं।

२१. गीता मालती —

स्थितिः—स० २-छं० २१६-२६(गीता, मालती धुर्य; छंद माधुर्य, छंद गीत मालती), ५१५-७; स० ४-छं० २१-४; स० ६-छं० ११५-६; स० १२-छं० १४२-३; स० २१-छं० १७३ (छंद गीता मालची); स० २४-छं० ११८-२० (गीता मालची); स० ३३-छं० ४५-७ (मालती); स० ३४ छं० २५-६ (गीता मालवी); स० ४५-छं० १२-४, ४१-

५; स० ४६-छं० ४८-५१; स० ५८-छं० २२७-३४; स० ६१-छं० २१-४, ३२-४; स० ६६-छं० १२५०-६।

रासो में ये छंद गीता मालती, गीता मालची, गीता मालवी, गीता, मालती, मालती धुर्यः, छद माधुर्य और गीत मालती नामों से उल्लिखित हैं। पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि १६+१२ के विश्राम से इनके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें हैं और चरणांत में प्रायः रगण है। अस्तु ये सुप्रसिद्ध मात्रिक 'हरिगीतिका' छंद हैं।

उदाहरणार्थ रासो का एक स्थल दिया जाता है—

गीता मालची— **गजराज दंतिय भ्रमति कंतिय मद मंतिय कीजयं।**
बल कन्ह अग्गै करिन भग्गै, रोस रंगै नीलयं। छं० ५१५
फहरत पीतं बल अभीतं, भीम भीतं संजुरे।
गहि दंत पंतिय कंध कंतिय रोस मंतिय उब्भरे। छं० ५१६
श्रिय षट प्रमानं बल बलानं, सेन मानं दुस्तरे।
दिषि कंस सैनं काल ऐनं, हथ्थ गैनं भब्भरे। छं० ५१७ स० २

नोट—अज्ञानवश इन छंदों को दो चरणों का एक छंद मान कर संख्या दे डाली गयी है। 'हरिगीतिका' छंद चार चरणों का होता है। यह लक्षण मानकर उपर्युक्त चरणों से डेढ़ छंद बनता है।

रासो के उपर्युक्त निर्दिष्ट अधिकांश छदों में (२+३+४+३+४+३+४+५) २८ मात्राओं का क्रम भी मिलता है जो (छं० प्र०) पृ० ६६ के अनुसार 'हरिगीतिका' छंद का एक नियम है।

रासो के सभा संस्करण पृ० २०३ पर इस छंद के विषय में निम्न टिप्पणी दी है।

"इस रूपक के छंद के निर्णय को सहज में यों समझ लेना चाहिये कि जिसको इन दिनों हरिगीति छंद कहते हैं, वह यह है। उसके नामांतर इस महाकाव्य के पाठांतरों से विदित ही हैं तथापि रेवरेण्ड जोसेफ वान एस० टेलर बी० ए० साहब ने इसको गीय नाम से लिखा है। इसके चार चरण होते हैं, उनमें से प्रत्येक चरण में दो यति १६+१२ और २८ मात्रा होती हैं, जिनमें ६+७+१२ पर विश्राम और ८ ताल होते हैं।"

'हरिगीता' या 'हरिगीतिका' छंद के विशेष विवरण के लिये देखिये (प्रा० पै०) I छं० १६१-३ (रू० दी० पिं०) और (छं० प्र०) पृ० ६६।

अपने 'गीता मालती' छंद का लक्षण इसी छंद में रासो में इस प्रकार दिया है—

मालती— **तिय पंच गुर, सत लत्ति चामर, वीय तीय, पयोहरे।**
मालती छंद, सुचंद जंपय, नाग षग मिलि चित्त हरै।
नव सूर सलि ललि, अरिन अलि मिलि, लोह झिलमिल निक्करै।
बर सूर तल छुटि, लजन नट्टय, बीर सबदन बर भरे। छं० ४५ स० ३३

प्रस्तुत छंद के रासो में दिये नामों का कोई उल्लेख सहायक छंद ग्रन्थों में नहीं मिलता। इस छंद का एक स्थल पर 'मालती' नाम भी आया है, परन्तु 'मालती' नामक छंद (वृ० जा० स०) III छं० ३५, (प्रा० पै०) II छं० ११२-३ और (छं० प्र०) पृष्ठ

१२२, १५६ और २०३ में जो हमें मिलता है वह वर्णवृत्त है और स० ३३ का 'मालती' नामधारी छं० ४५ मात्रिक 'हरिगीतिका' छंद है।

संशोधनः—रासो के निर्दिष्ट सारे 'गीतामालती' छंदों को 'हरिगीतिका' नाम देने के उपरांत स० २-छं० ५१५-७ और स० ४-छं० २१-४ को दो दो चरणों के स्थान पर चार चार चरणों का प्रत्येक छंद मानते हुए छंद संख्या देनी चाहिये। इस नये क्रम से छंद संख्या देने के उपरांत किसी किसी स्थल पर दो चरण शेष रह जाते हैं जो कि अधूरे कहे जावेंगे और इन अधूरे छंदों को पूरा करने का साहस न करके हमें रासो के प्रक्षेपकारों की भद्दी भूल का निर्देश मात्र कर देना उपयुक्त समझेंगे। साथ ही यह भी असम्भव नहीं है कि इन अधूरे छंदों के अवशिष्ट भाग लिपिकारों या ग्रन्थ संग्रहकर्त्ताओं की असावधानी वश क्रमशः लुप्त या नष्ट हो गये हों।

२२. सोरठा —

स्थितिः—स० १-छं० ५४१; स० ५-छं० ३३ (सोरठी दूहा); स० २५ छं० ५५२; स० ४६ छं० ६५।

प्रायः सभी छंद शास्त्रकारों ने 'सोरठा' को 'दोहा' का उलटा माना है। (छं०को०) 'सोरठ्ठउ' छं० २५ में इसके पहिले और तीसरे चरण में एक यमक कहा गया है तथा (प्रा० पै०) I सोरट्ठा (∠ सौराष्ट्र) छं० १७० में इसके प्रत्येक चरण में यमक बतलाया गया है। (रू० दी० पि०) छं० ३७ तथा (छं० प्र०) पृ० ८६-६० में इसे दोहे का उलटा मात्र कहा है।

रासो में 'सोरठा' नाम के केवल दो निम्न छंद पाये जाते हैं —

सोरठी दूहा— **सक इक सोम कुमार, सम सामंतन सूर सम।**
सोम सीस भूअ भार, सो बैठे सुभ सभा रचि। छं० ३३ स० ५ तथा —

सोरठा— **विनय तरुन अरु बाल, विनय होइ जुब्बन दिनन।**
तौ थल्लै प्रतिपाल, विनय सु वृद्धय बंधि रस। छं० ६५ स० ४६

उपर्युक्त छंदों में ११-१३ पर विश्राम और यमक विषयक स्वच्छंदता प्रत्यक्ष है।

संशोधनः—स० ५-छं० ३३ तीसरा चरण, 'भूअ' के स्थान पर 'भुअ' पाठ मात्राओं की गणना के अनुसार उपयुक्त होगा।

२३. करषा —

स्थितिः—स० ५-छं० ८१-३।

प्राचीन छंद ग्रंथों में इस नाम के छंद का उल्लेख नहीं मिलता। हिन्दी शब्द-सागर में कड़खा का अर्थ है (हिं० कड़क)-'वीरों' की प्रशंसा से भरे लड़ाई के गीत जिनको सुनकर वीरों को लड़ने की उत्तेजना होती है। अनुमान है कि राजपूत शौर्यकाल में इस छंद का जन्म हुआ है जब कि भाट और चारण अपने प्रतापी आश्रयदाताओं के साथ युद्ध भूमि में जाकर 'कड़खा' द्वारा उन्हें उत्कर्ष देते थे।

रासो में जिस 'कड़खा' छंद का प्रयोग किया गया है वह दंडक प्रकरण के अंतर्गत मात्रिक छंद है और (छं० प्र०) में दिये निम्न नियम के अनुकूल है —

"कल सैंतीसै, बसु भानु वसु अंक यति।
यों रचहु छंद करखा सुधारी।

टी०—८, १२, ८ और ६ के विश्राम से इसमें ३७ मात्रायें होती हैं। 'यो' अंत में यगण (।ऽऽ) होता है।"

रासो के 'करषा' (कड़खा) छंद देखिये —

करषा— झरै सिर मार विकरार रक्तन झरत।
परत धरनीय ढरैं जरकि जूपी।
चक्क चहुआन चालुक्क भूत उपर चर।
कोपियं कंन्ह मनौं काल रूपी। छं० ८१
रुंड भकरुंड किय तुंड मुडन ररत।
बाहि सिर सार मनौं मेह वढ्ढै।
कूह करि जूह संमूह को कोक हर।
रोसरिम राह जेम जीव छुट्टै। छं० ८२
पांनि करि पांनि अरि पांनि करनीय हक।
सीस अरि पारि सब षेत सीच्यो।
आत सोमेस नृप्पत मंजन भरन।
षेत षयकार षय काल षीज्यौ। छं० ८३ स० ५

नोटः—रासो के केवल एक स्थल पर इस छंद का प्रयोग हुआ है और किसी भ्रम वश इसे ३७ मात्राओं वाले ४ चरणों का एक छंद न मानकर ऐसे दो ही चरणों को चार भागों में बाँटकर इसे छंद संख्या दे डाली गयी है जो भूल है। रासो प्रधानतः वीर काव्य है और उसमें 'करषा' छंद का इतना सीमित-प्रयोग दो निर्णयों पर पहुँचने के लिये वाध्य करता है कि या तो उस समय इस छंद का इतना सम्मान नहीं था या रासो में यह परवर्ती योगदान है।

संशोधनः—उपर्युक्त छंदों को चरणों के ठीक मेल से बनाने के पश्चात् कतिपय मात्रिक न्यूनाधिक दोष भी सुधारने होंगे जो संभवतः लिपिकारों के भ्रम के द्योतक हैं।

२४. माधुर्य —

स्थितिः—स० १५-छं० ५-६; स० १६-छं० १६४-८; स० ३६-छं० ४३-६; स० ६१-छं० ४३-५।

उपर्युक्त छंदों की परीक्षा से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में १६ + १२ की यति से २८ मात्रायें हैं तथा चरणांत में रगण (ऽ।ऽ) है। यह लक्षण (प्रा० पै०) I हरिगीअ (∠हरिगीत) छ० १६१-२ तथा (छं०प्र०) पृ० ६६ में 'हरिगीतिका' मात्रिक छंद का मिलता है और (छं० प्र०) में चरणांत में रगण कर्णमधुर बतलाया गया है। और भी (छं० प्र०) में 'हरिगीतिका' छंद के चरण की यह (२+३+४+३+४+३+४+५= २८) योजना रासो के 'माधुर्य' छंदों के अधिकांश चरणों में पायी जाती है।

'माधुर्य' छंद के लक्षणों पर रासो का निम्न छंद (जो माधुर्य ही है) प्रकाश डालता है —

माधुर्य — **लहु बरन षट विय सत्त चामर वीय तीय पयोहरे।**
माधुर्य छंदय चंद जंपय नाग वाग समोहरे।
अति सरद सुभ गति राज राजति सुमति काम उमद्दये।
ग्रह दीप दीपति जूप जूपति भूप भूपति सद्दयं। छं० ४३ स० ६१

अस्तु, 'माधुर्य' और 'हरिगीतिका' छंद एक ही है। उचित यह होगा कि रासो के इन छंदों को, हरिगीतिका' नाम दे दिया जाय क्योंकि माधुर्य नाम के कारण भ्रम होने की सम्भावना है। छंद ग्रन्थों में 'माधुर्य' नाम का कोई छंद भी नहीं है। इतना कहा जा सकता है कि रासो काल में कहीं कहीं शायद 'हरिगीतिका' छंद को 'माधुर्य' भी कहते रहे हों।

छंद माधुर्य — **जग जोति जिगिनि बिजि अभिगिनि रत्त रत्तति अंबरं।**
सामंत सूर सुधान निद्दा अमित क्रोध सु उत्तरं।
अति चतुर चिंतय समुद मित्तय कित्त चहु चक विस्तरी।
कैमास जग्ग रु सकल निद्दा वीर सर सुअंमरी। छं० ५
आवृत्त रत्त रूहंग नील रु थान पुब्बय उत्तर्यौ।
संनाह स्वामि नरिंद तामय कलह कित्तिय विस्तर्यौ।
बोलि घूघूअ साद दीविय महसती सुर उफ्कस्या।
इह सुनि रु सूरं धरि करूरं वीर वीरह उच्चस्यौ। छं० ६ स० १५

संशोधनः—१. रासो के अन्य स्थलों पर प्रस्तुत छंद ४ चरणों का मिलता है परन्तु स० १६ छं० १६४-८ तथा स० ३६-छं० ४६ दो दो चरणों के ही मान लिये गये हैं। (प्रा० पै०) और (छं० प्र०) में 'हरिगीतिका' छंद ४ चरणों का है तथा हिन्दी के ख्यातनामा कवियों ने भी इसे चार चरणों के रूप में रखा है। अतएव निर्दिष्ट छंदों को चार चरणों का एक छंद बना देना उचित है। इसके उपरांत देखते हैं कि स० १६ में ४-४ चरण के दो छंद बनने के पश्चात् दो चरण शेष रह जाते हैं और स० ३६ के छं० ४६ में तो दो चरण हैं ही। ये दो चरण एक समस्या उपस्थित कर देते हैं। ये अधूरे हैं और इन्हें पूरा करने का साहस रासो के अन्य प्रक्षेपकर्ताओं की भाँति कोई वैसा ही तुकबाज (chronicler) कर सकता है। या तो इन छंदों के अवशिष्ट भाग लिपिकारों से छूट गये हैं अथवा ये रासो के कलेवर बढ़ानेवालों की अज्ञता के प्रतीक हैं।

२. स० १५-छं० ५, चौथा चरण 'सर सु' के स्थान पर 'सरसू' या 'सरसुअ',
,, छं० ६ पहिला ,, 'रूहंग' ,, ,, 'रुहंग',
स० १६-छं० १६४ ,, 'डंमरेत' 'डँमरित' या 'डमरित',
,, छं० १६५ ,, ,, 'छरि छरें' ,, 'छरिच्छरें',
,, दूसरा चरण 'गिरि भ्फरें' के स्थान पर 'गिर्भ्फिरें'। अंत में जगण लाने के लिये यह पाठांतर उपयुक्त है परन्तु इससे अर्थ में क्लिष्टता बढ़ती है।

स० १६८-छं० १६८ दूसरा चरण 'मारउहट्टियं' के स्थान पर 'मारउ हट्टियं',

स० ३६-छं० ४५ पहिला चरण, पहिले १६ मात्राओं पर यति की दो मात्रायें लुप्त हैं।

स० ६१-छं० ४३ ,, ,, ,अर्द्ध विराम (,) का चिन्ह 'सत्त' के बाद न होकर 'चामर' के बाद होना चाहिये क्योंकि चरण की पहिली १६ मात्राओं की यति 'चामर' के बाद आती है न कि 'सत्त' के।

स० ६१-छं० ४५ तीसरा चरण, 'अम्रित' के स्थान पर 'अमृत'—उचित पाठांतर होंगे।

२५. निसाणी —

स्थितिः—स० २४-छं० ३४५-५० (निसानी); स० २५-छं० ५३७-४१ (निसाणी); स० ५८-छं० ५३-८ (निसानी); १५०-१ (नीसानी); स० ६१-छं० १८२७ (नीसानी)।

'निसाणी' नाम के किसी छंद का पता नहीं लगता। हिन्दी-शब्द-सागर में निसानी (∠ फा० निशानी) का अर्थ—१. स्मृति के यादगार; स्मृति चिन्ह २. वह चिन्ह जिससे कोई चीज पहिचानी जाय। निशान, पहिचान—दिया गया है।

'निसाणी' के अंतर्गत दिये गये रासो के छंदों की परीक्षा करने से पता चलता है कि इनके अधिकांश चरणों में २३ मात्राओं का क्रम है तथा अंत में एक कर्ण है जो (छं० प्र०) पृ० ६१ के अनुसार ४ चरणवाले 'उपमान' नामक मात्रिक छंद का लक्षण है जिसके अन्य नाम 'दृढ़पद' वा 'दृढ़पट' भी दिये हैं।

उदाहरणार्थ रासो का एक 'निसानी' छंद देखिये —

नीसानी— **पुब्ब राह पद्मख्खरां हिंदू तुरकाना।**
दोई राज सु दीन द्वो गोरी चहुआना।
दोई शास्त्र विचार दो कौरान पुराना।
इत उप्पर त्यों भट्ट द्वो ज्यों राति विहाना। छं० १५० स० ५८

परवर्ती राजस्थानी काव्य में हमें अनेक स्थलों पर छंदों का 'निसांणी' नाम दिया मिलता है परन्तु वह छंद का नाम नहीं है वरन् उससे 'हिन्दी-शब्द-सागर' में दिये इस शब्द के अर्थ की सार्थकता की प्रतीकता का बोध होता है। ये 'निसांनी' नामक छंद वस्तुतः किसी व्यक्ति या घटना विशेष के स्मृति चिन्ह स्वरूप रचे गये हैं।

संशोधन :— रासो के प्रस्तुत छंदों के किसी चरण में २३ से अधिक मात्रायें हैं और किसी में कम तथा किसी स्थल पर दो ही चरणों को पूरा छंद मान लिया गया है। उन्हें साधारणतः उचित रूप में लाया जा सकता है।

२६. बेली द्रुम —

स्थितिः—स० ५६-छं० १३-२२ (वेली विद्रुम, दण्डमालची); स० ६६ छं० १५५१-४ (वेलीद्रुम)।

निर्दिष्ट छंदों से तीन उदाहरण दिये जाते हैं —

बेली विद्रुम— बजि तंति तंत्रिय बज्जनं, सुरगान सज्जिय सुरगनं।
गुरलाल लल्लिय अंगनं, आरक्ति रंगि परंगनं। छं० १३ स० ५६,

वेली द्रुम— **डहडहति डंवरु डंकिनिय, कहकहति कूकह जोगिनिय।**
तहतहति तेग तरंगनिय, बहबहति बान बिरुद्धनिय। छं०५१ स०१ ५५ ६,

तथा —

कसि माह मार मसंदयं, इसि पार पच्छति छंदयं।
उड़ि हंस हंसनि इंदयं, नत अच्छरी प्रभु बंदयं। छं० स०६५ ४१ ६६

सहायक छंद ग्रंथों में वेलीविद्रुम, वेलीद्रुम, दण्डमालची नामका कोई छंद नहीं मिलता। परीक्षा से ज्ञात होता है कि इन छंदों के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें हैं और अधिकांश चरणों में तीन चौकल के पश्चात् एक गुरु है। (छं० प्र०) पृ० ४६-७ में मानव छंद समूह के अंतर्गत 'हाकलि' छंद से वर्तमान छंदों के लक्षण मिलते हैं। यद्यपि कोई प्रमाण नहीं है परन्तु यह असम्भव नहीं कि रासो रचना काल में 'हाकलि' छंद का कोई नाम वेलीद्रुम या वेलीविद्रुम भी रहा हो।

'हाकलि' छंद का विशेष विवरण (प्रा० पै०) I छं० १७२-४ (रू० दी० पिं०) छं० ४५ में मिल सकता है।

संशोधनः— १. स० ६६ के प्रथम तीन छंदों के चरणांत में दीर्घ मात्रा होना उचित है, जैसे 'डंकिनिय' के स्थान पर 'डंकिनी'।

'जोगिनिय' के स्थान पर 'जोगिनी'; आदि। रासो में 'जोगिनिय' और 'जोगिनी' 'डंकिनिय' और 'डंकिनी' आदि दोनों प्रकार के रूप मिलते हैं। इस पाठांतर से रासो की भाषा और व्याकरण समीक्षा में भी किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ेगा।

२. इस प्रकरण के सारे छंदों को 'हाकलि' नाम देना उपयुक्त होगा।

२७. दंडमाली —

स्थितिः—स० २-छं० १०६-६; स० २७-छं० ५८-६२; स० ३०-छं० ४५-८; (छंदगोता मालची); स० ३७-छं ७६-८३ (दंडमाल)

छंद ग्रन्थों में 'दंडमाली' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। उपर्युक्त छंदों की परीक्षा करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स० २ और स० ३० वाले छंदों के प्रत्येक चरण में १४ मात्राओं, ३ चौकल और चरणांत में गुरु का नियम है। अस्तु,इन्हें (छं० प्र०) पृ० ४६-७ के अनुसार मानव छंद समूह के अंतर्गत 'हाकलि' कहना उचित होगा। (रू० दी० पिं०) छं० ४५ में 'हाकलि' की १४ मात्राओं और एक चौकल+दो पंचकल के मेल से बना बताया गया है; रासो के छंदों में इस प्रमाण की भी अनुरूपता पाई जाती है। (प्रा० पै०) I छं० १७२-४ में 'हाकलि' को १४ मात्राओं तथा सगण-भगण-द्विजगण और अंत में गुरु योजनावाला, पूर्वार्द्ध में ११ तथा उत्तरार्द्ध में १० वर्णों वाला वर्णन किया गया है। रासो के छंदों में (प्रा० पै०) निर्धारित वर्ण और गण नियम का पालन नहीं पाया जाता, इनमें इस विषय की पूर्ण स्वतंत्रता दिखाई देती है। नीचे दो छंद दिये जा रहे हैं—

दंडमाली— **लिय रतन चवदसु वीनीयं, बँटि बंटि निज कर दीनयं।**
बर विदरि विद्दरि वीरयं, सुर असुर मिलि जल फोरयं। छं० १०८ स० २

तथा-

गीतामालची— दरसन नाद विनोदयं, सुरबंध नृत्य समोदयं।
गीताद्य अधि नव बादयं, अभिलाष अर्थ पदादयं। छं० ४५ स० ३०

स० २७ के छंदों की परीक्षा से ज्ञात होता है कि उनके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें हैं तथा रचना क्रम इस (२+३+४+३+४+३+४+५=२८) प्रकार है और अंत में रगण (ऽ।ऽ) है। इन लक्षणों के छंद का नाम 'हरिगीतिका' है जो एक प्रसिद्ध छंद है। रासो के इस समय का एक छंद देखिये —

दंडमाली— भय प्रात रत्तिय जुरत दीसय चंद मंदय चंदयौ।
भर तमस तामस सूर वर भरि रास तामस छंदयौ।
वर वज्जियं नीसान घुनि घन वीर वरनि अंकूरयं।
घरं घरकि धाइर करषि काइर रस मिसूर स कूरयं। छं० ५८ स० २७

स० २७ वाले छंद जिन्हें 'दंडमाल' नाम दिया गया है परीक्षा करने पर ७-७ के विश्राम से १४ मात्राओं वाले सिद्ध होते हैं। (छं० प्र०) पृ० ४७ के अनुसार इन लक्षणों वाले छंदों को मानव छंद समूह के अंतर्गत 'सरस' या 'मोहन' कहा गया है। इस प्रकरण के दो छंद दिये जाते हैं —

दंडमाल— मेछ हिंदू जुद्ध धरहरि, धाइ धाइ अघाय घर हरि।
रुंड मुंडन षंड षरहर, मत्त बहुत सुरत्त झरहरि। छं० ७६
भग्ग काइर जूह भीरन, दंडि जल सूरिज्ज धीरन।
रुंड चड्डिय रचि थरहरि, रक्त जुग्गिनि पत्र पिय भरि। छं० ८० स० ३७

संशोधनः—रासो के 'दंडमाल' या 'दंडमाली' नामवाले इन छंदों को उपर्युक्त समीक्षा के अनुसार वास्तविक नाम देना उचित होगा। स० ३० वाले छंदों को रासो की कुछ प्रतियों में 'छंद गीता मालती' लिखा गया है, वह अशुद्ध है। ये 'हाकलि' छंद हैं।

इसके अतिरिक्त कतिपय मात्रा न्यूनाधिक दोषों का परिहार करना आवश्यक होगा।

२८. कमंध —

स्थितिः—स० ३६-छं० २३३-५।

रासो के एक स्थल पर 'कमंध' नामधारी तीन छंद निम्न रूप में मिलते हैं —

कमंध— त्रिम्मली नेह नासा, दिष्ट एन लग्गी सु त्रासा।
छेहंग कामी रसा, संचान भग्गी त्रसा। छं० २३३
हंसावती संकुची, दासी प्रीति संवची।
पुस्तका पढि विस्तरी, कथा गाथा प्रेम बिस्तरी। छं० २३४
दंत कंडक निस्तरी, हास विलास सुस्तरी। छं० २३५ स० ३६

परीक्षा करने पर पता चलता है कि ४ चरण वाले छं० २३३ के प्रथम चरण में ७ वर्ण १२ मात्रायें हैं; दूसरे में ९ वर्ण, १५ मात्रायें हैं; तीसरे में ७ वर्ण १२ मात्रायें हैं और चौथे में भी ७ वर्ण १२ मात्रायें हैं। छं० २३४ में चरणों के क्रम से ७ वर्ण १२, मात्रायें, ७ वर्ण १२ मात्रायें, ८ वर्ण १२ मात्रायें और ९ वर्ण १५ मात्रायें हैं। छं० २३५

केवल दो ही चरणों का है तथा उसके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण और १२ मात्रायें हैं। इन छंदों में गणों का कोई क्रम नहीं पाया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि कालांतर में लिपिकारों की असावधानी से ये छंद अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठे हैं।

वर्ण क्रम रहित होने से इन छंदों के वर्ण वृत्त होने में संदेह है। छं० २३३ के दूसरे तथा २३४ के चौथे चरण में १५-१५ मात्रायें हैं अन्यथा इन सारे छंदों के शेष चरणों में १२ मात्रायें ही पाई गई हैं। अतएव इनको मात्रावृत्तों के अंतर्गत रखना उचित प्रतीत होता है। अब देखना यह है कि ये १२+१५=२७ मात्राओं के छंद हैं या १२+१२=२४ मात्राओं के। २७ मात्राओं वाले नाक्षत्रिक छंद समूह में इन लक्षणों का छंद नहीं मिलता; परन्तु २४ मात्राओं वाले अवतारी छंद समूह में 'दिगपाल' और 'सारस' छंद अवश्य ही हमारे प्रस्तुत छंदों के निकटवर्ती हैं—(छं० प्र०) पृ० ६४-५। हमारे तीनों छंदों के प्रत्येक चरण (छं० २३४ के चौथे चरण को छोड़) के आदि में गुरु (ऽ) है। इस आदि गुरु और १२-१२ मात्राओं का नियम 'सारस' छंद में है, दिगपाल में नहीं, अतएव प्रस्तुत छंदों को 'सारस' छंद संज्ञा दी जानी चाहिये।

(छं० प्र०) पृ० ७७ पर 'कमंद' नामक एक छंद दिया है जिससे रासो के 'कमंध' छंद की नाम एकता को लेकर कुछ सहारा लिया जा सकता था; परन्तु 'कमंद' छंद ३२ मात्राओं वाले 'लाक्षणिक' छंद समूह के अंतर्गत है जिसके नियम रासो वाले छंदों पर नहीं लगते। प्रक्षेपक तुकबाजों ने 'सारस' छंद को कमंध संज्ञा क्यों दे डाली, यह एक समस्या ही रहेगी। 'कमंध' नामक प्रस्तुत लक्षणोंवाला कोई छंद सहायक छंद ग्रन्थों में नहीं मिलता, परन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि अधिक प्रचार न होनेवाले हस्तलिखित ग्रंथों के विचारणीय उस युग में वर्तमान छंद को कहीं कहीं 'कमंध' भी कहते रहे हों। जो कुछ भी हो लिपिकारों के भ्रम से प्रस्तुत छंद अपने नाम और लक्षणों को खो बैठा।

संशोधनः—छं० २३३ के दूसरे चरण से 'एन' तथा छंद २३४ के चौथे चरण से 'कथा' हटा देने से एक तो अर्थ भंग नहीं होता और दूसरे चारों चरण १२ मात्राओं तथा आदि में गुरु नियमवाले हो जाते हैं।

२६. दुर्गम —

स्थितिः—स० ६६-छं० १५४२-७।

इस छंद का रासो में निम्न रूप है :—

दुर्गम— **इवि इथ्थ तथ्थ असीसनं, गल कथन वथ्थ ग्रहीथनं।**
भर भरनि भर सुर भारनं, भुकि झुम्मि होय मेछारनं। छं० १५४२
धर धक्कि धमकिनि धारनं, मिलि असुर सूर प्रहारनं।
पहुमान मह मद आरनं, धकि जंग पान सुधारनं। छं० १५४३
आलील आषुव षानयं, सारीर षां सुरतानयं।
पीरोज षांन प्रमानयं, उज्जारि गाजी षानयं। छं० १५४४ स० ६६

छंद ग्रन्थों में 'दुर्गम' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। पिंगल परीक्षा से ज्ञात

होता है कि इन छंदों के प्रत्येक चरण में ३ चौकल और एक गुरु के नियम से १४ मात्रायें हैं तथा ८ से लेकर १२ वर्ण होने के कारण वर्ण क्रम नहीं है।

(प्रा० पै०) I 'हाकलि' छंद १७२ में कहा गया है कि इसके प्रत्येक चरण में सगण-भगण-द्विगण, अंत में गुरु और १४ मात्रायें होती हैं; छं० १७३ में इसके प्रथम दो चरणों में ११-११ वर्ण और अंतिम दो चरणों में १०-१० वर्ण तथा प्रत्येक चरण में १४-१४ मात्राओं का एक दूसरा नियम भी दिया गया है।

(रू० दी० पिं०) छं० ४५ में 'हाकली' छंद के प्रत्येक चरण में एक चौकल+२ पंचकल = १४ मात्राओं का नियम दिया गया है। (छं० प्र०) पृ० ४७ में 'हाकलि' छंद का मुख्य नियम प्रत्येक चरण में तीन चौकल+एक गुरु = १४ मात्राओं का बतलाया गया है।

रासो के प्रस्तुत छंदों में 'हाकलि' छंद की (प्रा० पै०) निर्धारित गण और वर्ण योजना नहीं लगती वरन् (३ चौकल+गुरु) या (१ चौकल+२ पंचकल) वाला नियम पूरा लग जाता है। अस्तु, इन छंदों को 'हाकलि' मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। संभव है कि रासो काल में कहीं कहीं इसका नाम 'दुर्गम' भी रहा हो।

संशोधन :—

छं० १५४२ चौथा चरण—'मेछारनं' के स्थान पर 'मछारनं' या 'मेछार्नं',

छं० १५४४ ,, ,, —'गाजी' ,, ,, 'गाजिय' तथा

छं० १५४५ तीसरा ,, —'गहि वथ्थानयं' ,, 'गहिय वथानयं',

पाठांतर मात्राओं के विचार से आवश्यक हैं।

३०. लीलावती —

स्थितिः—स० ५८-छं० ११४-६।

रासो के उपर्युक्त छंद निम्न रूप में पाये जाते हैं —

लीलावती – **हहं तू हहं तू नहं तू नहं तू, ननहुं ननहुं ननंतु तुं नाहीं।**
भयं तो भयं तो महं तो मह तो, कथं तूं कथं तूं ननंहुं ननंहुं। छं० ११४
गुनं तो गुनं तो हुं जंत्री हुं जंत्रीं, तु जंत्र तु जंत्र कथंती पढंती।
कथंती कथंती त्रतंती त्रतंती, भ्रमती भ्रमंती नतंती नतंती। छं० ११५
भ्रमे जेमवंती जमंती जमंती ... ... छं० ११६ स० ५८

इन छंदों की पिंगल परीक्षा से विदित होता है कि इनके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, २० मात्रायें और ४ यगण (ISS) हैं और (पिं० छं० सू०) पृ० १८८ (छं० को०) छं० ६ (प्रा० पै०) II छं० १२४, (रू० दी० पिं०) छं० २६ और (छं० प्र०) पृ० १४८ के अनुसार ये वर्ण वृत्त 'भुजंग प्रयात' के लक्षण हैं तथा यही छंद नाम संज्ञा इनको देना उचित होगा।

'लीलावती' मात्रिक छंद है और (प्रा० पै०) I छं० १८३ तथा (छं० प्र०) पृ० ७६ के अनुसार इसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्रायें, २ और १० पर यति तथा गुरु और लघु के नियमों से रहित क्रम पाया जाता है।

संशोधनः—१. तुकबाज़ प्रक्षेपकारों की छंद शास्त्रविषयक अनभिज्ञता का अधिक

स्पष्ट प्रमाण और क्या होगा कि वर्णिक 'भुजंग प्रयात' छंद को मात्रिक 'लीलावती' लिख डाला।

२. छं० ११४ के दूसरे चरण में 'तुं नांहीं' के स्थान पर 'तु नाहीं' पाठ उसे वांछित यगण का रूप दे देता है।

३१. त्रिभंगी —

स्थितिः—स० २ छं० २५७-६२, २६१-६, ५२०-३३; स० ७-छं० १२६-३३; स० ६-छं० १०६-१२; स० १२-छं० २५१-६, २६३; स० २४ छं० १४५-७, २४८-५४; स० २५-छं० ५४६-५१; स० ३२-छं० ७२-४; स० ३६-छं० ६१-४; स० ५२-छं० १३६-४१; स० ५३-छं० २७; स० ५६-छं० १२-४; स० ६१-छं० ३२६-२६, २१३६-४२, २२६३-६; स० ६६-छं० १११८-२४, ११३०-२; म० स०-छं० ७६२-७२।

'त्रिभंगी' छंद मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के होते हैं। पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि रासो के प्रस्तुत छंद मात्रिक हैं। (क० द०) II छं० ३६-७, (प्रा० पै०) I छं० १६४-५, (रू० दी०पिं०) और (छं० प्र०) पृ० ७४-५ में मात्रिक त्रिभंगी छंद १०+८+८+६ के विश्राम से ३२ मात्राओं वाला अंत में गुरु और जगण रहित बतलाया गया है। रासो के छंद इन्हीं लक्षणों के अनुरूप हैं। एक छंद देखिये —

त्रिभंगी— दरसन रस राजं सुमरित साजं जय जुग काजं भय भाजं।
अंमर छर करिजं चामर वरिजं वर बहु पाजं सुर साजं।
अंमर तरु मंजरि निय तन जंजरि वर वर रंजरि चष पंजरि।
करुना रस मंजरि जनम पुनंगरि हसि हसि संकरि सा संकरि। छं० ३२८ स० ६१

संशोधनः—रासो के निर्दिष्ट 'त्रिभंगी' छंदों में कहीं कहीं मात्रा न्यूनाधिक दोष है जिन्हें अल्प प्रयास से शुद्ध किया जा सकता है। परन्तु 'महोबा समय' के त्रिभंगी नामधारी छंद कोई दूसरे ही छंद हैं। देखिये—

त्रिभंगी— करि कोप तबै पृथिराज मनं, अतताइय अम्र किये सजनं।
मुख मंत्र उचारिय आप नृपं, अरि को उपजावन देह दियं। छं० ७६२
गिरजा हरि संकर ध्यान कियं, अतताई नरेसर अम्र दियं।
महाकालिय ध्यान धर्यौ जबहीं, अतताइय सिंधि करी तबही। छं० ७६३

इन छंदों के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ सगण हैं। अतएव इन्हें 'तोटक' छंद संज्ञा दी जानी चाहिये, न कि 'त्रिभंगी'।

३२. फारक या पारक —

स्थितिः—स० १२-छं० १५१ (फारक), छं० २३४ (पारक)।

किंचित् नाम भिन्नता लिये हुए रासो के उपर्युक्त छंद निम्न रूप में हैं —

फारक— रत्तानी बानी सूबानी, नीलानी सोहैं साबानी।
भुरवानी बानी बोलंदे, सिहानी संकर तौलंदे।
सोरट्ठी बट्ट निहट्टायं, हुरम जहूरह बह्यायं।
अग्गिबान कमान सझायं, सैर सम्र कमामय यंत्रायं। छं०—१५१ तथा

पारक — रूमानी बानी पुब्बानी, नीलानी सोहं सब्बानी।
मुखानी बानी बोलंदे, सिंधानी सकल तोलंदे।
सोरठ्ठी थट्टी निहटेयं, हर बंजहु रावर बद्देयं। छं० २३४

इसके आगे छंद 'त्रोटक' के नाम से एक निम्न पंक्ति दी है :—

त्रोटक— आगे वांनक वांनक सख्खयं, सब सुख्खक मंत्रक मंत्र तयं। छं० २३५

नोट:—यह 'त्रोटक' नामक छंद पंक्ति कोई अलग पंक्ति नहीं हो सकती क्योंकि ध्यान से देखने और तुलना करने पर पता लगता है कि छं० १५१ और छं० २३४ वस्तुतः एक ही हैं तथा छं० २३५ के दोनों चरण छं० १५१ के दो अंतिम दो चरणों के ही रूप हैं जो कालांतर में लिपिकारों के भ्रम और अंत में रासो के छंदों को नामबद्ध करनेवाले तथाकथित कवियों की कृपा से वर्तमान रूप में आ गये हैं। अतएव छं० २३५ के दोनों चरणों को 'त्रोटक' छंद न मानकर छं० २३४ के अंतिम चरण कर देना उचित होगा, परन्तु उन्हें अनुरूप छंद का रूप देने के उपरांत। इस प्रकार हम अंत में पायेंगे कि छं० १५१ और छं० २३४ के भाषा और भाव समान हैं। एक समय में एक ही भाषा और भाव वाले छंद का दो बार प्रयोग करने का पुनरुक्ति दोष निरूपण हमारे वर्ण्य विषय का प्रसंग नहीं है।

'फारक' या 'पारक' नामक छंद सहायक छंद ग्रंथों में नहीं मिलता। पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं और चरणांत में मगण (ऽऽऽ) अथवा कर्ण (ऽऽ) है तथा प्रति दो चरणों में अनुप्रास की समानता है।

(रू० दी० पिं०) छं० ४१ के अनुसार यह 'अडिल्ला' छंद है, परन्तु (रू० दी० पिं०) और (छं० प्र०) 'अरिल्ल' पृ० ४६ को छोड़ कर शेष छंदाचार्यों का मत है कि इस छंद के चरणांत में दो लघु होने चाहिये। (छं० प्र०) में चरणांत के लिये दो लघु (।।) या एक यगण (।ऽऽ) की व्यवस्था है। परन्तु उदाहरण स्वरूप जो छंद दिया गया है उसके प्रति चरणांत में यगण है और यही बात (रू० दी० पिं०) छं० ४१ में भी पाई जाती है।

(वृ० जा० स०) IV छं० ३३-४; (स्वं० छं०) IV छं० २६, ३१, ३२; (छंदो०) छं० ३७; (छं० को०) छं० ४१ और (प्रा० पै०) I छं० २७ में अडिल्ल छंद के चारो चरणों के लिये एक यमक माना गया है तथा (छं० को०) के अनुसार एक के स्थान पर प्रति दो चरण पीछे,छंद के चारों चरणों में दो यमक होने पर 'अडिल्ल' का नाम 'मडिल्ला' हो जाता है परन्तु (क० द०) II छं० २१ और छंदो छं० ३७ में इसके विपरीत व्यवस्था है। (प्रा० पै०) I 'अडिल्ल' उदाहरण छंद १२८ में हम यमक के स्थान पर अनुप्रास का प्रयोग पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार कालांतर में यमक का स्थान अनुप्रास ने ले लिया उसी प्रकार चरणांत के दो लघु वाला नियम भी ढीला पड़ गया होगा।

अस्तु, रासो में आये इस 'पारक' छंद को 'अडिल्ला' या प्रति दो चरणो में समान अनुप्रास प्रयोग के कारण 'मडिल्ला' वा 'मडिला' कहना उचित होगा, जो (छं० प्र०) के १६ मात्राओं वाले संस्कारी समूह में रखा जा सकता है।

संशोधन :—१. मडिल्ला या अडिल्ला छंद ४ चरणों का होता है, आठ का

नहीं। अतएव रासो के इस फारक या पारक नामधारी ८ चरणों वाले छंद को तदनुसार दो छंद संख्याओं में विभक्त कर देना वांछित होगा।

२. छं० १५१, 'हुरम' के स्थान पर 'हूरम्म' उपयुक्त है।

३. छं० १५१ और छं० २३४ की तीसरी पंक्ति को कोई एक शुद्ध रूप देना भाषा शास्त्र के अन्तर्गत है इससे उसे यहाँ छोड़ देना पड़ता है। और यही बात इनकी चौथी पंक्ति के विषय में भी है।

[ब] **संयुक्त वृत्त :—**

२३. वथूआ—

स्थिति :—स० १-छं० २; स० ६७-छं० १७४, १८४ (वथुआ)

रासो के निर्दिष्ट तीन स्थलों पर इस नाम के छंद के दर्शन होते हैं। परन्तु तीनों स्थलों पर छंद रूप भिन्न है। प्रथम स्थल वाले छंद के प्रथम पाँच चरणों में १५+ ११+१५,+१३ + १५ = ६९ मात्रायें हैं तथा अंत में एक दोहा है। दूसरे स्थल वाले छंद के प्रथम पाँच चरणों में ५८ मात्रायें और एक दोहा है तथा तीसरे स्थल वाले छंद का रूप ऐसा भ्रष्ट है कि उसके प्रत्येक चरण की पृथकता ठीक नहीं समझ पड़ती और साथ ही वह अपूर्ण भी प्रतीत होता है।

सभा के रासो संपादकों ने इस छंद को रिड्डक माना है।......'मैं इस छंद को रूप दीप पिंगल के वर्णन किये हुए रिड्डक का नामांतर होना निःसन्देह मान कर उसका संशोधन करता हूँ। देखो रूप दीप पिंगल में रिड्डक छंद में ही रिड्डक का यह लक्षण कहा है :—

रिड्डाम नाम छन्द लक्षण।

कीजै कला प्रथम तिथ मान, दश एको दुसरे, तीजे गिन दश पांचरिये।

फिर चौथे दस एक, परख्यन में पांच में करिये।

रोडा सत सठ मत्त है, कीनो सेस बखान।

तामे फिर दोहा मिले, रिड्ड छंद पहिचान।

इससे मालूम होगा कि यह बथुआ छन्द कैसा एक विचित्र छन्द है कि जिसकी पहिली तुक में दो यति होने के कारण १५+११+१५=४१ मात्रायें होती हैं और दूसरी में एक यति होने से ११+१५=२६ और सब मिल कर ६७। इन तुकों के पीछे एक दोहा होता है। जो इसमें दोहा न लगावें तो जहाँ तक ६७ मात्रायें होती हैं वहाँ तक रोडा नामक छन्द होता है"। पृ० ८।

(प्रा० पै०) I में रड्डा छंद का निम्न लक्षण मिलता है—

पढम विरमइ मत्त दह पंच, पअ बीअ बारह ठवहु,

तीअ ठाँइ दह पंच जाणहु, चारिम एग्गारहहि,

पंचमोहि दहपंच आणहु।

अट्ठासट्ठी पूरवहुअग्गे दोहा देहु।

राअसेण सुप्रसिद्ध इअ रड्ड भणिज्जइ एहु। १३३

(इस 'रड्डा' का दूसरा नाम 'राज सेना' भी है)

तथा— **विसम तिकल संठवहु तिरिण पाइक्क करहु लइ**
अंत गरेंद कि विप्प पढम बेमत्त अवर पइ।
सम पअ तिअ पाइक्क सव्वलहु अंत बिसज्जहु
चउठा चरण बिआरि एक्क लहु कट्टिअ लिज्जहु।
इम पंच पाअ उट्टवण कइ
वत्थुणाम पिंगल कहइ।
ठवि दोसहीण दोहा चरण
राअसेण रड्डउ भणइ। १३४

अस्तु, रड्डा के प्रथम भाग (पाँच चरणों) को पिंगल वत्थु (वस्तु) नाम देते हैं।

'छंदः कोश' में 'रड्डा' के प्रथम भाग का 'राढउ' नाम मिलता है परन्तु स्वयम्भू और हेमचन्द्र ने इसे 'मत्ता' (मात्रा) कहा है। सम्पूर्ण ९ चरणवाले इस छंद को प्रायःसभी छंदकारों ने 'रड्डा' नाम दिया है। केवल 'छंदःकोश' में इसे 'वत्थु' कहा गया है तथा 'छंदोऽनुशासनम्' में 'रड्डा' और 'वत्थु' दोनों नाम मिलते हैं।

(प्रा० पैं०) में 'रड्डा' छंद के प्रथम भाग के सात भिन्न रूप और नाम दिये हैं। गण विचार दृष्टि से (प्रा० पैं०) में एक योजना है, स्वयम्भू और हेमचन्द्र आदि ने दूसरी दी है तथा जर्मन विद्वान् जाकोबी और आल्सडोर्फ ने एक तीसरी निर्धारित की है।

यदि रासो में आये हुए 'बथूआ' छंद के प्रथम पाँच चरणों का मात्रा दोष लिपिकारों का समझा जाय, जो बहुत सम्भव है, तो (छं०को०), (छंदो०) और (प्रा०पैं०) के अनुसार इसके 'वत्थु' नाम का कालांतर में 'बथूआ' या 'वथुआ' हो जाना समझ में आ जाता है।

उदाहरणार्थ रासो का प्रथम 'वथूआ' छंद दिया जाता है—

प्रथम सुमंगलं मूल श्रुतबिय, स्मृति सत्य जल सिंचिय।
सुतरु एक धर ध्रम्म उम्यौ।
त्रिषट साष रम्मिय त्रिपुर, बरन पत्त मुख पत्त सुम्यौ।
कुसम रंग भारह सुफल, उकति अलंब अमीर।
रस दरसन पारस रमिय, आस असन कवि कीर। छं० २ स० १

३४. कवित्त—

स्थितिः—यह रासो में सबसे अधिक व्यवहृत छंद है जिसके दर्शन लगभग दूसरे या तीसरे पृष्ठ पर होना निश्चित है। इसी से इन छंदों की स्थिति का निर्देश करना अनावश्यक समझा गया।

इन छंदों की पिंगल परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि वास्तव में ये 'कवित्त' छंद नहीं हैं वरन् 'छप्पय' हैं।

षट्पद 7 षट्पअ 7 छप्पअ > छप्पय।

(स्वं० छं०) IV छं० ३८ और (क० द०) II छं० ३३ में 'षट्पद' के नियम

मिलते हैं। (क० द०) में इसे वस्तुवदन+उल्लाल के मेल से बना बताया गया है। (छं० को०) छं० १२ और (प्रा० पै०) I छं० १०५-८ में 'छप्पय' छंद ११, १३ मात्राओं के विश्राम से पहिले चार चरण और तदुपरांत 'उल्लाला' के दो चरणों के मेल से बना निर्धारित किया गया है तथा 'उल्लाला' के प्रत्येक चरण में २८ मात्राओं की योजना दी गयी है। रासो के कवित्त नामधारी 'छप्पय' छंद इन्हीं नियमों के अनुकूल हैं तथा (प्रा० पैं०) I छं० ११७, १२०-२४ में छप्पय के जिन ७१ प्रकार के भेदों के नाम और लक्षण दिये गये हैं, वे सब इस काव्य में प्रयुक्त हुए हैं।

सभा द्वारा सम्पादित रासो के पृ० ६ पर इन छंदों के विषय में निम्न टिप्पणी दी हुई है—

"कवि ने इस रूपक के छंद को कवित्त संज्ञा दी है। संप्रतकाल में यह छप्पय छप्पै, षट्पद, षट्पदी आदिक नामों से प्रसिद्ध है परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पहले वह कवित्त नाम से ही प्रसिद्ध था। रूप दीप पिंगलवाले ने भी नीचे लिखा छप्पय का लक्षण कहा है। इसमें उसने भी यह कहा है कि :— 'सुन गरूड़ पंख पिंगल कहै, छप्पै छंद कवित्त यह'। इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ के बनने के समय तक छप्पय का नामांतर कवित्त करके प्रसिद्ध था।

छप्पै लक्षण— **लघु दीरघ नहि नेम, मत्त चौबीस करीजै।**
ऐसे ही तुक सार, धार तुक चार भरीजै।
नाम रसावल होय, और वस्तू कभि जानहु।
उल्लाला की विरत, फेर तिथ तेरह आनहु।
दूवै तुक बनावो अंत की, यत यत में अठबीस गहु।
सुन गरुड़ पख पिंगल कहै, छप्पै छंद कवित्त यहु।

इसके अतिरिक्त मंछ कवि कृत रघुनाथ रूपक में भी उसने छप्पै छंदों को कवित्त करके ही लिखा है।"

'संदेश रासक' की भूमिका में पृ० ६८ पर इस छंद के विषय में निम्न समीक्षा मिलती है :—

वत्थु (वस्तु) या छप्पय (षट्पद) नामक संयुक्त वृत्तकाव्य+उल्लाल से बना है। काव्य के प्रति पाद में २४ मात्रायें होती हैं। प्राकृतपैङ्गलम् (१०६) में इसकी योजना ६+४+।/।।+४+६ है, दूसरे और चौथे गणों के स्थान पर जगण का निषेध है तथा अंत में दो लघु होते हैं। छन्दोऽनुशासनम् तथा अन्य ग्रन्थों में इस छंद को वत्थुवयण नाम से वर्णित किया गया है तथा उनकी योजना में इतना मात्र ही अंतर है कि वे ११-वीं मात्रा के बाद यति के नियम के विषय में कुछ नहीं कहते। कविदर्पणम् में षट्पदी अथवा छै चरणों वाले छंद के प्रकरण में कई संयुक्त छंदों की परिभाषा और उदाहरण मिलते हैं। (क० द० अध्याय २, छंद ३३) जो एक ओर वस्तुवदन तथा उसके मिश्रित रूपों से बने हैं और दूसरी ओर कर्पूर या कुंकुम (एक मात्रा रहित उल्लाल) के मेल से। और इन सारी संयुक्त छंद योजनाओं को षट्पद सार्धच्छंद या काव्य नाम ही दिया गया है।

उल्लाल के चरण की २८ मात्राओं की योजना ४+४+४।।।/६+४+।।। है। छंदोऽनुशासनम् में इस के दूसरे चरणांत मात्र में तीन लघु की व्यवस्था की गई है जब कि प्राकृत पैङ्गलम् में इसके किसी चरण में भी तीन लघु नहीं माने गये हैं। संदेश रासक के इन छंदों के दोनों चरणों के अंत में तीन लघु मिलते हैं। छन्दोऽनुशासनम् में पहले, तीसरे और छठे गणों के स्थान पर जगण का निषेध किया गया है तथा ६ मात्राओं का गण २+४ की योजना से युक्त कहा गया है।"

रासो के छंदों की विवेचना से यह बात स्पष्ट है कि रासोकार ने अपना ग्रंथ नाना प्रकार के छंदों में निर्मित किया परन्तु उसने छंद के नामों का उल्लेख नहीं किया। इन छंदों के नामकरण का श्रेय प्रक्षेपकारों को है जिन्होंने अज्ञात रूप से रासोकार की महिमा बढ़ाने के प्रयास में अपनी छंदशास्त्र ज्ञान विषयक अल्पज्ञता ही प्रदर्शित की है। आदि रचयिता से ऐसी भूल का सम्भावना समझ में नहीं आती कि वह अपने छंदों को उल्टे-सीधे नाम दे डाले। जहाँ तक प्रस्तुत छंद का सम्बन्ध है, यह असम्भव नहीं है कि प्रक्षेप-काल में कहीं कहीं 'छप्पय' छंद कवित्त नाम से ही प्रसिद्ध रहा हो जैसा कि सभा के संपादकों का अनुमान भी है।

उदाहरणार्थ रासो का 'कवित्त' छंद नामधारी 'छप्पय' छंद दिया जाता है —

कवित— **हय गय हय गय अरथ, रथ्थ नर नर सों लग्गा।**
हय सों हय पायल सु, पाय करि सों करि भग्गा।
ईस आन बर चवै, सूर सूरन हक्कारिय।
सार धार झिल्लै, प्रहार बीरा रस धारिय।
घरि एक भयानक रुद्र हुअ, सीस भाल गंठी सु कर।
कविचंद दंद दुअ दल भयौ, मुगति मग्ग खुल्ले विदर। छं० २३५ स० ६१

रासो वीर रस प्रधान काव्य है और 'छप्पय' छंदों में इस रस का परिपाक करने में कवि को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यह छंद कवि का प्रिय छंद प्रतीत होता है और तदनुसार इस छंद में हमें उसकी सिद्धहस्तता के दर्शन होते हैं।

३५. कवित्त विधान जाति —

स्थिति:—स० २१—छं० १५।

रासो के एक स्थल पर निम्न रूप में यह छंद मिलता है —

कवित्त विधान जाति— **अहि ससि सन उतंग, पिक्क उर केहरि करिवर।**
अलक वयन चष चंच, जीह कटि जवन बराबर।
किरन सकल चल अचल, अदिठ अलसंत चलंतह।
चंदन नभ वन भवन, अंब गिरि त्र्यंभ बसंतह।
सुमनि सरद भयभीत निसि, रति पति लंवत मंद गति।
अबला सुअंग ओपम इतिय, कही चंद इन परि विगति। छं० १५ स० २१

वास्तव में यह 'छप्पय' छंद है जिस पर 'कवित्त' प्रकरण में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

३६. वस्त बंध रूपक—

स्थिति:—स० ६१-छं० ४८१ ।

यह छंद निम्न रूप में मिलता है—

तब सु हेजम तब सु हेजम, जुगम कर जोरि ।

... ...

सीस नयौ दसबार तिहि, सेत छत्रपति मद सुदिट्ठौ ।

सकल बंध सथ्थह नयन, चकित चित बुलै गरिट्ठौ ।

तब सु कियौ परनाम तिहि, बर करी राय प्रतिहार ।

जिहि प्रसन्न सरसति कहै, सुकवि चंद दरबार । छं० ४८१ स० ६१

छंद ग्रन्थों में 'वस्त बन्ध रूपक' सदृश कोई छन्द नाम नहीं मिलता । परीक्षा करने से यह रासो का 'छप्पय' उपनाम 'कवित्त' छंद है जिस पर विस्तार पूर्वक विचार किया जा चुका है । प्रस्तुत छन्द किंचित् बिगड़े हुए रूप में है ।

३७. तारक—

स्थिति:—स० ६२-छंद ७३ ।

केवल एक स्थल पर इस एक छंद का प्रयोग हुआ है और वह निम्न रूप में है—

तारक — दुतिया दिन संक्ष विजै कुल कम्म ।

सहचरि प्रौढ़ रमै रति रम्म ।

दुष्षम सुष पिम्म मनोहर रीति ।

विलस्सिय आस भयं भव जीति । छं० ७३ स० ६२

पिंगल परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इसके पहिले चरण में १३ वर्ण १७ मात्रायें और (स स स स ल) गण योजना है; दूसरे चरण में १२ वर्ण, १५ मात्रायें और (न ज ज ज) गण योजना है; तीसरे चरण में १२ वर्ण, १७ मात्रायें और (म स स स ल) गण योजना है तथा चौथे चरण में १२ वर्ण, १५ मात्रायें और ४ जगण हैं ।

सहायक छन्द ग्रन्थों में इन लक्षणों का कोई छंद नहीं मिलता । रासोकार का दिया हुआ इस छंद का 'तारक' नाम और भी भ्रामक है । (प्रा० पै०) II 'तारअ' (∠तारक) छं० १४३ तथा (छं० प्र०) पृ० १६१ में 'तारक' छंद वर्ण वृत्त का और ४ चरण वाला माना गया है तथा इसके प्रत्येक चरण में ४ सगण और एक गुरु (=स स स स ग) का विधान किया गया है । अतएव इस नियम के अनुसार प्रस्तुत छंद को 'तारक' नाम देना

यदि इस छंद के दूसरे चरण में 'सहचरि' के स्थान पर 'सहच्चरि' और तीसरे चरण में 'दुष्षम सुष' के स्थान पर 'दुष सुष्षम' पाठ कर दिया जाय तो छंद का रूप तो सुधर ही जाता है उसका अर्थ भी भंग नहीं होता । इन पाठांतरों के उपरांत पहिले और तीसरे चरणों में (स स स स ल) गण योजना है ही तथा दूसरे और चौथे में (ज ज ज ज) अर्थात् 'मोतियदाम' छंद की योजना का लक्षण हो जाता है । (स स स स ल) लक्षणों के छंद का पता छंद ग्रन्थों में नहीं लगता परन्तु यहाँ वह एक स्वतंत्र रूप में प्राप्त होता है । इस

प्रकार रासो का प्रस्तुत छंद दो वर्ण वृत्तों (स स स स ल) और (ज ज ज ज=मोतियदाम) के मेल से बना एक अनोखा और अपूर्व छंद है।

रासो के अन्य संयुक्त छंद मात्रावृत्तों के मेल से बने हैं जब कि यह छंद वर्णवृत्तों के मेल से बना है और यदि इसका रूप स्वीकार किया जाय तो यह छंद शास्त्रियों के लिये एक विलक्षण समस्या पैदा करेगा।

इस छंद को चार के स्थान पर यदि केवल दो चरणों का और इस प्रकार प्रत्येक चरण २५ या २६ वर्ण वाला माना जाय तो कोई अर्थ नहीं सिद्ध होता। साथ ही इसे मात्रावृत्त मान कर विचार करने पर भी असफलता होती है।

जहाँ तक छंद के नाम का सम्बन्ध है उसे एक नवीन नाम देने की व्यवस्था करनी होगी।

३८. कुंडलिया—

स्थितिः—स० २-छं० ३७७ (कुडलिया); स० ७-छं० ७२, ११५, १६२, १६४; स० १२-छं० ३०, ६५, १०६, ११७, १८३; स० १७-छं० ३७; स० २१-छं० ८, १६१; स० २४-छं० १६६; स० २५-छं० ३०७, ३०६, ६२४; स० २६-छं० २, ६, १३, ५५; स० २७-छं० १७, २७, ११६, १४५; स० ३२-छं० ७, ३६, ५६; स० ३४-छं० १६; स० ३६-छं० ७, ६६, १३२, १३५, १६५, १६७; स० ३७-छं० ८६, १०४; स० ४३-छं० ६१; स० ४४-छं० ४३; स० ५०-छं० ४६; स० ५२-छं० १२८; स० ५५-छं० २५, ५२, ७४, १०६, १५०, १६०, १८१; स० ५८-छं० १६६; स० ६१-छं० १३, ३७०, ४७३, ११४२, १२४७, १२७५, १३५७, १६३० (डोढ़ा), २१३५, २४००, २४६१, २४६८; स० ६२ छं० १०३, १४८; स० ६३-छं० १६६; स० ६४-छं० ८८; स० ६६-छं० ३५५, ४१२, ६३३, ६४३, ६५८, ६६४, ६७६, ६६२, ७२८, ७६१, ७६६, १२४६, १४२७, १४५४, १४५७, १५२३, १६१८।

(छं० को०) छं० ३१ और (प्रा० पै०) I छं० १४६ किंचित् पाठांतर से 'कुंडलिया' छंद का निरूपण करनेवाले समान छंद हैं। इनमें 'कुंडलिया' को 'दोहा' और 'उल्लाला' के संयोग से बना हुआ, कुल १४४ मात्राओं का विशुद्ध यमक सहित, आदि अंत में समान पद वाला कहा गया है। पहिले 'दोहा' होता है और फिर 'उल्लाला'।

(छं० प्र०) पृ० ६७ में इसे 'दोहा' और 'रोला' के योग से ६ पद और २४ मात्राओं वाला निर्धारित किया गया है। 'उल्लाला' और 'रोला' छंद ११, १३ की यति से २४ मात्राओं वाले होते हैं, परन्तु चारों पदों में ११वीं मात्रा लघु होने से 'रोला' को 'काव्य' कहा जाता है।

रासो के 'कुंडलिया' छंद (छं० को०) और (प्रा० पै०) के नियमों के अनुरूप हैं। उदाहरणार्थ एक छंद दिया जाता है—

॥— **समुद्द रूप गोरिय सु बर, पंग ग्रेह भय कीन।**
चाहुआन तिन बिबध कै, सो ओपम कवि लीन।

सो ओपम कवि लीन, समर कग्गद लिय हथ्थं।
भिरन पुच्छि बट सुरँग, बंधि चतुरंग रजथ्थं।
समर सु मुक्कलि सोर, लोह फुल्यौ जस कुमुदं।
रा चावँड जैतसी, रा बड़ गुज्जर समुदं। छं० ४४ स० २६

संशोधन :—

१. प्रस्तुत छंदों की साधारण अशुद्धियाँ अल्प प्रयास से दूर हो सकती हैं, अस्तु उनका निर्देश नहीं किया गया।

२. स० ५५ छं० १०६, एक खंडित छंद है।

३. स० ६१ छं० १६३०, के विषय में रासो के सभा संस्करण, पृ० १८२६ पर टिप्पणी में लिखा है, "वास्तव में यह डोढ़ा छंद है परन्तु इसकी बीच की दो पंक्तियाँ खो गई हैं, यह छंद मो० प्रति में नहीं है।"

[स] वर्णवृत्त:—

३९ साटक—

स्थिति: - स० १—छं० १, ५३, ५४, ७८, १०६, १२३, २०२, २१७, ४७८, ५४३-४, ५४६, ७०१, ७४४; स० २-छंद १, ७६, २३०, ५११; स० ३-छं० १; स० ६ छं० ६१; स० ७-छं० १२-३, १६, १८०; स० ८-छं० २४; स० ११-छं० २६, ३०, २७६-८२; स० १३-छं० ६, १२४; स० १४-छं० ८, १२, १५, २१, २६, ६८; स० १५-छं० ६; स० १८-छं० २; स० २१-छं० ४२, १४२; स० २४-छं० ३०७; स० २५-छं० ७२६; स० २७-छं० १५; स० ३०-छं० ४२-३; स० ३१ छं० १०४; स० ३७-छं० ७, ३६, ४७-६; स० ३६-छं० ३२, १०४; स० ४१-छं० १७; स० ४४-छं १५७; स० ४५-छं० ६५, १०४, १७२; स० ४६ छं० ७६; स० ४७-छं०८५; स० ४८-छं० ४२; स० ५०-छं० ३६, ४५, ४७; स० ५१-छं० २५, ३०, ४३; स० ५५-छं० १५८; स० ५६-छं० ६; स० ५७-छं० ५८, ७१, ७५, २२०; स० ५८-छं० १००, १०८, २३६; स० ६१-छं० ६, १२, १८, २७, ३५, ३६, ४६, ६२, ३१६-७, ३२०, ३६५, ५०४, ५२४, ८४४, ८६१-२, १७२०, १६१४, २०००, २५२२; स० ६६-छं० १०१, ३३८, ६६८, १४७१-७, १४६६; स० ६७-छं०२२२।

इस छंद के विषय में सभा के रासो संस्करण पृष्ठ १-२ पर निम्न टिप्पणी दी गई है :—

"यह मंगलाचरण जिस छंद में कवि ने कहा है उसका नाम उसने साटक प्रयोग किया है और इस नाम से यह छंद आज कल जो छंद ग्रंथ प्राय: उपलब्ध हैं, उनमें नहीं मिलता। यद्यपि उसकी परीक्षा करने से वह निःसंदेह शार्दूलविक्रीड़ित नामक छंद मालूम होता है परन्तु जब तक उसका लक्षण अथवा नामांतर होने का कोई प्रमाण नहीं दिखलाया जाय तब तक पुरातत्ववेत्ता विद्वान संतुष्ट नहीं हो सकते। अतएव बहुत खोज करने से गुजराती भाषा के काव्यों में इस नाम का छंद मिला और रेवरेंड जोज़ेफ़ वान एस० टेलर साहब अपने गुजराती भाषा के व्याकरण के पद्यबंध अथवा छंद विन्यास नामक प्रकरण के पृष्ठ २२३ में उसका साटक नाम से कुल ३८ अक्षरों की दो तुक का छंद

होना लिखते हैं कि जिसकी प्रत्येक तुक में १२+७=१६ अक्षर होते हैं। इसके सिवाय प्राकृत भाषा के किसी छंद ग्रंथ से अनुवादित होकर सं० १७७६ में जो रूप दीप पिंगल नामक छंद ग्रंथ बना है उसमें केवल ५२ छंदों के लक्षण कहे हैं। उसमें भी साटक का यह लक्षण लिखा है।

साटक छंद लक्षण —कर्मे द्वादश अंक आदि संग्या, मात्रा सिवो सागरे।
दुज्जी बी करिके कलाष्ट दसबी, अर्कौविरामाधिकं ॥१॥
अंते गुर्व निहार धार सबके, औरों कछू भेद ना।
तीसों मत्त उनीस अंक चरने, सेसो भयो साटिकं।

हम इस साटक छंद को पिंगलछंदसूत्रम् नामक ग्रंथ में कहे शार्दूलविक्रीड़ित छंद का नामांतर होना मानते हैं। और उसका लक्षण बहुत प्राचीन अमर और भरत कृत छंद ग्रंथों में अवश्य होना अनुमान करते हैं। क्योंकि चंद कवि ने भी अपने इसी ग्रंथ के आदि पर्व के रूपक ३७ में जो कुछ कहा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने अपने इस महाकाव्य की रचना में पिंगल, अमर और भरत के छंद ग्रंथों का आश्रय लिया है।"

(प्रा० पै०) II छं० १८६ में 'सद्दूलसट्टा' नामक वर्णवृत्त का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

मो सो जो सत तो समंत गुरबो एऊण बिसाउणो।
पिंडोअं सउ बीस मत्त मणिअं अट्ठासि जोखी उणो।
जं छेहत्तरि वण्णओ चउ पओ बत्तीस रेहं उणो।
[चो] आलीसह हार पिंगल भणे सद्दूलसट्टा गुणो।

तथा 'शार्दूल विक्रीड़ित' (सद्दूलविक्कीडियं) का II छंद १८८ में भिन्न मानते हुए वर्णन किया है।

रासो के 'साटक' छंद (प्रा० पै०) II छं० १८६ में दिये गये नियमों के सर्वथा अनुरूप हैं। इनमें भी ४ चरण हैं और प्रत्येक चरण में १६ वर्ण हैं तथा म स ज स त त ग अथवा (ऽऽऽ+।।ऽ+।ऽ।+।।ऽ+ऽऽ।+ऽऽ।+ऽ) गण योजना पाई जाती है। र्थ दो छंद देखिये —

साटक —मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा, अबुधा बुधा गोपिनी।
सेतं चौर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी।
बीनापानि सुबानि जानि दधिजा, हंसा रसा आसिनी।
लंबोजा चिहुरार भार जघना, विघ्ना घना नासिनी। छं० ४२ स० १

तथा—

साटक —कांती भार पुरान यौविगलिता, साषा न गल्हस्थलं।
तुच्छं तुच्छ तुरास लग्गि कमनं, कलि कुंभ निंदा दलं।
मधुरे मधुरयासि आलि अलिनं, अलि भार गुंजारियं।
तरुनं प्रात लुटीय पंगज जिया, रात्रं गता साम्प्रतं। छं० ८६२ स० ६१

ऐसा प्रतीत होता है कि 'शार्दूल साटक' से 'सद्दूल सट्टग्र' होते होते अधिक प्रचार होने के कारण सट्टग्र, सट्टक या साटक मात्र इस छंद का नाम प्रसिद्ध हो गया और यही नाम हमें रासो में मिलता है।

रासो के ये छंद अत्यन्त ललित और अर्थ गौरव वाले हैं। इनकी शब्दावली संस्कृत शब्दों से ओत-प्रोत है तथा अधिकांशतः इनका विषय प्रशंसात्मक है, जिसे देवी-देवताओं विषयक होने पर प्रार्थनात्मक कहा जा सकता है।

(प्रा० पै०) II शार्दूल सट्टक छं० १८६ के प्रकरण में हस्तलिखित प्रति (A) के आधार पर छै छंदों में 'शार्दूल' छंद के भेद समझाये गये हैं जिन्हें विशेष विवरण के लिए देखा जा सकता है।

संशोधन :—

न्यूनाधिक मात्रा या वर्ण लिपिकारों के भ्रम से हो गये हैं और किंचित् विचार करने से शुद्ध किये जा सकते हैं।

४०. दंडक—

स्थिति :—स० ३७-छं० १२१-८; स० ६४-छं० ३३०-३।

रासो के 'दंडक' नामी इन छंदों की पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि ये 'दंडक' छंद नहीं हैं।

स० ३७ के छंदों के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें और अंत में दो लघु (॥) हैं तथा वर्णों और गणों का क्रम नहीं पाया जाता। ये छंद मात्रिक प्रकरण के हैं।

स० ६४ वाले छंदों के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, ४ भगण और १६ मात्रायें हैं। ये लक्षण 'मोदक' नामी वर्ण वृत्त के हैं।

उदाहरणार्थ प्रत्येक समय से दो छंद उद्धृत किये जा रहे हैं।

दंडक—चवथि ज़ुद्ध उदोत आरनि, सुभर भीर समुप्प धारनि।
कोपियं चहुआन भरहर, धाइ कुंजर ढाहि धरहर। छं० १२१. तथा
कंपि कायर लज्जि लज्जिय, विकल मुष ह्वै निकल भज्जिय।
समुष तोंवर साह सज्जिय, विचल अरि कर तेग तज्जिय। छं० १२४ स० ३७

दंडक—बाटनि बाट करी अति भीतर, लोटत लोटत ज्यों बन बिंतर।
बाढनि बाढ़ दिए तरवारनि, बालर बाढ़त भीर पहारनि। छं० ३३१
सीसन पीस किये सिरदारन, पी भज भाजन त्रीलषि जारन।
सेलन मेल सनंमुष मंडहि, झेल विझेल करा झर झंडहि। छं० ३३२ स० ६४

संशोधन :—

प्रस्तुत छंदों को उचित नाम देना आवश्यक है।

४१. भुजंगप्रयात—

स्थितिः—स० १-छं० ५-१०; स० १२-छं० ७८-८४, २७८, ३१६, ३२१, ३२७, ३६५-७; स० १३-छं० ६३-४; स० २४-छं० ३६५-६; स० ३४-छं० ६०-७; स० ४८-छं० २०४-८, २३८-४२, २४७-५१, २५५-६७; स० ५१-छं० ११६-२८।

(पिं० छं० सू०) 'भुजंगप्रयात' पृ० १८८, (क० द०) IV 'भुयंगपयायं' १२ (४४), (छं० को०) 'भुजंगप्पयश्राश्रो' छं० ६, (प्रा० पै०) 'भुश्रंग पश्रातं' छं० १२४-६, (रु० दी० पिं०) 'भुजंगीपयात' छं० २६, और (छं० प्र०) पृ० १४८ में यह ४ चरणों, ४ यगणों और १२ वर्णों वाला छंद बतलाया गया है। रासो के ये छंद उपर्युक्त नियमों के अनुकूल हैं। यथा--

भुजंगप्रयात—प्रथंमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं।
जिने नाम एकं अनेकं कहंनं।
दुती लभ्ययं देवतं जीवतेसं।
जिनै विश्व राख्यौ वलीमंत्र सेसं। रू० १ स० १

(छं० प्र०) में इस छंद को द्वादशावृत्तिवाले जगती समूह के अंतर्गत रखा गया है।

४२. भुजंगी—

स्थिति :—स० १-छं० १३१, १५५-६७, २०३-१२, ३१०-४, ३८७-६४, ४५०-६०, ६३१-८, ७७२-६; स० २-छं० ६८-७८, ६३-१०४, १३१-४०, १५४-८, २३४-८, २४२-५५, २६७-३०० (भुजंगी), ४६६-७८, ४६६-५०६; स० ६-छं० १५१-२; स० ७-छं० ८३-६२, १३४-६, १३६-४१; स० ८-छं० २१-३, ३७-४१; स० ६-छं० १३६-५४; स० ११-छं० ६-१४; स० १२-छं० ८६-७, ६३-४, १०४-६, ११२-४, १२७, १४०-१, १५७-६, १७३-८१, २७४, २८४, २८८, २६२, २६६, ३०६, ३१८, ३६३, ३७५-८३; स० १३-छं० ८२-६५, १०१-८, ११२-७, १४७-८; स० १४-छं० ६०-३, ११२-४; स० १८-छं० ७७-८; स० १६-छं० २-४, २६-३४, ५६-६०, १४८-५३, १७६-८१, १८४-६, स० २०-छं० २८-३२, ६३-५; स० २१-छं० १०४-३०, १५२-५, १६०-७२, १७६-६; स० २४-छं० २८-३३, ८५-६८, १२६-३६, १५३-७, २५६-६३, ४६४-६; स० २५-छं० २०५-२४, ३४६, ३५०, ४००-६, ४४८-५१ ४६३, ४६६, ५५३-८, ६०८-१०, ६३०-३, ७५७-७३, स० २६-छं० १५-२०; स० २७-छं० ४७-५१, ७३-६, १०७-८, ११६-२६, १३७-४३; स० २८-छं० १८-२४, ११६-३५; स० २६-छं० ३१-४, ३६-७; स० ३०-छं० ५१-६; स० ३१-छं० १०५-६, १२२-७, १४२-५, १६८-७१; स० ३२-छं० ६६-७०, ६६-१०७, स० ३३-छं० ५३-५; स० ३४-छं० ४६-५४, ६६-७१; स० ३५-छं० १८-२२; स० ३६-छं० १६-८, ४३-५४, २२५-३०; स० ३७-छं० ४-१२, ६४-८, ७०-६, ८६-६३, ६६-१०२; स० ३८-छं० ३८-४५; स० ३६-छं० १२-३, ८१-३, ६७-१०१, १०५-१५, १४२, १४५-६, १४६; स० ४०-छं० १५-८; स० ४१ छं० १३-५, स० ४२-छं० ३८-४५; स० ४३-छं० ३०-८, ४०-३, ५१-५, ५७-६३, ६६-७३, ७५-७, ६५; १०६, १२३-६; स० ४५-छं० १८६-६०; स० ४७-छं० २८-६; स० ४८-छं० ३७-८; स-५० छं० ५७-६४; स० ५१-छं० १३-५; स० ५२-छं० ३४-४२, ४६-५२, ११८-२५, १४५-५२, १५४-८, १६१-६, १६६-७५; स० ५४-छं० ४४-५१; स० ५५-छं० ८८-६, ६७-६, १४३-६, १५२-७, १६४; स० ५६-छं० ७०-३, ६४-६; स० ५७-छं० ५-१२, १६-२६, १७२-४, २००-६; स० ५८-छं० ४०-१, १०६-११, १२८-३०, २०७-१२, २४६-५७; स० ६१-छं० १०६-३२, १६४-७, ३०५-१०, ३३१-४, ३५८-६६, ३८८-६४, ४०३-७, ४१५-२२, ४२५-

३०, ४६२-६, ५६३-६, ५७१-७, ६०६-१८, ६२६-३०, ७६३-८०७, ८१०-३, ८३६-४३ ८६८-७६, ६०४-७, १०७६-८७, ११२६-३१, ११३७-४१, १३४७-५६, १३६२-६, १३७१-७, १३८८-६२, १४१३, १४२०-२, १४३०-५, १४४०-४, १४६५-७२, १४६५-१५००, १५०४-८, १५११-२१, १५२५-६, १५६५ (चौपाई, अरिल्ल), १६६५-१७०४, १६०३-१३-१६२७-३२, २०१४-२२, २०३६-४१, २०६०-६, २०७०-५, २१२७-३२, २१४६, २१५०-६०, २१६८-७७, २१६७-२२०३, २२१८-३०, २२३३-७, २२७६-८१, २३०४-११, २३२५-४२, २३६३-८, २४३६-५२, २५०७-१३; स० ६३-छं० ४४-५०, ८२-६१; स० ६४-छं० ३६-८, ४०-२, १००-४, १६०-४, १६६-८०, १८८, २५१-६, २६४-७१, २७३-६, २८३-३०४, ३४२-५; स० ६६-छं० ३८-४३, १६६-७६, २२०-३, २८६-६६, ३०२-२०, ४१३-५, ४४६-५८, ४६६-७१, ५४८-६५, ७८३-६०, ८२२-५, ८८५-६, ८८७-६८, ६३२-४५, १०६७-७२, १०८२-६६, १०६६-१११५, १२६६-८६, १२६३-१३०४, १३०७-१६, १३७१-६, १४०८-१२, १४१४-६, १४३१-४, १५०४-७, १६३२-५८, १६७७-८६; स० ६७-छं० २३-३६, ११०-५, १८६-६६, २७७-८६, २८८-६४, ३२३-३०, ३८४-५, ५५६-६४ (भुजंग); स० ६८-छं० १५२-६६; म० स०-छं० ३६-५१, १११-२६, २६२-६, ३८२-६२, ४८४-६३, ५१३-८, ६११-२८, ६६३-७१०, ७२७-४०, ७६४-८०७।

उपलब्ध प्राचीन छन्द ग्रंथों में इस नाम का कोई छन्द नहीं मिलता। केवल (छं० प्र०) पृ० १३६ में एकादशाक्षर वृत्ति वाले 'त्रिष्टुप' समूह के अंतर्गत इस नाम का छंद पाया जाता है जिसका लक्षण इस रूप में (य य य ल ग अथवा ।ऽऽ + ।ऽऽ + ।ऽऽ + ।ऽ) दिया गया है। परन्तु जब इन लक्षणों के आधार पर रासो के छंदों की परीक्षा करते हैं तो निराश होना पड़ता है। रासो के भुजंगी छन्द वास्तव में १२ वर्ण और ४ यगणों के नियम का पालन करते हैं और 'भुजंगप्रयातं' छन्द हैं, जिनकी विवेचना पूर्व की जा चुकी है। यथा—

भुजंगी—

करी अस्तुती यं स्वहा इंद जोगं।
तहा इंद्र आयौ सुरं नाग भोगं।
इतं देव सा देव सारन्न आयौ।
तिनं काटि दीयंत सो पाप पायौ। छं० १३१ स० १

(रू० दी० पिं०) छं० २६ में लक्षण तो 'भुजंगप्रयात' का दिया है परन्तु उसका नाम 'भुजंगी पयात' लिखा गया है, यथा:—

"अथ यगण गण सो भुजंगी पयात छंद ॥
सबै च्यार यग्यांन को नेम जाणैं।
गिणें बीसमत्ता कली एक ठाणैं।
यहीं शेस ने भेद निश्चै कया है।
कहों राय छंदा भुजंगप्रया है। २६।"

इससे प्रतीत है कि कहीं कहीं इस छंद को 'भुजंगी पयात' कहते रहे होंगे और छंद

का प्रचार अधिक होने के कारण आश्चर्य नहीं कि यह 'भुजंगी' नाम से भी विख्यात हो गया हो।

संशोधन—

'भुजंगी' छंद 'भुजंग प्रयात' छंद से (छं० प्र०) में पृथक माना गया है। अतएव उचित होगा कि रासो के इन छंदों को 'भुजंग प्रयात' छंद की संज्ञा दे दी जावे।

४३. वेली भुजंग—

स्थिति :—सं० २-छं० १८२-६६, १६६-२१२; स० ५५-छं० १२-५ (वेली भुजंगी); स० ६१-छं० २४२२-७।

उपर्युक्त छंदों की परीक्षा करने से पता चलता है कि स० २ और ६१ के छंद द्वादशाक्षरा वृत्ति वाले जगती समूह के अन्तर्गत प्रति चरण में ४ यगणों (।ऽऽ) के नियम वाले भुजंगप्रयात छंद हैं और स० ५५ के छंद, १४ मात्राओं वाले 'मानव' समूह के अन्तर्गत 'हाकलि' नामक छंद हैं।

उदाहरणार्थ तीनों स्थलों से एक एक छंद दिया जाता है—

वेली भुजंग— करं कंपितं चंपितं सेस सीसं।
गलं गर्जितं तर्जितं ब्रह्म ईसं।
डिगे थंभ ब्रह्मंड दिग्पाल हल्ली।
धरा चन्न भारं तु लाजे मतुल्ली। छं० १८४ स० २,

वेली भुजंगी— चलि पंग सेन अपारयं, अनभंग छत्रिय धारयं।
चहुआन बलनह बंधयं, द्रगपाल क्रम-क्रम संधयं। छं० १२ स ५५

तथा—

वेली भुजंग— भुरं भार भट्टं बजे घट्ट घट्टं।
लगे पंग भट्टं अगी भल्ल पट्टं।
भगे थट्ट जानं दहं बट्ट मानं।
परे गज्ज वानं भरं थान थानं। छं० २४२२ स० ६१

सहायक छंद ग्रंथों में 'वेली भुजंग' या 'वेली भुजंगी' नाम का कोई छंद नहीं मिलता।

संशोधनः—वर्तमान छंदों के उचित नामकरण के उपरांत कुछ साधारण मात्रिक और वर्णिक दोष ठीक करने होंगे।

४४. मोतीदाम—

स्थितिः—स० २-छं० ३५५-६५ (मोत्तीदाम), ४००-२; स० ५-छं० ३४-४१; स० ६-छं० १५७-८; स० ६-छं० ६७-७५, ६३-१०४, (मोतदांम); स० १२-छं० १३५-६, २७६, ३३४; स० १३-छं० ४१-५२ (मोतीदांम), १४४-५ (मोतीदांम); स० १४-छं० ४५ (मोतीदांम), ६१; स० १६-छं० १३६, २१६-२४; स० २१-छं० १७-२६, ३५-४०, ५६-६४, १६५-६; स० २४-छं० १३६-४३, २२८-३१, २३३-४४; स० २७-छं० ८१-७; स० ३१-

छं० ८८-९६; स० ३२-छं० ३०-६, ४७-५३ (मोतिदाम); स० ३३-छं० २८-३३; स० ३६-छं० १२०-७, १५८-६०; स० ३७-छं० १०५-१४; स० ३८-छं० ३-६; स० ४४-छं० १४९-५२, १७६-८९; स० ४७-छं० ९१-६; स० ४८-छं० ८७-९; स० ५०-छं० १६-२४; स० ५२-छं० ९९-१०२; स० ६१-छं० ४३६-४५, ११५३-७, १४४७-९, १४७७-८२, १७३५-४३, २२४९-५१; स० ६२-छं०-५१-६४; स० ६३-छं० ३१-४०, ७३-८, १०४-११; स० ६४-छं० २३९-४५ (मोतीदान), ३१७-८; स० ६६-छं० ६१४-३०, ११३९-५०, ११६५-७१, १२१४-३२, १२५९-६७, १३८९-१४०५, १४८१-३, १५७०-८९; स० ६७-छं० ३-१०, ५८-६३, १२८-३७, ४४२-६; स० ६८-छं० १०२-१८, १२१-४२, १७८-२०९; म० स०-छं० १६-३५, ९५-१०८, ३६१-७७, ४२२-९, ४६४-८०, ५२६-३४, ५९२-६०९, ६४६-६० ।

(स्वं० छं०) VI 'मोत्तिअदामम्' छं० १७५, (छंदो०) VII 'मौक्तिकदाम' छं० १६, (छं० को०) 'मुत्तियदाम' छं० ६, 'वृत्तरत्नाकर', परिशिष्टे 'चतुर्जगणं वद मौक्तिकदाम'; (प्रा० पैं०) II 'मोत्तिअदाम' [४ पयोधर (=जगण), १६ मात्राओं, आदि अंत, में हार (=लघु) और कुल ६४ मात्राओं (के कारण ४ चरण) वाला] छं० १३३-४ (रू० दी० पिं०) 'मोतियदाम' छं० २३ तथा (छं० प्र०) पृ० १५१ में 'मोतियदाम' ४ जगणों का द्वादशाक्षरावृत्तिवाले 'जगती' समूह के अंतर्गत वर्णित है ।

रासो के 'मोतीदाम' छंद निर्दिष्ट छंद ग्रंथों में दिये लक्षणों के अनुकूल हैं ।

यथा—

छंद मोतीदाम— रचि सुभ सोभ सभा प्रथिराज ।
विराजित मेरु जिसे भर साज ।
भुजा सम कन्ह रजे चहुवान ।
तिनैं मुछ राजत है मुह पान । छं० ३४ स० २ तथा—

मोतीदाम— रजे रवि रथ्थ रहस्सिय व्योम ।
धमक्किय बज्जिब गज्जिय गोम ।
जग्यौ रस ताम स पंगह पूर ।
गहग्गह राग बज्यौ सम सूर । छं० १७३५ स० ६१

संशोधन :—स० ५२-छं० ९९-१०२, के चरणों में ४ सगण का नियम होने के कारण उन्हें 'तोटक' छंद संज्ञा देना उचित होगा ।

४५. विराज—

स्थिति:—स०१-छं० ५५-६७, ७०-५, ६४०-७; स० २-छं० ३-६७, १६४-७४, २७६-८१, ४२९-५६, ४५९-६७ (वृजं), ५६६-७०; स०४-छं० २६-३१; स० ५-छं० ६५; स० ७-छं० ११७-२५ (रसावला), १५२-६ (रसावला); स० ८-छं० ५०-२ (रसावल रसावला); स० १०-छं० १९-२४ (रसावला); स० २४-छं० १७०-८०, ४०२-८; स० २५-छं० ४३४-९, ४८७-९, ५७०-३; स० ५१-छं० १३२-४४; स० ५३-छं० १९-२४; स० ५४-छं० २७- ३७; स० ६१-छं० १९७५-८२; स० ६२-छं० ६७-७०; स० ६४-छं० ३०-२, ३२२-८; स० ६६-छं० २७-३२, ४२६-३२ ।

(पिं० छं० सू०) में 'विराज' छंद के बिषय में यह लिखा है—

"(३६) विराजो दिशः ॥५॥

पाद इत्यनुवर्तते । यत्र क्वचिद् वैराजः पाद इत्युच्यते, तत्र दशाक्षरः प्रत्येतव्यः ॥

तथा—

(६५) वैराजौ गायत्रौ च ॥३४॥

यत्र वैराजौ पादौ, पूर्वौ, दशाक्षरौ भवतः, ततौ गायत्रौ, च सापि (१) बृहती ॥ (हलायुध टीका-१. अत्र सर्वत्र वैराज गायत्रशब्दाभ्यां दशाक्षराष्टाक्षरयोर्ग्रहणं बोधव्यम्)"

डॉ० ई० वर्नन अर्नाल्ड ने 'वेदिक मीटर' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में विराज छंद का वर्णन इस प्रकार किया है—

"तीन त्रिष्टुभ पदों से विराज छंद बन जाता है। पृ० ८; तथा—

विराज (त्रिपद त्रिष्टुभ)—यह छंद संयुक्त काल में आयोजित हो चुका था और साधारणतः यह तीन चरणों का होता है।" पृ० २४५

पिंगल परीक्षा करने पर रासो के छंद 'विराज' नहीं सिद्ध होते। उदाहरणार्थ देखिये—

विराज— **घरीयार सारं, परैं कै प्रहारं।**
भए पार पारं, मनो प्रात तारं। छं० ४३५ स० २५

इस छंद के प्रत्येक चरण में ६ वर्ण, १० मात्राएँ और २ यगण (।ऽऽ) हैं। (प्रा० पै०) II छंद ५२ में इस नियमवाले छंद को संखणारी (शंखनारी) कहा गया है। (छं० प्र०) में 'शंखनारी' छंद का एक नाम सोमराजी (=चन्द्रावली) भी मिलता है।

अब एक दूसरा स्थल लीजिये—

विराज— **मयमत्त भिरे, फिरि जुद्ध घिरे।**
तरवारि तरै, तकि घाव करै। छं० ३२२ स० ६४

इनके प्रत्येक चरण में ६ वर्ण, ८ मात्रायें और २ सगण (।।ऽ) है। (प्रा० पै०) II छं० ४३ में इसे 'तिल्ल' छंद कहा गया है जिसके अन्य नाम (छं० प्रं०) में तिल्ला, तिलना, तिल्लना और तिलका दिये हैं।

'शंखनारी' और 'तिलका' ये ही दो प्रकार के छंद रासो में 'विराज' नाम से प्रयुक्त हुए हैं। ये दोनों छंद भिन्न हैं। इनमें अनुरूपता बस इतनी ही है कि ये दोनों गायत्री छंद वर्ग के अंतर्गत हैं तथा छै अक्षरोंवाले वर्णिक वृत्त हैं। रासो में इन छंदों को 'विराज' नाम देना भ्रम या असावधानी से नहीं वरन्, प्रक्षेपकर्त्ताओं की छंद-अज्ञानतावश हुआ है।

४६. श्लोक—

स्थिति :—स० १-छं० ७७, ८३, ५३२, ६६६, ७४६-७, ७५०; स० २-छं० ५१४; स० ५-छं० ८४; स० ६-छं० १२७; स० ७-छं० ४; स० १२-छं० १२५, २४५; स० २२-छं० २२; स० २४-छं० ४२६-३०; स० २५-छं० १२, २८१; स० ४१-छं० २६; स०. ४५-छं० ५२, ५७, ६६, १६२; स० ४६-छं० २७; स० ४७-छं० ३, १५; स० ४८-छं० १०१; स० ५०-छं० ३८, ४६; स० ५७-छं० ७२, ८८, ६२ १५५; स० ५८-छं० १५५; स० ६१-छं० ५, ४६८, ६२१, ११५१, १२०८, १२५५, १२७२, १३४३, १४०६, १५५०, १८२५; १८५३; स० ६२-छं० ३४; स० ६४-छं० ३२०; स० ६६-छं० १२३-४, १५३०-१; स० ६७-छं० ४२३, ५२२।

(छं० प्र०) पृ० १२८ में 'श्लोक' छंद का नियम इस प्रकार दिया गया है :—

"जिसके चारों पदों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठाँ वर्ण दीर्घ हो और सम पदों में सातवाँ वर्ण भी लघु हो इनके अतिरिक्त अन्य वर्णों के लिए कोई नियम न हो उसे 'श्लोक' कहते हैं। वर्णवृत्तों में यह अपवाद है।

(पिं० छं० सू०) के अनुसार यह लौकिकी अनुष्टुप छंद है, जिसका प्रमाण ८ वर्णों का दिया गया है।

रासो के 'श्लोक' छंद उपर्युक्त नियमों के अनुकूल हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

श्लोक— उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया। छं० ८३ स० १,
पूर्वं शापं समं दृष्ट्वा स्वामि वचन प्रीतये।
क्रोध मुक्तरचाविनाशी पीडितो गजराडयम्। छं० ४१४ स० २,
शिव शिवा उपास्य राजन् वीर्य देवन कामयम्।
कविचंद महावाणी प्रगट रूपेण विस्मितम्। छं० ४ स० ७,
कोटि सक्र विलासस्य कोटि देव महावरं।
इंद्र ध्यान समो सिंधो, पंचाननस्य राजये। छं० १६२ स० ४९

तथा— न मे न वध्यते कर्मं, कर्मंन वंध प्रासिकः।
यं कर्मं क्रियते प्रानी सो प्रानी तत्र गच्छति। छं० ३२० स० ६४

रासो में प्रयुक्त संपूर्ण 'श्लोक' छंद संस्कृत में हैं। इनमें यदि कहीं एक आध वर्ण की कमी या अधिकता दिखाई देती है तो वह लिपिकारों के भ्रम से आई जान पड़ती है।

४७ त्रोटक—

स्थितिः—स० १-छं० ११४-५; १२१-२, ५२७-३१, ५५२-३; स० २-छं० ३४२-६, ४२३ (चौपाई, त्रौट्टक), ४८४-७ (त्रौटिका, त्रोटकः); स० ५-छं० ६०-३; स० ८-छं० ६१-८ (तोटक); स० ६-छं० १५८-६६; स० १२-छं ३४-७, ४३, ४५-८, २३५; स० १३-छं० १२३, १२५-७; स० १४-छं० ४६-५१, ६६-१०१; स० १८-छं० ६६-१०२; स० १६-छं० ५-७, १६३-५; स० २१-छं० ६८-६२; स० २४-छं० १८२-६६, ४२१-२, ४४०-५; स० २५-छं० ६१-४, २२६-३५, ३०२-५, ५०५-१८, ५२८-३६, ६६२; स० २८-छं १०३-६; स० २६-छं० १५-२०; स० ३१-छं० १५-४६, ५०-६१, ६५-७, ७३-८४, १४६-५३; स० ३२-छं० २६-६; स० ३६-छं० २१३-६; स० ३७-छं० ५४-६; स० ३८-छं० ८-१४; स० ४४-छं ६६-७०, १६३-८; स० ४५-छं०१६४-७; स० ४६-छं० ५८-६५ (त्रोटका); स० ४७-छं०२४--६; स० ४८-छं० १६६-२०२; स० ५१-छं० ८५-६३; स० ५५-छं० ७५-८४, १०१-५, १३४-४०; स० ५६-छं० ३३-४२, ५४-६०, ७७-८५, स० ५७-छं० १७७-६०; स० ५६-छं २३-३१, ३३-५८ (तोटक); स० ६१-छं० ५४-६, ६३४-४२, ७३६-४१, ११६०-४, ११६६, १६२५-७, १६४०-६, १७४८-५५, १६१६-२३, १६४१-७, २२५४-६१, २३५० -८; स० ६२-छं० ११-३, ७६-८, ८३-७, १२६-४०; स० ६३-छं० १८-२४, ६४-१०२; स० ६४-छं० ३८४-६३ (त्रोठक); स० ६६-छं० ६३४-४२, ८२६-३३, १०३३-४, १४४३-५, १४५८-६४, १५६६-८, १६७१-४; स० ६७-छं० ३४३-४; म० स० छं० ५५०-६८, ६६४-८१।

(पिं० छं० सू०) पृ० १८२-३ में 'तोटक' ४ सगण और पद के अंत में यति वाला वर्णित है; (क० द०) IV 'तोडय' १२ (४५) में ४ सगणवाला; (छं० को०) छं० ७

में 'तोटक' सगण, १६ गुरु, ३२ लघु, ४८ मात्राओं और ४८ वर्णों वाला; (प्रा० पै०) II छं० १२६ में 'तोटक' ४ सगण, और १६ मात्राओं पर विरामवाला; (रू० दी० पिं०) छं० २४ में 'त्रोटक' ४ सगण, १२ वर्ण और १६ मात्राओं के नियमवाला तथा (छं० प्र०) पृ० १५० में 'तोटक' (स स स स) द्वादशाक्षरावृत्ति वाले 'जगती' समूह के अंतर्गत वर्णित है।

रासो के 'त्रोटक' (तोटक) छंद उपर्युक्त लक्षणों के अनुकूल हैं। यथा —

त्रोटक— नृप छंडि प्रजंक प्रजंक पला।
मुह मुंदिरु मानक मोद कला।
नृप दीन हल्यौ बहु चित्त चितं।
सुह ल्या जनु पोंनय पीप पतं। छं० ११४ स० १

स० २५-छं० २२६ में 'तोटक' को अगण रहित ४ सगणों वाला छंद कहा गया है। स० ४७-छं० २४, स० ६१-छं० ५४ और स० ६२-छं० १२६ में इस छंद के नियमों का उल्लेख है।

संशोधन —

१. स० २-छं० ४२३ 'चौपाई' छंद नहीं है जैसा कि कुछ प्रतियों में पाठ है। यह वास्तव में 'त्रोटक' छंद ही है।

२. स० १२-छं० २३५, इस एक पंक्ति ने कालांतर में बनते-बिगड़ते लगभग 'तोटक' का रूप ले लिया है परन्तु वास्तव में यह इससे पूर्व प्रयुक्त हुए 'पारक' छं० २३४ का चौथा चरण है और संशोधन करके उसी में मिलाया जाना चाहिये।

३. स० २१-छं० ६८-६२, इन छंदों में कहीं 'मोतियदाम' के लक्षण हैं और कहीं 'तोटक' के। इन्हें पृथक करना आवश्यक होगा।

४. स० ३१-छं० ७३-८४, ये 'मोतियदाम' छंद हैं।

५. स० ४५-छं० १६४-७, 'तोटक' और 'मोतियदाम' छंद मिले हुए हैं।

६. स० ६१-छं० ६३४-४२ 'मोतियदाम' छंद हैं तथा छं० १६१६-२३ 'तोटक' और 'मोतियदाम' मिश्रित हैं।

७. स० ६२-छं० १२६-४०, स० ६४-छं० ३८४-६३, म० स०-छं० ५५०-६८, 'तोटक' और 'मोतियदाम' छंद मिश्रित हैं।

८. स० ६६-छं० ८२६ में 'तोटक' छंद का नियम अशुद्ध दिया हुआ है।

४८. लघु त्रोटक –

स्थिति —स० २५-छं० ५६१-७।

'लघु त्रोटक' नाम का कोई छंद सहायक ग्रंथों में नहीं मिलता। रासो के इन छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में दो सगण (।।ऽ) और ६ वर्ण हैं। यथा —

**छंद लघु त्रोटक—दोउ बीर बड़े, लगि लोह अड़े।
घट घाइ पड़े, भुर होइ भड़े। छंद ५६४**

सस केश डफै, तन सों तड़फै।
फिफरा फड़कै, कटि सों कड़कै। छं० ५६५ स० २५

(प्रा० पै०) II में इन लक्षणोंवाले छंदों को 'तिल्ल' बताया गया है देखिये—

पिअ तिल्ल धुअं सगणेण जुअं।
छअ वण्ण पओ कल अट्ठ धओ। छं० ४३ तथा उदा० छं० ४४:

(रु० दी० पिं०) में इसे 'तिलका' कहा गया है। यथा—

अथार्द्ध त्रोटक॥ तिलका नाम छंद॥
सगणा उचरैं गण दोय धरैं।
षट अंक गहै तिलका सु कहै। छं० ३४ तथा—

(छं० प्र०) पृ० १२१ में दो सगण वाले 'तिलका' छंद को षड्क्षरावृत्ति वाले गायत्री समूह के अंतर्गत वर्णन करते हुए इसके अन्य नाम तिलना, तिल्ला, और तिल्लना भी बतलाये गये हैं।

अस्तु, रासो के प्रस्तुत छंदों को 'लघु त्रोटक' के स्थान पर 'अर्द्धत्रोटक' कहना अधिक उचित होगा जैसा कि (रु० दी० पिं०) छं० ३४ में भी कहा है क्योंकि 'त्रोटक' छंद ४ सगणों का होता है और ये छंद २ सगणों वाले हैं। परन्तु छंदशास्त्रकारों ने इसे 'तिल्ल' या 'तिलका' नाम दे रखा है, अतएव उसी का व्यवहार उचित होगा।

संशोधन—

स० २५-छं० ५६१-२ के प्रत्येक के चरणांत में अंत का वर्ण संयुक्त होने के कारण उससे पूर्व का दीर्घ गिनने से ये छंद (सगण+यगण) वाली एक नयी छंद योजना के हुए जाते हैं, अतएव इनमें संशोधन वांछित है।

छं० ५६३, पहिला चरण—'जुग्गनि' के स्थान पर 'जुगिनी,'
छं० ५६६, दूसरा ,, —'ढी' ,, ,, दो लघु का शब्द होना चाहिये,
छं० ५६७, चौथा ,, —'नृप' ,, 'त्रप' जो रासो में प्रत्युक्त भी हुआ है।

४९. विज्जुमाला—

स्थिति—स० ६-छं० १६२-२०२ (छंद उधोर); स० ४५-छं० २६-३७ (विज्जुमाल); स० ६१-छं० १७७८-८७, १८३२-४५ (विज्जुमाल)।

(पिं० छं० सू०) 'विद्युन्माला' पृ० १५८, (क० द०) IV 'विज्जूमाला' छं० ८ (१३), (प्रा० पै०) II 'विज्जुमाला' छं० ६६-७ और (छं० प्र०) पृ० १२५ में इस अनुष्टप छंद समूह वाले अष्टाक्षरवृत्त को दो मगण+एक कर्ण [म म ग ग (या) SSS+SSS+SS] अथवा ८ गुरु वर्णों वाला माना गया है।

स० ६-छं० १६२-२०२ को रासो की कुछ प्रतियों में 'विज्जुमाला' और कुछ में 'उधोर' लिखा गया है। इन छंदों में 'विज्जुमाला' छंदों के लक्षण नहीं पाये जाते वरन् रासो के मात्रिक 'उधोर' छंदों के अनुसार मिलते हैं, अतएव इन छंदों को 'उधोर' प्रकरण में रखना चाहिए।

स० ४५ और स० ६१ के छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण हैं और चरणांत में गुरु लघु (ऽ।) है। इसके अतिरिक्त इनमें न मात्राओं की समानता है और न गणों की। अस्तु, छंद-ग्रंथों का अनुशासन इन्हें 'विज्जुमाला' कहलाने का अधिकार नहीं देता। अब समस्या यह है कि आखिर इन छंदों को कौन-सी संज्ञा दी जाय?

इन्हें अनुष्टुप छंद-समूह के अंतर्गत रखने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। इसी समूह का इन्हें एक नये प्रकार का छंद समझना चाहिए। इनके नामकरण का श्रेय पृथ्वीराज रासो के किसी आगामी संस्करण के विद्वान् संपादकों पर छोड़ना ठीक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत छंदों के कुछ उदाहरण देखिये—

विज्जुमाला — **किलकि किलकि कूक, वज्ज दुलु गन भूक।**
तजि बज्ज बथ्थन थूर, भज्जि सुरगन भूर। छंद २९
कहकि कुंभ कनंक, चिहूं दिग्ग वर नंक।
मुरि मुरि मेर षंड, जुरि छुरि जूर मंड। छंद ३० स० ४५ तथा—

विज्जुमाला— **पष्षर सब्बर सार, प्रगटि उरनि पार।**
सनमुष पंग सेल, सहित सूरन ठेल। छंद १७८२
बहिग बिष्षम सार, प्रगटि उरन्नि पार।
धार धार लगि भार, धरनि धर सुद्दार। छंद १७८३ स० ६१

५०. मलया—

स्थिति—स० १-छं० २५१।

रासो में केवल एक स्थल पर इस नाम का एक छंद निम्न रूप में मिलता है—

मलया— **कारयं जग्य बंभान निंमानयं।**
रच्चियं कुंड षंडं थिरं थानयं।
आसनं दिव्य देवान आह्वानयं।
आसुरं कीन उच्चिष्ट ऊथानयं। छंद २५१ स० १

सहायक छंद-ग्रंथों में इस नाम का छंद नहीं है। पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि इसके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण और ४ रगण हैं।

(पिं० छं० सू०) पृ० १८९ में उपर्युक्त लक्षणोंवाले छंद को 'स्त्रग्विणी' कहा गया है तथा (प्रा० पै०) II छं० १२७-८ में इसे 'लच्छीहरा' (∠लक्ष्मीधर) नाम दिया गया है। (छं० प्र०) पृ० १४९ में 'स्त्रग्विणी' छंद के अन्य नाम लक्ष्मीधर, शृंगारिणी, लक्ष्मीधरा और कामिनी-मोहन दिये गये हैं।

अस्तु, रासो का 'मलया' छंद प्राचीन 'स्त्रग्विणी' छंद है जिसका रासो रचना-काल में 'मलया' नाम होना असंभव नहीं प्रतीत होता।

५१ रसावला—

स्थिति—स० १-छं० ६४९-५२; स० २-छं० ५३५-४१; स० १२-छं० ३६२, ३८९-९१; स० १३-छं० ५९ ६१; स० १५-छं० २३-३०; स० १९-छं० २००-४; स० २४-

छं० ७७-८२, २०६-२७; स० २५-छं० ३८६-६४; ४१३-८, ६५६-६, ६६५-७०२, ७०७-१६; स० २६-छं० ६५-७१; स० २७-छं० ८८-६८, १२६-३५; स० २८-छं० २८-३७; स० ३१-छं० १११-७, १३२-६; स० ३२-छं० ६२-४; स० ३६-छं० ७२-७; ७६-८३, २०४-१०; स० ३६-छं० ७२-६, ८५-६१; स० ४२-छं० ३०-६, स० ५३-छं० ११०-४; स० ४४-छं० १२८-३७; स० ४८-छं० १८७-६१; स० ५२-छं० ६०-६, १११-५; स० ५६-छं० ६२-७; स० ६१-छं० ६७७-६, १०६३-११००, १११७-२३, १२३४-८, १४१४-६ , १६५१-७, १६७१-६, १६८३-६३, १७२३-३२, २०२८-३५, २११३-८, २१८१-६५; स० ६२-छं० ३६-४१; स० ६६-छं० १०१४-६, १०२३-६, १०४३-५४, १०६०-५, ११८८-६६, १२०५-११, १४१७-२२; स० ६७-छं० १६६-७१; स० ६८-छं० ६४-१००; म० स०-छं ३६४-४०२, ६८३-६२, ७१६-२५, ७७६-८६ ।

उपलब्ध छंद-ग्रंथों में इस नाम का कोई छंद नहीं मिलता। परीक्षा से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में ६ वर्ण और २ रगणों (ऽ।ऽ) का नियम है।

(प्रा० पै०) II छं० ४५ में १० मात्राएँ, ६ वर्ण और २ जोहा (=रगण) वाले छंद को 'बिजोहा' नाम दिया गया है। (र० दी० पिं०) छं० ३५ में ६ वर्ण और २ रगण वाले छंद को 'विमोहा' कहा गया है। (छंद प्र०) पृ० १२१ में २ रगण वाले छंद को 'विमोहा' कहा है तथा इसके अन्य नाम जोहा, विजोहा, द्वियोधा और विज्जोदा भी दिये गये हैं।

अतएव रासो के इन छंदों को 'विमोहा' नाम देना उचित होगा। किसी काल में इनका 'रसावला' नाम होना भी सम्भव है। उदाहरणार्थ दो छंद देखिये --

रसावला -- उत्तमल्लंभरी, अत्तिधारं धरी।
जानि मत्त करी, होय हायं परी। छं० ५३५
घाय बज्जे घरी, गज्जि भद्दों भरी।
मच्छ फल्लं टरी, भ्रम्म भ्रम्मं धरी। छं० ५३६ स० २

इस छंद का प्रयोग रासो के युद्ध वर्णनों में पाया जाता है। कहना असंगत न होगा कि रस विशेष की निष्पत्ति में इस छंद से यथेष्ट सहायता मिली है।

२५. नाराच—

स्थिति--स० ६-छं० १७०-८८ (लघु नाराच, नराज); स० १२-छं० २२८-३४१; स० २१-छं० ६४-६; स० २५-छं० १३१-५२, ३१०-७, ३२३-३०, ४६३-८; स० ३०-छं० ११-२३ (नराज); स० ३३-छं० ५७-६३; स० ३६-छं० १६१-८७ (नराच); स० ४५-छं० ७८-८६ (नराज), २०७-६ (नराज); स० ४८-छं० २-५ (नराज); स० ५०-छं० १६-२०; स० ५५-छं० १३०-२ (नराज); स० ५७-छं० ११६-२४ (नराज); स० ५८-छं० २३६-४५; स० ५६-छं० ५-११ (नराच; स० ६१-छं० ४३२-४, ८४८-५८ (नराज); म० स०-२६६-८३।

'नाराच' और 'नराच' छंदों में भेद है। (पिं० छं० सू०) पृ० २२६ में १८ वर्णों और [न न र र र र (या) ।।।+।।।+ऽ।ऽ+ऽ।ऽ+ऽ।ऽ+ऽ।ऽ] गण योजना वाले छंद को 'नाराचक' नाम दिया गया है तथा (छं० प्र०) पृ० १६१ में अष्टादशाक्षरावृत्ति वाले 'धृति' समूह में ६-६ वर्णों पर यति वाले इस छंद को 'नाराच' कहा गया है। (प्रा० पै०) II छं० १६८-६ में (ज र ज र ज ग) गण योजना और १६ वर्ण वाले छंद को 'णाराच' (नराच) कहा गया है तथा (छं० प्र०) पृ० १७७-८ में इसी गण योजना वाले छंद को 'पंच चामर' नाम दिया गया है और वहीं उसके अन्य नाम 'नराच' और 'नागराज' भी बतलाये गये हैं; (स्वं० छं०) I छं० ४१ और (क० द०) IV 'अष्टि' ६४-६ में (।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ) इस लघु गुरु (।ऽ) योजना और १६ वर्ण वाले छंद को 'नराय' (नराच) कहा गया है।

नोट– १. (वृ० जा० स०) IV छं० ५८ में 'नाराचक' छंद को (।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ) इस लघु गुरु क्रम से ८ वर्णों वाला मात्र बतलाया गया है जबकि इन लक्षणों वाले छंद को (पिं० छं० सू०) पृ० ६६, (क० द०) IV ८ (१७), (प्रा० पै०) II छं० ६८-६, (रू० दी० पिं०) छं० ३० और (छं० प्र०) पृ० १२६ में इसे क्रमशः प्रमाणी, पमाणिया, पमाणिआ, प्रमानिका और प्रमाणिका नाम दिया गया है।

२. (प्रा० पै०) II छं० १५८-६ में 'चामर' छंद १५ वर्ण और २० मात्राओं का है। (छं० को०) छं० १५ में 'पंच चामर' छंद २० वर्ण और ३० मात्राओं का है।

इस प्रकार देखते हैं कि 'नराच' और 'नाराच' दो सर्वथा भिन्न छंद हैं न कि एक छंद रूप के दो नाम।

रासो के छंदों की परीक्षा से ज्ञात होता है कि ये 'नराच' छंद हैं न कि 'नाराच' जैसा कि इन्हें अनेक छंदों में सम्बोधित कर दिया गया है। दो उदाहरण देखिये –

नाराज — हियंत सोधि राजसू जु राज जग्गि जोगयं।
सबल्ल राज साम दंड भेदि बंध भोगयं।
सु दान मान अप्पि पान दैवयं न बोधयं।
सवर्त वत्तमान रे अनेक निद्धि सोधयं। छं० २ स० ४८ तथा—

नराज उग्रं अलाप मद्धिता सुरं सु ग्राम पंचमं।
षडंग तप्प मूरछं मनुं ते मान संचमं।
निसंग थारंतं अलप्य जापते प्रसंसई।
दरस्स भाव नूपुरं इतन्न तान नेतई। छं० ८४८ स० ६१

इन छंदों की दी हुई उपर्युक्त स्थिति तालिका में से स० ६, २१, २५, ३०, ३३, ३६, ४५, ५७, ५६ और महोबा समय के छंद 'अर्द्ध नराच' या 'प्रमाणिका' हैं और स० १२, २१, २५ (छं० ३१०-७), ४५ (छं० २०७-६; छं० २०८-६) को एक छंद संख्या के अंतर्गत होना चाहिए, अन्यथा दोनों छंद अधूरे ठहरते हैं। स० ४८, ५०, ५५, ५८ और ६१ के छंद 'नराच' हैं।

'अर्द्ध नराच' या 'प्रमाणिका' और 'नराच' छंदों की पहिचान के लिए मुख्य नियम यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'अर्द्ध नराच' में ८ वर्णों के बाद एक यति निश्चित है जो कि 'नराच' में नहीं मिलेगी।

रासो के इन छंदों को उचित संज्ञा दे लेने के उपरांत मात्रा और वर्ण की अनेक भूलों का सामना करना होगा परन्तु उनके संशोधन में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

५३. नाराचा —

स्थिति—स० १७-छं० ५०-६८।

उपलब्ध छंद-ग्रंथों में इस नाम का कोई छंद नहीं मिलता। रासो के इन छंदों की परीक्षा करने पर पता लगता है कि चार चरणों वाले इस छंद के प्रत्येक चरण में एक जगण एक रगण और अन्त में एक लघु गुरु (।ऽ।+ऽ।ऽ+।ऽ) के क्रम से १२ मात्राएँ हैं। उदाहरण स्वरूप एक छंद दिया जाता है—

नाराचा— **कपोल लोल हल्लते, चबेल सुंड झल्लते।**
गिलोल चोट लग्गतें, विरुष ओट भग्गतें। छ० ६२ स० १७

(पिं० छं० सू०) 'प्रमाणी' पृ० ६६, (क० द०) IV (वसू लगा पमाणिया) 'प्रमाणिका' ८ (१७), (प्रा० पै०) II 'प्रमाणिआ' छंद ६८-६, (रू० दी० पिं०) 'प्रमानिका' छंद ३० और (छं० प्र०) छंद १२६ में दिये 'प्रमाणिका' नामक छंद में रासो के 'नाराचा' छंद के लक्षण घटित होते हैं। (छं० प्र०) में 'प्रमाणिका' के दूसरे नाम 'प्रमाणी' और 'नगस्वरूपिणी' भी दिये गये हैं। (पिं० छं० सू०) और (प्रा० पै०) में इस 'प्रमाणिका' छंद के लिये निरंतर लघु गुरु वाले आठ वर्णों का नियम बतलाकर आगे कहा गया है कि यदि १६ वर्णों तक यह (लघु गुरु का) नियम प्रति चरण में हो तो उसे 'नराच' छंद जानना चाहिए।

यदि रासो के इन छंदों के प्रति दो चरणों को क्रमशः एक चरण मान लें और दो छंद मिलाकर चार चरणों वाला एक छंद बना दें तो अवश्य ही 'नराच' छंद हो जाता है। बहुत सम्भव है कि किसी समय में ये छंद इसी रूप में रहे हों और तभी इन्हें 'नराच' संज्ञा दी गई हो, यह नाम तो चला आ रहा है परन्तु छंद के रूप में परिवर्तन हो गया है। साथ ही 'नराच' का 'नाराचा' हो जाना कठिन नहीं है।

संशोधन—

स० १७-छंद	५२,	तीसरा चरण	'तानव' के	स्थान पर	तनाव,
छंद	५४,	,,	'सिंघासनं,	,,	सिंघासनं,
छंद	५५,	पहिला ,,	'कुंमकुमा,	,,	'कुमंकुमा',
छंद	५७,	तीसरा ,,	'सामंत'	,, ,,	'समंत',
छंद	५८,	पहिला	'से'	,, ,,	'सु' या 'स',
छंद	६६,	तीसरा	'ता'	,, ,,	'ति' या 'सु'
छंद	६७,	चौथा	'संभारि'		'सँभारि',
छंद	६८,	,,	'भोज्जंन'	,, ,,	'असन्न',

४४ वृद्ध नाराच --

स्थिति--स० २-छंद ८३-६१, १४५-५२, ३२६-३५, ४१५ (वृद्ध नाराज); स० १२-छंद ६२-५;स० २१-छंद ५०-४; स० ६१-छंद ८८३-६, १०८६-६० (वृद्ध नाराज), ११७७-८५ (वृद्ध नराच), १६६०-३ (वृद्ध नाराज), २३६५-७१; स० ६७ छंद १४४-८।

सहायक छंद ग्रंथों में इस नाम का छंद नहीं मिलता। परीक्षा करने से पता लगता है कि इसके प्रत्येक चरण में १६ वर्ण हैं। लघु गुरु मात्राओं का यह (।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ+।ऽ) क्रम है जिसे इस (।ऽ।+ऽ।ऽ+।ऽ।+ऽ।ऽ+।ऽ।+ऽ) गण योजना में भी रखा जा सकता है।

इन लक्षणों वाले छंद को (स्वं छं०) I छं० ४१, (क० द०) IV अष्टि १६ (६४-६) और (छं० प्र०) पृ० १७७-८ में 'पंच चामर' कहा गया है परन्तु (प्रा० पै०) II छं० १६८-६ में इसको 'णराच' (नराच) छंद संज्ञा मिली है। (छं० प्र०) में वहीं 'पंच चामर' के अन्य नाम 'नराच' और 'नागराज' भी उल्लिखित हैं। (छं०को०) छं० १५ का 'पंच चामर' २० वर्ण और ३० मात्राओं का है और (प्रा० पै०) II छं० १५८-६ का 'चामर' १५ वर्ण और २० मात्राओं का।

अस्तु, रासो के इन 'वृद्ध नाराच', 'वृद्ध नराच,' या 'वृद्ध नाराज' छंदों को नराच, नागराज या पंच चामर नाम दिया जाना उचित होगा। उदाहरणार्थ रासो के दो छंद देखिये--

छंद वृद्ध नाराच --
परट्ठि सेन सज्जि बीर बज्जए निसानयं
नाराच छंद चंद जंपि पिंगलं प्रमानयं
गजं गजं हिलं मलं चलाचलं गरिठ्ठयं
कसं मसं उकस्सि सेस कच्छ पिठ्ठ उठ्ठयं। छंद ५० स० २१

वृद्ध नाराच--
हयं गयं अनेक भांति जोध जोध राजयं।
म्लेच्छ दुष्ट तेज ताम ता कुरान साजयं
पढंत मीर पारसी गियान सामि भ्रम्मयं
नमंत चंद बीथ चंद पीर सीस नामयं। छंद १४४ स० ६७

संशोधन —

रासो के स० २ और स० १२ के छंद 'प्रमाणिका' के आधार पर आयोजित हैं। सभा के संपादकों ने पृ० २२२ पर लिखा है—"वृद्ध नाराच और लघु नाराच छंदों में अभी तक भेद नहीं है और इनमें प्रमाणिका छंद घटता है।" परन्तु यह कथन भ्रमपूर्ण हो गया है। मात्रा और गण योजना की परीक्षा से दोनों प्रकार के छंदों में भेद सिद्ध होता है। 'लघु नराच' (या अर्द्ध नराच) छंद 'प्रमाणिका' है और 'वृद्ध नाराच' छंद 'नराच' (या पंच चामर) है। अतएव उपर्युक्त दोनों समय के छंदों को या तो 'प्रमाणिका' लिखा जाना चाहिए या १६ वर्णों का एक चरण करके और ऐसे चार चरणों का एक छंद मानकर उन्हें संख्या बद्ध करना चाहिए।

५५. अर्द्ध नराज–

स्थिति :—स० ४२-छं० ५३-८; स० ६१-छं० ६६२-७१२

इन छंदों के प्रत्येक चरण में ८ वर्ण हैं तथा लघु गुरु का यह (ꞁS+ꞁS+ꞁS+ꞁS) क्रम है। देखिये—

अर्द्ध नराज— बजान बज्जयं घनं, सुरा सुरं अनंगनं।
सदान सद्द सागरं, समुद्दयं पटा झरं। छं० ५३ स० ४२,
विहिंग भंग जो पुरं, चलंत सोभ नूपुरं।
अनेक भांति सादुरं, अवाढ सोर दादुरं। छं० ६६२ स० ६१

इस प्रकार के लक्षणों वाले छंद को (पिं० छं० सू०) 'प्रमाणी' पृ० ६६, (क० द०) IV 'पमाणिया' छं० ८ (१७), (प्रा० पै०) II 'पमाणिआ' छं० ६८-६, (रू० दी० पिं०) 'प्रमानिका' छं० ३० और (छं० प्र०) पृ० १२६ में 'प्रमाणिका' कहा गया है जो अष्टाक्षरावृति वाले अनुष्टुप समूह के अंतर्गत है। (पिं० छं० सू०) और (प्रा० पै०) में आगे यह भी कहा गया है कि 'प्रमाणिका' छंद का दूना 'नराच' छंद होता है जिसे (छं० प्र०) में 'पंच चामर' नाम भी दिया है।

प्रतीत होता है कि 'नराच' छंद के लक्षणों को ध्यान में रख कर उसके आधे को रासो में 'अर्द्ध नराज' संज्ञा दे दी गयी है। वास्तव में 'अर्द्ध नराच' नाम शुद्ध है।

५६. लघु नाराच या लघु नाराज (लघु नराज)—

स्थिति :—स० २-छं० ११३-२६, १७६-८०; स० ५-छं० ६६-७८; स० ७-छं० ३५-५४; स० २८-छं० ७५-८०; स० ५७-छं० १४३-५२; स० ६१-छं० ३३६-४७, ७६७-६, १३७६-८५, १८७५-६८, २३१६-२३, २५१४-२१; स० ६२-छं० २२-५; स० ६३-छं० १२८-३८; स० ६६-छं० ४६-६१; स० ६७-छं० १४६-६३, २५६-६५।

रासो के ये छंद परीक्षा करने पर 'प्रमाणिका' छंद सिद्ध होते हैं जिसका उल्लेख 'नाराचा' और 'अर्द्ध नाराच' छंदों की विवेचना में किया जा चुका है। इनके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण और लघु गुरु का यह (ꞁS+ꞁS+ꞁS+ꞁS) क्रम है। कतिपय छंद देखिये—

लघु नाराच— चढ्यौ सहाब सज्जियं, निसान जोर बज्जियं।
मिल्यौ सु साह उम्मरं, सजें अनूप संभरं। छं० ७५ स० २८,

लघु नराज— कविंद बाज नष्षयं, नरिंद चष्ष दिष्षयं।
मनो नछित्र पातयं, हू अंकि मद्धि राजयं। छं० १८७५ स० ६१,
बाराह राह रोकयं, बधिक्कयं विलोकयं।
हस्ति दूब अंकुरं, षनंत दढ्ढ बंकुरं। छं० १२८ स० ६३,
संपत्त भट्ट गज्जनं, विभूति घट्ठ गज्जनं।
मुकट्ट जट्ट बंधयं, प्रगट्ट रूप सिद्धयं। छं० १४९ स० ६७

संशोधन—

स० ५७-छं० १४३-५२, वास्तव में 'लघु नराच' या 'अर्द्ध नराच' छंद नहीं हैं। उनके प्रत्येक चरण में १० वर्ण हैं और [स ज ज ग (या) ꞁꞁS+ꞁSꞁ+ꞁSꞁ+S] के गण नियम से १४ मात्रायें हैं। इन लक्षणों वाले छंद को (प्रा० पै०) II छं० ६०-१ और

(छं० प्र०) पृ० १३३ में क्रमशः संजुता, संयुत (या संयुक्ता) कहा गया है। उचित होगा कि इन छंदों को यथार्थ नाम दे दिया जाय।

५७. चावर नाराच—

स्थितिः—महोबा समय-छं० २८८-९।

रासो के केवल एक स्थल पर निम्न रूप में इस नाम के दो छंद मिलते हैं।

चावर नाराच— कीनौ निसानं मद्द पानं विहसि सामँत सूरयं।
मरदन कार ए अंग न्हाये पुनि सु ठाये पूरियं।
उत सुनिय अपछर करिय सुछर अंग मंजन कीजयं।
बहु फिरै हरषी बाल सुरषी नैन अंजन दीनयं। छं० २८८
हरषे कपाली षुले ताली रुंड माली पूरिनै।
चौसठि अंगं वधि उछंगं पान पत्रं नूरनै।
पलचरा धावै गीत गावै चित्त आवे मंगलं।
चहुआन चँदेलं षेल पेलैं मिले मेल उदंगलं। छं० २८९

उपर्युक्त छंदों की पिंगल परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनमें वर्णों का क्रम नहीं है और प्रत्येक चरण में १६-१२ की यति से २८ मात्रायें हैं तथा अंत में रगण है। (छं० को०) 'गीयउ' छं० १८, (प्रा० पै०) I 'हरिगीअ' छं० १९१-२, (रू० दी० पिं०) 'गीया' छंद और (छं० प्र०) 'हरिगीतिका' छंद पृ० ६९ में प्रस्तुत छंदों के लक्षण वस्तुतः मिलते हैं। अस्तु, रासो के इन छंदों को २८ मात्राओं वाले 'यौगिक' छंद समूह के अंतर्गत 'हरिगीतिका' छंद मानना उचित होगा।

इन छंदों को दिया हुआ 'चावर नाराच' नाम भी किसी न किसी भ्रमवश आ गया है। 'चावर नाराच' नाम अनुपयुक्त है क्योंकि 'चावर' (चामर) और 'नाराच' दो भिन्न छंद हैं। (छं० प्र०) पृ० १७७-८ में 'पंच चामर' के नाम 'नराच' और 'नागराज' पाये जाते हैं। प्रतीत होता है कि इन्हीं से 'चावर नाराच' नाम की सृष्टि हुई है। 'चामर' और 'नाराच' छंदों के मेल से बना हुआ कोई संयुक्त छंद भी सहायक ग्रंथों में नहीं पाया जाता जिससे अनुमान किया जा सके कि इसी कारण इस छंद को 'चावर नाराच' नाम मिला है। (स्वं० छं०) I छं० ४१, (क० द०) IV छं० १६ (६४-६) और (छं० प्र०) पृ० १७७-८ में 'पंच चामर' १६ वर्णों और ८ लघु गुरु क्रम का वृत्त माना गया है परन्तु (छं० को०) छं० १५ में 'पंच चामर' को ३० मात्राओं और २० वर्णों वाला कहा गया है।

संशोधन—

छं० २८८,	तीसरा चरण	–	'सुछर' के स्थान पर 'सुच्छर'।
छं० २८९,	दूसरा ,,	–	'चौसठि' ,, ,, 'चौसठ्ठि',
	चौथा ,,	—	चँदेलं ,, ,, 'चँदेल'

५८. युक्त—

स्थितिः—स० ६२-छं० ७४।

यह छंद निम्न रूप में मिलता है—

युक्त— आसीनी सज्जानी वित्थानी उल्लानी निरधानी ध्यानी उरथानी ।
वय न्यानी सम्मानी अलसं जु तानी उद्दित न्यानी सषि आनी ।
पारस संजोइय मुष मुष मोहिय संतोहिय ... ... ।
... ... ।
छं० ७४ स० ६२ ।

इस अपूर्ण छंद की पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि इसके पहले चरण में २० वर्ण और ४० मात्रायें हैं तथा उसका रूप इस प्रकार है—

[SSS+SSS+SSS+SSS+||S+SSS+||S+S=म म म म स म स ग];
दूसरे चरण में २० वर्ण और ६५ मात्रायें हैं तथा रूप इस प्रकार है—
[||S+SSS+S||+S|S+SS|+|SS+||S+S=स म भ र त य स ग];
तीसरे अपूर्ण चरण में १८ वर्ण और २४ मात्रायें हैं तथा उसका रूप यह है—
[S||+SS|+|||+||S+||S+S||......=भ त न स स भ......; और चौथा चरण लुप्त है ।

इस परीक्षा के फल का निष्कर्ष यह है कि प्रस्तुत छंद केवल अपूर्ण ही नहीं वरन् अति ही बिगड़े हुए रूप में है। सहायक छंद ग्रंथों में इन लक्षणों वाला कोई छंद नहीं मिलता। (छं० प्र०) पृ० १३१ में 'युक्ता' या (भुजग-शिशुसुता) नामक वार्णिक छंद ६ वर्णों का और ३ गणों [न न म=|||+|||+SSS=१२ मात्राओं] वाला है जिससे रासो का 'युक्त' छंद मेल नहीं खाता ।

५९. वृद्ध भ्रमरावली—

स्थिति—स० ५६-छं० २०४-५ ।

रासो में केवल एक स्थल पर इस नाम के दो छंद मिलते हैं जो निम्न रूप में दिये गये हैं—

वृद्ध भ्रमरावली— सुनियं तब राजन चंड तनं बयनं ।
तब जग्गिय बीरह धीर तनं नयनं ।
तब सद्दिय सब्बह एक किए अयनं ।
सब सामँत सूरह सीस सजे गयनं । छं० २०४
पहु आवरि बीरह अप्प तनं तयनं ।
मुष रत्तह व्यंबह श्रोन समं नयनं ।
भिरि मुच्छह भौंहह भोहं समं पयनं ।
सब आवध सज्जिय अत्तह जै हयनं । छं० २०५ स० ५८

पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि इन छंदों के प्रत्येक चरण में ५ सगण (||S), २० मात्रायें और १५ वर्ण हैं और इन लक्षणोंवाला छं० (वृ० जा० स०) III सिरिया (∠श्री) छं० २१ और 'भ्रमरावलि' छं०६१, (प्रा० पै०) II भमरावलि छं० १५४ और (छं० प्र०) पृ० १७२ के अनुसार 'भ्रमरावली' कहा जाता है। 'वृद्ध भ्रमरावली' नाम जैसा कि रासो के इन

छंदों को दिया गया है, सहायक छंद ग्रंथों में नहीं मिलता। (छंदो०) VI छं० ६३ का 'भ्रमरावली' छंद मात्रिक है ; उसके सम चरणों में ७ और विषम चरणों में १२ मात्राओं का नियम दिया है; (छं० प्र०) पृ० १७२ में 'नलिनी' छंद का नाम 'भ्रमरावली' और 'मनहरण' भी दिया गया है; परन्तु (वृ० जा० स०) IV छं० ६६ में 'नलिनी' छंद का रूप (४+५+५+।ऽ।+४+।ऽ) इस प्रकार दिया है।

अतएव रासो के प्रस्तुत छंदों को 'वृद्ध भ्रमरावली' न कहकर केवल 'भ्रमरावली' कहना ही उचित होगा।

संशोधन :—

छं० २०४ के तीसरे चरण में 'एक किए' में यदि 'ए' को लघु माना जाय तो 'येक किये' पाठांतर मात्राओं की गणना से उपयुक्त होगा।

६०. भ्रमरावली—

स्थिति—स० १२-छं० ३६० (भ्रमरावल); स० २४-छं० १५६-६६; स० २६-छं० २७-३८; स० ३४-छं० ३०-६; स० ३६-छं० १३५-४०; स० ६१-छं० २०८४-६, २०६५-७; स० ६६-छं० ८७६-८५।

'भ्रमरावली' छंद (वृ० जा० स०) III 'सिरिया' (श्री) छं० २१ और IV छं० ६१, (प्रा० पै०) छं० १५४ और (छं० प्र०) पृ० १७२ में १५ वर्णों वाला और ५ सगणों वाला माना गया है। रासो के 'वृद्ध भ्रमरावली' छंद की विवेचना में इस छंद के विषय में अन्य आवश्यक निर्देश किये जा चुके हैं।

परन्तु रासो के उपर्युक्त स्थलों पर 'भ्रमरावली' नाम पाये हुए छं० 'भ्रमरावली' नहीं हैं वरन् कोई दूसरे ही छंद हैं। विस्तार भय से निर्दिष्ट प्रति समय से केवल एक एक उदाहरण लेकर उसकी परीक्षा करना और उचित नाम छंद संज्ञा देते जाना वांछित होगा।

१. छंद भ्रमरावल— नव जंपि नऊ रस वीर नचै, भमराबलि छंद सुकित्ति सचै।
रस भौ छह तीय नवं नव थान, दिष्यौ मुख रूप सु चालुक पांन।
भयौ मुष वीर सु भूष नरिंद, भयौ रस कारुन कट्टत अंग।... ...

छं० ३६० स० १२

इस छंद के प्रथम दो चरण ४ सगणों वाले 'तोटक' छंद के हैं। तीसरे चरण में ४ सगण और अंत में लघु है। चौथे चरण में (ऽऽ।+।ऽ।+।ऽ।+।ऽ।) यह गण योजना है। इसके उपरांत शेष चरणों में ४ जगणों का क्रम है अतएव वे 'मोतियदाम' छंद हैं।

२. छंद भ्रमरावली— जयं जय सद्द सु सद्दिय सूर, जु अच्छरि पुक्क उच्चारत दूर।
ह हा हु हु गंध सु गंध्रव गान, चच्यौ धरि एक उभै रथ भांन।

छं० १५६ स० २४

ये सारे छंद, छं० १६६ तक इसी रूप में हैं। इसके प्रत्येक चरण में ४ जगण (।ऽ।) होने से इन छंदों को 'मोतियदाम' कहना उचित होगा।

३. भ्रमरावली— बढि बाल वियोग सिंगार छुट्यौ।
सुख कौ अभिराम कि काम लुट्यौ।

घन सार सुगंध सु घोरि घनं।
वनि आनि अकीन क्रपान बनं। छं० २७ स० २६

आगे छंद ३७ तक ये छंद इसी रूप में हैं।
इनमें ४ सगणों का नियम होने से ये 'तोटक' छंद हैं।

४. भ्रमरावली— सजे वर साह तुरंगम तुंग, लजे कवि चंद उपंम कुरंग।
सितं सित चोर गुरै गजगाह, तिनं उपमा वरनी नन जाइ। छं० ३० स० ३४

और आगे छंद ३६ तक छंद का यही रूप है।
ये ४ जगणों वाले 'मोतियदाम' छंद हैं।

५. भ्रमरावली – नव वीर नवं रस वीर नच्चौ, भ्रमरावलि छंद सु चंद रच्चौ।
सिधि बुद्धिय विप्र समान धरं, मरि जानत तत्त सुमत्ति गुरं।
छं० १३५ स० ३६

तथा आगे छंद १४० तक यही रूप है।
ये ४ सगणवाले 'तोटक' छंद हैं।

६. इसी प्रकार 'भ्रमरावली' नाम पाये हुए छं० २०८४-६ छंद २०६५-७, स० ६१ और छं० ८७६-८५, स० ६६-वास्तव में ४ सगण वाले 'तोटक' छंद हैं।

इस प्रकार प्रक्षेपकर्ताओं ने चंद के नाम पर रासो का आकार बढ़ाने की चेष्टा में न केवल अपनी बुद्धिहीनता प्रदर्शित की है वरन् एक अनर्थ कर डाला है।

६१. कलाकल या मधुराकल—

स्थितिः— स० ३६-छं० ६४-७ (को० प्रति 'मधुराकल' और मो० प्रति 'भ्रमरावली'); स० ६१-छं० १०४२-५ (कलाकल)।

छंद ग्रंथों में 'कलाकल' या 'मधुराकल' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। निर्दिष्ट छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि स० ३६ वाले छंदों के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ सगण हैं। अस्तु, ये वार्णिक जगती समूह के अंतर्गत 'तोटक' छंद हैं। रासो की मो० प्रति में इन छंदों को दिया हुआ 'भ्रमरावली' नाम अशुद्ध है क्योंकि 'भ्रमरावली' छंद में ५ सगणों का विधान है जब कि वर्तमान छंदों में ४ सगण ही पाये जाते हैं।

स० ६१ वाले छंदों के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ जगण हैं।
अतएव ये वार्णिक जगती समूह के अंतर्गत 'मोतियदाम' छंद हैं।
उदाहरण स्वरूप दोनों स्थलों से दो दो छंद उद्धृत किये जाते हैं—

कलाकल— कलहंतय केलि सुकन्ह कियं, जु अनंदिय नंदिय ईस वियं।
नचि नौ रसमं इक कन्ह भरं, मय मंचि भयानक अंत करं। छं० ६४
झमकंत सु दंतन अस्सि झरी, जनु विज्जुलि पष्षत मेघ परी।
उड़ि धुंधरियं निय छाइ जनं, जनु सज्जिय जुग्ग जुगद्दि पनं। छं० ६५ स०३६

कलाकल- रचि लौ रस थान अद्भुत वीर, भयौ रस रुद्रकवै कवि भीर।
भै भंति भयानक कायर कंपि, करुन रस केलि कलामुष जंपि। छं० १०४२
तहां रस संकर द्वै अरि संच, उठ्यौ अदवुद महारस नंचि।
लियौ रस निड्डर बीभछ अंग, दिष्यौ चहुआन सु सेनह पंग। छं० १०४३ स० ६१

संशोधन —

१. आवश्यक होगा कि रासो के इन छंदों को वास्तविक नाम दे दिये जावें।

२. स० ६१ छं० १०४२ के पहिले और चौथे चरण १३ वर्ण, १७ मात्राओं तथा ४ सगण + एक लघु (।।ऽ + ।।ऽ + ।।ऽ + ।।ऽ + ।) वाले हैं। अनुमान है कि इनमें भूल हो गई है। यह भूल सुधारना साधारण है।

६२. कंठशोभा—

स्थिति :—स० २७-छं० ३२-६।

ये छंद निम्न रूप में हैं—

कंठशोभा— फिरे हय बष्षर पष्षर से, मने फिर इंदुज पंष कसे।
सोई उपमा कवि चंद कथे, सजे मनो पोम पवंग रथे। छं० ३२
उर पुठ्ठिय सुठ्ठिय दिठ्ठियता, बपरी पय लंगत ता धरिता।
लग्गे उड्डि छित्तिय चौ नलयं, सुने षुर केह अवत्तनयं। छं० ३३
अग बंधि सु हेम हमेल घनं, तव चामर जोति पवंन रुनं।
ग्रह अठ्ठ सतारक बीत षगे, मनौं सुत के उर भान उगे। छं० ३४
पय मंडिहि अंसु धरै उलटा, मनौं बिंटय देखि चलै कुलटा।
मुख कट्टिन घूंघट अस्सु बली, मनौं घूंघट दै कुलबद्धु चली। छं० ३५
तिनं उपमा वरनी न घंनं, पुजै न न वग्ग पवंन मनं। छं० ३६ स० २७

रासोकार ने इसी स० २७ में अपना 'कंठ शोभा' छंद प्रारम्भ करने से पूर्व उसका लक्षण लिख दिया है कि उसमें ११ वर्ण, ५-६ पर यति और अन्त में लघु गुरु होता है। यथा—

ग्यारह अष्षर पंच षट, लघु गुरु होइ समान।
कंठ सोभ वर छंद कौ, नाम कह्यौ परवान। छं० ३१ स० २७

इन लक्षणों को प्रस्तुत छंदों में घटाने से विदित होता है कि छं० ३३ के पहिले और दूसरे, छं० ३४ के पहले दूसरे और तीसरे तथा छंद ३५ के पहिले, तीसरे और चौथे चरणों में १२ वर्ण हैं तथा शेष चरणों में वर्ण संख्या ११ है। चरणांत में लघु गुरु (।ऽ) का नियम सारे छंदों में मिलता है। अनुमान है कि निर्दिष्ट चरणों में ११ के स्थान पर १२ वर्णों का होना लिपिकारों के भ्रम से हुआ है।

और भी परीक्षा करने से पता लगता है कि इसके प्रत्येक चरण में ३ जगण हैं। अतएव 'कंठशोभा' का पूरा लक्षण [ज ज ज ल ग (या) ।ऽ। + ।ऽ। + ।ऽ। + ।ऽ =] १५ मात्रायें, ११ वर्ण, ५-६ पर यति होना सिद्ध होता है।

(छं० प्र०) पृ० १४४ में ११ वर्णोंवाले त्रिष्टुप छंदांतर्गत 'हरिणी' नामक छंद रासो के 'कंठशोभा' छंद के बिलकुल अनुरूप है। परन्तु (पिं० छं० सू०) पृ० २०६ में 'हरिणी' का नियम 'यस्य पादे नकारमकारसकाररेफाःसकारलकारगकारश्च तद्वृत्त हरिणी नाम, षड्भिश्चतुर्भिःसप्तभिश्च यतिः' है जो कि सर्वथा अन्य छंद ठहरता है। (प्रा० पै०) में इन लक्षणोंवाला कोई छंद नहीं है। (स्वं० छं०) I छं० ६९-७० में 'हरिणी' छंद का लक्षण (पिं० छं० सू०) में दिये लक्षणों के अनुसार ही है।

६३. कंठभूषन या कंठाभूषन--

स्थिति :—स० १४-छं० ६२-३ (कंठाभूषन); स० ५२-छं० १७६-८४ (कंठभूषन)।

इन छंदों की पिंगल परीक्षा से पता लगता है कि स० १४ वाले छंदों के प्रत्येक चरण में १६-१२ की यति से २८ मात्रायें हैं तथा अंत में लघु गुरु (।ऽ) है। इन लक्षणोंवाले छंदों को (छं० को०) 'गीयउ' छं० १८, (प्रा० पै०) I 'हरिगीअ' छं० १९१-२ और (छं० प्र०) पृ० ६९ में 'हरिगीतिका' कहा गया है। रासो का एक छंद देखिये —

कंठाभूषन— इक गावही रस सरस रस भरि विमल सुंदर राजहीं।
मनों बृंद उडगन राति राका सोम पंति विराजहीं।
इक त्रित रंगम कांम अंगन अजस लज्ज कि सुंदरी।
मनों दीप दीपक माल बालय राज राजन उच्चरी। छं० ६२ स० १४

स० ५२ वाले छंदों के प्रारम्भ में ही उनका नियम कह डाला गया है कि पिंगल ने १२ वर्ण और १६ मात्राओं के प्रमाणवाले छंद को 'कंठभूषन' कहा है (छं० १७६)। परीक्षा करने पर इनके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ भगण हैं। (प्रा० पै०) II छं० १३५ और (छं० प्र०) पृ० १५३ में ऐसे लक्षणों वाले छंद को 'मोदक' कहा गया है परन्तु (छं० को०) छं० ५ और (रू० दी० पिं०) छं० २२ में इन्हें 'दोधक' संज्ञा दी गई है। संभव है कि रासो रचना काल में कहीं-कहीं इस प्रकार के छंद 'कंठभूषन' या 'कंठाभूषन' नामों से प्रसिद्ध रहे हों। इस प्रकरण के कुछ छंद देखिये --

कंठभूषन— कंठभूषन छंद प्रकासय, बारह अच्छरि पिंगल भाषय।
अठ्ठय संजुत मत्त प्रमानय, कंठय भूषन छंद बषानय। छं० १७६
उग्गि रतं रत अंमर भासय, भानु सु देव दिवालय थानय।
पाप हरै तन क्रम्म प्रगासय, कौ जम तात जमुन्नय भासय। छं० १८०
तात करन्नय पूरन पूरय, वंध कमौदनि को मत सूरय।
वंध जवासुर ग्रीषम थानय, अर्क पलासन काम विरामय। छं० १८१ स० ५२

संशोधन —

स० १४ के 'कंठाभूषन' नामधारी छंद 'हरिगीतिका' प्रमाणित किये जा चुके हैं। और यही नाम इन्हें देना उचित है। इसी समय के छं० ६२ के दूसरे और चौथे चरणों में

'मनों' के स्थान पर 'मनु' पाठांतर से मात्रा गणना शुद्ध हो जाती है तथा अर्थ भंग भी नहीं होता।

६४. पारस—

स्थिति :—स० ६२-छं० ८०-१।

केवल दो छंद सम्पूर्ण रासो में 'पारस' नाम के हैं। उनमें भी एक अधूरा है। देखिये—

पारस – नै व्रत सज्ज्या, जोवन पुज्ज्यां।
... ... छं० ८०
सैसव साता, रम्मन कांता।
विलसिन तांता, सुरतिन आंता। छं० ८१ स० ६२

छंद ग्रंथों में 'पारस' नाम का छंद नहीं मिलता। परीक्षा से ज्ञात होता है कि अधूरे छं० ८० के प्रत्येक चरण में ५ वर्ण तथा [भगण + दो गुरु = SII + SS] हैं, अतएव (प्रा० पै०) पृ० २५८ और (छं० प्र०) पृ० १२१ के अनुसार इन्हें पंचाक्षरावृत्ति का 'पंक्ती' (या हंस) छंद कहा जा सकता है।

छं० ८१ के प्रथम दो चरणों में उपर्युक्त 'पंकृती' छंद का लक्षण मिलता है परन्तु अंतिम दो चरण षड्क्षरावृत्ति के हैं तथा (छं० प्र०) के अनुसार 'शशिवदना' छंद हैं।

यदि छंद ८० के अंतिम दो लुप्त चरण छं० ८१ के दो चरणों के अनुकूल होते तो यह कहा जा सकता था कि रासो का 'पारस' छंद संयुक्त छंद है और 'पंक्ती'+'शशिवदना' के मेल से बना है; परन्तु यदि वे 'पंकृती' छंद के अनुसार ही रहे हों तब तो निः संदेह कहना होगा कि छं० ८० 'पंक्ती' छंद है और किसी समय इसके 'पारस' नाम रहने की संभावना हो सकती है तथा छंद ८१ के 'शशिवदना' छंद के अंतिम दो चरण कभी किसी लिपिकार के भ्रम से प्रगट हो गये हैं।

संशोधन :—

छं० ८१ के अंतिम दो चरणों को 'विल्सिनतांता, सुर्तितआंता' पाठांतर कर देने पर सारा छंद 'पंकृती' छंद की योजना पर आ जाता है। इस पाठांतर में 'विल्सिन' रूप खटकता है, अतएव इसके स्थान पर कोई दूसरे अनुरूप शब्द की व्यवस्था भी संभव है।

६५. मोदक—

स्थिति—स० १२-छं० २१५-६; स० ३४-छं० ११-७।

निर्दिष्ट 'मोदक' नामी छंदों के प्रति समय से दो दो उदाहरण दिये जाते हैं—

मोदक— इति मोदक छंदह बंध गती, जरि सब्ब सुभाँतिय बंध मती।
दिसि अठ्ठ दुरी दुरितान कला, चित मुक्कलि च्यार बसीठ बला। छं० २१५
जिन मंत्र बसीठन चित्त करं, नव निक्कर नेह अव्रत्त धरं।
षिति बीरति बीरय मंत्र मुषं, तिन राषन राज निव्रत रुषं। छं० २१६ स० १२,

मोदक— दस मत्त पयो लहु पंच गुरं, षग षन्न हरे विष पत्त वरं।
बर सुद्ध प्रयान हुलास छबी, कहि मोदक छंद प्रमान कबी। छं० ११

जु सजी चतुरंगन दान दियं, कवि दोउश्र सेन उपम्म कियं।
सुत षंजन ज्यौं बुध गत्ति पढ़ी, सति सीतल वात प्रमान बढ़ी। छं० १२ स० ३४

पिंगल परीक्षा से ज्ञात होता है कि स० ३४ छं० १४ के प्रथम दो चरणों में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ जगण हैं, जो छंद ग्रंथों के निर्णय के अनुसार 'मोतियदाम' छंद की पंक्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त शेष छंदों के चरणों में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ सगण हैं। (पिं० छं० सू०) पृ० १८२-३, (प्रा० पै०) II छं० १२६ और (छं० प्र०) पृ० १५० में इन लक्षणोंवाले छंदों को 'तोटक' कहा गया है।

(प्रा० पै०) II छं० १३५ में और (छं० प्र०) पृ० १५० पर 'मोदक' छंद के प्रति चरण में १२ वर्ण, १६ मात्रायें और ४ भगण का नियम दिया गया है।

प्रश्न यह है कि 'तोटक' छंद 'मोदक' कैसे लिख दिया गया। अनुमान है कि लिपि-कारों से 'तोटक' का 'तोदक' हो गया होगा और 'तोदक' से 'मोदक' बन जाना कौन कठिन है।

संशोधन—प्रस्तुत छंदों को वास्तविक नाम दिये जाना आवश्यक है।

६६. मालिनी—

स्थिति :—स० ४५-छं० ११८, १२०।

प्रस्तुत छंद निम्न रूप में हैं—

मालिनी— हरित कनक कांति कापि चंपेव गोरी।
रसित पदम नेत्रा फुल्ल राजीव नेत्रा।
उरज जलज सोभा नाभिकोसं सरोजं।
चरन कमल हस्ती लीलया राज हंसी। छं० ११८ और

मालिनी— अधर मधुर बिंबं, कंठ कलयंठ रावे।
दलित दलक भ्रमरे, भ्रिग भ्रकुटीव भावे।
तिल सुमन समानं, नासिका सोभयंती।
कलित दसन कुंदं, पूर्न चंद्राननं च। छं० १२० स० ४५

परीक्षा करने से पता लगता है कि इनके प्रत्येक चरण में ८-७ की यति से १५ वर्ण, २२ मात्रायें और [न न म य य (अथवा) ।।।+।।।+SS/S+।SS+।SS] गण योजना है। (पिं० छं० सू०) पृ० २०६, (स्वं० छं०) I छं० २७-८, (क० द०) IV १५ 'अतिशक्करी' ७२-३, (प्रा० पै०) II छं० १५४ और (छं० प्र०) पृ० १७५ में भी 'मालिनी' छंद के उपर्युक्त लक्षण दिये हैं।

(वृ० जा० स०) III छंद ४४ में 'मालिनी' छंद सात गणों वाला माना गया है। जिससे रासो के 'मालिनी' छंद मेल नहीं खाते। रासो के प्रस्तुत छंद १५ वर्णोंवाले अति-शर्करी समूह के अंतर्गत हैं। (छं० प्र०) में 'मालिनी' का दूसरा नाम 'मंजुमालिनी' भी दिया है।

संशोधन—

जहाँ तक संशोधन का प्रश्न है, छं० ११८ वस्तुतः ठीक है। छंद १२० के पहिले दो चरणों में मात्रा और वर्ण संख्या दोनों अधिक हैं तथा चौथे चरण के अंत में लघु है। छंद शुद्ध करने के लिए इनमें संशोधन तो किया जाना असंभव नहीं है परन्तु उससे प्रयुक्त शब्दों के रूप ही सर्वथा बदल जाते हैं तथा अर्थ क्लिष्टता भी बढ़ जाती है। प्रतीत होता है कि इनकी शब्दावली में परिवर्तन हो गया है। अन्य शब्द बैठाने का प्रयत्न साहस मात्र होगा और बहुत संभव है कि वह रासोकार की कल्पना के विपरीत हो जावे।

६७. मुकुंद डामर—

स्थिति :—स० १३-छं० १३०-२ (मुकुंद डामर); स० १६ छं० १६८-७०; स० ४३-छं० ६७ (डामर); स० ६६-छं० १०७६-६, १४४६-७ (मुकुंद डामर)।

सहायक छंद ग्रंथों में 'मुकुंद डामर' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। रासो के इन छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि चार चरणवाले इस वृत्त के प्रत्येक चरण में २४ वर्ण और ८ सगण हैं। (प्रा० पै०) II छंद २०८-६ में इन लक्षणोंवाले छंद को 'द्रुम्मिला' (८ दुर्मिला) कहा गया है और १०-८-१४ मात्राओं पर यति बताई गई है। (छं० प्र०) पृ० २०५ में इसे 'दुर्मिल' (सवैया) नाम दिया गया है तथा इसका दूसरा नाम 'चन्द्रकला' भी बतलाया गया है।

उदाहरणार्थ रासो का एक छंद दिया जाता है—

छंद मुकुंद डामर—

> **ढलकंतिय ढाल निसांन नहि सिय चंचल सूर चढ़े कसियं।**
> **त्रक टोप सरूप रँगा दह हथ्थल जोप सनाह विधि जरियं।**
> **रुस मंस उकंसत मुंछ तिरच्छिय दांन सगानत न्हान कियं।**
> **नचि नारद तुंमर अंबर आनंद ईस सु सिंगिय नद्द दियं।** छं० १६८ स० १६

(छं० प्र०) पृ० १६८ में 'मुकुन्द' नामक एक वार्णिक छंद है परन्तु वह केवल १४ वर्णों का है।

संशोधन—

१. रासो के 'मुकुंद डामर' नामधारी इन छंदों को इनका वास्तविक नाम 'दुर्मिल' देना उचित प्रतीत होता है।

२. स० १३ का छं० १३० पाँच चरणों का है और छं० १३१-२ तीन-तीन चरणों के हैं। इन्हें चार-चार चरणों के क्रम से रखने पर छं० १३०-१ तो पूर्ण हो जाते हैं परन्तु छं० १३२ (तीन चरणों का छंद) अधूरा ठहरता है।

३. स० ४३-छं० ६७ में यति स्वरूप दिये हुए विराम और अर्द्ध विराम चिन्ह अशुद्ध हैं। उन्हें ८-६-१० वर्णों के क्रम पर होना चाहिए।

४. रासो के इन सारे छंदों के कुछ चरणों में एक एक वर्ण की न्यूनता है।

६८. दोधक—

स्थिति :—स० ३६-छं० १४५-७; स० ६७-छं० ६४-७।

रासो के प्रत्येक निर्दिष्ट समय से दो दो 'दोधक' नामी छंद दिये जाते हैं—

दोधक— ग्रंथहु ग्रंथ पुरान कुरानय, राज रसं बरुनी बर जानय।
नीति अनीति सुभं सरसानय, लम्भहकित्ति लही चहुआनय। छं० १४५
संपय राजस कोकिल संठिय, जानि जेवान न जानि सु पुट्ठिय।
गायन गाइ सु अथ्थ सु अथ्थिय, संभय गान कला कल सध्थिय। छं० १४६
स० ३६

तथा—

दोधक— द्रप्पन लै प्रतिव्यंब सु सद्दय, चंद से चंद कला प्रति बद्दय।
द्वादस दून तितंन तें जंनिय, पंचनि आस प्रकित्ति सु हंनिय। छं० ६४
ता सर एक कवल्ल प्रगासिय, देषत ताहि गयौ भ्रम नासिय।
नीलहि नील चरन्न सु मुत्तिय, जुत्तिय मान प्रमान सु जुत्तिय। छं०६५
स० ६७

(पिं० छं० सू०) पृ० १७१, (प्रा० पै०) II 'दोधअ' छं० १०४ और (छं०प्र०) पृ०१४४ में वर्णवृत्त 'दोधक' ३ भगण और अंत में दो गुरु [भ भ भ ग ग (या) ऽ।। + ऽ।। + ऽ।। + ऽऽ] वाला माना गया है।

प्रस्तुत छंदों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इनके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण और ४ भगण (ऽ।।) हैं। (प्रा० पै०) II 'मोदअ' छं० १३५ और (छं० प्र०) पृ० १५३ में इन लक्षणोंवाले छंदों को 'मोदक' कहा गया है। परन्तु (छं० को०) छं० ५ और (रू० दी० पिं०) छं० २२ में इन्हें 'दोधक' संज्ञा ही दी गई है।

अतएव कुछ छंदशास्त्रकारों के मत से रासो के ये छंद 'दोधक' हैं और कुछ के मत से 'मोदक' हैं। अधिकांश मत पर पक्ष में हैं। अस्तु, प्रस्तुत छंदों को 'मोदक' नाम देना ठीक प्रतीत होता है।

[द] फुटकर—

६९. चालि—

स्थिति : - स० ५-छं० ४६ (वचनीका छंद)।

रासो का 'चालि' छंद निम्न रूप में है—

चालि— दिषि चावंडं, षिजि चावंडं, लोह चावंडं, मन चावंडं, चावंडं। छं० ४६ स० ५

पिंगल परीक्षा द्वारा ये छंद न तो मात्रिक सिद्ध होते हैं और न वार्णिक। प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक रूप में ये 'वचनिका' (गद्य) रूप में रहे होंगे जैसा कि रासो के एक प्रति में पाठ भी है और कालांतर में लिपिकारों की कृपा से उलटते पुलटते प्रस्तुत विलक्षण रूप में पहुँच गये हैं। 'चालि' नामक किसी छंद का भी कहीं पता नहीं लगता।

७०, जुति चाल—

स्थिति :—स०२-छं० ५६४।

'जुतिचाल' छंद रासो में केवल एक है और वह निम्न रूप में है—

जुतिचाल— बाले जसोदा मतिलाले, कंस काले सु काले।
जसोमति नंदो गोप बंदौ, कंदौ गुट्टि गौ बाल चंदौ।
दीन बंदौ न बंदौ, जयौ बासुदेव नंदा। छं० ६६४ स० २

परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत छंद के छै चरणों में क्रमशः १६, १२; १६, १६; १२, १३ मात्रायें हैं; ६, ७; १०, ६; ७, ८ वर्ण हैं तथा गणों का कोई क्रम नहीं है। इस प्रकार देखते हैं कि ये छंद एक बहुत ही बिगड़े हुए रूप में हैं।

'जुतिचाल' नाम के किसी छंद का भी पता नहीं चलता। असंभव नहीं कि यह प्रारम्भ में 'वचनिका' (गद्य) रूप में रहा हो और क्रमशः लिपिकारों के भ्रम से वर्तमान रूप में आ गया हो तथा यह भी संभव है कि इसके चरण भिन्न-भिन्न छंदों के हों और किसी प्रकार इस रूप में एक स्थान पर इकट्ठे हो गये हों परन्तु उनका पृथक् निरूपण करना व्यर्थ प्रयास होगा। अधिक संभावना पूर्व अनुमान के पक्ष में ही है।

७१. वार्ता —

स्थिति :—स० १३-छं० १०; स० ५०-छं० १३ के बाद; स० ५७-छं० १७०; स० ६१-छं० ८२३ के बाद।

रासो में 'वार्ता' के अंतर्गत दो छंद दिये गये हैं। उनमें छंदों के लक्षण नहीं पाये जाते। देखिये—

वार्ता— अचहु अै चहुआंन गाजी, षलक तो षग राजी।
मेवास मार बाजी, पर्व तो सरन साजी।
मै भीत भूपं त्रषेवं, फल पत्र कंदं भषेवं।
आवास निर्वास नैरं, जहां तहां तजमि धतूर बेरं।
अजमेर पीर सहाई, दुसमंन पैमाल लषो देव हाई।
पीर पैगंबर दुवाह गीर सारे, अनमीन मइत्रिन दंत चारे।
दिल्लीं तषत थिर राज तेतें, गंग जल जमन रवि चंद जेतें। छं० १० स० १३,

वार्ता— राजा आयस दीनौ, सहचरी सलाम कीनौ।
हमारी सीष धरौ, संजोगिता कौ हठ दूरि करौ। छं० १५ के बाद, स० ५०

वार्ता— राजन महल आरंभै, नींकी ठौर बैठक प्रारंभै।
सूर सामंत बोले, दरीषानै दुलीचै षोलै।
छत्र चामर कर लीने, मूढ़ा गादीं सामंतन को दीने। छं० १७० स० ५७,

और

वार्ता— जब लगि मिष्टान पान सरसे।
तब लगि अंबर दिनयर दरसे। छं० ८२३ के बाद, स० ६१

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक अवस्था में ये गद्य रूप में थे जैसा कि 'वार्ता' नाम से भी स्पष्ट है और कालांतर में लिपिकारों के भ्रम से छंदों के रूप में पहुँच गये। सहायक छंद ग्रंथों में 'वार्ता' नामक किसी छंद का उल्लेख भी नहीं पाया जाता है।

संशोधन —

इन स्थलों को छंद रूप में न लिखकर गद्य रूप में लिखा जाना चाहिए। तथा स० १३ और स० ५७ में इन्हें एक स्वतंत्र छंद संख्या देना भी अनुपयुक्त हुआ है।

७२. बचनिका—

स्थिति :—स० १२-छं० २६१-२; स० १६-छं० ११४; स० ३७-छं० ४२; स० ४६-छं० ५६ से पूर्व; स० ६१-छं० २८६, ३२२, ३३० और ५६१ के बाद; स० ६२-छं० २६, ३१; स० ६३-छं० ८०; स० ६४-छं० ६७; स० ६६-छं० १२१, १३२, १३६ और १४० के बाद तथा छं० १२८ और ७८२; स० ६७-छं० २२०।

रासो के 'बचनिका' नामक स्थल अनोखे हैं। उपर्युक्त छंद स्थिति निर्देश में जिन संख्याओं के नीचे पंक्तियाँ हैं वे पद्य रूप में हैं (लेकिन बहुत ही भ्रष्ट-मात्रा, वर्ण तथा चरण क्रम रहित रूप में) और उन्हें एक स्वतंत्र छंद संख्या भी दी गई है; इसके अतिरिक्त जिनके नीचे पंक्तियाँ नहीं हैं, वे गद्य में हैं और उन्हें छंद संख्या भी नहीं दी गई है। उदाहरणार्थ दोनों प्रकार के प्रकरणों से एक एक स्थल दिया जा रहा है—

बचनिका — **सुरतांन सु विहांन सुलतान साहाबदीन।**
करि करतार कि जोर, जासु किति जै अरु दल की जोरि जोरि।
जनु दरियाव की हिलोर, मिलते सों मुंह जोरै।
अनमिलत सो षल षंचि कढोरै, सुरतांन सुचिर दूतांन।
आनि कही कायथ घ्रमांन, दिल्ली की षबरि विवरि लिषि दीनी।
अनंगपाल तूंअर बन वास लीनी, ...छं० ११४ स० १६

तथा—

बचनिका — **राजा षीरोदक पहिर स्नान कर्‌यो।**
तब चंद बहुरि ओर अस्तुति करत है। छं० ३३० के बाद, स० ६१

सहायक छंद ग्रंथों में 'बचनिका' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। अस्तु, इसे पद्य मानने के लिये कोई कैसे प्रस्तुत हो सकता है। और रासो के 'बचनिका' के पद्य रूप को किंचित् ध्यान से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यह किसी समय गद्य रूप में ही रहा होगा जो कालांतर में लिपिकारों की नासमझी या तुक्कड़ क्षेपककारों के अज्ञान से एक विलक्षण छंद रूप में आ गया है।

परवर्ती राजस्थानी साहित्य में पद्य के साथ 'बचनिका' नाम से गद्य रूप के दर्शन सैकड़ों स्थलों पर होते हैं। अनुमान है कि 'बचनिका' का ऐसा प्रयोग बाद का है।

संशोधन—

निर्दिष्ट 'बचनिका' नामक स्थल महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इन्हें हटा देने से मुख्य कथानक में कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु इन्हें छंद संख्या और छंद रूप देना तो भ्रम फैलाना मात्र है।

रासो में प्रयुक्त इन सारे छंदों की इस विस्तृत समीक्षा के बाद यह निष्कर्ष निश्चित हो जाता है कि इस काव्य के अधिकांश छंद प्राकृत और अपभ्रंश युग के हैं जिनमें से कुछ का प्रयोग परवर्ती हिंदी-साहित्य में जोधराज कृत हम्मीर-रासो और सूदन कृत सुजान-चरित्र प्रभृति बीर प्रबंध काव्यों मात्र के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम देखा जाता है तथा इससे यह भी निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि इसके मूल रूप का प्रणयन १२वीं शताब्दी में ही हुआ होगा जब कि इन छंदों का बोलबाला था।

अध्याय ५

रासो की भाषा की कतिपय विशेषतायें

भाषा-शास्त्री को यदि भारत की गौड़ीय भाषाओं की अभिसंधि देखनी हो तो रासो से अधिक चमत्कृत करनेवाला दूसरा कोई काव्य ग्रंथ उसे न मिलेगा। विभिन्न भारतीय भाषाओं की सन्ध्या में उसे अनोखे और क्रांतिकारी सिद्धान्तों के नियमन का अवसर स्थल स्थल पर आवेगा।

इस भाषा की परीक्षा करने पर कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें वेदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती, पंजाबी, व्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों की अनोखी खिचड़ी तय्यार मिलती है तथा देशज शब्दों की भी एक संख्या है। परन्तु इस काव्य में कई शतियों के अवांतर में प्रक्षेपों का घटाटोप होते-होते भाषा का रूप और अधिक विकृत हो गया है। अनेक शब्दों के संस्कृत से लगाकर आधुनिक काल तक जितने रूपांतर हुए हैं उन सबका प्रयोग रासो में मिलता है। गौड़ीय भाषाओं के सामंजस्य के अध्ययन के लिए रासो की भाषा में प्रचुर सामग्री वर्तमान है। रासो के श्लोक छन्द संस्कृत में हैं तथा गाहा या गाथा छंद प्राकृत, अपभ्रंश या अपभ्रंश मिश्रित हिंदी में हैं। श्लोक और गाहा छन्दों में अरबी, फ़ारसी और तुर्की आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। श्लोक छन्दों की भाषा विषयक अधिकांश त्रुटियाँ लिपिकर्त्ताओं के भ्रमवश पैदा हुई हैं। शेष छन्दों में भाषा की कोई रोक टोक नहीं है। शब्दों को इच्छानुसार संयुक्त और असंयुक्त बनाया तथा तोड़ा मरोड़ा गया है जिससे कहीं-कहीं अर्थ समझने की कठिनाई के अतिरिक्त, लिपिकारों और संपादकों की असावधानीवश उनका रूप कुछ का कुछ होकर दुरूहता यहाँ तक बढ़ गई है कि छंद पंक्तियों का भाव समझ सकना प्रायः असंभव हो गया है। व्याकरण के नियम हिंदी के ही हैं और प्रधानता पिंगल की है डिंगल की नहीं, भले ही चार छै छंद अपवाद स्वरूप मिल जावें।

रासो की भाषा और व्याकरण के संबंध में किसी प्रकार के नियमों का विधान करना असाधारण कार्य है। क्योंकि इसमें हमें उनका अतिक्रमण करनेवाले रूप भी मिलते हैं जिन्हें हम अपवाद की श्रेणी में नहीं रख सकते। इस असीम किन्तु क्रमबद्ध विषमता को सीमित करने के लिए कुछ नियमों का उल्लेख किया जा रहा है तथा भाषा और व्याकरण विषयक कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश मात्र डालना वर्तमान परिस्थिति में हमारा अभीष्ट है।

स्वर-

(१) वेदिक साहित्य में कहीं-कहीं ऋकार के स्थान पर उकार पाया जाता है, जैसे—

कृत = कुठ (ऋग्वेद १, ४६, ४)। प्राकृत में भी यह लक्षण मिलता है, यथा—वृन्द = बुन्द, ऋतु = उउ, पृथिवी = पुहवी। रासो में यह मूल पृथिवी रूप पुहवी मात्र ही नहीं रहा वरन् पुहमि और पुहमी भी बन गया।

(२) वैदिक भाषा में संयुक्त वर्णों का पूर्वस्वर ह्रस्व पाया जाता है, यथा—रोदसीप्रा = रोदसिप्रा (ऋग्वेद १०, ८८, १०), अमात्र = अमत्र (ऋग्वेद ३, ३६, ४) और प्राकृत में भी यह नियम मिलता है, जैसे—पात्र = पत्र, रात्रि = रत्ति, साध्य = सज्झ। इस लक्षण की अनुरूपता से निर्मित शब्द रासो में भी वर्तमान हैं, यथा :—

धूम > धुम्म
हाथ > हथ्थ
धात > धत्त
अकेला > एकल्ल
आगे > अग्ग
नाग > नग्ग
प्रेम > पिम्म
जाप > जप्प
काव्य > कब्ब, कब
कागज़ > कग्गर, कग्गद
ऊर्ध्व > अध्व
कार्य > कज्ज
पूर्व > पुब्ब
मार्ग > मग्ग
अपूर्व > अपुब्ब
कीर्ति > क्रित्ति
रात्रि > रत्ति
राक्षस > रष्षस

(३) वैदिक साहित्य के शब्दों में संयुक्त व्यंजनों के मध्य में स्वर आगम पाया जाता है, यथा—सहस्र्य = सहस्रियः, स्वर्गः = सुवर्गः (तैत्तिरीय संहिता ४, २, ३); तन्वः = तनुवः, स्वः = सुवः (तैत्तिरीय आरण्यक ७, २२, १; ६, २, ७)। प्राकृत में इस प्रकार के अनेक शब्द प्राप्त होते हैं, जैसे क्लिष्ट = किलिट्ठ, स्व = सुव, तन्वी = तणुवी। रासो में भी मध्य स्वरागम विरला नहीं है, यथा :—

शब्द > सबद
अल्प > अलप
श्राप > सराप
रक्त > रकत, रगत
स्वर्ग > सुरग, सुर्ग

उक्ति >उकति, उकती
मुक्ति >मुकति, मुगति, मुक्ति
विश्वा >विसव्वा
निश्चल >निह्चल
शक्ति >सकत्ती

(४) संपूर्ण स्वर लोप या व्यंजन लोप के उदाहरण रासो में वर्तमान हैं, यथा—

भगिनी >भग्गी
पादातिक>पाइक
पुरुष >पुर्ष

कतिपय शब्द ऐसे भी हैं जिनमें शब्द के मध्य अथवा अंत का र पूर्व व्यंजन में संयुक्त होकर उपर्युक्त नियम का आचरण करता है, जैसे—

नगर >नग्र
मकर >मक्र
शरीर >श्रीर
धरती >ध्रित्त
परणाइ >प्रनाइ

असंयुक्त व्यंजन—

(१) रासो में कहीं कहीं ख के स्थान पर ष का प्रयोग किया गया है, जैसे—

खोरि >षोरि
खर्व >षरब
लक्ष>लक्ख>लाख>लष्ष, लष, लाख
खवास >षवास
खेल >षेल

महाराष्ट्री में क्ष के स्थान पर ख हो जाता है, यथा—क्षय=खय। रासो में भी यह लक्षण वर्तमान है परन्तु उपर्युक्त निर्देश के द्वारा हम ख का ष रूप देख चुके हैं। अस्तु, रासो में क्ष के स्थान पर ष मिलता है, जैसे—

क्षुधा >षुद्धा
क्षिति >षिति
राक्षस >रष्षस
शिक्षा >सिष्षां
क्षमा >षमां
रक्षा >रष्षा
पक्ष >पष्ष, पष्र
भक्षण >भष्षन, भषन
कक्ष >कष्ष

दक्खिण >दष्षिन

विचक्खण>विचष्षन

(२) अर्द्ध मागधी में दो स्वरों के बीच का असंयुक्त ग प्रायः अपरिवर्तित रहता है परन्तु कहीं कहीं इसके स्थान पर त अथवा य भी हो जाता है, जैसे—अतिग=अतित; सागर=सायर। रासो में भी इस नियम के अनुसार बने कतिपय शब्द प्राप्त होते हैं, यथा—

नगर >नयर

सागर >सायर

लोग >लोय

(३) रासो में दो चार शब्दों में ट के स्थान पर र मिलता है, यथा—

भट >भर

परन्तु कहीं कहीं भट का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—

'सब भट पूछि पूछि कवि चंदह।'

कोटि>कोरि [लहै द्रव्य कोरि सवायो। छंद १४२३ स० ६१] परन्तु 'कोटि' का प्रयोग भी मिलता है।

(४) जैसे पैशाची में ण के स्थान पर न हो जाता है, (यथा—गुण=गुन) वैसा ही रासो में भी अधिकांशतः पाया जाता है—

एण >एन

अरण्य >रन्न

हरिण >हिरन्न

दर्पण >द्रप्पन

तृष्णा >तिस्ना

वृण >व्रन

दक्षिण >दष्षिन

कृपाण >कुवान

लवण >लवन, लोन

प्रवीण >परवीन

प्रमाण >प्रमान

श्रवण >स्रवन

कृष्ण >कन्ह, कन्हर, किस्न

मृगतृष्णा>म्रिगतिस्ना

ब्राम्हण >बंभन

(५) पालि में य के स्थान पर ज भी होता है, यथा—यंत्राघर=जंत्राघर; महाराष्ट्री में शब्द के आदि का य, ज में परिवर्तित हो जाता है, जैसे—यम=जम, यशस=जस, याति=जाइ। रासो में भी यह नियम वर्तमान है, यथा—

योषित>जुषि, जोषिता

योजन >जोजन

युग >जुग, जुग्ग

योगिन >जुग्गनि, जुगनि, जुग्गनिय

युक्ति >जुगति, जुक्ति, जुक्तिय

योग >जोग

यज्ञ >जाग, जग्ग

कुछ शब्दों में मध्य का य भी ज में परिवर्तित हुआ है, जैसे—जयद्रथ=जैजरथ, मर्य्यादा=म्रज्जाद, म्रजाद।

(६) पालि, पैशाची, शौरसेनी और महाराष्ट्री में श के स्थान पर स हो जाता है। यह लक्षण रासो में भी पाया जाता है, यथा—

शिष्य >सिष्य, सिष्र

शब्द >सद्द, सब्द

आकाश>अयास, अयासह

शुतर >सुतुर

शय्या >सौज

शिकार>सिकार, सिक्कार

वेश्या >वेसव, वेसवा

शयन >सेन

दिश >दिसि

साथ ही रासो में श्य और श्व के स्थान पर भी स का प्रयोग मिलता है, जैसे—

उद्देश्य >उद्देस

श्वेत >सेत

विश्वास>विसास

वैश्वानर>वैसानर, वैसंनर

श्वस्ति >सुस्ति, सुस्त

(७) पालि में श के स्थान पर तथा महाराष्ट्री में श, ष और स के स्थान पर कहीं कहीं छ हो जाता है, यथा—शाव=छाव, षष्ठ=छट्ठ, सुधा=छुहा। रासो में भी ये लक्षण मिलते हैं, जैसे—

शाव >छाव

षष्ठ >छट्ठ

मनुष्य >मनुच्छ, मनुछ

मनसिज>मनछिज

मात्सर्य >मछर

संवत्सर >संवच्छर

अप्सरा >अपछर, अपच्छर, अच्छरी, अछरी

संयुक्त व्यंजन—

(१) रासो में ज्ञ के स्थान पर ग्य (तथा कहीं-कहीं गि भी) हो जाता है और यह प्रवृत्ति राजस्थानी (ज्ञाति=ग्याति) व्रज और अवधी (अज्ञान=अग्यान) में भी पाई जाती है, यथा—

आज्ञा >अग्या, अगिया

राज्ञी >रागिनी

अज्ञान >अग्यान,अगियान

यज्ञ >यग्य

प्रतिज्ञा >परतग्या

ज्ञान >ग्यान, गिनान

(२) महाराष्ट्री में संयोग में पूर्ववर्ती द का लोप होता है, यथा—मुद्गर=मुग्गर। रासो में भी यह लक्षण मिलता है, जैसे—

द्विप्रहर >विप्रहर, विप्पहर

(३) महाराष्ट्री में ध्य और ह्य के स्थान पर झ हो जाता है, यथा—ध्यान=झाण, साध्य=सज्झ, गुह्य=गुज्झ, सह्य=सज्झ। रासो में भी यह लक्षण पाया जाता है, जैसे—

वंध्या >वंझ, बांझ

संध्या >संझ, सांझ

(४) महाराष्ट्री में जहाँ म्ह होता है वहाँ अपभ्रंश में म्भ और म्ह दोनों होते हैं, यथा—ग्रीष्म=गिम्भ, गिम्ह; श्लेष्म=सिम्भ, सिम्ह। हेमचन्द्र अपभ्रंश में म्ह के स्थान पर म्भ होना बतलाते हैं (म्हो म्भो वा ॥४१२॥), जैसे—ब्रह्मन्=वम्भ। रासो में यह नियम देखा जाता है, यथा—

ब्राम्हण >बंभन

ब्रम्हा >बंभं

स्पष्ट है कि उपर्युक्त नियम में रासोकाल तक कुछ परिवर्तन और हो गया अर्थात् म्भ को संयुक्त रूप न देकर म के लिये पूर्व व्यंजन पर अनुस्वार लगाकर और सरल रूप बना दिया गया।

(५) महाराष्ट्री में संयोग में परवर्ती य का लोप होता है, जैसे—व्याध=वाह, और संयुक्त व्यंजन के लुप्त होने पर अवशिष्ट व्यंजन यदि वह शब्द के आदि में न हो तो उसका द्वित्व हो जाता है। पालि और महाराष्ट्री में ऋ का सर्वथा लोप हो गया है तथा दोनों में उसके स्थान पर रि मिलता है और पालि में र भी होता है, यथा—(पालि—ऋते=रिते; वृह्म=व्रह्म); (महाराष्ट्री—ऋतु=रिउ; ऋद्धि=रिद्धि; ऋक्ष=रिच्छ)। रासो में य और ऋ के ये नियम पृथक् और एक साथ देखे जा सकते हैं, जैसे—

रम्य >रम्म
प्रनम्य >प्रनम्म
सन्यपात>सन्नपात, सनेपात

सत्य >सत्त

मृत्यु >म्रत्त

नृत्य >न्रत्त

भृत्य >भ्रत्त, भ्रत

कृत्य >क्रत्त, क्रत

कहीं-कहीं संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती वर्ण का लोप होकर रासो में ऋ के स्थान पर रि भी मिलता है, यथा—

हृदय>रिध्य, ऋदय

(६) संयुक्त पूर्ववर्ती र का मध्यस्वरागम द्वारा पूर्ण वर्ण होना तथा रेफ वाले वर्ण का समीकरण द्वारा द्वित्त होना, यथा--

दुर्ग >दुरग्ग

वर्ष >बरस्स

अर्क >अरक्क

स्वर्ग >सुरग्ग, सुर्ग, स्वरग

पर्वत >परव्वत

अर्द्ध >अरद्ध, अरध

(७) संयुक्त पूर्ववर्ती र का पूर्व वर्ण में संयुक्त होकर परवर्ती होना और रेफ वाले वर्ण का समीकरण द्वाग द्वित्त होना, यथा—

गर्व >ग्रब्ब, ग्रब्भ

वर्ण >ब्रन्नं, ब्रन्न

सर्प >स्रप्प, श्रप्य, श्रप्प

गर्भिणी>ग्रब्भनिय

सर्व >सब्ब, श्रब्ब, श्रब्बह

पर्व >प्रब्ब

गंधर्व >गंध्रब्ब, गंध्रब

निर्माण>न्रिमांन

मर्यादा>म्रज्जाद, म्रजाद

विवर्ण>विब्रिन्न, विब्रिन

धर्म >ध्रम्म, ध्रम

कर्म >क्रम्म, क्रम

कर्कश >क्रक्कस

गर्म >ग्रम्म

गर्ज्यो >ग्रज्ज्यो
चर्म >चूम्म
दर्पण >द्रप्पन
वर्ग >व्रग्ग
पर्वत >प्रव्वत, प्रब्बत
स्वर्ग >स्रग्ग, स्रग
सर्वदा >श्रब्बदा
कर्मनाशा >क्रम्मनासा
वर्णन >ब्रनंन, वृनन
सुवर्ण >सोव्रन्न, सोव्रंन
निर्मयिय >न्रिम्मयिय
नर्क >न्रक

(८) संयुक्त परवर्ती र का मध्यस्वरागम द्वारा पूर्ण वर्ण हो जाना, यथा—

प्रचुर >परचर
प्रवेश >परवेश
प्रतीति >परतीत
प्रवीण >परवीन
ग्रद्ध >गिरध
द्रव्य >दरब, दरब्ब, दर्व
प्रतिज्ञा >परतग्या

(९) वैदिक साहित्य में परवर्ती र का विकल्प से लोप मिलता है, यथा—प्रगल्भ= पगल्भ (तैत्तिरीय संहिता २, ३, १४) जो प्राकृत में वर्तमान है, जैसे—प्रगल्भ=पगब्भ। अपभ्रंश में भी संयोग में परवर्ती र का विकल्प से लोप होता है (वाधो रो लुक ॥ ३९८॥ हेमचन्द्र), यथा—प्रिय=पिय, प्रिय; चन्द्र=चन्द, चन्द्र। रासो के कुछ शब्दों की ऐसी प्रवृत्ति लक्षित हुई है, जैसे—

समुद्र >समुद, समद, समुद्द
प्रहर >पहर
प्रमाण >पमान

(१०) महाराष्ट्री में संयोग में पूर्ववर्ती और परवर्ती र का लोप होता है और संयुक्त व्यंजन का लोप होने पर जो व्यंजन शेष रहता है यदि वह शब्द के आदि में न हो तो उसका द्वित्व होता है, यथा—अर्क=अक्क; चक्र चक्क। रासो में पूर्ववर्ती र के लोप का लक्षण वर्तमान है, जैसे—

सर्व >सब्ब, शब्ब, सब, श्रब्ब
कार्य >कज्ज
पूर्व >पुब्ब

दर्प >दप्प, दप्थ, दाप
स्वर्ग >सग्ग
दुर्बल >दुब्बल
अर्थ >अथ्थ, अथ्थि
गर्व >गब्ब
दुर्लभ >दुल्लभ
समर्पित >समप्पी, सपमी (व्यंजन विपर्यय), सौंपी
समर्पण >समप्पन
अपूर्व >अपुब्ब
कर्दम >कद्दम
कीर्ति >कित्ति, कित्तीय
जर्जर >जज्जर
कर्म >कम्म, क्रम्म

महाराष्ट्री में स्वरों के मध्यवर्ती ब का व होता है,जैसे--अलाबू=अलावू; शबल=सवल। परन्तु रासो में इसके विपरीत लक्षण मिलता है अर्थात् व के स्थान पर ब हो जाता है। यह लक्षण उपर्युक्त उदाहरणों के अंतर्गत तथा अन्य स्थलों पर भी देखा जा सकता है।

(११) महाराष्ट्री में संयोग में पूर्ववर्ती और परवर्ती व का लोप होता है और अवशिष्ट वर्ण के शब्द के आदि में न होने से उसका द्वित्व होता है, यथा—पक्व=पक्क। रासो में भी यह लक्षण मिलता है—

तत्व>तत्त, त्तत्त

त्तत्त रूप रासो की विलक्षणताओं में से एक है। इसके दो प्रयोग द्रष्टव्य होंगे—

१—अन्यं जानि त्तत्तयो सारं। छं० ६८३ स० २५

२—त्तत्त सार प्रति प्रत्ति प्रमानं। छं० ६८४ स० २५,

उद्वेग >उद्देग, उदेग
विलम्ब >विलम्म, विलम

(१२) महाराष्ट्री में ष्ट के स्थान पर ठ हो जाता है, यथा—मुष्टि=मुट्ठि; पुष्ट=पुट्ठ; काष्ट=कट्ठ; इष्ट=इट्ठ। रासो में भी यह नियम पाया जाता है, जैसे—

तुष्ट >तुट्ठ, तुट्ट, तुट्ठै, तुट्टै
रुष्ट >रुट्ट, रुट्ठ, रुठ्ठ
रिष्ट >रिट्ठ, रीठ (=युद्ध; तलवार)

(१३) महाराष्ट्री में ष्ण के स्थान पर ण्ह हो जाता है, जैसे—उष्ण=उण्ह; पालि में ऋ के लिये र प्रयुक्त होता है और पैशाची में ण के स्थान पर न होता है। इन तीनों नियमों के सम्मिलित प्रयोग से रासो के निम्न शब्दों का निर्माण हुआ है—

कृष्ण >किस्न, कन्ह, कन्हर
मृगतृष्णा>म्रिगतिस्ना

(१४) महाराष्ट्री में ष्प और स्प का फ होता है, यथा—पुष्प = पुप्फ; स्पन्दन = फंदण रासो में भी पुप्फ और फंदन रूप प्राप्त होते हैं।

(१५) रासो में शब्दों के अंतिम वर्ण का द्वित्व भी कभी-कभी देखा जाता है जो बहुधा छंद की मात्रायें पूरी करने के लिये किया गया है, यथा—

अनसन>अनसन्न
हद >हद्द
जप >जप्प
सरित >सरित्तं
कवि >कव्वी, कव्विय
कब >कब्ब, कब्बयं
अब >अब्ब, अब्बयं
धरती >धरित्ती, ध्रित्त
षड्ग >षग्ग
शुभ >सुब्भ
वन >वन्न

(१६) संयुक्त शब्दों को सरल तथा छन्दोपयोगी बनाने के लिये रासोकार के अन्य प्रयत्न भी उल्लेखनीय हैं—

कोल्हू >कोलू
चिल्ल >चिल्ह
उल्लास>उल्हास
अग्नि >अग्गि (पालि)
पद्द >पय, पग
कुम्हार >कुलार, कुलाल (अर्द्ध मागधी में र के स्थान पर ल हो जाता है।)
कल्यपाल>कुलाल, कलाली, कुलार
निर्धन >निद्‌धन्न
चिकुर >चिहुरार
लक्ष्मी >लच्छी
सिलाह >सिल्लाह
सनाह >सन्नाह
संकेत >सहेट
विराट >बैराट (विषमीकरण)

यद्यपि ऊपर कुछ नियम दिये गये हैं फिर भी रासो की भाषा में एक विलक्षणता यह दिखाई देती है कि किसी नियम का अक्षरशः पालन नहीं मिलता। अधिकांश शब्दों के स्वरों और व्यंजनों के रूप में परम स्वच्छंदता और संभवतः छंद की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन मिलते हैं तथा उनके संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी और हिंदी रूपों के दर्शन होते हैं। यह अद्भुत शैली रासो में अद्यावधि प्राप्त होती है, इसलिए इसकी उपेक्षा न करके हमें गंभीर विवेचना करनी होगी। स्वर और व्यंजनों के परिवर्तन के कुछ उदाहरण देखिये।

स्वर— नारि, नारी, नारिय; बात, बत, वत्त, वत; अकास, आकास, आयास; बेलि, बेली; रिष, रिषि, रिष्ष, रिषी, ऋषि; रिदय, ऋदय; गिर, गिरि; धुम्र, धूम्रां, धूम, धुम्म; दन्तयं, दन्त; सैल, सयल, सइल, सेलह, (शैल); जौं, जवं, जवन; गौरि, गौरी, गउरि, गवरी; नगर, नयर, नर, नेर, नैर; मुक्कूं, मुक्कौ, मूकौं; मुक्कियो, मुक्यो; मनुष, मानुष्य, मानष, मनष; सौति, सौती, सोति, सौत; जै, जय, जइ, जया; विनस्सया, विनास्या; एक, इक, इकह, इकि, इक्क; दो, दुइ, दोय; इत्यादि।

व्यंजन— पहुकर, पोखर; अग्गी, अग्नि, अगनि, आगि, आग; भयौ, भौ; सीष, सीस; कारज, काज, कज्जह; विप्र, विप्प; ग्रेह, गेह, गह; अचरिज, अजरज; गुरु, गुरयं, गुर; पुत्र, पुत, पुत्त; कर्म्म, कम्म, क्रम्म, काम; हथ्थ, हत्थ, हाथ; व्याह, वीवाह; ग्यान, गियान; अस्नान, सनान, न्हान; मग, मग्ग, मगह; सिव, शिव, सिभ, सब, सब्ब, सव्व, सर्व, सभ; गाढ, गाड, गढ्ढ; अदम्भूत, अदब्बुद; श्रवन, स्रवन, श्रुत, स्रुत; हय, है; इत्यादि।

सर्वनाम—

सर्व प्रथम हम सर्वनाम पर विचार करेंगे क्योंकि इसमें हमें प्राचीन रूपों के दर्शन होते हैं।

कर्त्ता, उत्तम पुरुष का साधारण रूप हौं (< सं० अहम्) मिलता है।

यथा— **तौ हौं छंडों देह। १ ३३१.२।**

हौं के स्थान पर कहीं कहीं हों भी पाया जाता है। यथा—

सो हों सबै सुनत हौं माता। १। ३३४। ४।

हों जानि ग्यान इह कहौं तोहि।

मैं के स्थान पर बहुधा में मिलता है। सं० मया>प्रा० मए, मइ>हिं० मैं। यथा—

मैं सुन्या साहि विन अंषि कीन।

तजि भोग जोग मैं तप्प लीन। ६७। २२८। १-२।

विकृत रूप का साधारण व्यवहृत रूप मोहि है। यथा—

कह्यौ मोहनि बर मोहि। १। १६६। २

नही मोहि काम पिता राजधान। ६६

मोहि के स्थान पर मुहि का प्रयोग भी किया गया है। यथा—

जो मुहि ढुंढा निगलिहै। १। २४१। २।

तब लगि कुष्ट दरिद्र तन। तब लगि लघु मुहिगात।
जब लगि हौं आयौ नहीं। तो पाइ न सेवात। १। ५४७

और मुहि के स्थान पर कहीं कहीं मुह ही रह गया है। यथा—

मुह सुझै इह मत।

मोहि के बाद प्रायः सारे कारकों के साथ प्रयुक्त होनेवाले मो की गणना की जानी चाहिए। यथा—

किम उधार मो होइ। १। ५६३। २
जिहिहयौ अप्प सो तात गर। १। १०८। ६
भट्ट जाति कवियन नृपति, नाथ नाम मो चंद। ६। २५। १-२
ऐसी कहि मो कहुं डर पावहु। १। ३३४। १
जो मो सों सांच न कहौ। १। ३३१। १

मुझ रूप के भी बहुतेरे उदाहरण मिलेंगे। यथा—

इह धरनी मुझ पित प्रपित। १। ५५१। १
का किहि बंसहि उपज्या, तूं मुझ जंपहि माई।

मेरे का व्यवहार देखिये—

मेरे कछु इह दाय न आवहु। १। ३३४। २
सत्त भ्रात मेरे हते। ५। १०५। ३
इह मेरी अरदासि। १। ४८०। २

कर्ता बहुवचन हम के बहुलांत प्रयोग मिलते हैं, यथा—

हम मरन दिवस हैं मंगलीक। १। ४४५। ३
कहै कन्ह हम मानी सब्बह। ६। १४५। १
हम तुम कबहुँ नहि विरुद्ध।
हम तुम काम इहि षेत आज।

विकृत रूप हमहि है और संबंध कारक में हमारो, -रे, -री, हो जाता है। यथा—

आल्हा सुनौ हमारी वानीय। म० स०

हम्मान का प्रयोग भी देखिये—

जु कछु साह अग्या दियै करें बनें हम्मान। ५१। ७४।

मध्यम पुरुष, कर्त्ता, एकवचन तू और बहुवचन तुम के उदाहरण ऊपर मिल जावेंगे। तू का एक विशेष सार्थक प्रयोग भी देखिये—

तुंही गंग गोदावरी गोमतीयं।
तुंही नर्वदा जमना सरस्वतीयं।

तुंही के स्थान पर तुही प्रयोग भी मिलता है—

सबै कज्ज अग्गै तुही नाम लग्गै। १। ६१। १

तुही के विकृत रूप तोहि का प्रयोग भी हुआ है--

तूठे संभर तोहि । १ । ४०९ । ४

तुही के स्थान पर तुहि और तो भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा--

जदिन श्राप तुहि भयौ । १ । ११८ । १

सुनिय बात तो तात तव । १ । ५१२ । १

प्रथम पुरुष के समानांतर तुझ रूप आया है । यथा--

श्रवन सुनाऊं तुझ्झ । ६७ । ५०० । ३

साथ ही प्राकृत रूप तुअ के भी दर्शन होते हैं । यथा--

तुअ पुत्रह पौत्र बधु उरनं । १ । ५५२ । ३

तुअ भुज बल अचरिज्ज कह । ६७ । ५११ । ३

बहु वचन का विकृत रूप तुमहि निरंतर मिलता है । यथा—

पुत्र एक जच्चं तुमहि । १ । १७७ । ३

कै सिर तुमहि समप्पिहौं, कै सिर धरिहौं छत्त । १ । ५५० । ३-४

तुम के साथ तुम कौं, तुम सौं की भाँति कारक चिन्ह जोड़े जाते हैं ।

प्रथम पुरुष में सर्वनाम सो, इह और उह के प्रयोग मिलते हैं। इह का प्रयोग पर्याप्त स्थानों में मिलता है । यथा—

मोहि इह आगम बुझ्झै ।

उसका विकृत रूप यांहि है, यथा—

यांहि सपूरन को थिर काजं । १ । १७४ । २

उह का कर्त्ता बहुवचन रूप और इह का एक वचन रूप, एक पंक्ति में प्रयुक्त हुआ है--

वे वाहैं तरवारि, इहै मुष पकरि सु कट्टै । १ । ५१६ । ५-६

एक स्थल पर वह के स्थान पर थ्थु का विलक्षण प्रयोग मिलता है । यथा —

मांस पटह हौं वृत्तह मंडों, थ्थुना आवै तौ तन छंडों । २५ । ७९

उपर्युक्त विवेचना के अनुसार रासो के सर्वनामों को सरलता से इस प्रकार समझ लिया जा सकता है—

उत्तम पुरुष—

एकवचन	कर्त्ता	हौं, हों म्हें
	विकृत	मोहि, मुहि, मो, मुझ, मुह
	संबंध	मो, मेरौ ऽरी ऽरे
बहुवचन	कर्त्ता	हम
	विकृत	हमहि
	संबंध	हमारौ

मध्यम पुरुष—

एकवचन कर्त्ता तूं, तुंहि
विकृत तोहि, तुंहि, तो, तुम्ह
संबंध तुअ, तो, तेरौ ०री ०रे

न कर्त्ता तुम, तुम्म, तुमं (बहुधा गाथा छंदों में)
विकृत तुमहि
संबंध [तुह्मारौ] तुह्मरे ०री

प्रथम पुरुष—

एकवचन	कर्त्ता	सो	इह, इहे	उह, उहै, वह
	विकृत	ताहि, ता	याहि, या	वाहि, वा
	संबंध	ताकौ इत्यादि	याकौ इत्यादि	वाकौ इत्यादि
बहुवचन	कर्त्ता	ते, तेउ	ये, इहे	वे
	विकृत	तिनि, तिनै, तिन	इनि इन	(उनि), उन
	संबंध	तिनकौ	इनकौ	(उनकौ)

ताहि का ह्रस्व रूप तिही है और इसलिए वह जिहि (बहुवचन जिनि, जिनै) के अनुरूप है, जो जौं से आया है।

प्रश्नवाचक कौं या को है जिससे विकृत होकर किहि बना है जो बहुवचनांत में किन हो जाता है। दूसरे रूपों में कितनौ और उसका वर्ग तथा कैसो और उसका वर्ग जिसमें बहुधा किसो, जिसो आदि भी मिलते हैं, उल्लेखनीय हैं।

जाके देह न होई, ताहि कैसै कै गहियै। १। ३३५, ७-८

कैं, कर के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिहां दिष्ट नह भिदै। ताहां कैसैं करि सुभ्झै। १। ३३५, ३-४
बहुवचन के विकृत रूप में कैसैं प्रयोग किया गया है--

सारगं दे कैसैं जुध किन्ना। १। ३२६। ४

कितना और उसके वर्ग में केतौ भी है तथा अन्य रूप, यथा---

केते नर रिष राई भए सुर दानव अग्गै १। ३३, ३-४

कारक चिन्ह—

अब हम कारक चिन्हों पर विचार करेंगे और सबसे पहिले कहुँ को लेंगे जिसके अन्य रूप कहं, कौं, कों मिलते हैं। इन्हीं से हिंदी का आधुनिक को रूप आया है। रासो में छंद संबंधी बाधा न होने पर, पूर्ण स्वच्छंदता से इन चिन्हों का प्रयोग किया गया है।

जच्चै सु सोइ तुम एक कहुं। १। १७८। ६
प्रात समे बर दुजन कहुं।
बंटि अप्प कर दीन। ७। ५। ३-४
करि दंडौत सवन कहुं।

प्रिथीराज महोबे जुद्ध कहु, हम परिमाल बुलाइयव । म० १६६ । ११-२

अपादान कारक के कई चिन्ह हैं । सम चिन्ह प्राचीन है जिससे सौं, सों और से निकले हैं ।

कहै दूत प्रथिराज सम, मिळ सेना बरजोर । १३ । २६ । १-२

कहै कंति सम कंत । १ । १२ । १

परि, पर, पैं और पै के प्रयोग साधारणतः प्राचीन हिंदी सदृश हैं । तै, ते जो अधिकतर तैं, तें रूप में मिलता है, बीम्स महोदय के अनुसार तो से निकला है, जैसे सो या सौं से 'से' ।

ता के कुल तैं उप्पनौ । ११ । ३३८ । १

तुम कहौ करूं जीव तैं बध । १ । ३७६ । १

आधुनिक हिंदी का अधिकरण चिन्ह रासो में अनेक रूपों में व्यवहृत हुआ है । इसका प्राचीन रूप मध्ये है जिसका मध्य रूप रासो में आया है । यथा—

अमृत सुव्रत मध्य बसि । १ । ३ । ८

इहै बोलि बानी दलं मध्य आयौ । म० । ४३ । १

फिर मधि रूप भी देखिये—

पहुर रात पछिली, राज आये डेरा मधि । १ । ४०७ । १२

जो बहुधा मद्धि रूप में प्रयुक्त मिलता है—

जोगिनिय गई रागिनी मद्धि । १ । ३७३ । ३

ध+य का झ रूप हो जाना, जिस पर बीम्स महोदय ने अपने कम्पेरेटिव ग्रामर पृ० ३२६ में प्रकाश डाला है, रासो में मझि रूप में वर्तमान है । यथा—

मुछेव परिय मझि बिल अथाव । १ । १५१ । २

और मांझ, मझ्झं, मझं, मंझ, तथा मझ रूप भी भरे पड़े हैं—

उपवाग मांझ चलि गये आप । म० । ७ । ४,

को राजन कवन धर मझ्झं,

चहु आना कुल मझ्झि । २२ । ५ । २,

परचर उज्जैन मझं,

दिन दोय मंझ नीके पहूँत । १ । ३८२ । ४

फिर एक मझार रूप मिलता है ।

नर नारी लज्या गई फागुन मास मझार । २२ । १ । ३-४

लै षबरि सहर पहुची मझार । १ । ३७१ । ४

अरि भाजि गए गिर बन मझार । १ । ४२१ । २

इसके बाद महि रूप भी आया है—

कज्जल महि कस्तूरी, रानी रेहंत नयन श्रृंगारं । १ । ४८ । २

दिन सत्त अवधि अंतर बहुत, हरि सु उद्धरै छिनक महि। १। ११६।११-२

झारषंड महि चरत। १। १२०। ३

महि के माहि, मांही और माँहै रूप भी मिलते हैं, यथा—

देषति नृपति बसि नींदा माही। १। ४०४। ४

लग्यौ वीर जल्हनी पर्यौ भूमि मांह। म०। ७०५। ४

पिय रन मांहै मरै, नारी सती न होय। म०

अंत में आधुनिक 'में' रूप भी देखिये—

पीयहिं मरत जीया रहै, करै पुत्र की आस।

वह नारी निहचै करै, घोर नरक में वास। म०। ३४२

ये छंद परवर्ती प्रक्षेपों से प्रतीत होते हैं। अस्तु, कुछ अन्य स्थलों के उदाहरण अनिवार्य हैं—

एक मास में नगर बसावौ। १। ४६७। ३

बली कन्ह कै कंध मैं षग्ग नायौ। म०। ७०६। ४

संबंध कारक के चिन्ह कौ, के या कैं और की मिलते हैं। केरो और केरी रूप भी पाये जाते हैं। यथा—

दौरि गज अंध चहुआँन केरो, घेरियं गिरदं चिहौ चक्क फेरो २०। ६४। ४

कियौ नंद नीसान फौजें सुफेरी।

भिंदी दिष्टि सों दिष्टि चहुआन केरी। म०। ११३। १-२

रासो में हुंतो या हूंत कई रूपों में मिलता है और इसका अर्थ 'था' है। बीम्स महोदय का संदेह निराधार है कि इसका अर्थ 'से' है। यथा—

केतीक दूर अजमेर हूंत।

दिन दोय मंझ नीके पहूंत। १। ३८२। ४

कहत सिद्ध किहि पुरहुंतैं, कौन गोत किहि नाम।

इहि तीरथ आये हुते, कै अगैं कोई काम। १। २६६

इति हनूफालय छंद, कल बरनि वरनि सु कंद।

नहि नाल पिंगल जोर, दुज हूँतो दुजनिय भोर। १।६५

एकवचन संज्ञा के साथ बहु वचन क्रिया, पुलिंग संज्ञा के साथ क्रिया स्त्रीलिंग तथा इसके विपरीत प्रयोग, रासो के अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं, यथा—

तब सकल भइय एकत्र नारि। १। ३७१। १

सब सौति कह्यौ दुष सुनहु तुम्म। १ ३७५ १

सिंध विनास्यौ वनिक सुत, कन्या कियौ अंदोह। ११। ३४८। १-२

क्रिया—

रासो में प्रक्षेपों की भरमार होने के कारण हमें क्रिया प्रयोगों के विभिन्न रूप पाना स्वाभाविक है परन्तु अड़चन यह उपस्थित हो गई है कि सिद्धान्त रूप से किसी नियम का

निर्धारित करना कठिन हो गया है। अनेक स्थलों पर क्रिया नहीं प्रयुक्त की गई है और बहुधा धातु में ह्रस्व इकार लगाकर उसको इच्छानुसार भूत, भविष्य और वर्तमान कालों के अर्थ में व्यवहार किया गया है, जब कि वास्तव में यह रूप पूर्वकालिक कृदंत का है। यथा—

अनल आनि मातह मिल्यौ। कहि सब बत्त सुनाइ।
लोग महाजन संग लै। भूमि बसाई जाइ। १। ६०४

साधारण अनिश्चयवाचक वर्तमान प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में समान है और रासो में इसके प्रयुक्त रूप किसी प्रकार की समस्या नहीं उत्पन्न करते। यथा—

एकवचन	बहुवचन
१. करौं, करूं	करैं
२. करै	करौ
३. करे	करैं

साधारण भूत काल के लिए कृदंत रूपों का तीनों पुरुषों में प्रयोग किया गया है—

		एक वचन	बहुवचन
१. २. ३.	पु०	चल्यौ	चलै
	स्त्री०	चली	चलीं

कभी कभी एकवचन पु० से अंतिम यौ को धातु से ह्रस्व अकार द्वारा अलग किया भी पाया जाता है—

तहां सिंघ वर बिनस्सयौ। १। ३४७। १२

परन्तु अगली पंक्ति में ही सिंघ विनास्यो,' रूप मिलता है। ्यौ के स्थान पर ्इव और ्एव रूप भी मिलते हैं। यथा—

अध इष्पि इष्पि भ्रमेव गाव। १। १५१। १ और
फिरि आल्ह बुल्लिव तांम। म०। २५६। १

भविष्य के लिए अनिश्चयवाचक वर्तमान का भी प्रयोग पाया जाता है। यथा—

तौ हौं छंडौं देह।

परन्तु भविष्य के साधारण रूप संस्कृत के भविष्य-संयुक्त-काल से निकाले जा सकते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
१.	चलिहौं	चलिहैं
२.	चलिहै	चलिहौ
३.	चलिह	चलिहैं

"संस्कृत के इस काल के रूप देखने पर एकवचन चलितास्मि, चलितासि (चलितास्ति) और बहुवचन चलितास्मः, चलितास्थ, (चलितासंति) प्राप्त होते हैं। परन्तु इन सबसे 'ता' हटाकर चलि+अस्मि=चल्यास्मि रूप की कल्पना की जा सकती है। विभक्तियाँ

के अस् क्रिया की अत्यधिक विकृति पर आधारित होने के कारण 'अस्मि' का 'अह्मि' हो जाता है जिससे 'अ' हटाने पर 'ह्मि' ही रह जाता है। दूसरे उदाहरणों में बहुधा दिखाये गये म के पवर्गीय और अनुस्वारांत भागों की पृथकता 'ह्मौं' की जन्मदात्री है जिससे 'हौं' बन गया। अस्तु, हमें तीन 'हां' शब्द प्राप्त होते हैं—एक 'भवामि' से, दूसरा 'अस्मि' से और तीसरा 'अहं' से।"

जॉन बीम्स

क्रियार्थक संज्ञा के -अन और-इव दो रूप मिलते हैं। यथा—

—अन

पुरुषातन तिन बंधन विचार। १। ३७१। २
कियौ चलन कौं साज। २०। ३७। ४
जंग जुरन जालिम जुझार। २०। ४०। ५

-इव

जो विलम्ब करि रहै ताहि हनिबे कौं आवै। १। ४११। ७-८
उठ्ठि लरिबे कौं धायौ। १। ५१६। ४
गवरि मात सिष्षवै, पुत्त आनल इह सिष्षिय। १। ५२०। १-२

आज्ञार्थ के साधारण रूप एकवचन में करहुं और बहुवचन में करौ मिलते हैं—

जगनक भट्ट अबै वर जावहु। म०। १८६। १

इ और उ के मिश्रण से हि रूप भी पाया जाता है—

तिन सु गल्ह अच्छी कहहि। १। १४। १२

पावहि और आवहि के स्थान पर वर्तमान निश्चयार्थक पावहु और आवहु का प्रयोग किया गया है।

वर्तमानकालिक कृदंत के अंत में 'अत' होता है, देषत, सुनत; और गाथा छंदों में तथा जहाँ दीर्घ शब्दांश की आवश्यकता पड़ती है वहाँ 'अन्त' होता है, जैसे रेहंत, कहंत। स्त्रीलिंग में ह्रस्व इकार हो जाता है, जैसे दपति; और दीर्घ ईकार में डरती, करती आदि पाये जाते हैं।

पूर्वकालिक कृदंत की इकार का निर्देश किया जा चुका है। इसका वास्तविक और पूर्ण रूप इयइ है जो संस्कृत के कृदंत के अधिकरण रूप से निकला है। यथा--

—चलिते>चलियै

बसि कियै भूमियां धूनि षग्ग। १। ४२६। २

बहुधा एकार भी मिलता है—

इह नष्ट ग्यान सुनिये न कान। १। ३५१। १

अब रासो की उन क्रियाओं पर भी विचार करना है जिन्होंने संस्कृत या प्राकृत या प्राकृत की धातु अथवा किसी विशेष रूप को आधार बनाकर अपने तीनों कालों के संपूर्ण रूपों को एक क्रम से प्रस्तुत नहीं किया है वरन् जिनके रूपों में प्राकृत के रूपों का स्वतंत्रता-पूर्वक समावेश कर लिया गया है। उदाहरणार्थ—देना का भूतकाल दियौ, दितो से है जो

दत्त के अर्थ में है; और भी दिएणो से दीनौ तथा दिद्धो से दीधौ रूप हुए हैं—परन्तु ये तीनों प्राकृत हैं। इन तीनों में अधिक व्यवहृत दीनौ है जिसके साथ करना से बने कीनौ और लेना से बने लीनौ रूपों का तुक मिलता है। कहीं कहीं भीनौ रूप भी मिलता है। करनां और लेना के भूतकालिक रूप कीया और किद्धौ तथा लीयौ मिलते हैं। पंक्ति के अंत में होने पर दीनौ, कीनौ और लीनौ का औकार प्रायः समाप्त हो जाता है। यथा—

१. कनक तुला तहां कीन। ८
२. बंटि अप्प कर दीन। ८
३. परिमाल जुद्ध पर हुकम दीन। म० १४। २
४. दस कोस जाय मुक्काम कीन।
बिच गाम नगर पुर लुट्ट लीन। म०

इन सब में क्रियाओं का कर्त्ता पुलिंग और एक वचन है। अब कुछ पूर्ण रूपों के उदाहरण भी देखिये—

१. अनंगपाल पुत्ती सुरंग, पुत्त इच्छा फल दिन्नौ।
नालिकेर फल सुफल, मंत आरंभन किन्नौ। ३। २। १४
२. सुद्ध चाव चंदेल सु कीनौ।
यह परिमाल लिऔ करि दीनौ। म० २८९। ३-४

दिद्ध० और दीध० रूपों के प्रयोग भी लीजिये—

१. बर दीधौ ढुंढा नरिंद। १
२. प्रथिराज ताहि दो देस दिद्ध। १। ४६७। ३
३. पुत्री पुत्र उछाह दान मान बन दिद्धिय।
धाम धाम गावत धमार, मनहु अंहि बन मनि लद्धिय।

हिंदी लेना संस्कृत लभनं से लहनं और लहिनं रूपों द्वारा आया है तथा सं० लब्ध से रासो का लद्धिय रूप समझना चाहिये।

रासों में ध के स्थान पर ज या ज्ज रूप भी एक आध स्थल पर देखने में आया है—

सगरी नाव जाय बंध किज्जय।
आल्ह उदिल उतरन नहि दिज्जय। म०। १९८। १-२

भू से बने भयो, भय, भयौ, भौ तथा पुल्लिंग बहुवचन भए और स्त्रीलिंग एकवचन भई, भई रूपों का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है, यथा—

१. भयो ताम तामस राज। १। १०१। ३
२. यौं भयो रिषि अवधूत। १। १०१। २
३. अनंगपाल भय राज। ३। १७। ४
४. अति दुषित भयौ सारंग देव। १। ३४९। १
५. सुनि श्रवन राज मन भौ उदेग १। ३४९। ४

६. मन भौ हास करु न फुनि आइय । ३ । १० । ४ ।

७. भए विकल लोग घाइल उताप । म० ।

भईं का प्रयोग नहीं मिलता परन्तु उसी अर्थ में भइय आया है—

८. तब सकल भइय एकत्र नारि । १ । ३७१ । १

दूसरा रूप हुंतो और हुतो तथा बहुवचन हुते है। इनके उदाहरण दिये जा चुके हैं। जान बीम्स महोदय ने इसी रूप (∠सं० भूत) से था की व्युत्पत्ति निश्चित की है। भूतकाल एक दूसरा रूप हुआ भी है जिसका पूर्णकालिक कृदंत हुअे मिलता है। यथा—

१. मति करहु सोच मम मंत्र मानि ।
हुअ राज काज वर चाहुआन। ३ । ३३ । १-२

२. बीवाह हुअे वर बन गयौ । १ । ३४७ । ११

वर्तमान काल के रूप हौं का उदाहरण दिया जा चुका है। है का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। वैसे भविष्य रूप में करिहै, जुझिहै पाया जाता है। इसी प्रकार भविष्यत होइहै जिससे ह्वैहै बना है, और आज्ञार्थ होये जिससे ह्वै हुआ है बन गये हैं। यथा—

१. प्रलै होइहै तिन वंसह । ३ । ४२ । ६

२. सब बोलि कह्यौ है सिद्ध सिद्ध । १ । ३७३ । ४

३. तूंअर तें चहुआन, अंत ह्वै है तुरकानों । ३ । २६ । ७-८

विकृत रूप होय, वर्तमान, भविष्य और पूर्णकालिक कृदंत की भाँति प्रयुक्त हुआ है। यथा—

१. दिवस पंच कै अंतरै होयसु दिल्ली पति । ३ ।११ । ३-४

२. जोग नैर जोतिग कहै । प्रभु सु होय प्रथु राव । ३ । १३ । ३-४

उपर्युक्त तीनों छंद भविष्य वाणी से संबंध रखते हैं और उनमें भविष्यकाल होइ रूप होइहै का लघु रूप है। वर्तमान काल के प्रयोग देखिए—

३. क्यौं उधार होइ श्राप बर । १ ।११७ । ३

४. करि सकों अब्ब तौ होइ हास । १ । २८ । ४

५. श्रवन सुनत होइ भंग । १ । ३३३ । २

६. हुइ होनहार सीता हरन । ३ । ३५ । २

कुछ पूर्णकालिक कृदंत अर्थों के प्रयोग भी लीजिए—

७. होइ प्रसन्न सुकदेव कहि । १ । ११६ । १०

८. त्रैलोक जीति जिन जोर कीन
ते गये अंत हुइ आयु हीन । ३ । ४० । १-२

वर्तमानकालिक कृदंत के दो रूप हुवंत और होत मिलते हैं। यथा—

१. पुत्र होत भइ मृत्य । १ । ३४७ । ३ ।

२. तुम बानी बानी प्रसन । हसन हुंवंत निवारि । १ । २६ । ३-४

भविष्यकालिक कृदंत होनहार का एक प्रयोग ऊपर मिल जावेगा परन्तु कुछ और देखिये—

१. तें कछू होनहार पहचानिय। म०। २१७। २
२. होनहार ऐसी लषी। कही जु आल्ह उपाय। म०। २१६। १-२
३. जगनक कह मंसबही जानिय
होनहार अविगति नहि मानिय। म०। २२१। १-२

अव्यय—

समुच्चयबोधक अव्यय 'और' के स्थान पर अवर, अपर, अरु प्रयोग मिलते हैं। अरु को कहीं कहीं शब्द संधि के अवसर पर 'ऽरु' रूप में भी लिखा गया है। यथा——

१. वय स्यामऽरु शैशव अंकुरयं। अहअंत निसागम संकरयं। २५। ६१
२. सब रिप्प भई सन्नहऽरु दुअ। अति अभूत लच्छिन प्रबल। २५। १७४

संख्यावाचक विशेषण—

रासो में संख्यावाचक विशेषण इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे भिन्न भिन्न भाषाओं से आये हैं, किसी एक विशेष भाषा से नहीं। अस्तु, इनकी विवेचना रासो की भाषा के निर्धारण में सहायक होगी।

सबसे पहिले हम पूर्ण संख्यावाचक विशेषणों को लेते हैं और उनकी क्रमशः लंबी तालिका न देकर इसे अधिक समुचित समझते हैं कि उन्हें अपनी नाम संज्ञा के अनुसार उचित भाषा के अंतर्गत दिया जाये।

पूर्ण संख्यावाचक विशेषण—

संस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	प्रा० गुजराती	प्रा० राजस्थानी	हिंदी
एक	एक, एकं इकं	एक्क (इक्क)	एक्क (इक्क)			एक
द्वै		दो, बे	[दुअ, दोइअ दुय्य]	बे	बिय, दो	दो
त्रय, त्रयं,		तीय				तीन
चतुर			चारि [चव, चौ]		च्यारि, च्यार च्यारौ	
पंच, पंचह						
षट् (षट्ट)						
सप्त	सत्त	सत्त, सत्तह		सात	सात	सात
अष्ट	अट्ठ	अट्ठ, अट्ट, अट्ठ, अठ्ठ				
नव	नव	नव			नव	नव
	दस	दस, दह	दस	दस	दस	दस

संस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	प्रा० गुजराती	प्रा० राजस्थानी	हिंदी
	एकादस (इकदस)					ग्यारह
	द्वादस					बारह
	तेरस (त्रयोदस)			तेर	तेर	तेरह
			चवदै			चौदह
	पंचदस		पन्द्रह			पंद्रह
	षोडस			सोरह		
	षोड़स					
अष्टदस		अट्ठारह	अट्ठारह		अठार	
			(गुनईस)			
						वीस, बीस
				एक वीस, इकईस		
						बाईस
				तेइस		
						चौबीस, चौवीस
						पच्चीस, पचीस
		सत्तावीस				
		तीसह	तीस	त्रीस	त्रीस, तीसक	तीस
						इकतीस
						बत्तीस
						तेंतीस
						पैंतीस
						छत्तीस
			(गुनचालीस)			
					च्यालीस	चालीस
			[चोआलीस चौआलीसौं]			
				नंचास		
			पच्चास			
					इक्योवन	
					वावन	बावन
					त्रेपन	
	सट्ठि	सठ्ठि	सट्टि, सठ	साठ	साठि	साठ
			चवसठ्ठि		चौसठ्ठि	
			{ अट्ठसट्ठ अठसठ		अड़सठ्ठि	

संस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	प्रा० गुजराती	प्रा० राजस्थानी	हिंदी
		सत्तरि	सत्तरि, सत्तर			
		अठ्ठहत्तर	अठ्ठहत्तर			
			असी, असिय, असि			इक्यासी
	चतुरासीत					
			एकानवे			
शत		सत, सय [सै, सौ, सव से, सैं]		सो	सौं, सैं	सौ
	सहस्स	सहस्स				
			लष्ष			लाख
कोटि			षरब			

हजार (<फा० हज़ार) फारसी शब्द है जो रासो के सैकड़ों स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। डा० धीरेन्द्र वर्मा अपने ग्रंथ 'हिंदी भाषा का इतिहास' पृ० २५५ पर लिखते हैं--"सं० सहस्त्र के स्थान पर सं० दश शत का प्रचार मध्य युग में हो गया था। कदाचित इसी कारण से फ़ारसी का एक शब्द हज़ार मुसलमान काल से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हो गया।" रासो में फारसी हज़ार और भारतीय भाषाओं के संख्यावाचक विशेषण देखने योग्य हैं तथा विचारणीय हैं। एक हजार, पंच हजार, हजार इक्यासी, डेढ हजार, हज्जार सु तीन, हज्जार साठि, और दस हज्जारह (म० स०).

उपर्युक्त तालिका के अतिरिक्त संख्याओं का व्यक्तीकरण निम्न रूपों में भी मिलता है--

दस दोइ=१२, दस तीन=१३, दह तीय=१३, तेरह तीन= १६, दस अठ=१८, अठ दसै=१८, अठ्ठारहां=१८, चौअग्गानी वीस=२४, तीस दुअ=३२, तीस पर पांच=३५, छतीसउ=३६, तीस षठ=३६, षट त्रीसह=३६, तीस अठ=३८, अठारह वीस=३८, दो वीस=४०, तेतीस नौ=४१, च्यार अग्ग चालीस=४४, पच्चास पांच=५५, पच्चास पंच=५५, तीसह विय ६०, पंचास बीस दो दून घटि=६०, चौअग्गानी सठ्ठि=६४, दोइ दस कर चवसठ्ठि=६४ या ७२, पंचास दून=१००, साठि इक्योवन=१११, सत दोय=२००, सत्त उभय नंचास=२४६, सत्त षट=१०६, द्वै से=२००, सत तीन=३००, नव सें=६००, ग्यारहसें=११००, चौदहसें=१४००, पंच सें=५००, षट्ट सय=६००, सय दोय=२००, दस्स सै=१०००, सै तीन=३००, असी तीन सै ३८०, ग्यारह सै एकानवै=११६१, पांच सौ=५००, अठ्ठोत्तर सौ=१०८०, सव (म० स०)=१००, चव सहस=४०००, दस सहस, अठ्ठार सहस, सहसं अठार, सत्तरि सहस, सहस सत्तरि, ग्यारह सहस बावन=११०५२, पाव लाख, सवा लष्ष, तीस लष्ष, असिय लष्ष, एक कोटि, कोरि सवायो=सवा करोड़, सत कोटि=७ करोड़ या एक अरब, अठ्ठ षरब अस्सीयं लष्षं=८ खर्व ८० लाख इत्यादि। अनुमान है कि इस प्रकार के प्रयोग छंद की मात्रादिक नियमों की पूर्णता को लक्ष्य करके किये गये हैं।

द्वत्रिंशत=६०, सय तेर=१३००, सयं तीन=३००, सयं पंच=५००, इक्क सहस=१०००, उभय सहस=२०००, ग्यारह सैं चालीस चव=११४४, सहस तीन तेरह=३०१३ या १०१६, सहस पंच दस=१५०० या १०१५।

क्रम संख्यावाचक विशेषण—

प्रथंमं;

दुती, बिये;

तृती, तीज, त्रतिया, तीसरौ (म० स०);

चवं;

पंचम्म, पंचमि, पंचमी;

छठं;

सतं, सप्तम, सप्तमी;

अठ्ठं, अठ्ठमो, अष्टमै;

ग्यारमै, ग्यारहौं (म० स०)

अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण—

पाव=¼ ; पाव भाग पज्जून। राव मंडी मरदाइय

अरध=½;

सवा=1¼, सवायो (म० स०);

देढ़, डेढ़ (हजार, हज्जार)=1½, ड्योढ़ (म० स०)

अढी=2½ (म० स०); अढी सहस हथ्थी कमन्नैत लष्षं। छं० ६० स० ४३।

देश्य, देशी या देशज—

तत्सम और तद्भव शब्दों के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के वे शब्द जो न तो संस्कृत हैं और न संकृत शब्दों से क्रमशः विकसित हुए हैं तथा जिनके मूल का पता नहीं लगता और जिनकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है परन्तु जिनके बारे में यह निश्चित है कि वे हैं भारत के ही, देश्य, देशी या देशज कहलाते हैं। भारत में अभी तक अभिमान चिन्ह, गोपाल, देवराज, द्रोण, धनपाल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक, शीलाङ्क और हेमचन्द्र इन नौ देश्य शब्द कोषकारों के नाम और कृतियाँ मिलती हैं। इनमें देशीनाममाला के रचयिता हेमचन्द्र सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए और उनका ग्रंथ भी अधिक परिचयात्मक तथा विवेचनात्मक है। हिंदी भाषा में प्रचलित देश्य शब्दों का कोष प्रस्तुत करने की ओर किसी विद्वान् ने अभी तक प्रयत्न नहीं किया है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में देशी शब्दों की एक विस्तृत तालिका प्रस्तुत की जा सकती है। इन शब्दों की विशेषता यह है कि ये एक दीर्घ काल से अपनी अर्थ वाहकता और भाव सबलता के कारण चले आ रहे हैं तथा इन्होंने प्रचलित भाषाओं के अनुरूप शब्दों को बहुधा दबा डाला है और अपने स्वतंत्र रूप को केवल नष्ट ही नहीं होने दिया वरन् पूर्ण अस्तित्व में रक्खा है।

रासो में प्रयुक्त कतिपय देशज शब्द द्रष्टव्य होंगे जिनका प्रयोग आधुनिक काल में कम हो जाने के कारण काव्य के अर्थ की दुरूहता बढ़ने में पर्याप्त सहायता मिली है—

जूका
बागुर
हंडि, हंडी
अग्यौन
बंब
अलगार
बिलहान
पोगर
कोतर
षहकि
उथकीय
षोर
बबियानन
दंग
तिनक्क
हड्डूड
षजूआ
इच्चना
भाठी
कुटवार
पुच्चिया
भगर, भगल
परियार
ढोह
छोंगा
कारी
कतरीय
डंग
गरट
होहेलुआ
चौसर
गोमगांम
योमिनि
बेढ (ना)

गुदरन
ओसर
करकोटिया
बिसाहन
घौ
ढीमर
बेधरा
फेकी
अजरायल
बिंतर
बालर
अल्ह
सहिनानी
ठोठ
रमून
छेह
हंभार
व्योंत
गमार
गोसकोर
गल्ह
उनहारि
गमार

छग्गर
गोधह
करम्भ

पंजाबी भाषा—

रासो में पंजाबी भाषा के शब्द रहंदी, हनंदे, सुहंदी, परद्दी, कूकंदा, लूसंदा, उड़ाइयां, वित्तां, धवंदा, आवंदा, कनवज्जां, रज्जां, उपन्ना, जन्ना, रहन्ना, थन्ना, अज्जूना, गल्हियां, हंसाइयां, पाइयां इत्यादि का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिल जाता है। कुछ उदाहरण देखिये—

१. जीरन जुग पाषान ज्यों, पूर रहंदी गल्ह। २८। ४१। ३-४
२. समरसिंघ चहुआन मिलि, दुष्ष हनंदे आइ। ३६। १११। ३-४
३. सुहन सुहंदी बत्तरी, भुअन परद्दी झाल। ४६। ३७
४. अहो सिंघ नवल्ल इक आया निथ्थारे।
संभल हक्क गहक्क ही उठ्या भू भारे।
उत्तरिया असमान थी किन कस्या भू फारे।
कंध विबथ्या प्रथु कपोल तिष दंत करारे। ५८। ५३। और आगे छं० ५८ तक,

५. हालो हल कनवज्ज, मंझ केहरि कूकंदा।
संजम राव कुमार, लोह लग्गा लूसंदा।
चहुआन महोवै जुद्ध हुअ, ग्रेहा गिद्ध उड़ाइयाँ।
रन भंग रावनै वर विरद, लंगै लोह उचाइयाँ। ६१। १००७

६. मुष मुठ्ठी वित्ता करै, मन में देत सराप। ६२। १८
७. ग्रह आप्पनां छंडि, राज गृह धीर धवंदा।
ढा ढिल्ली रा लोय, ताहि देखन आवंदा। ६४। १८६
८. जेन बल न जै होइ, तेह झुझ्झे कनवज्जां।
सोह मंत्र सुद्धरै, जैन जित्ते रन रज्जां। ६४। २२७। १-४

९. नेजे नंनी सेखान धर धार उपन्ना।
तिसका हथ्थ विहथ्थ वान वघ्घां वर जन्ना।
तिसकै कुंडल चष्षवान नहि दिठ रहन्ना।
पाई पूना धंध देह दुहरी मर थन्ना। ६४। ३५५ और छं० ३५६,

१०. पांमारां पुंडीरियां, कूरंभा जद्दूनि।
गुज्जरिया दाहिम्मियां, घर हसि लग्गी दोनि। ६६। ३६०

११. कहै राय राम दै, राइ रावत अज्जूना।
हैं हथ्थी नौ साज, राज लद्धौ पज्जूना।
सामंता उब्भार, जुद्ध अथ्था सथ्थानी।

सौ अग्गानी सट्ठि, सट्ठि आनी पंगानी ।
म्हें गामी गुज्जर गल्हियां हंसाई हंसाइयां ।
रतिवाह देहु सुरतान दल, रषि राजन लगि पाइयां ।,६६ । ४८७

रासो में प्रयुक्त हुए अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्द अपने मूल रूपों और प्रयोगों सहित—

अमीर, हमीर, हम्मीर,<अ० امیر (अमीर) ;

१. कुसुम रंग भारह सुफल, उकति अलंब अमीर । छं० २ स० १
२. हम हमीर हलबलै, करै द्रिगपाल दसों दिसि । छं० ११६ स० ६४
३. गहि हमेल हम्मीर लिय । छं० ३३५ स० ६४

हज्जार, हजार<फा० هزار (हज़ार) ;
सुर तीन हजार सु लोह मिलें, तिन में दस तीन कमंध पिलें । छं० १६५ स० २४

जेर<फा० زیر (ज़ेर);
१. अजमेर नयर अर जेर करि । छं० ३३६ स० १
२ मारि उज्जारि जेर किय । छं० १ स० ८

हक्क हक<अ० حق (हक़);
१. हक अहक जोरि गिरि इक्कमाल । छं० २६४ स० १
२. हक्क द्रव्य संग्रहै, बिना हक लोभ न वंछै । छं० ३४६ स० १

सरम, सरम्म, श्रम्म<फा० شرم (शर्म);
तुम छंडि सरम हम कहौ बत्त, बांनिक्क पुत्र हन तैं दुचित्त । छं० ३५० स० १

पंधार<قندهار (क़ंधार);
बलोच<بلوچ (बलूच);
हसम<अ० حشم (हश्म) = नौकर चाकर;
पंधार लार बहबल बलोच, दिय बहुत हसम कीयौ न सोच । छं० ३५५ स० १

सुतर, सतुर<फ़ा० شتر (शुतर);
आकंप भयौ सब सतुर मै, जब सुरतान हुंकारयौ । छं० १६० स० ६४

फ़ुरमाय, फ़ुरमान, फ़ुरमानं, पुरमान<फा० فرمان (फ़रमान);
१. फ़ुरमान दए लिषि दस दिसान । छं० ४२० स० १
२. चहुआना रै हथ्थ दूत दीनौ फ़ुरमानं । छं ३६ स० २४

सहर<फा० شهر (शहर);
किय प्रवेस नृप सहर में, सुचित भए ग्रह मेह । छं० ४०८ स० १

पवरि, पबरि, पवर<अ० خبر (खबर);
प्रचार सहर दूतिका च्यार । लै पबरि सहर पहुची मझार । छं० ३७१ स० १

आवाजि, आवाज, अवाज [<फा० آواز (आवाज़)]=खबर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

१. ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज। छं० ३६ स० २०

२. एतें परि पतिसाह की, भइ जु आनि अवाज। छं० ५३ स० २०

अकलि, अकल<अ० عقل (अक़्ल);

षजीन<अ० خزین (खज़ीन)=खजाना;

सुनि क्रिपाल सो मुष वचन, कढि षजीन सँग लेहु। छं० ४१६ स० १

प्र० रासो पृ० ८६ के नोट में इसे संस्कृत खर्जूर=रौप्ये Silver का अपभ्रंश लिखा गया है।

पेस<फा० پیش (पेश);

मेवात धनीआए महेस, मोहिल्ल दुनांपुर दिस पेस। छं० ४२२ स० १

इक आइ पेस इक अश्व मोल, बलवांन अंग चष रहत पोल। छं० ५६ स० ७

जोर<फा० زور (ज़ोर);

भय हूह हाक आतंक जोर, सह सुरन फेरि भेरीन घोर। छं० १४ स० ५

कूच, कूचह<फा० کوچ (कूच);

१. दर कूच कूच चढि चल्यौ वीर। छं० ४२८ स० १

२. सकल सबै सामंत, करौ नदि उत्तरि कूचह। छं० ६५८ स० ६६

३. किये कूच पर कूच, कुरंग तारीय कुरंगे। छं० १८५ स० ६४

प्रा० रासो पृ० ८७ के नोट में इसे सं० कुञ्च to go, to go to or towards से निकाला गया है।

असवार, असबार<फा० اسوار (असवार) या سوار (सवार);

असवार लार हज्जार तीस, मद झरत नाग पंचास बीस। छं० ४३२ स० १

बगतर, वगतर, वषतर<फा० بگتر (बगतर);

१. पषरैत तुरिय पषरैत गज्ज, नर कसे बगतर सिलह सज्जि। छं० ४३२ स० १

२. बषत्तर फारि करै कर जोर। छं० ६०५ म० स०

सिलह<अ० سلاح (सिलाह);

असि सिलह सथ्थ लीनीं नरेस, जितनह समर सज सत्रुदेस। छं० ६३ स० ७

रयति<अ० رعیت (रय्यत);

जितनै नृपति सौं मुदै काम, तितनैं रयति सौं कौन काम। छं० ४४३ स० १

फौज, फवज, फवज्ज<अ० فوج (फौज);

दुअं फौज राजं जु साहाब गाजं। छं० १७६ स० २४

सोर, सोरा<फा० شور (शोर);

भोरा चढि सोरा भयौ, गयौ अप्पनै ग्रेह। छं० ८४ स० ४२

तीरकारी<फा० تیرکاری (तीरकारी);

भई तीरकारी छुटे नाल बानं

परी सोर की धुंध छुट्टै न भानं। छं० ४५० स० १

महल, महल्ल<अ० محل (महल);

फिरि राजन्न कही तुम जानौ, मेरो इहाँ महल्ल हु थानौ। छं० ४६७ स० १

प्र० रासो पृ० ७३ के नोट में इसे सं० महल्ल=अंतपुर और महल्लिकः=अंतःपुर रक्षक—से बतलाया गया है।

अरदासि, अरदास<फा० عرض داشت (अर्ज़दाश्त);

हौं राजन मंगौं यहै। इह मेरी अरदासि। छं० ४८० स० १

साहिब<अ० صاحب (साहिब);

अमर नाम साहिब का सांचा। पानी पिंड पेह का कांचा। छं० ४४ स० ३७

सहनाइय, सहनाइ, सहनाय<फा० شهنائی (शहनाई);

गज घंटन त्रंबाल। भेरि सहनाइय बज्जिय। छं० ३ स० ४२

कबूतर<फा० کبوتر (कबूतर);

उड्‌ढौ सु एक लोहान भर। कहर कबुत्तर कुद्दयौ। छं० २ स० ४

स्याबासि<फा० شاباش (शाबाश);

तिन बार स्याबासि पावासु रानं। छं० ४५५ स० १

खूनी<फा० خونی (ख़ूनी);

हय हथ्थि देय संकै न मन षग्ग मग्ग षूनी वहै। छं० ३१५ स० १

दिल्लासा<[फा० دل (दिल)+हिं० आशा];

सस्त्र वस्त्र दत वित्त। देय दिल्लासा कीनी। छं० ३६१ स० १

अजमायौ<फा० آزمایش (आज़मायिश);

अजमायौ कविचंद वीर। वीर बावन दरस थिर। छं० १४२ स० ६

मुजरा<अ० مجرا (मुजरा);

त्रिया सकल आई सु तहँ। मुजरा करन सु हाल। छं० ४८८ स० २४

कब्बूल<अ० قبول (क़बूल);

छांडि दियौ सुर तान। डंड कब्बूल कियौ सिर। छं० १४४ स० २८

हरवल, हरावल<तु० هراول (हरावल);

१. कर बल षान ततार। षान न्याजी षां गोरी।
हरबल पीप नरिंद। साहि बंधी बिय जोरी। छं० १६१ स० ३१

२. रचि हरवल सुरतान। साहिजादा सुरतानं। छं० ४३ स० २७

तंदूर<फा० تندر (तुंदुर, तुंदुर)=Roaring, thunder;

बर बज्जि तंदूर तहां तबलं। निसु नंन नवीनय बंस बलं। छं० ३५ स० ३२

जवाहर<अ० جواہر (जवाहिर);

दिसि वाम जवाहर मेर अराव । रच्यौ अरगंध नरिंदन चाव । छं० ५२ स० ३२

फते<अ० فتح (फ़तह);

आनंद फते तप तुम्भ बल । धन समूह आइय सु घर । छं० ४४ स० ३५

सूफी<अ० صوفی (सूफ़ी) Woolen; intelligent; spiritual; A religious man of the order of the sufi.

जमाति<अ० جماعت (जमाअत)=Collection; a crowd; council;

कनाइत<अ० قناعت (क़नाअत)=Contentment;

जयचंद कनाइत चिंति जिय । मात प्रसंसन सिद्धयौ । छं० १७३

कूह< फा० کوہ (कोह)=Mountain;

जल जूह कूह कसतूरि अग । पहुपंषी अरु परबतह । स० २७ छं० ११

लसकर<फा० لشکر (लश्कर);

प्र० रासो पृ० १०१ के नोट*में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी है—

हि० लसकर (Sk. लश To be skilful or clever, to do anything skilfully and scientifically or लस to play or sport, to work and कर Who or that does, makes or causes.) Hence a camp or Cantonment etc.

नर भषय जहां लसकर सहर, मिलै मनिप ते ते भषय । छं० ५११ स० १

षुरसानि, षुरसानी<خراسانی (ख़ुरासानी)=ख़ुरासान देश का;

षां<फा० خان (ख़ान);

नीसान<फा० نشان (निशान)=झंडा;

नेज, नेजा<फा० نیزہ (नेज़ह);

गज्जनींय, गजनीय<غزنین (ग़ज़नीन) या غزنی (ग़ज़नी);

तुट्टि तंतं अती, गज्जनीयं दंती । छं० ६५१ स० १

आतस्स, आतस<फा० آتش (आतस)=आग;

आतस्स झारं, आतस जालिय<फा० آتش زار [(आतस ज़ार), ज़ार=loud];

दरिया<फा० دریا (दरिया);

इह दरिया को राव, सिद्ध पट्टनवै नंदन । छं० ६५ स० ६२

कमान, कम्मान, कमानं<फा० کمان (कमान);

जुटै पंच षानं करक्कै कमानं, रघूवंस रायं धरै षग्ग धायं । छं० १७२ स० २४

तीर<फा० تیر (तीर);

भई तीर मारं सरोसं स वेगं, तकै ताहि पारै सविद्धं अछेगं । छं० ८४ स० ७

निजरि, निजर, नजर<अ० نظر (नज़र);

बोलंत बैन प्रथिराज सुनि, जीब लज्जि नीची नजरि। छं० २५ स० १७

हजूर<अ० حضور (हुज़ूर);

लीने हजूर जोतिग बुलाय। छं० ७०५ स० १

जरफ<अ० ظرف (ज़र्फ़)=खूबसूरती;

पटकूल जरफ जरकसी ऊब। छं० ७१३ स० १

जरकसी, जरक्कसी, जरकस<फा० زرکشی (ज़रकशी) और زرکش (ज़रकश);

अन्न अन्न नग जोति जग, जरकस कंति दुकूल। छं० ७ स० ३

बगसीस<फा० بخشش (बख्शिश);

१. आदर अदब्ब सथ्थीन देत, बगसीस करत हिय परम हेत। छं० ७२१ स० १
२. मोहि पंग बगसीस स० ६१

अदब्ब, अदव्व, अदब, आदब्ब<अ० ادب (अदब);

बिन साह तेज बढ्ढै सु गब्ब।
इप्पै न ताहि अल्लह अदब्ब। छं० ३२ स० ३७

सुरतान<अ० سلطان (सुलतान);

पुनि अप्पि साहि निसुरत्ति बैन।
सुरतान आन भरकान नैन। छं० ३१ स० ३७

तुरकानिय<फा० ترکانی (तुरकानी)=A kind of spacious garment worn by the women of Turkishtan;

बहुत काल अंतरै, तपै पुहमी तुरकानिय। छं० ४२ स० ३
तुरकानों—तूंअर तैं चहुआन, अंत ह्वै हैं तुरकानों। छं० २६ स० ३
षुरसान, षुरेसान—षग्ग षोद षुरसान, पहुमि चक्कवै सु जोई। छं० ४३ स० ३

पेसकस<फा० پیش کش (पेशकश)=तोहफा, उपहार;

संझ समय चीतार, पत्र कीनौ पेसकस। छं० ५६ स० ३

असमान, असमांन अस्समांन<फा० آسمان (आसमान);

तीर कि गोरि विछुट्टि, तुट्टि असमान कि तारक। छं० ५६ स० ३

बगसि, बगसी<फा० بخش (बख्श);

१. बगसि ग्राम गज बाजं, आजानबाह दीनयं नामं। छं० ६५ स० ३
२. होइ क्रपाल हस्तिनी, संग बगसी रचि सुंदर। छं० ३ स० २७

तबीब, तबीयन<अ० طبیب (तबीब)=हकीम;

१. अप्प उचाइ अप्प गृह आने, सब तबीब बहुत सनमाने। छं० ५ स० ३
२. तब तबीब तसलीम करि, लै घरि आइ लुहान। छं० ६ स० ३

तसलीम<अ० تسلیم (तस्लीम);

१. सिर धरि करि तसलीम । छं० ४०६ स० ६४

२. सिस नाइ तसलीम किय । छं० ३०३ स० २४

कहर<अ० قہر (क़हर) = जुल्म, सख़्ती, गुस्सा;

१. रिनथंभह ऊड़्छो कहर सूरब्बर कीनो । छं० ८ स० ३

२. कनवज्जैं कहर बीती ।

सिरपाउ, सिरपाव<फा० سروپا (सरोपा);

सिरपाउ भाउ नष्षे सरस्स, को गनै द्रव्य भंडार अस्स । छं० १२ स० ३

खरगोस<फा० خرگوش (ख़रगोश);

अष्षंत सूर सामंत और, खरगोश लहै पै कीस दौर । छं० १४ स० ४

जुर, जुररा<फा० جرہ (जुर्रा) = Falcon;

जुररा सिकार तीतर बटेर, षेलंत सरित तट भइ अबेर । छं० १६ स० ५

सिकार, सिकारं, सिक्कार<फा० شکار (शिकार);

सिक्कार नाम जह तह तिकान, ओरंभ जुद्ध सब लषि बिनान । छं० ५१ स० ७

कदम<अ० قدم (क़दम);

नफेरि, नफेरिय, नफ़्फ़ेरि, नप्फेरि, नफ़ेरी नफेरियान<फा० نفیری (नफ़ीरी);

सहनाइ नफेरिय भेरि नदं, धुरवान निसानन मेद भदं । छं० २७ स० ३१

षरबूज<फा० خربزہ (ख़रबुजा);

बहि सीस परन दो हथ्थ करार, षरबूज जांनि बिफस्यौ विफार । छं० २३ स० ५

बजार<फा० بازار (बाज़ार);

मधि बजार चलि रुधिर नदि । रुरत तुंड घन मुंड । छं० ८९ स० ५

किलाब<फा० قلابا (कुलाबा);

कंचन किलाब लगाय कल । पट्टी बंधिय चंद भट । छं० ९५ स० ५

चौगिरद, गिरद, गिरद्द, गिरद्दं, गिद्द, गिरदंन<फा० گرد (गिर्द);

१. दौरै गज अंधं चाहुआन केरौ । करीयं गिरदंन चिहौं चक्क फेरौ ।

२. घेरियं गिरद्दं चिहौं चक्क फेरो । छं० ६४ स० २०

असलि, असल<अ० اصل (अस्ल);

पित मात असलि ऐराक देस । छं० ११५ स० ६

रातब्ब, रतब्ब<फा० راتب (रातिब);

१. रातब्ब मंस घृत दुग्ध पान । आजानवाह दिषियै बलान । छं० ५७ स० ८

२. रतब्ब दै ब्रहासयं । करे त्रपत्त घासयं । छं० ६६ स० १७

जीन<फा० زین (ज़ीन);

इक सत्त ऊँट भरी जीन साल । तिन धरै अंग छिप्यै न काल । छं० १०६ स० ७

कोटल<फा० کوتل (कोतल);

दुअ कोटल दुअ नृपति के । किन्नें हाज़ुर आनि । छं० १०६ स० ७

तेग, तेक<फा० تیغ (तेग़);

हने तेग तुरियं सुकम्मधज्जरामं । छं० ६१ स० २४

मरदां, मरदा, मरद<फा० مرد (मर्द);

हम तुम में बंध्या अहंकार । मरदां ध्रम्म पुरातन धार ।

मरदा अलि भारथ्था वेती । मरद मरै तब निपजै पेती । छं० ४५ स० ३७

हूरं, हूर (नच्चत हूरं)<अ० حور (हूर);

१. लघु बंधु रुस्तमा हनिग सूर । वर माल बरैं ले चलीं हूर । छं० ५५ स० २४

२. तहां षान हिंदवान भए चक्र चूरं । तहां हूर रंभा बरै बरह सूरं । छं० १२५ स० ४३

मीर<फा० میر (मीर);

भगि मीर षुर षुर तार । जुरवंत मीर जुझार । छं० ६८ स० २४

मुंगल, मुगल<फा० مغل (मुग़ुल);

भई जीत सोमेस सुअ । लियौ मुगल गज मेलि । छं० ४३ स० ८

पठान<उर्दू پٹھان<फा० پتھان<अ० بیتھان;

नवबत्ति, नौबति<फा० نوبت (नौबत);

षवास<अ० خواص (ख़वास) = Personal attendant;

षवास पास वानयं । हंजूर उब्भ आनयं । छं० ५८ स० १७

काफर, कफरान<अ० کافر (काफ़िर);

इह अदीन कफरान । कान तस नाम न लिज्जै । छं० २०१ स० ६७

हरम्म, हरम, हरम्मी [<अ० حرم (हरम) = Prohibited] = स्त्रियाँ, ज़नानख़ाना;

१. टगे टगा लग्गी । हरम्मी सुभीरं । छं० ३८४ स० ६७

२. चढि वेगम सथ्थ सु गौष हरम्म । छं० ४४२ स० ६७

पासवान, पासबांन, पसवान<फा० پاسوان (पासवान) = A watchman;

बंभन बनंक कायथ्थ संग, पसवान लोग जे रषिक अंग । छं० १२६ स० १४

दर, दरह<फा० در (दर) = में, जगह;

१. जाइ संपते साहि दर,

२. दर कूच कूच उत्तरिय सिंध ।

३. रुके दर सथ्थ सब्ब जब, दर रुक्कि कह्यौ दरबार नृप । छं० ७३५ स० ६१

४. गयो सिंधु साहिब दरह । छं० ३६६ स० ६४

५. जब रुक्यौ कविचंद दर, तब चिंतिय हिय धीर । छं० ३२२ स० ६७

उम्मर, उम्मरं, उम्मरा, उंमरा, ऊमरा, उमराउ, उमराव<अ० أمرا (ओमरा)—अमीर का बहुवचन है;

मिलिय उम्मरा अप्पने, करिय वैर सम सथ्थ। छं० ३३१ स० २४

सलाम, सलांम, सल्लाम<अ० سلام (सलाम);

षिन्नी चलि चहुआन पै, करिकै सबन सलाम। छं० २६३ स० २४

सिपारह, सिपारे, सिपारा<फा० سیپاره [सीपारा; सी = ३०, पारा = हिस्से];

१. नमैं निज साइय पांच बषत्त, सिपारह तीस पढ़ै दिन रत्त। छं० ६७ स० ६

२. बंचि सिपारै तीस चव। छं० १७७ स० ५२

३. सिपारा त्रिवारा पढ़ै तीस तामं। छं० १६३ स० ६७

कुरानय, कुरान, कौरान<अ० قران (क़ुर आन);

सजरा १.<अ० سهرا (सेहरा); २. अ० شجرا (शजरा) = A gneological tree;

सजरा बंधे कंठ, सहं सज्जै घन थाई। छं० १३४ स०६

साद<अ० سعاد (साद) = भाग्यवान;<फा० شاد (साद) = खुश;

१. दिसा वाइयं साद हुस्सेन अंनी, तिनं मझ्झ सामंत सामंत मंनी। छं० १४० स० ६

२. धुनि निसान बहु साद, नाद सुर पंच बजत दिन। छं० ३ स० २०

घोर, घोरह<फा० گور (गोर) = क़ब्र;

१. सजौं घोर हुस्सेन सथ, करौं प्रवेस अपान। छं० २०८ स० ६

२. कै घोरह जीवन धरन। छं० २६ स० ३७

गाजी<अ० غازی (ग़ाज़ी);

बैठाइ साह सुष्पासनह, लाय अप्प गाजी सु सथ। २०६ स० ६५

पीर, पीरान<फा० پیر (पीर) = An old man;

कुही<फा० کوه (कोह) = पहाड़;

बाज<फा० باز (बाज) = A falcon; कुहीबाज = पहाड़ी बाज़;

बहु कुही बाज सिंचान बच, लंगूर लाग लेयन फिरैं। छं० ६६ स० ६

ताजीय<फा० تازی (ताज़ी) = अरबी;

औब<अ० عیب (ऐब);

बजीर, वजीर, बज्जीर<अ० وزیر (वज़ीर);

हाजुर, हाजिर<अ० حاضر (हाज़िर);

षलक<अ० خلق (ख़ल्क);

अचहु है चहुआन गाजी। षलक तो षग राजी। छं० १० स० १३

जहूरह<अ० ظہور (ज़हूर) = जाहिर होना;

सोरठ्ठी बट्ट निहट्टायं। हुरम जहूरह बद्दायं। छं० १५१ स० १२

अठ्ठ हजारी—फ़ारसी और प्राकृत शब्दों के मेल से बना है।

गस्त<फा० گشت (गश्त)=फिरना, घूमना;

चौकी गस्त गुराइ। कोट कोटन इत भग्गिय। छं० ३२४ स० १२

जम्बूर<फा० زنبورہ (ज़ंबूरह)=A small gun;

नारि गोरि जम्बूर सुबर कीना गज सारं। छं० ४२ स० २७

कग्गद, कागद, कग्गर, कग्गरह, कागर<फा० کاغز (कागज़);

राम मंत्र इक जंत्र लिषि। कग्गद सर मुष रष्षि। छं० ६६ स० १३

दुवाह, दुवा, दुवाहु<अ० دعاء (दोआ)=Prayer;

दुवा दीन चहुआंन। छं० ८ स० १३

दिल<फा० دل (दिल);

दुसमंन<फा० دشمن (दुश्मन);

अजमेर पीर सहाई। दुसमंन पैमाल लषो देव हाई। छं० १० स० १३

पैमाल<फा० پامال (पामाल)=पैर से मलना, तबाह करना;

राजी<फा० راضی (राज़ी);

बहरी<अ० بحر (बह्र)=समुद्र;

तिन मद्धि तीस बहरी बलाइ। हुकमी हसम जनु सोर लाइ। छं० २३ स० १३

बलाह<अ० بلاء (बला)=Tempting; calamity;

एक लष्य सेना सकल। अकल कलीनह जाइ।

इक्क सहस मद गज करी। दिष्षिय जानि बलाइ। छं० ४६ स० ४३

हुकमी<अ० حکمی (हुक्मी);

करीब<अ० قریب (क़रीब);

निवाज<फा० نماز (नमाज़);

१. पंच बीस पंच दिन करें निवाज। छं० २४ स० १३

२. बंचि सिपारे तीस चव। करि निवाज सुरतान। १७७ स० ५२

अहक<अ० احق (अहक़)=बहुत ज़्यादा हक़दार; वैसे अहक का प्रयोग रासो में 'हक रहित' अर्थ में भी संभव है।

हक अहक वस्त जिन नहीं काज। छं० २४ स० १३

अल्लाह, अल्लह, अल्ला, अलह, इलाहं<अ० الله (अल्लाह);

१. संमरन संग जिन नही दूव। अल्लाह लाह व्यापार भूव। छं० २५ स० १३

२. जा हथ्थ हथ्थ कविचंद कहि। अल्लह देइ सु पाइयै। छं० १२१ स० २४

षैराति [<अ० خیرات (ख़ैरात)=नेकी, भलाई]= दान;

षरच<फा० خرچ (ख़र्च);

कीरीय करी जिन देह एक, षैराति षरच षज्जीन टेक। छं० २५ स० १३

काविली, काबिलिय<کابلی (काबली);

बत्तीस सहस कबिली करूर। छं० १६ स० १३

हबसीह<अ० حبشی (हबशी);

हबसीह संम त्रैपन हजार। छं० १६ स० १३

रूम, रूंमी, रुम्मी<अ० رومی (रूमी) या روم (रूम);

पेंतीस सहस रूंमी रहस्सि। छं० १७ स० १३

सागिरद पेस<फा० ساگرد پیش (शागिर्द पेश)=शाह के चारों ओर रहने वाले;

पचीस सहस सागिरद पेस, कामीक कमल पेपे असेस। छं० २० स० १३

नालि<अ० نال =आग;

नालि गोल जुत जंत्र, हसम हाजुर सह बुल्लिय। छं० २७ स० १३

भिस्त, भिस्तिहि<फा० بهشت (बहिश्त);

१. भुअ भाष भिश्त मंकोद रन। छं० २६ स० ३७

२. मक़रद्द षान पीरोज सुअ।
तेजवंत भिस्तिहि गयौ। छं० १२३३ स० ६६

तुरक्क, तुरक<तु० ترک (तुर्क);

तसब्बी, तसबी, तसबीहि<अ० تسبیح (तसबीह)=Rosary;

१. तसब्बी तिनष्षी, लिए पिष्भिष्भू तीरं। छं० ९५ स० १३

२. तिन धीर भीर संमुह परिय, पिष्भि नंषी तसबीहि कर। छं० १११ स० १३

३. तिन तसबी नंषी करह, जिन कंठन षुरसांन। छं० ११० स० १३

पीलवान<फा० پیلوان (पीलवान);

१. फिरें रुंड भकरुंड बिन सुंड दंती, परें पीलवांन चढे पंषि पंती। छं० १०८ स० १३

२. सु पीलवान उभ्भयं, चरष्षि गड्ड षुभ्भयं। छं० ६४ स० १७

दीन, दीनं<अ० دین (दीन);

ढह्यौ आरबं षांन दो दीन सापी, जिने दीनके ध्रंम की लाज राषी। १३६ स० २४

वाह<फा० واہ (वाह);

वाह वाह आलंम, अभग आलम कहि सारिय। छं० ६७ स० १३

आलम, आलम्म, आलमं<अ० عالم (आलम) The world;

बहसि<अ० بحث (बहस);

बिस्तरिय बहसि हिंदू तुरक, किरकि कंक मंजन करिय। छं० ६७ स० १३

कुसादे<फा० کشادہ (कुशादा)=फैला हुआ;

कुसादे कुसादे कहै षांन जादे।
रिंग्यौ साह आलंम सब सेन वादे। छं० १४७ स० १३

जंग<फा० جنگ (जंग)=War;

जालिम<अ० ظالم (ज़ालिम)=A tyrant, cruel;

जंग जुरन जालिम जुझार। भुज स्तार भार भुअ्र। छं० ४० स० २०

हुस्यार, हुसियार<फा० هوشيار (होशयार)=Vigilant; prudent, wise;

भए सेन हुसियार दोऊ करारे। छं० १०१ स० १३

षानजादे<फा० خانزاده (ख़ानज़ादा);

कुसादे कुसादे कहैं षानजादे।

ग्रह्यौ हथ्थ गोरी अबें साहि बादे। छं० २५६ स० २४

दस्त<फा० دست (दस्त)=The hand;

तबं काजियं दस्त दुअ मुष्प फेरी।

जपै जाप पीरां दुवो सेन हेरी। छं० १०४ स० १३

रेसंम<फा० ريشم (रेशम);

दुल्लीच, दुल्लीचयं, दुलीचै<फा० غاليچه (ग़ालीचा);

रेसंम गिलम दुल्लीच मंडि। जिन जोति होति दुति चित्र षंडि। छं० ३६ स० १४

गिलम<अ० گليم (गिलीम)=मोटा मुलायम बिछौना;

मस्साल<अ० مشعل (मशअ़ल);

मस्साल दीप प्रज्जरि फुलेल। केतकी करन बेली गुलेल। छं० ३८ स० १४

पसम, पसमं<फा० پشم (पशम)=ऊन;

२. सिरपाव पंच जरकस पसम। सूत रूपोत रेसम नरंम। छं० १२२ स० १४

१. जरकस पसम जराउ। गंध रस सरस अमीवर। छं० ७८ स० १४

दरियाव, दरियावं<फा० درياب (दरयाव)=[An older form of daryā, corresponding with Persian darayāw]—a sea;

१. काम लहरि छबि छोल उठि। दुति दरियाव बे पार। छं० ८० स० १४

२. पगी जांनि पारष्ष। जेम दरियाव हिलोरिय। छं० २०५ स० २४

जर<फा० زر (ज़र)=सोना;

जर जरकस सिर पाव।

चसम<फा० چشم (चश्म);

इह परषयौ कविन कित्ती चसम।

वह चसम परष्षन परषयौ। छं० १८ स० १६

तुरमती, तुरमतीय<फा० ترمتاى (तुरमताइ)=A species of falcon;

जुर वाज कुही तुरमती धारि। छं० १६ स० १७

जरद्द<फा० زرد (ज़र्द)=पीला;

फिरंग सू फनक्कसी। जरद्द जंजरक्कसी। छं० ५० स० १७

अजब्ब<अ० عجب (अजब)=Wonder;

फिरंन न सूर लग्गतं, अज्जब जेब जग्गतं। छं० ५१ स० १७

गरम्म<फा० گرم (गरम);

तोसयं<१. फा० توشک (तोशक);

२. फा० توس (तूस)=Name of a country;

पलंगपोसयं, पल्लिंगपोसा<फा० پلنگ پوش (पलंगपोश)=A Coverlet;

१. गरम्म रूम तोसयं, ढके पलंग पोसयं। छं० ५४० स० १७

२. नहीं पस्समी तक्किये पल्लिंगपोसा। छं० १६४० स० ६६

जोरावर<फा० زور آور (ज़ोरआवर)=Strong; a strong man;

जोरावर जुरि जंगमति, भरे वथ्थ नभ गाज। छं० ४ स० ५

जंजीर, जंजरिय,<फा० زنجیر (ज़ंजीर);

१. जोरावर जंजीर वसि, पवन न पावै जांन। छं० ८२। स० १८

२. सामल सेषा टांक, नेह जंजरिय बंधि बिय। छं० १३१ स० ४३

पारसी, पारसीय<फा० فارسی (फ़ारसी);

१. हिंदु भाष षटरस, मेछ पारसी उच्चारै। छं० १२ स० १६

२. लगे पारसी बोलनं मेछ सथ्थं, मनो प्रब्बतं बंदरं केलि कथ्थं। छं० १११ स० २४

[हुन्न, हूनं, हून<सं० हूण,

१. सहस एक सो ब्रंन, हुन्न दीनौ चौहान। छं० १६ स० १६

२. हेम कोटि हा हून, इन दैवल धर मंझह। छं० ७८ स० १७]

तक्किए<फा० تکیه (तकिया)=A pillow;

१. धरे सु पिठ्ठ तक्किए, अतल्ल संत दक्किए। छं० ५५ स० १७

२. नहीं पस्समी तक्किये पल्लिंगपोसा। छं० १६४० स० ६६

दरवन, दरवान, दरवांन, दरवानन<फा० دربان (दरबान)=A porter, a warder;

दरं रष्षि दरवन अप मझ्झि आयं।
सबै बोलि उमराति सब अप्प भायं। छं० ३४ स० १६

दरबार<फा० دربار (दरबार)=A house; a court;

चले आइ सो सेष चीमन्न थानं।
हयं छंडि दरबार साहाब तानं। छं० ३४ स० १६

पील<फा० پیل (पील)=An elephant;

१. पिलवान हलै करि पील गिरै, कलसा मनो देवल के बिहरै। छं० १६३ स० २४

२. जुरि अंकस बिन पील।

जब्बाब, ज्वाब, जाबु, जोश्राब, जुवावं<अ० جواب (जवाव);

१. कहैं जेब जब्बाब पुच्छंत सांही । छं० ३३ स० १६

२. दिल्लियपति सो अप्पिहै, देय साहि जोआव । छं० ४४० स० ६७

जेब<फा० زیب (ज़ेब) = शोभा, सौंदर्य;

सोफिय, सौफी<अ० से फा० صوفی (सूफ़ी);

रंगरेज<फा० رنگریز (रंगरेज़) = A dyer;

मनो बसत रंगरेज । मद फुट्यौ सुरंग ढहि । छं० १६६ स० २४

सपेद, सफेद<फा० سفید (सफ़ेद);

रोज<फा० روز (रोज़) = A day;

मोज<अ० موج (मौज) = Wave; being agitated;

मुकाम, मुक्काम<अ० مقام (मुक़ाम);

रिंगयौ सबल षुरसान दल । करि मुकाम सक्यौ न कोइ । छं० ४६ स० २४

हद<अ० حد (हद्द, हद);

१. दुरद हद वेसके । दियें गनेस भेस के । छं० ६२ स० १७

२. नीति रेह रष्षी सुहद । छं० ३१ स० ५७

सिप्पर, सिप्पिर, सिप्परं<फा० سپر (सिपर) = A shield; target;

वर संग फुट्टि सिप्पर प्रमांन । छं० २०७ स० १६

बगलि<फा० بغل (बग़ल);

बगलि अप्प आरोहन बाजन ।

करी सुपारस सुलर कि राजन । छं० १६ स० २४

सुपारस<फा० سپارش (सिपारिश), سفارش (सिफारिश);

पतसाह<फा० بادشاه (बादशाह);

ध्रंमायन कायथ लभे । परठि दूत पतसाह । छं० ३५ स० २४

मरदान, मरदांन<फा० مردان (मरदान) = मर्द का बहुवचन;

रिसै अतताइ तुतार सुढांन । मिलै मुहु जोर हुए मरदान । छं० २४२ स० २४

एलची<तु० ایلچی (ईलची) = Envoy;

भग्यौ प्रब्बती एलची झारखंडी । जिनै भुज्ज गोरी अहं लाज मंडी । छं० २५६ स० २४

हुक्म, हुकंम, हुकम्म<अ० حکم (हुक्म);

तिहि बार हुकम देवल करन । पुर बसाइ बीसल धरुह ४०७ स० १

प्र० रासो पृ० ८१* यह हिंदी शब्द हुकम अथवा हुक्कम संस्कृत शब्द सूक्तम से बना है ।

रकेब<अ० رکیب (रकीब) = Rider; fellew rider;

डोली साह सहाब की । दोइ रकेब बर सथ्थ । छं० २८६ स० २४

आदंम, आदम<अ० से फा० آدمی (आदमी);

दस आदम साहाब काज। रषि भोजन अप पास। छं० २८७ स० २४

अंदेस<फा० اندیشہ (अंदेशा) = Suspicion; fear; jealousy;

कितक सूर संभरि नरेस अंदेस कहत करि। छं० ६४६ स० ६१

उक्कील<अ० وکیل (वकील) = Ambassador;

गय षित्री दरबार दूवार पालक सम अष्यिय

कूरम केहरि कहों साहि उक्कील सुलष्यिय। छं० ३०३ स० २४

हमल<अ० حمل (हमल) = गर्भ;

हमल हरम निज जानि, हनै कर असि वर नारी। छं० ३१४ स० २४

अज्जाब<अ० عذاب (अज़ाब) = सज़ा; ज़ुल्म;

अज्जाब नारि तिहि पाप तें, असुध कित्ति दुनियां रहै। छं० ३१५ स० २४

कुदरति, कुदरत्तं<अ० قدرت (क़ुदरत);

अष्यिय आइ जहां मिलि षानं।

कुदरति कथा एक परिमानं। छं० ३१६ स० २४

सजा<फा० سزا (सज़ा);

झूठी होय तौ सजा लहीजै, सच्ची हुअै निवाजस कीजै। छं० ३२० स० २४

जिहान<फा० جہان (जहान) = World;

षांना षान जिहान, बेगि निज्जूमि बुलायौ। छं० ३२४ स० २४

निवाजस<फा० نوازش (नवाज़िश) = मेहरबानी;

करार<अ० قرار (क़रार);

१. जो कछु कियौ करार कर, सो पठवौ तुम अथ्थ। छं० ३२८ स० २४

२. दूरि दूरि बन्धे रहैं, काल समान करार। छं० १५४ स० ६

निज्जूमि<अ० से फा० نجومی (नजूमी);

सेष<अ० شیخ (शेख़);

१. सेष एक मधि गोर निवासी। छं० ३१६ स० २४

२. कहिबै सेष सु क्या कुदरत्तं। छं० ३२० स० २४

निजाम<अ० نظام (निज़ाम);

१. प्रसन निजाम सुसेष, लेष सांई इम लेषं। छं० ३१५ स० २४

२. आयौ निज सुरतानह गेहं, बेन निजाम उअर दुष लेहं। छं० ३१५ स० २४

जल्लाल<अ० جلال (जलाल) = बड़ाई;

अहो साह जल्लाल, आलि तुम्फ समथ सदष्षं। छं० ३१५ स० २४

मुहजोर = मुँह (हिंदी) + जोर (फारसी);

सिकारी<फा० شکاری (शिकारी);

साज<फा० ساز (साज़)=सामान;

तब प्रथिराज सु उच्चरिय, अरे सिकारी साज। छं० ३३८ स० २४

तीरंदाज<फा० تیرانداز (तीर अंदाज)=Archer;

तीरंदाज अभूल, भूल रष्षे करि ताजन। छं० ३४४ स० २४

अंगुल<फा० انگشت (अंगुश्त);

भरि प्रसग अंगुल भरिग, तिय अंगुल सत अंक।

अंगुल अंगुल अंक में, एकादसौ प्रसंक। छं० ३७४ स० २४

तकसीर<अ० تقصیر (तकसीर);

१. ज्यौं जगदीसह कान दै, तकसी रन किंहुं कीन।

मिलि उत्तर पच्छिमहुं तें, भिरन मरन दोउ दीन। छं० ४५ स० ३४

२. करतार हथ्थ कित्ती कला, लरन मरन तकसीर नन। छं० ५६ स० ३४

कालबूंत<फा० کالبد (कालबुद)=Model;

मनो कग्गदं कालबूंत स चल्लै। छं० ५५५ स० २५

दग्ग<फा० داغ (दाग़)=धब्बा;

तिन कुल दग्ग न लग्ग वर।

जिन कुल बल चावंड। छं० ५६० स० २५

षूब<फा० خوب (ख़ूब);

षूब राज प्रथिराज, षूब जै चंद बंध वर। छं० ७७७ स० २५

औलादि<अ० اولاد (औलाद);

औलादि तास तन आइ कै, रेवा तट वन विस्तरिय। छं० ३ स० २७

मसूरति, मसूरत्ति<अ० مسورت (मशवरत)=सलाह;

मेच्छ मसूरति सत्ति कैं, बंच कुरानी बार। छं० १६ स० २७

(कुरानीबार=कुरान की इबारत);

इबारत<अ० عبارت (इबारत)=The lines;

मुसाफं, मुसाफह, मुसाक<अ० مصحف (मुसहफ़)=पुस्तक; क़ुरान;

१. छुओ तुम साच मुसाफह। छं० ७७५ स० ६६

२. गहि मुसाक गोरी चरन। छं० ७७७ स० ६६

सौदागर, सौदागिर, सोदागर, सोदागिर<फा० سوداگر (सौदागर);

पंडित भट्ट कवि गाइना, नृप सौदागिर वार हुअ। छं० २८ स० २७

हमेल<अ० حمائل (हमायल);

अग बंधि सु हेम हमेल घनं, तब चामर जोति पवंन रुनं। छं० ३४ स० २७

चिराक< फा० چراغ (चिराग);

बर चिराग दस सहस भइ, बजि निसांन अरि दाह। छं० ३६ स० २७

बब्बर,<फा० ببر (बबर) =Tiger; <सं० बर्बर=क्रूर;

षां भट्टी मह नंग, षान षुरसानी बब्बर। छं० ४४ स० २७

फिरश्ते, फिरस्ते, फिरस्तन, फिरस्त<फा० فرشته (फ़िरिश्ता)=Angel;

करित माय बहु साहि, तीस तहँ रषिष फिरस्ते। छं० ४५ स० २७

चवग्गान<फा० چوگان (चौगान)=Polo;

लटक्के जुरंनं उड़े हंस हल्लै, रसं भीजि सूरं चवग्गान षिल्लै। छं० ५० स० २७

आरम<फा० آرام (आराम=Rest;<अ० ارم (एरम)=Garden; paradise;

<सं० आरम्य,= सुंदर; आराम=garden;

सो प्रबल मह जुग बंधि जोगी, मुनी आरम देवयौ। छं० ६२ स० २७

किरच<फा० کرچ (कुर्च)=Segment; cut; slice;

टोप ओप तुटिं किरच, सार सारह जरि भारे। छं० १०२ स० २७

रषत<फा० رخت (रख़्त)=Wearing apparal; goods;

चामर छत्र रषत्त, बषत लुटे सुलतानी। छं १४८ स० २७

बषत<फा० بخت (बख़्त)=Fortune; prosperity;

अरज<अ० عرض (अर्ज़);

करिय अरज उमराव। दंड है मंगिय सुद्धौ। छं० १५० स० २७

मरदाना<फा० مردانا (मर्दाना)=Boldly, vigorously;

धर कर छुट्टी संगि, हथ्थ चढ्ढे मरदाना। छं० ५४ स० २८

बलक<بلخ (बल्ख़);

रोम हबस अरु बलक में, फट्टे पहु अप्पान। छं० ८ स० २९

मुसलमान<अ० مسلمان (मुसलमान);

उत्तरौं अटक तौ मैं अबर, मुसलमान नाहीं धरौं। छं० ४६ स० २९

सीगोस, सीहगोस,<फा० سیه‌گوش=The lions provider; سیاه گوش=काले कान वाला कोई जानवर; बिल्ली की जाति का एक जंगली जानवर;

सीह गोस पुच्छिय सु, लंब सिरषां सिर पुट्ठिय। छं० ६ स० २९

षुसाल<अ० से फा० خوش‌حال (खुशहाल);

है षुसाल गजनेस, दई इक लाल सहित मनि। छं० ४५ स० २९

सिरदार, सिरदारन<फा० سردار (सरदार)=department; a prince;

तिन बार बजि त्रंबाल बहु, सिलह सज्जि सिरदार सहु। छं० ४८ स० २९

महमान, महिमान, (महमानी)<फा० مهمان (मिहमान)=A guest;

१. आजानबाह महिमान किय। चल्यौ अप्प गज्जन रहां। छं० ४७ स० २९

२. हम बहुत चंद महमान कीन। छं० २३६ स० ६७

गिरद्दं<फा० گرد (गर्द);

गिरद्दं उड़ी भाँन अंधार रैनं। गई सूधि सुझ्झै नहीं मझ्झि चैनं। छं० ६५ स० २०

सिताबी<फा० شتاب (शिताब)=जल्दी;

चौजं<फा० چوزه (चूज़ा)=मुर्गी का बच्चा, एक छोटी चिड़िया;

लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं। परे मीर सै पंच तहँ षेत चौजं। छं० ६६ स० २०

फिरंगी<फा० فرنگی [(फ़िरंगी)=European]<फ्रेंच French;

रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी। ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी। छं० ५५ स० २०

अरब्बी<عربی (अरबी);

एराकी<عراقی (इराक़ी);

इराकी अरब्बी पटी तेज ताजी। तुरक्की महाबांन कम्मांन बाजी। छं० ५७ स० २०

कास<फा० خس (खस)=Inhabitants between Indian and Tartary; Mountaineers;

षुरासान सुलतान कास काबिलिय मीर षुर। छं० ४० स० २०

सुकलात<फा० سقلاب (सक़लाब)=Sclavonia;

तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं। फिरंगी कती पास सुकलात लालं। छं० ५६ स० २०

दुवाहगीर<फा० دعاگو (दोआगो)=Good wisher; well wishing;

पीर पैगंबर दुवाह गीर सारे। छं १० स० १३

पेसंगी<फा० پیشگی (पेशगी);

१. देस देस कग्गद फटे पेसंगी षुरसान।
रोम हबस अरु बलक में, फट्टे पहु अप्पान। छं० ८ स० २६

२. पेसंगी धर सीम, बीच पौरान कुरानं। छं० ४६ स० २६

तस्सवीरं<अ० تصویر (तसवीर);

बाजू<फा० بازو (बाजू)=Side;

मै<फा० مے (मइ);

नीसान षान षुरसान पति, चामर छत्त रषत्त मै। छं० १२१ स० १३

उपवाग्<सं० उप (समीप)+अ० باغ (बाग़);

[उपवन सदृश उपबाग् भी बना लिया गया है।]

जहर<फा० زهر (ज़हर);

जबर जंग<अ० جبر + अ० جنگ;

जबर जंग नीसान, मनहुं बद्दल घन घेर्यौ । छं० ६३ स० ४३

रुष<फा० رخ (रुख़्)=Side;

बंदर<फा० بندر या० بندرگاہ (बंदर या बंदरगाह);

दस बंदर कचरा दियै, दियौ चमर छत्र साज ।

चौरासी बंदर महै, और रषै प्रथिराज । छं० २०४ स० ४४

जिहाज<फा० جہاز (जहाज़्);

१. चढि जिहाज पर दिष्षियै, धर नहिं परै करूर । छं० ७१ स० ३१

२. जिहाज जोग भग्गयं । छं० ८६ स० ४५

परवान<फा० پروانہ (परवाना)=Warrant; command;

१. बर मंत्र किय सुरतान, कैमास दिसि परवान । छं० ३ स० ४३

२. परवान फट्ट देसान देस, तिनके सु चढ्ढि आये नरेस । छं० ३७ स० ४४

नकीवत, नकीब<अ० نقیب (नक़ीब);

हुकम नकीबत कह फिरै, डेरा डेरा गाहि । छं० ५२ स० ४४

सराय<फा० سرای (सराय);

सबक्क<अ० سبق (सबक़्);

बरजोर<बर+फा० زور (ज़ोर);

पंच सबद बाजै गहिर, घन घुंमर बरजोर ।

जंग जुझाऊ बज्जिया, बढ्यौ श्रवंनन सोर । छं० ३० स० ४४

बेगम, वेगम, वेगंम (ब० ब०)<तुर्की بیگم (बेगुम);

सुने श्रवन तत्तार बच, हिंदवान लै जाइ ।

मात रीस बेगम मिटै, सोइ स लुट्टै जाइ । छं० ७५ स० ५१

सिरताज<फा० سرتاج (सरताज)=Chief;

चाहुआन प्रथिराज कल, मंडि बीर सिरताज । छं० ४४२ स० २५

आसूद<फा० آسودہ (आसूदा)=Quiet, satisfied;

मनो मल्ल आसूद दोउ, तारी दै दै हथ्थ । छं० ५६ स० ३२

बिहद<फा० بیحد (बेहद्);

दमामा, दम्माम<फा० دمامہ (दमामा);

नब्बी<अ० نبی (नबी)=Prophet;

जीवन बलह विनोद, अलह नब्बी घन मंगहि । छं० ११ स० ३६

दीवान<अ० دیوان (अ० देवान, फा० दीवान);

सुरत्तान मंडि दिवान, बर मंत्र करि परमान । छं० २४ स० ३६

पैगंबरा, पैगंवरी, पैगंबर, पैगंबरें<फा० پیغامبر (पैग़ामबर)=A messenger; a prophet, an ambassader;

कथा रही पैगंबरा, अरु भारथ्थ पुरान।
तातें हठ हजरति है, सुनौ राज चहुआन। छं ४७ स० ३७

हजरित<अ० هجرت (हज़रत)=The prophet; one who made the two emigrations;

कथा रही पैगंबरा, अरु भारथ्थ पुरान।
तातें हठ हजरित्त है, सुनौ राज चहुआन। छं ४७ स० ३७

इसरार, असरार, असराल<अ० اصرار (इसरार)=Persisteney; perseverence;

१. चिहूं आर हरषी छुटै, परै अगड सुमार।
गोला लगै गिलोल गुरु, छुटै न तौ इसरार। छं० १६० स० ६
२. मीर मार असरार, सबें ढाहे सुसद्दिसर। छं० ६४ स० ३७

कंगुरा<अ० کنگره (कंगुरा)=A pinnacle;
बुरज<अ० برج (बुर्ज);

बुरज कोट कंगुरा, गौष जारी चित्र सारी। छं० ५ स० ४२

चहबचा<फा० چہبچہ (चहबचा)=A cistern, a uat;

महलायत चहबचा, झिरन कारंज निनारी। छं० ५ स० ४२

साज बाज<फा० سازباز (साज़ बाज़);

साज बाज सब फेरि दिय, प्रथु किय कित्ति अपार। छं० ६७ स० ४२

राहब<अ० راهب (राहिब)=A devotee; a pious person;
कुसाब<फा० خشاب (खुशाब)=Fresh;

मझि दीप रोम राहब कुसाब, संजाल दीप प्रति काल आब। छं० ७८ स० ४२

आब<फा० آب<सं० आप=Water;

रह षट्टू दिसि चल्लियैं, उलट की साइर आब। छं २३ स० ४३

मक्का, मक्का<अ० مکه (मक्का);

कै जियत करैं घोरह प्रवेस, कै गहैं पथ्थ मक्का विदेस। छं० २० स० ४३

चाबक<फा० چابک (चाबुक)

कतरीय पुरष गय घर मिरिग, चंद बरद्दिय इम भन्यौ।
भाजंत भीर तुष्षार चढि, चौंडराय चाबक हन्यौ। छं० ८० स० ४३

गिरदान<१. फा० گردان (गर्दान)=Turning, winding; २.<फा० گردن (गरदन)=The neck;

तकि बाज षान बल चंड करि। गहि गिरदान पछारियौ। छं० १०८ स० ४३

मादर<फा० مادر (मादर)=Mother,

पिदर<फा० پدر (पिदर)=Father

मादरं पिदर मानें न दर, निमक हलाल न संधियै। छं० ५६ स० ६१

निमक हलाल<फा० نمک حلال (नमक हलाल)

किताब<अ० خطاب (खिताब)=Title;

सो पहराये मत्त गुर, दै किताब परिमान। छं० ६६ स० ६१

बंदा, बंदे (बंदा का ब० व०), बँदा<फा० بنده (बंदा)=A slave; a bondman; a domestic;

१. चहुआन सेन किंत्तिक है, एक मीर बंदा बधै। छं० १२ स० २५

२. षां ततार जंपै सुबर, हम बंदे सु बिहान। छं० ७४ स० ६१

फतेनामा<अ० فتح फा० نامہ (फतह+नामा)=A letter of victovy,

अब हम बंचि कुरान, फतेनामा धरि षानं। छं० ७६ स० ५१

जुमारत्ति, जमारति<अ० جمعہ+हि० रात=The friday night;

आज रब्बि साहाब बर पर्‌यौ दिवस जमांरति। छं० ४४७ स० ६७

तिमरलिंग, तिमिरलिंगत<फा० تیمور لنگ (तीमूरलंग);

१. उगन हार ज्यों प्रात, लेन उग्यौ बर गोरी।
तिमरलिंग जुलिक्कन्न, राज रजकन्न सु जोरी। छं० ६४ स० ६१

२. जयचंद के पराक्रम के वर्णन में—
तिमिरलिंग षेद्यौ, षेदि कढ्यौ तत्तारिय। छं० ६५ स० ६५

३. बंधयौ शाप रथ जुत्त बीर, जिहि बध्यौ तिमिरलिंगत्त मीर। छं० ६३२ स० ६७

षुसाल<फा० خوش حال (खुशहाल);

ह्वै षुसाल गजनेस, दई इक लाल सहित मनि। छं० ४५ स० २६

कतिपय मुस्लिम जातियों का उल्लेख देखिये—

षां षुरसान ततार, बीय तत्तार षंधारी।
हबसी रोमी षिलचि, इलचि षूरेस बुषारी।
सैद सैलानी सेष, बीर भट्टी मैदानी।
चौगत्ता चिमनोर, पीरजादा लोहानी।
अन्नेक जात जानैति कुल, बिरह नेज असि अहि करद।
तुरकाम बीच बल्लोच बर, चिंत पूर हासी मरद। छं० ६६ स० ५१

दुम्मि<फा० دمبہ दुम्बा=A kind of sheep with thick tail;

दुअ दुअ दुम्मि भषै दिन मानं। छं० ५ स० ६२

गिरदबाज<گردباز = The besiegers

कोट मद्धि रजपूत सौ, तिन सद्धी दरबार ।

गिरदबाज चिहु कोद फिरि, मीर पीर सिरदार । छं० ५९ स० ४२

दस्तक, दस्तिक<फा० دستک (दस्तक) = A clapping of hands; permit; license;

मुष फेरि हसति दस्तक निपानि, उठि भेद भट्ट जनों पुब पिछानि । छं० १८६ स० ६७

जरीन<फा० زری (ज़री) = Brocaded silk;

हसम हेम डेरा जरीन, बर भर दर कज्जर । छं० ५५ स० ४४

करीम<अ० کریم (करीम) = Generous; merciful;

करम्म<अ० کرم (करम) = Generosity;

कोरान करीम करम्म तजि, हम सु पैज पौरान किय । छं० ४६ स० ४४

दरिय<अ० से फा० دری (दरी) = Belonging to a door;

बग्गरी बीर बारुड़ हरिय, मुकित्त पग्ग षोली दरिय । छं० १८८ स० ४५

हदप्प, हदक्क, हदंक, हदफ<अ० هدف (हद्फ़) = A butt of mark for archers;

१. सजे बीर दुंदुभि बजे, हदफ षेलि प्रथिराज । छं० १३ स० ४७

२. हम जाहिं चंद षेलनह दुप्प । छं० २३३ स० ६७

३. है हदक्क करि षेदयौ, ग्रह आयौ सुरत्तान । छं० २४१ स० ६७

षून<फा० خون (खून) = Blood;

कर दीनी दाहिम्म, रीस गजराज षून कह । छं० ३१ स० ५७

दरीषानै<फा० دری خانہ (दरीख़ाना) = The store of carpets;

जिहान<फा० جہان = The world;

बोलि परिग्गह सूर सब, पुच्छे सकल जिहान । छं० १६४ स० ४८

सफर<अ० سفر (सफ़र) = A journey, travel;

१. दुज सफर जम्म नाही सनान ।
संसार रतन न्रप परप वान । छं० ३०५ स० ५७

२. करि निवाज बंदहु सफर । छं० १६५ स० ६४

हवाई<अ० से फा० ہوائی (हवाई) = Airy; idle; ambitions; vain;

उप्परे डेर मुक्काम तजि, सेन काज पुंटिय बजे ।

नीसान हवाई सुंदरी, गज घंटानन डर सजे । छं० १६७ स० ५८

बानग्गीर<सं० वाण+फा० गीर = वाण चलाने वाला;

अग्गै सु भार हथनारि धरि, बानग्गीर बानैत तँह । छं० २२५ स० ४८

अस्सील<अ० اصیل (असील) = Well founded; noble; well-born;

कुल अरेह अस्सील, बोलि पित पित्र नाम नर। छं० २२५ स० ४८

दरगह, दरग्गह,<फ़ा० درگه (दरगह या درگاه दरगाह) = A court; a king's court, a door;

१. सामंत दरगह सज्जयं। छं० १४ स० ४६

२. षट ब्रह्म दरग्गह सोम सुअ।
केसर अगर कपूर उर। छं० ३२ स० ५६

३. स्वामि दरग्गह चलि सुवन, मनहु प्रथीपुर इंद्र। छं० ७७ स० ५६

जाजिम<फा० جاجم (जाजम), جاجیم (जाजीम), جازم जाज़म = A fine bedding or corpet;

सुभ साल विसद अंगन अवास, बिच्छाय सुपट जाजिम नवास। छं० ८२ स० ५६

चंग<फा० چنگ (चंग) = A harp; lute;

नफ्फेरि भेरि सहनाइ चंग, दुर बरी ढोल आवझ उपंग। छं० ८५ स० ५६

तुपक<तु० توپ (तोप) = Cannon;

धरि छत्तिय दिढ तुपक नृप, हक्किय व्याधि वराह। छं० ५३ स० ६०

जरद<फा० زرد (ज़र्द) = Yellow; pale;

देषत दुति रिति मुष जरद। छं० ४२ स० ६१

गुस्ताना<फा० گشتا (गुश्ता) = Paradise;

परे हिंदु सय तीन धर, सत्त पंच पर मीर।
गुर गुस्ताना नंचिया, बजि बाजित्र गुहीर। छं० ६१६ स० ६१

गोस<फा० گوش (गोश) = Ear; listener; spy;

लुट्टि रिद्धि त्रिय गोस धन।
जुरि जस लद्धौं ठाम। छं० ६४४ स० ६१

ओसाफ, औसाफ<अ० اوصاف (औसाफ़) = Attainments;

रहै इक्क औसाफ, पंथ लग्गे पंथी सह। छं० ३७४ स० ६७

महनूर<फा० مه (मह) + अ० نور (नूर) = चाँद जैसी चमकवाला;

महनूर अदब्ब न जाइ भती। छं० ७३७ स० ६१

आसिक<अ० عاشق (आशिक़) = A lover;

झूलंती संपेषि, भयौ भुअपत्ति सु आसिक। छं० ७५२ स० ६१

जरबाफ, दरब्बाफ<फा० زرباف (ज़रबाफ़) = Woven with golden wire;

फिरि पुरष कीनी कोस, सकलाति फिरगरु तोस।
जरबाफ कसब जराव, उद्दोत करन प्रभाव। छं० ८६६ स० ६१

कसब<अ० قصب (क़सब) = Muslin; a fine linen cloth made in egypt;

जिन चरचि बहुत सुबास ।
कलि कसब सहित उहास । छं० ८९७ स० ६१ ।

कसब<अ० से फा० كسبى (कसबी) = A prostitute;

सकलाति फिरंग चामर चरचि, कसब सबैं विधि जर जरिय । छं० ८९९ स० ६१

कुलाह<फा० كلاه (कुलाह) = Any head gear;

कढ्ढिय कुलाह कलहंतरह । छं० १३२६ स० ६६

दुनियां<अ० دنيا (दुनया) = The world; people;

हलहले सहर दुनिया अकंप । छं० ६६३ स० ६१

सेहरौ<अ० سهرا (सेहरा);

सभा सोभियं सूर बघ्घेल रायं, जिनै सेहरो स्वामि कित्ती चढायं। छं० ८७१स० ६१

जेब जामी<फा० زيب جامه (ज़ेब जामा);

किधौं पानि मैं लोह की जेब जामी ।

अरोज<अ० عروج (उरूज) = Ascending; exaltation; zenith;

इक जोवन धन मद्द, मद्द राजन मद वारुनि ।
अरु मद देह अरोज, संग नव बनिता तारुनि । छं० २ स० ६२

करामात, करामति<अ० كرامات (करामात) = Miraculous;

१. इन मान अमान सो रूप रमै, मनु सिद्धि करामति क्रम्म क्रमै । छं० ३८ स० ५६

२. अजैपाल जोगी करामात अग्गं, उठे हथ्थ नाहीं मनों कीनि नग्गं । छं० १७७ स० ६४

इतमाम<अ० اهتمام (एहतिमाम) = Arrangement;

चले कुल कायथ चौदह जान, भयौ इतमाम करे जगकान । छं० ३९ स० ६३

बागु, बाग<फा० باغ (बाग़) = Garden;

बाग बावरी बहु जहाँ, कूप ताल पनिवास । छं० ५१ स० ६३

काब<अ० كعب (काब) = Glory;

तिन सिद्धि संभरिवार, जग मझ्झ एक बुझार ।
उर साल साहि सहाब, मुष चंड मंडित काब । छं० ५८ स० ६३

मरदन, मरदनी<फा० ماليدن (मालीदन);

सुनि मरदन कौ हुकम, होत मरदनी बोल लिय । छं० ६७ स० ६३

मैदा<फा० ميده (मैदा) = Finest flour;

मैदा के पैदा करै, सुमन मेलि मकरंद । छं० ७९ स० ६३

अषनी<फा० يخنی (यख़नी)=Boiled meat;
अषनी बटि वास तिमांस परै, हठिवास सुवासनि आभ भरै। छं० १०० स० ६३

गैर<अ० غیر (ग़ैर);
गैर महल राजन भयौ, सहित संजोइय बाम।
पोरिन रष्षो पोरिया, जे इतवारी धाम। छं० २०४ स० ६३

इतवारी<अ० اعتبار (एतिबार) = Confidence

जनबि<अ० جنوب (जनूब) = The south;
जौ जनबि पंथ उग्यौ अरक, तपत सिंधु सिंधि उत्तरिय। छं० ८७ स० ६४

षलक<अ० خلق (ख़ल्क़)=Created things; creatures;

दुनिम<अ० دنیا (दुनया);
मिलिय षलक दरबार, दुनिम लग्गी दर सोहं। छं० ८८ स० ६४

नादान<फा० نادان (नादान)=Ignorant;
बे अदान नादान, वात मंजै धव लग्गी। छं० ६३ स० ६४

रहिमान<अ० رحمان (रहमान)=Merciful, compassionate (God);
रहिमान राम बट्टै कछू, ताहि निमष रष्षै कवन। छं० ६५ स० ६४

अबे<फा० ابی (अबे या अबी)=Without; imprudent;
सें पुच्छै सुरतान, अबे तूं चंदह नंदन। छं० १०६ स० ६४

दरोग< अ० دروغ (दरोग़)=To say or commit falsehood;
जो दरोग पुंडीर, चाहि गोरी गहि मुक्कै। छं० ११० स० ६४

बे<फा० بی (बी या बे)=Without; imprudent;
बे हिंदु के कुफर।
बोल भी कुफरै कढ्ढै। छं० ११७ स० ६४

कुफर, कुफरै<फा० کفر (कुफ़्र)=Infidel; impious; blasphemous;
गुसा<अ० غصه (गुस्सा)=Anger,

सुरतान कहै साहाब दी, षिनक गुसा मन महि धरौं।
गढ भूमि बंक तौ ढाहि करि, रन वासौ घर घर करौं। छं० १२५ स० ६४

जल्लाल<अ० جلال (जलाल)=Illustrious; dignitiy; majesty;
कहै धीर सुलतान, आन जल्लाल साहि तौं। छं० १२४ स० ६४

दोजिग, दोजिगन (ब० व०)<फा० دوزخ (दोज़ख़)=Hell;
इह दरोग बोलंत, परै दोजिग चंदानी। छं० १३७ स० ६४

मैदान<अ० میدان (मैदान या मीदान)=An extensive plain;
अग्गै आउ मैदान, ज्वान मरदुन मुष जोरहि। छं० १४० स० ६४

रहम<अ० رحم (रह्‌म) = Compassionate;

करि रहम साहि रष्यै तुम्है, नतरु पबरि अबही लहहि । छं० १४१ स० ६४

दरखत<फा० درخت (दिरख्त) = A tree;

मुह अग्गै दरखत, पांन इहि बंधत हथ्थिय । छं० १४५ स० ६४

मोज<फा० موج (मोज) = Being agitated; a wave; whim;

जुद्ध करत जौ मुझौ, मोज इह किन कों दिज्जै । छं० १४६ स० ६४

रोजी<फा० روزی (रोज़ी) = Livelihood;

करतार मौज रोजी करत, इह मनुष्य हथ्थह नहिय । छं० १४६ स० ६४

हलक<अ० حلق (हल्क़) = The throat;

इहि हस्त हथ्थि भंजे हलक, सही साहि तो साहि हौं । छं० १५० स० ६४

कबाइ<अ० قباع (क़िबा) = A foolishman;

जेते जिते कबाइ, साहि मोंदी में हथ्थहि ।

बे हिंदुअ बे मुसलमान, कथ्थां बे कथ्थहि । छं० १५४ स० ६४

रोजगारो<फा० روزگار (रोज़गार) = World; fortune; day

फजंदा<अ० فزاينده (फ़िज़ायन्दा) = Augmenting;

जो कर इक्क तनीय, रोजगारो नफजंदा । छं० १६५ स० ६४

वली<अ० ولی (वली) = Neighbouring; a sincere friend; a prince; a servant; a saint;

बली अली आदंम, पैन पैगंबर कीनो । छं० १६५ स० ६४

अली<علی (अली) = Noble; strong; name of the son-in law and fourth successor of Muhammad

बंग<फा० بانگ (बांग) = Voice, sound; and hence the call for prayer;

जहां पीर पर सिद्ध, बंग जिहि ठाम न दिज्जिय ।

जहं मुसाफ नह पठय, कतेब कुतबा नब चिज्जिय । छं० १६६ स० ६४

कुतबा<अ० خطبه (खुतबा) = Preachers; a speech

महजिद<अ० مسجد (मस्जिद) = A mosque; a place of worship;

जहां सुनाहि कुरान, नही महजिद घर पर किन ।

परै न गाय जिज्जै, षुदाय रेजा करि बारन । छं० १६६ स० ६४

षुदाय, षुद्दाय<फा० خدا (खुदा) = The god

गसा<फा० گشاد (गुशाद) = Happy;

रोसन अली फकीर, गसा रमता अजमेरं । छं० १६७ स० ६४

काजी<अ० قاضی (क़ाज़ी) = A judge;

जहां हुक्म नाहिं काजी करत, तुरकनि षनि गड्डिय जहां । छं० १६६ स० ६४

मक्कां<अ० مکه (मक्का) = Name of a city in Arabia;

मक्कां सु जाइ फिरियाद करि, मीरां सैद हुसेन अग ।

नीयति षुदाय मद्यत करन, इह अष्षिय मन धरि उमग । छं० १६७ स० ६४

फिरियाद<फा० فریاد (फ़रयाद) = Complaint

नीयति<अ० نیت (नीयत) = Intention

मद्यत, मद्दति<अ० مدد (मद्द) = Help

जरदोज<फा० زردوز (ज़रदोज़) = कपड़े पर सोने का काम

राहगीर<फा० راهگیر (राहगीर) = A traveller;

षुरी ए वियांचा बकी राहगीरं, रहव्वाल चल्लै न हल्लै सरीरं ।

दमानंक कूदंत नाचंत थालं, निरष्षै परष्षै हरष्षै भुत्रालं । छं० १७४ स० ६४

रहव्वाल<फा० رهوار (रहवार) = A horse

दमानंक<फा० دمانک (दमानक) = A carbine

जमा<अ० جمع (जमा) = Wealth;

जमा जोरि मंडै, सवा लष्ष दामं । छं० १७५ स० ६४

इलल्ला महमंद रस्सूल इल्ला<अ० لاالهالاالله محمد رسول الله [ला इलाहा इललल्लाह मुहम्मदुर रसूल उल्लाह] = कोई इलाह (God) नहीं है सिवा अल्लाह (the God) के, मुहम्मद उसका रसूल है ।

इलल्ला महमंद रस्सूल इल्ला, कलम्मा पढै जोर किन्नौ सुकीला । छं० १७८ स० ६४

कलम्मा<अ० کلمه (कलमा) = The faith in God and Prophet

मौत<अ० موت (मौत) = Death;

करं काफरं जो इहां मौत दीजै, मसूरत्ति कीनी दही पीर हौजै । छं० १७८ स० ६४

ईद<अ० عید (ईद);

हों दरोग जो कहौं । ईद उग्गमे कुहुं निसि । छं० १३६ स० ६४

कोल<अ० قول (कौल) = Promise; word;

मुहं मंगि दामं करे कौल बोलं, लिहैं पंत्र सें हैवरं हेरि मोलं । छं० १७५ स० ६४

समसेर<फा० شمشیر (शमशीर) = A sword;

चौत्रालीसों यार, कढ्ढि नंगी समसेरं । छं० १८१ स० ६४

यार<फा० یار (यार) = A friend

बंदुक<अ० بندوق (बंदूक़) = A musket;

बंदुक बानह जोर, बेद दल नौबसि बज्जिय । छं० २११ स० ६४

अजरायल<अ० عزرائیل (इज़राईल) = An angel of death;

चहुआन आना नरिंद, जीति उब्भौ अजरायल । छं० १८१ स० ६४

दरवेस<फा० درویش (दरवेश) = A saint;

लष्ष भये दरवेस, आइ पइ लग्गै गष्षर । छं० ४४ स० २६

जक्क<फा० زک (ज़क);

तू आतुर पतिसाहि, हाम हिंदू सामंतां ।

जोरा सों ज्यौ जक्क, बध्ध छुंडे धावंतां । छं० १८४ स० ६४

तारीय<अ० طاری (तारी) = Intervening; <फा० تاری (तारी) = Darkness;

किए कूच पर कूच, कुरंग तारीय कुरंगे । छं० १८५ स० ६४

दरां<फा० در (दर) = Place;

उछंग अंग राजन दरां, राज काज सब सुद्धरै । छं० १८६ स० ६४

मलिक, मल्लिक<अ० ملک (मलिक) = King; master;

१. मीर मलिक उमराव, काहु सावंग न आवै । छं० १९७

२. हैवर मल्लिक हथ्थह हनौ, तब सुधीर चंदन तनौ । छं० १९८ स० ६४

जिंद<फा० زند (ज़िंद) = Soul;

१. घर जाह जिंद लै जीवतौ ।

२. दांम जिंद अरु लाज । छं० २१३ स० ६४

मीयां< میاں = मियां [हिंदुस्तान में मुसलमानों के लिए इस शब्द का प्रयोग मुलतान से प्रारंभ हुआ था; आदर सूचक];

करि निवाज ईसफ मियां, गयौ तहां दरबार ।

महमानी ईसफ करै, धीर होइ असवार । छं० २१४ स० ६४

मुहुर<फा० مهر (मोहर) = Seal;

आमान साठि सजता बहै, पंच मुहुर सोवृन्न मय । छं० २१७ स० ६४

तुरकाइन, तुरक्की, तुरकन्ना< ترک तुर्क;

१. आज तुरकाइन डंडों । छं० १९६ स० ६४

२. दूनै झूझ अलूझिया हिंदु तुरकन्ना । छं० ३५६ स० ६४

परवरदिगार<फा० پروردگار (परवर दगार) = Omnipotence (as nourishing all); king;

जमा सुविहानं, शाहब दी सुलतान ।

पैगंबर परवर दिगार, इलाह करीम कवार । वचनिका पृ० २१२६ स० ६६

तमासा, तमास, तमासो (म० स०)<अ० تماشا = Amusement; sight; Spectacle;

तू भंग हम्म दिष्षैं तमास। छं० ३७७ स० ६७

तलब<अ० طلب (तलब) = Quest;

सो चलै जथ्थ रावर नरिंद, लग्गी सु तलब कारज्ज भिंद। छं० ३५० स० ६६

नूर<अ० نور (नूर) = Light;

लै चामंड सु बंधि द्रिढ, तू घर रष्षन नूर। छं० ४०१ स० ६६

तोष<अ० طوق (तौक़) = Chain;

गलै तोष नृप आन की, छुट्यौ कहत है कौन। छं० ४१० स० ६६

सादानै<फा० شادیانه (शादयाना) = A band; a music gallery,

ता उप्पर तिहि दिवस, राज बज्जै सादानै। छं० ४२४ स० ६६

जमीं, जम्मी<फा० زمی (ज़मी) = The earth;

वही जमीं असमान, सही रवि ससि निसि वासुर। छं० ६४५ स० ६६

फकीर, फक्कीर, फक्कीरे<अ० فقیر (फ़क़ीर) = A religious order of the mendicants;

इह गंदी मट्टी मुरद, तुम मरदों मरदानि।

तुम अब्बी सब्बी हरन, मैं फकीर सुलतान। छं० ७६६ स० ६६

गंदी<फा० گنده (गंदा) = Rotten; dirty; indecent;

हाजी<अ० حاجی (हाजी) = One who spells;

तहां चंपि हाजी, हुजाब देषंत तस्स घन। छं० २६२ स० ६४

मुरदार<फा० مردار (मुरदार) = A dead carcass, carrion;

हहकारि हक्कि बोल्यौ सुबर, सु सब मुंकि मुरदार भष। छं० ३२१ स० ६४

सिलार<अ० سلاح (सिलाह) = Arms (sword, mace and stringless bow; armour;

नव से जहां सिलार, पास ठट्टै हंमीरह। छं० ३४६ स० ६४

सिल्लारां १.<अ० سلاح २. फा० شل (शिल) = A spear, javelin, trident;

सिल्लारां असि तेज, बीज उज्जलौ झलक्यौ। छं० ३७१ स० ६४

कुलफ<अ० से फा० قفل (कलफ़; कुल्फ़) = Padlock;

सूबा<अ० से फा० صوبه (सूबा) = Province;

सोलहैं बरस सूबा संपेस। छं० ७ स० ६५

असील<अ० से फा० اصلی (असली) = Original;

नाचंत नट्ट मानों असील। छं० १८ स० ६६

मिहरी<फा० مهر (मिहर) = The sun; a female proper name; [<सं० मेहना-स्त्री; पत्नी]

मरद भेष मिहरी रहै। छं० ६८ स० ६६

सैतान<अ० شيطان (शैतान)=Satan; the devil;
सैतान भाग अबग्रह ग्रहै, धर गोरी छुत्ती दहै। छं० ६८ स० ६६

काइम्म<अ० قايم (क़ाइम)=Firm;
चीतौर राइ काइम्म कीन। छं० ७७ स० ६६

मुरद<फा० مرد (मुर्द)=Dead, deceased;
इह गंदी मट्टी मुरद। छं० ७६६ स० ६६

सताब<फा० تاب (ताब)=चमक;
अति तेज होय सताब। छं० ५७२ स० ६६

जबहरी<अ० से फा० جوهری (जौहरी)=A jeweller; a lapidary;
कोइक समै पारषी, मिल्यौ जबहरी बिचष्पन। छं० ७०६ स० ६६

उमेद<फा० اميد (उमेद, उमीद; उम्मेद, उम्मीद)=Hope; expectation;
जौ उमेद जिय होइ, राज दोइ अल्लह बंदी। छं० ७६६ स० ६६

रोजा<फा० روزه (रोज़ा)=A day of fast; fasting;
है हमीर हिंदून, दीन रोजा रंजानहि। छं० ७७८ स० ६६

मुरग पेच<مرغ+पेच;
मुरग पेच फुनि बंधि सिर, कर पंचै कम्मान। छं० ८२० स० ६६

बंदिगी<फा० بندگی (बंदगी)=Servitude; bondage; compliment;
सदा बंदिगी सांइ लग्गै सुमन्नं, सदानं कुरानं सुभासै सबन्नं। छं० ८२२ स० ६६

ईमान<अ० ايمان (ईमान)=Faith, religion;
चढ़यौ अनी नीसान दै, चित्ति चित्त ईमान। छं० ८२६ स० ६६

गालिब्ब<अ० غالب (ग़ालिब)=Predominant; triumphant;
समय ६६ में सैकड़ों मुसलमान सरदारों और सिपाहियों के नाम आये हैं।

फरजंद<फा० فرزند (फ़रज़ंद)=A son; offspring;
१. क्या काफर फरजंद, फते फीरोज षां कंमन। छं० १३८३ स० ६६
२. कहहि मेछ मुह अग्गरे, बे काफर फरजंद। छं० १५२७ स० ६६

सिलहदार<سلاحدار=Armoured;
सार धार त्रिध्धात, भेद छेदन राज वप।
सिलहदार सारंग, सथ्थ किय इंद्र देव जप। छं० १४२४ स० ६६

मुसाइत<अ० مسايت (मुसायत)=Grieving; displeasing; doing evil;
बेहथ्थ कराई हथ्थ को, बथ्थ राज बत्तन कहै।
मुजनंक मुसाइत छंडि हय, तक्कि तक्कि संमुह रहै। छं० १४७८ स० ६६

चिग्ग<तु० چق (चिक़)=A venetian blind;

हम्माम<अ० حمام (हम्माम)=Awarm brath;

नहीं झोक हम्माम गरसी सरद्दा ।

नहीं चिग्ग अग्गें सु नंषे परद्दा । छं० १६३६ स० ६६

गरसी<अ० غرش (ग़र्श)=Anger;

गिलम्मे<फा० گلیم (गलीम)=कंबल; नरम उनी कार्लीन; मोटा मुलायम बिछौना;

नहीं रेसमं के दुलीचे गिल्लमे । छं० १६४० स० ६६

परसमी<फा० پشمین (पशमीन)=Woolen; پشمینه (पशमीना=Woolen garment

परद्दा<फा० پرده (पर्दा)=A veil, curtain;

गरीब निवाज<अ० से फा० غریب‌نواز (ग़रीब नवाज़)=Kind to strangers;

बिना राज आजं सरै कौन काजं ।

निवाहौ विरद्दं गरीबं निवाजं । छं० १६५६ स० ६६

सेषजादे<अ० شیخ (शेख)+फा० زاده (ज़ादा)=The son of a chief;

सुभं सेष जादे अबादे पठाने । छं० १६२ स० ६७

हरंमी<अ० حرمی (हरमी)=हरम का;

जिल्ल<جلع (जल)=Being open;

ताबी<१. अ० طاعب =Odour; २. अ० طابن=Very skilful; ३. फा० تاب=चमक;

बली जिल्ल बानी पबीरज्ज ताबी ।

तुलंगा हरासे हरंमी सुताबी । छं० १६६ स० ६७

बषत<अ० وقت (वक्त़)=Time, opportunity;

उठि उठि भट्ट कहै हम जानं, बषत अनंद रस्यौ सुविहानं । छं० १०० स० ६७

परदार<फा० پهردار (पहरदार)=A watchman;

१. हस्यौ जमन परदार तब, तुहि जानौ कविचंद । छं० १८२ स० ६७

२. परदार मुष्ष लष्षिय सुचंद, तू किय विभूति सिर धरै बंद । छं० १८६ स० ६७

नवबत्ति<अ० से फा० نوبت (नौबत)=A very large kettle drum struck at stated hours;

प्रथम बज्जि घरियार, बज्जि नवबत्ति पलान सजि । छं० १६६ स० ६७

दल्लाल<अ० دلال (दलाल)=An auctioneer; a broker;

<फा० دلال (दिलाल)=An amorous glance; the eye; the eye brow;

साह आलम<फा० شاه‌عالم (शाह आलम)=The king of the world

सलाह १. अ० صلاح (सलाह)=Advisable; २. صلح (सिलह)=Reconciling; making peace;

नग मोतिय मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि ।
परि राइ राज मनुहारि करि, गज्जन वै पठ्यौ सुघरि । छं० १५० स० २७

मुलांन, मुल्ला<अ० ملا (मुल्ला) = मौलवी;
फिरस्ते न हस्ते न मुल्ला पुकारे । छं० २८६ स० ६७

आदल्ल<अ० ادلہ (इदला) = Giving money
जालम<अ० ظالم (ज़ालिम) = A tyrant
फक्कर<अ० فقر (फ़क्र) = Asceitism
फरीद<फा० فریاد (फ़रयाद, फ़िरियाद) = Complaint; cry for help
रिजकानदार (Wealthy)<अ० رزق (रज्क़) = Bestowing
कामदार<फा० کامگار (कामगार) = Powerful
औलिया<फा० اولیاء (औलिया) वली का ब० ब० = Saints, prophets
तबल<अ० طبل (तबल) = A drum
तबलेश्वर<अ० طبل + सं० ईश्वर = The lord of the drums;<फा० صاحب طبل (साहबे तब्ल) = The lord of the drums; king
साहबेश्वर<अ० صاحب + सं० ईश्वर = The lord of the chiefs;

इसै कुरान मूसै मुलान, महमंद दीन ईमान जान ।
आषंड जमी कंटक विडार, आदल्ल रीति जालम निडार ।
फक्कर फरीद रिजकानदार, बगलीस पंनाम कामदार ।
औलिया पीर पैगंमरार, इस बीस च्यारि क्रामति कार ।
तबल तबल घालि तबलेश्वर, अंग उपांग भोग भोजेश्वर ।
कालि क्रतांत कल्ह कोलेश्वर, श्रैयौ ईस सुरतान साहबेश्वर । छं० २२० स० ६७

ख्याल, (ष्याल, ष्याल म० स०)<अ० خیال (ख़याल) = Idea;
जल उस्न आनि कुंकुम सक्रित, पर ख्याल न तन ताम किय । छं० २७५ स० ६७

सीषी<अ० से फा० شیخی (शेख़ी) = Boasting; bragging;
चले सेष सीषी भषे दंड लीधा । छं० २६० स० ६७

हरफ<अ० حرف (हर्फ़) = A camel large, lean and raw boned;
हरफ हद्द करि गिल्लयौ, घर आयौ सु विहान ।
झषत चंद मन मंझ निसि, नीठ सु भयौ विहान । छं० २६७ स० ६७

आदंम<अ० آدم (आदम) = Adam, the father of the human race
बीबी<फा० بیبی (बीबी) = A lady, matron;
बर स्वान सिंध जंबुक सयन, हरसिद्धि बीबी झगरी । छं० ४४८ स० ६७

दरबार, (द्रब्बार म० स०)<फा० دربار (दरबार) = A court;
दरबार भीर भीरन्न घन, मिलत आइ अप अप्पन्निय । छं० ४७४ स० ६७

हाकिम<अ० حاکم (हाकिम) = A governor; commander; judge;

मेटै न मिटै हाकिम हसम, बल अनेक जो करै बुधि । छं० ४७४ स० ६७

हिकमति<अ० حکمت (हिकमत) = Wisdom

तरकस्स<फा० ترکش (तरकश) = A quiver

फातिया<अ० فاتحة (फ़ातिहत) = A beginning; the first chapter of the Quran which the Muhammadons frequently repeat in their prayers.

पढि कुतबा फातिया, बिनै साहाब सु नामं । छं० २२ स० ६८

इहक्का<अ० احکا (इहका) = Tightening, tying firm;

सबर सुनौ सुरतान,पुब्ब बर जमी इहक्का । छं० ६६ स० ६८

तोबह<अ० توبه (तोबा);

तन तोबह झूरंत, अहौं हिंदू परवानै । छं १६ स० ६८

महोबा समय

निवाजिय<फा० نواز (नवाज़) = Comfort;

निवाजिय वैस नरेस हुकम्म । छं० १७

माफ<अ० معاف (मुआफ़) = Forgive;

नहीं दढ राजन कौ भ्रम ताफ, करौ इनकी अब चुक्क सुमाफ । छं० ३४

गुमानी<फा० گمان (गुमान) = Doubt; opinion;

सुनी कन्ह बानी गुमानी चलाये, अभंगं बली बाहु जंगं मिलाये । छं० ४१

बंदूकैं, बंदूक<अ० بندوق (बंदूक़) = A musket;

१. चलावंत सूधी बंदूकैं विरत्ती, परैं फुट्टि न्यारी उडै लागि छत्ती । छं० ४३

२. अन्न गुलाब बंदूक बरच्छिय, हेमर बाय चढन के कच्छिय । छं० १४०

चुगल, चुग़ुल<फा० چغل (चुग़ुल) = An informer;

महला मोपति चुगल, चारि परिहार सु अग्गह । छं० १०६

चुग़ुली<फा० چغلی (चुग़ुली) = Backbiting;

परिहार सैन आनहु धरहु ,चुगुली चाहिन कान लहु । छं० १६३

मगसूद<अ० مقصود (मक़सूद) = Object;

चले मगसूद स घट्ट रु बाट, पिले दल सावंत दारुन ठाट । छं० १६७

हल्लाल<अ० حلال (हलाल) = legitimate;

करौ तौन हल्लाल, ख्याल देवन गन दिष्षव । छं० १३१

सौगात<तु० سوغات (सौग़ात) = Present;

लै सौगात जल्हन चलिय, प्रिथियराज सु नदी परि मिल्लिय । छं० १४१

नजरि<श्र० نزر (नज्र) = A present from the inferior to the superior;

दै कागद सब नजरि सु दिन्नय, सब प्रमोद मिलन की किन्नय । छं० १४१

बसती [<फा० بستی (बस्ती) = Gardner]<सं० वसति = निवास;

जागीरी<फा० جاگیر (जागीर) = A possession in land as a reward for services;

जागीरी भोपति की मारिय, वसती मारि सबैं उज्जारिय । छं० १५६

दखल<श्र० دخل (दख़्ल) = Intrusion;

सिर धुनिय आल्ह लीनौ बुलाय, आपनो देस सु दखल पाय । छं० १७५

जेर<फा० زیر (ज़ीर) = Lower;

पट्ठान गया के जेर कीन, तहं दुबं कोटि तिय लुट्टि लीन । छं० १७७

जवान, ज्वानं<फा० جوان = A young man;

गाजिव गम्हीर वाजिव निसान, सज्जिव जवान अति जोरवान । छं० २२५

जोरवान<फा० زور = Vigorous; strong; powerful;

कासिद्द, कासीद<श्र० قاصد (क़ासिद) = A messenger;

पट्टाय दीन कासिद्द एक, परिमाल जोध लिपि अज्ज मेक । छं० २३१

मसलति<श्र० مصلحت (मस्लहत) = Advice;

१. करि मसलति परिमाल, आल्ह ऊदिल ढिग बुल्लिव । छं० ३०२

२. मसलति करि बाहर कढ़े, ऊदिल आल्ह नरेस । छं० ३२०

षावँद<फा० خاوند (ख़ावंद) = A master;

षावंद की देषै बुरी, अंग रखावन सूर । छं० ३२४

मिजमानी<फा० میزبانی (मेज़्बानी) = Hospitality;

देवल मिजवानीं करी, सब सँग एकै साज । छं० २२३

नकरो<फा० نقاره (नक़ारा, नक्क़ारा) = A kettle drum;

राजा जागि नकरो कीनौ, आल्हा काजै आइस दीनौ । छं० ३४४

हलकान<श्र० حلقه (हलक़ा) = Circle;

हनि हाथी हलकान, सुरि मोहरा रन ठेलि । छं० ४०३

हवेली<श्र० حویلی (हवेली) = A house, dwelling, habitation;

आल्हन गये हवेली आपन । छं० ३३४

नौन हलालं [= हिं० नौन (<लोन>लवण = नमक) + श्र० हलाल] = Loyal;

१. हलालं कियौ नौन पंगं नितब्बं । छं० ४८५

२. नौन हलाल चंदेल । छं० ५१२

कुमक<फा० کمک (कुमक)=A corps of auxiliaries;

कनवज कुमक कामि सब आइय।

फते लई चहुआन अचाइय। छं० ४६६

हरकारी, हलकारी [<फा० هرکاره (हरकारा)=A messenger]=बुलाई

१. साठि सहस सेना सबै, हरकारी ततकाल। छं० ५३६

२. हलकारी आल्ह सैना सपूर। छं० ४३७

प्यादे<फा० پیاده (पियादा)=A footman; a foot soldier; a peon

मस्त<फा० مست (मस्त)=Intoxicated; wanton;

तीर लग्यो चंदेल उर, फूटि सनाह प्रवीन।

हय पाषर बेधे दुहौं, गगन मस्त वे कीन। छं० ७६२

दरवाजे<फा० دروازه (दरवाज़ा)=A door, a gate;

दरवाजे करि वंध नारि, पौरनि मध वंधिब। छं० ८१५

कैद<अ० قید (क़ैद)=Imprisonment;

चावंड कूं जु विदा किये, कैद करन चंदेल। छं० ७६१

हाल<अ० حال (हाल)=Condition;

बुरे हाल कादै परिमालह, सो अब भूलि गई वह ख्यालह। छं० १८८

जवानी<फा० جوانی (जवानी)=Youth;

गुरज्जै वहै सीस रीसं रमानी, सिरं होंत चूतं विषूतं जवानी। छं० ३६१

तोप<तु० توپ =A cannon;

दस सहस हेमर फुट्टि, जिन तोप बाननि छुट्टि। छं० ५८५

रासो में सफलतापूर्वक प्रयुक्त हुए उपर्युक्त अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के शब्द शंका के विषय हैं कि क्या चंदबरदायी इन भाषाओं से इतना अभिज्ञ था! और भी इन विदेशी शब्दों में से अधिकांश केवल निर्दिष्ट- स्थलों मात्र पर ही नहीं प्रयुक्त हुए हैं वरन् अनेक बार ये प्रयोग में लाये गये हैं।

यद्यपि आदि पर्व में अपने ग्रंथ की भाषाओं का उल्लेख करते हुए—

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।

षट् भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया। छं० ८३

कवि ने कुरान की भाषा अर्थात् अरबी की ओर संकेत किया है। परन्तु उसने अपने प्रारंभिक जीवन और शिक्षा-दीक्षा पर लगभग नहीं के बराबर प्रकाश डाला है तथा न बहिरंग प्रमाण ही साक्षी हैं। इसलिए केवल अटकल और अनुमान के अतिरिक्त दूसरा उपाय इस शंका के समाधान का नहीं है।

लंबी तालिका में दिये हुए अनेक विदेशी शब्द ऐसे हैं जिनका परवर्ती हिंदी कवियों ने भी बहुत ही कम प्रयोग किया है। साथ ही संस्कृत और अरबी या फारसी के मेल से

बनाये हुए कई शब्द जो कि निर्दिष्ट किये गये हैं इस बात के द्योतक हैं कि उनके ये मौलिक रूप भारतवर्ष में फारसी भाषा और साहित्य का अधिक प्रचार होने पर ही आये होंगे। यह सच है कि पंजाब और राजपूताना पर मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप क्रमशः विजेताओं की भाषा का भी विजित हिंदुओं और उनकी भाषा पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा होगा। परन्तु अमीर खुसरो के कोष-वितरण के बाद से इस प्रकार के विदेशी शब्दों के भारतीय भाषाओं के साहित्य में प्रयोग किये जाने की संभावना अधिक अनुमान में आ सकने वाली है।

गया के पठान--

महोबा समय में दिल्लीश्वर पृथ्वीराज. चौहान और महोवा तथा कालिंजर के शासक परमाल के युद्ध का वर्णन है। इसमें राजा परमाल के लड़ाका सरदार आल्हा की प्रशंसा में कहा गया है कि उसने पूर्व देश पर धावा किया, गया के पठानों को पराजित किया और वहाँ करोड़ों की संख्या में द्रव्य लूटा। यथा—

बैठे सु पाट आल्हा नरेस। मारियो जाइ पूरब्ब देस।
पट्ठान गया के जेर कीन। तहं दर्ब कोटि तिय लुट्टि लीन। छं० १७७

इतिहास साक्षी है कि सन् ११९२ ई० में तराओरी (तराईं) के मैदान में पृथ्वीराज पराजित हुए और साथ ही यह भी सच है कि कुतुबुद्दीन ऐबक ने उपर्युक्त सन् के सितम्बर मास में मेरठ दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। देखिये कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, तृतीय भाग, १९२८, पृ० ४१-२।

"(सितम्बर ११९२)........गुहराम जाकर ऐबक तुरंत ही मेरठ के लिए प्रस्थित हो गया तथा हिंदू राजा से उसका अधिकृत दुर्ग छीन लिया और इस प्रकार उसने जमुना के पूर्व में एक चौकी स्थापित कर ली।

दिल्ली नगर अभी भी चौहान राजपूतों के अधिकार में था तथा जाति और धार्मिक उत्तेजना का केन्द्र होने के अतिरिक्त इस्लामी हथियारों की प्रगति में एक महान् बाधा था। अस्तु, ऐबक मेरठ से बढ़ा और दिसम्बर ११९२ या जनवरी ११९३ में उसने नगर (दिल्ली) पर अधिकार कर लिया जिसे भविष्य में भारत की इस्लामी शक्ति का केन्द्र होना था। ११९३ में उसने उसे अपना प्रधान स्थान बनाया परन्तु वहाँ अपने को कोई आराम न लेने दिया।

इस बीच ऐबक का एक अधीन अफ़सर इस्लाम के झंडे को आगे बढ़ाता रहा। यह खल्ज नामक तुर्की जाति के बख्त्यार का पुत्र इख्त्यारउद्दीन मुहम्मद था। उसने हिजाब्र-उद्दीन हसन अदीब के यहाँ नौकरी कर ली जो एक साहसी अफ़सर था और जिसने मुहम्मद के भटिंडा पर अधिकार करने से पूर्व ही बंदायूँ जीत लिया था और फिर इस्लाम के अग्रगामियों के दूसरे नेता हिसामउद्दीन आगुल बाक के यहाँ काम किया जिसने अपने को अवध में जमा रक्खा था, यहीं इख्त्यारउद्दीन को गंगा और सोन के बीच की कुछ जागीरें मिलीं। इसी बढ़े हुए प्रदेश को आधार बनाकर उसने बिहार और तिरहुत पर आक्रमण किया तथा लूट का इतना माल ले आया कि उसके सजातीयों की एक बड़ी संख्या ऐसे

भाग्यशाली नेतृत्व में काम करने की भावना से उसके साथ हो ली। इस बड़ी शक्ति से उसने बिहार की राजधानी ओदंतपुरी पर हमला किया और स्थानीय विशाल विहार में निवास करनेवाले भिक्षुओं को मार डाला तथा लूट की अपार संपत्ति सहित लौटा जिसमें उक्त विहार का पुस्तकालय भी सम्मिलित था। तदुपरांत ११६३ के ग्रीष्म में वह ऐबक से अपनी विनय प्रदर्शित करने दिल्ली पहुँचा। हाथी को वशीभूत करके उसने ऐबक का खोया विश्वास फिर प्राप्त कर लिया जिसने उसको भूत और भविष्य में विजित प्रदेशों का जागीरदार बनाकर नवीन सम्मानों सहित विहार भेज दिया। पृ० ४५-६

११६३ में दिल्ली से बिहार लौटते समय उसने मुस्लिम साम्राज्य विस्तृत करने के उद्देश्य से नवीन विजयों की आयोजनायें बनाईं। १२०२ में एक बड़ी अश्वारोही सैनिकों की सेना सहित इख़्तियारउद्दीन बिहार से निकला तथा इस वेग से नदिया पर चढ़ दौड़ा कि नगर पहुँच कर उसके साथ कुल अठारह सैनिकमात्र थे। वहाँ का राजा नाव द्वारा निकल भागा और ये साहसी वीर पिछली सेना के आने तक डटे रहे। फिर इन्होंने अस्सी वर्ष के शांतिपूर्ण राज्य का संचित कोष लूटा तथा नगर को लूटकर नष्ट कर दिया। इख़्तियारउद्दीन गौड़ या लखनावती चला गया और बंगाल का सूबेदार बन बैठा।......"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महोबा युद्ध जो सन् ११६२ ई० से पूर्व ही हुआ होगा और उससे कुछ समय पूर्व आल्हा की पूर्व देश की रण-यात्रा संभवतः हुई होगी, उस समय गया या बिहार प्रदेश पर मुसलमानों का आधिपत्य नहीं था। अतएव हम कह सकते हैं कि आल्हा द्वारा गया के पठानों को ज़ेर करने की बात परवर्ती प्रक्षेप है और प्रक्षेपकर्त्ता ऐतिहासिक घटनाओं से सर्वथा अनभिज्ञ था।

संपूर्ण महोबा समय आठ-दस छंदों को छोड़कर भाषा की परीक्षा के आधार पर काफ़ी बाद की रचना प्रतीत होता है परन्तु उसकी विस्तृत विवेचना हमारे प्रस्तुत विचार का विषय नहीं है।

सैकड़ों मुसलमानों के नाम—

आश्चर्य है कि चंद वरदायी जिसके नाम पर प्रक्षेपकर्ताओं ने रासो का कलेवर बढ़ाया है, मुसलमान पक्ष के इतने नामों से परिचित था और परिचित ही नहीं वरन् यदि रासो वर्णित इस सम्बन्ध की सारी वार्त्ताओं को सच मान लिया जाय तो वह ग़ज़नी दरबार की अनेक कार्यवाहियों से भी अभिज्ञ रहता था। लगभग तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने तबकाते नासिरी, ताजुल-म-आसिर आदि में बहुत ही थोड़े हिंदू नाम लिये हैं और वह भी प्रसिद्ध हिंदू राजाओं के। यह माना कि गुप्तचरों से उभय पक्षों को परस्पर भेद मिलता रहता होगा परन्तु चंद की तथाकथित जानकारी की बात किंचित् कठिनाई से ही समझ में आने वाली है और पूर्ण विवादग्रस्त है। यह एक स्वतंत्र खोज का लंबा विषय है। अस्तु, इतना निर्देश मात्र ही यथेष्ट होगा।

मुग़ल—

रासो में मुग़ल नाम कई बार प्रयुक्त हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सन् १२२१ ई० से ही मुग़लों का नाम सुनाई पड़ता है।

देखिये—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ३, १९२८, पृ० ५२—

"१२२१ में विधर्मी मुग़लों के आक्रमणों का प्रभाव प्रथम बार भारत पर पड़ा जो बाद में दिल्ली के सुलतानों के लिए निरंतर चिंता के स्रोत बन गये थे। इन जंगलियों ने क्रूर चंगेज़ खाँ के नेतृत्व में अलाउद्दीन मुहम्मद ख्वारज़्म शाह को उसके सिंहासन से उतार बाहर किया। उसके पुत्र जलालुद्दीन मंगबरनी ने लाहौर में शरण ली तथा अल्तमश के पास अपने साम्राज्य में शरण देने के लिए एक दूत भेजा।"

परन्तु इतनी संभावना का स्थान इतिहास भी दे सकता है कि सन् १२२१ ई० से २५ वर्ष पूर्व सुलतान ग़ोरी की सेना में मुग़ल सैनिक भी रह सकते हैं।

'मेवाती मुगल कथा' को लेकर रासो के समय ८ में अजमेर नरेश सोमेश्वर और मेवात के शासक मुगल के युद्ध का वर्णन किया गया है।

इस विषय में म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के 'कोशोत्शव स्मारक संग्रह' सन् १९२८ ई० में प्रकाशित लेख 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' पृष्ठ ५६-७ पर विचार देखिये—

"पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुग़ल राजा (मुग्दलराय) से अन्य राजाओं के समान कर माँगा। उसके इनकार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातोरात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल पराजित हुए। मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र वाजिद खाँ मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ। [पृथ्वीराज रासो; मेवाती मुगल कथा (आठवाँ समय); रासोसार; पृ० ३८]

यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अंतर्गत था। वहाँ कोई स्वतंत्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमान तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।"

रासो में पाँच छः स्थलों पर तैमूरलंग का नाम आया है जबकि यह प्रामाणिक रूप से प्रसिद्ध है कि सन् १३९८ ई० में उसने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। देखिये—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ३, १९२८, पृ० १९५—

"दिल्ली की यह परिस्थिति थी जब १३९८ में समाचार मिला कि समरकंद का अमीर, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और मेसोपोटामियाँ का विजेता, लँगड़ा तैमूर इंडस, रावी और चेनाब को पार कर तालंबा लेकर अपने पौत्र द्वारा विजित मुलतान का अधिकारी हो चुका है। तैमूर को अपनी लूट खसोटों के लिए बहाना या प्रेरणा बहुत क[illegible] पड़ता था परन्तु भारतवर्ष ने दोनों की पूर्ति कर दी। बहाना यह था कि दिल्ली के मुसलमान शासक मूर्ति पूजा के प्रति सहिष्णु थे और प्रेरणा यह थी कि पिछले समय के विपरीत राज्य विभाजित था। आक्रमणकारी का उद्देश्य लूट था और यदि भारत की स्थायी विजय

का कोई भाव उसके मन में रहा भी हो तो दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही वह समाप्त हो चुका था।"

अस्तु, रासो के तैमूरलंग विषयक छंदों को प्रक्षेप मानने का कौन विरोध करेगा।

तुपक, तोप, गोला, बंदूक —

रासो के अनेक युद्धों में इनके प्रयोग किये जाने के विवरण मिलते हैं, परन्तु इन सबको प्रक्षिप्त अंश मानना ही उचित होगा क्योंकि भारतवर्ष में बाबर से पहिले युद्ध में तोपों के प्रयोग का प्रमाण अभी तक इतिहास को प्राप्त नहीं है। देखिए—

"तैमूर के उत्तराधिकार स्वरूप जब बाबर को खोकन प्रदेश तथा वक्षु के उत्तर में कुछ भूमि मिली उस समय युद्ध कला सादी थी। तलवार और धनुष ही प्रधान अस्त्र शस्त्र थे। अपनी स्मृतियों में उसने शशपर या छै फलवाली गदा, बरछी और फरशा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक वार में केवल इन्हीं पर विश्वास किया जा सकता है। इन सेनाओं में तोड़ेदार बंदूक का प्रवेश प्रारंभ हो गया था परन्तु काबुल और कंधार की सीमा पर बाजौर के निवासियों ने तोड़ेदार बंदूक देखी तक न थी (१५१६)। बड़ी तोपें फ़िरिंगिहा कहलाती थीं और छोटी ज़रबुज़न जिसे आजकल मशीनगन कहते हैं। तुर्कों ने थोड़े दिन पूर्व ही कुस्तुनतुनियाँ पर अधिकार पाया था और उस पर बड़ी तोपों का प्रयोग किया था परन्तु फ़िरिंगी या फ्रैंक शब्द से स्पष्ट है कि उन्हें यूरोपीय आविष्कार माना जाता था। एशिया में तोपों की कला में निष्णात व्यक्ति रूमी या ओसमानली तुर्क थे और एशिया निवासियों द्वारा बंदूक, तोप, बारूदखाना आदि प्रयोग में लाये जाने वाले प्रायः सभी शब्द तुर्की भाषा के हैं। बाबर पहले तोपखाने से परिचित नहीं था परन्तु जब वह आगरा में जम गया तब उसने उस्ताद अली कुली को एक बड़ी तोप ढालने का आदेश दिया।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर ने अपनी सेना में अनुशासन और सैनिक कौशल की वृद्धि की थी जो तब तक भारतवर्ष में प्रचलित नहीं थी। बंदूकधारी सैनिकों का एक नियमबद्ध दल और तोपख़ाने का एक जत्था उसकी प्रधान शक्ति थे।"

'ए डिसक्रिप्शन आव इंडियन ऐन्ड ओरियन्टल आर्मर' लॉर्ड ईगर्टन एम० ए०, लंदन, १८९६ (नया संस्करण), पृ० २१-२

इस विषय में 'मेम्वायर्स आव बाबर, लीडेन और एर्सकाइन, १८२६, पृ० ३५६-६७ तथा 'मेम्वायर्स आव बाबर' बेवरिज, १९२१, भाग दो, पृ० ५६८-७४ भी देखे जा सकते हैं।

"१६ मार्च १५२७ में खनुआ का युद्ध हुआ। बाबर ने पुनः अराबा व्यूह का प्रयोग किया। वह स्वयं केन्द्र में था, चीन तीमूर और खुसरो कुकिलताश दाहिनी ओर थे। (पूर्व के युद्ध से सफलता प्राप्त कर लौटा हुआ) हुमायूँ, दिलावर ख़ानख़ाना तथा अन्य भारतीय अमीर भी दाहिने पक्ष में थे, सय्यद महदी ख्वाजा बाईं ओर था, और दाहिनी तथा बाईं तरफ़ बग़ली रक्षा करनेवाली टुकड़ियाँ थीं तथा निज़ामुद्दीन अली ख़लीफ़ा

तोपखाने का नायकत्व कर रहा था। राणा के बाम पार्श्व ने बाबर के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण करके युद्ध प्रारंभ किया परन्तु चीन तीमूर ने उन्हें पीछे खदेड़ दिया। इसी बीच में तुर्की तोपची मुस्तफ़ा रूमी हुमायूँ के विभाग के केन्द्र से गाड़ियाँ और तोपें आगे बढ़ा लाया तथा शत्रुओं का मोर्चा तोड़ दिया।" कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ४, १९३७, पृ०१७। परन्तु बाबर ने भी तोप शब्द का प्रयोग नहीं किया है। देखिये—

"फारसी कोषों में 'तोप' शब्द तुर्की बताया जाता है परन्तु बाबर ने 'ज़र्ब-ज़न' शब्द प्रयोग किया है। भारतीय साहित्य में तोप शब्द का व्यवहार कब से प्रारंभ हुआ मैंने नहीं खोजा है परन्तु संभवतः प्रथम यह दक्षिण में प्रयोग में आया जिसे लाने वाले रूम या तुर्की से आये तोपखाने में काम करने वाले अधिकारी थे। तोप शब्द का प्रयोग बहुधा बड़ी या घेरा डालने वाली तोपों के लिए किया जाता है और कभी-कभी हर प्रकार की छोटी-बड़ी सभी तोपों के लिए यह व्यवहृत होता है, जैसे तोप-खुर्द और तोप-कला।" 'दि आर्मी आव दि इंडियन मुग़ल्स, विलियम इरविन, लंदन, १९०३, पृ० ११३।

तुपक, तुफ़ंग और बंदूक के विषय में भी विलियम इरविन का मत देखिये—

"यह (तोड़ेदार बंदूक) थी तुफ़ंग (स्टीन्गास ३१४) या बंदूक (वही २०२)। [मद्रास मैनुअल के तीसरे परिशिष्ट पृ० ९१५ पर 'तुपक' शब्द है जिसका अर्थ छोटी तोप या बंदूक होता है। आइने अकबरी, भाग १, पृ० ११३ पर अकबर को तोड़ेदार बंदूकों के निर्माण में सुधार करने का श्रेय दिया जाता है। इतना सब होने पर भी १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल तक इस अस्त्र को धनुष और बाण की अपेक्षा कम महत्त्व दिया जाता था। तोड़ेदार बंदूक प्रधानतः पैदल सैनिकों के पास रहती थी जो मुग़ल सेना नायकों की सम्मति से अश्वारोही सैनिकों की तुलना में अति घटिया दर्जे के समझे जाते थे। १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल से फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों के मार्ग प्रदर्शन से पैदल सिपाही के अस्त्रशस्त्रों और अनुशासन में उन्नति के प्रयत्न प्रारंभ हुए।" वही, पृ० १०३।

योरोप में भी तोपों और बारूद का अविष्कार ईसवी चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। (Encyclopaedia Britannica. 14 th edition, Vol. 11. See—Gunpowder, Pp. 3-4.)

इन अनेक प्रमाणों के सामने पृथ्वीराज कालीन युद्धों में तोप, बन्दूक और गोलों के प्रयोग के वर्णन अविश्वसनीय ठहरते हैं।

———

परिशिष्ट

यूरोपीय विद्वानों की कुछ सम्मतियाँ

गार्सां द तासी

इस्तवार द ला लितरात्यूर ऐंदुई ए ऐन्दुस्तानी। द्वितीय संस्करण, प्रथम भाग, पेरिस, पृ० ३८२-८६।

"चंद या कवि चंद और चंदर भट्ट (चन्द्र भट्ट) एक अति प्रसिद्ध इतिहासकार और हिंदी कवि है जिसने दिल्ली के अंतिम हिंदू राजा पृथ्वीराज का चरित्र (इतिहास) लिखा है। इस पद्यबद्ध इतिहास में राजपूताना का उस युग का इतिहास है जिसमें कवि ने एक प्रमुख भाग लिया था। अति प्राचीन हिंदी की यह एक निश्चित रचना है। चंद, पिथौरा या पृथ्वीराज का कवि था जिनका अन्य राजपूत परिवारों सहित उसने गुणानुवाद किया है। अस्तु, वह बारहवीं शताब्दी के अंत में वर्तमान था।

कवि के ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति लंदन की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय के मैकेंजी संग्रह की एक श्रेष्ठ प्रति है जिसे प्रदान करने का गौरव मेजर कालफील्ड को है। राबर्ट लेंज नामक एक रूसी विद्वान् ने उसके एक भाग का अनुवाद किया था जिसे सेन्टपीटर्सबर्ग पहुँचकर सन् १८३६ ई० में वह प्रकाशित करना चाहता था परन्तु इस युवक की असामयिक मृत्यु ने पूर्वी भाषा तथा साहित्य के विद्वानों को उसकी कौशल देखने से वंचित कर दिया। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की प्रति का फारसी शीर्षक है जिसका भाव है 'पिंगल भाषा (भारतीय पद्य) में पृथ्वीराज का इतिहास कवि चंद वरदायी कृत।' जेम्स टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास की सामग्री का अधिक भाग इसी काव्य से लिया है। उन्होंने इसके एक बड़े भाग का अनुवाद भी किया था परन्तु उनकी मृत्यु उसकी समाप्ति और प्रकाशन में बाधक बन बैठी। वे इस ऐतिहासिक काव्य के एक उल्लेखनीय स्थल का अनुवाद मात्र 'संगोपता नेम' के नाम से प्रकाशित कर सके जिसकी प्रतियाँ उन्होंने केवल कुछ मित्रों को दीं थीं। यह अनुवाद एशियाटिक जर्नल की नवीन माला भाग २५ में पुनः प्रकाशित हुआ था। इस काव्य और इसके रचयिता के विषय में उनका कथन इस प्रकार है—

'चंद का ग्रंथ अपने युग का पूर्ण इतिहास है। पृथ्वीराज के शौर्य-चरित्र का वर्णन करनेवाले एक लाख पद और ६६ समय वाले इस ग्रंथ में राजस्थान के प्रत्येक उच्च वंश को अपने पूर्वजों का कुछ न कुछ वृत्तांत अवश्य मिलेगा। इसीलिये राजपूत नाम से कुछ भी संबंध रखने वाली सारी जातियों के संग्रह में यह ग्रंथ पाया जाता है।....पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी मैत्रियों, उनके अनेक शक्तिशाली सहायकों तथा उनके निवासों और वंशावलियों के कारण चंद की रचना इतिहास, भूगोल, पौराणिक गाथाओं तथा प्रथाओं

आदि की दृष्टि से अमूल्य ठहरती है। इसीलिये उसके ग्रंथ का नाम 'प्रिथुराज-राजसू' अथवा 'पृथ्वीराज का विशाल बलिदान' है।

श्री वार्ड ने 'हिस्ट्री आव लिटरेचर ऐन्ड माइथोलॉजी आव दि हिंदूज़' नामक अपनी पुस्तक के द्वितीय भाग, पृष्ठ ४८२ पर इस ग्रंथ का उल्लेख करते हुए उसे कनौजी भाषा में लिखा बताया है।

मेरा अनुमान है कि यह वही ग्रंथ है जिसे कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में 'प्रिथिवीराज-वासा (भाषा)' नाम दिया गया है अथवा उक्त सोसाइटी की पुस्तक संग्रह सूची में जिसे 'प्रिथी अथवा बियाना (आगरा प्रदेश के नगर) के प्रथम सम्राट पृथुराज की विजयों का वर्णन' शीर्षक में किया गया है। यह जैसा कुछ भी हो सोसाइटी के पुस्तकालय में इस ग्रंथ का जो भाग संगृहीत है उसका शीर्षक है 'प्रिथीराज रासौ पद्मावती खंड'।

उपर्युक्त विवेचना के अतिरिक्त अपनी प्रस्तावना में हिंदी की प्रारंभिक स्थिति पर मैंने जो कुछ लिखा है उसमें इतना मैं और जोड़ना चाहूँगा कि इस काव्य में ६० गीत हैं तथा 'आइने अकबरी' में इसकी प्रशंसा की गई है। कर्नल टॉड ने सर्वप्रथम लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के ट्रैंजेक्शन्स के प्रथम भाग में इस काव्य के कुछ अंश प्रकाशित किये थे तथा पेरिस के एशियाटिक जर्नल की टिप्पणी का श्रेय भी मेरे अनुमान से उन्हीं को है। इस काव्य में भारत के मुस्लिम आक्रमणकारियों से लोहा लेने वाले हिंदू सम्राट का वर्णन है। पृथ्वीराज के समकालीन उत्तर भारत के कई राजाओं के विस्तृत वर्णन जो और कहीं नहीं मिलते, इस काव्य में पाये जाते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी के भारत का यह पूर्ण चित्र है। दुर्भाग्य से इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों में जो भारतवर्ष में मूल्यवान और दुर्लभ हैं, अत्यधिक पाठ भेद पाये जाते हैं। श्री एफ० एस० ग्राउज़ ने जे० आर० ए० एस० बी०, भाग १५०, नवीन माला में बनारस की हस्तलिखित प्रति के विषय का विस्तृत परिचय देकर उसके प्रथम गीत का अनुवाद प्रकाशित किया है।

श्री एस० एम० फैलन को अजमेर में एक दिन एक अपढ़ ऊँटवाह मिला। उसने कंठस्थ किये हुए चंद की रचना के दीर्घ अंश सुनाये जिन्हें अन्य भारतीयों को गाते सुनकर उसने याद किया था। एक निरक्षर निम्न श्रेणी के व्यक्ति ने इस प्रसिद्ध राजपूत काव्य के छंद पूर्ण उत्साह और जोश के साथ गाये यह इसका प्रतिपादक है कि अस्त्र-शस्त्रों के शौर्य की वह गाथा जिसका रंगमंच रजवाड़ा था अभी भी जनता की स्मृति में था।

यद्यपि चंद का काव्य हिंदवी या प्राचीन हिंदी में लिखा है फिर भी इसमें अरबी-फारसी शब्द मिलते हैं जिनका हिंदी में प्रवेश हो चुका था; जैसे—आतश, मारूफ, सिताब, सरदार, कोह आदि।

यह कहा गया है कि राजपूत जाति का यह काव्य भारत में कहीं प्रकाशित हो चुका है परन्तु यह कहना अधिक उचित होगा कि इसका प्रकाशन होने जा रहा है और हिंदी साहित्य का यह अभीष्ट बीम्स जैसे विद्वान् द्वारा पूरा होगा। इस स्तुत्य कार्य को वे

सफलतापूर्वक समाप्त करें तथा इतिहास और भाषा विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस संपूर्ण काव्य का अनुवाद भी वे कर सकें, यही हमारी कामना है।

कवि चंद का लिखा 'जयचन्द्र प्रकाश' (जयचन्द्र का इतिहास) नामक एक अन्य ग्रंथ भी कहा जाता है। पहले काव्य के समान यह भी कन्नौजी में लिखा है जिसके उल्लेख-कर्त्ता वार्ड महोदय हैं। स्वर्गीय सर एच० इलियट का अनुमान था कि चंदकृत जयचन्द्र प्रकाश कोई भिन्न ग्रंथ नहीं वरन् प्रिथिवीराज-चरित्र का कनौब्ज या कन्नौज खंड मात्र है जिसका अनुवाद टॉड ने 'संगोता नेम' नाम से एशियाटिक जर्नल में प्रकाशित किया है।"

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन

माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान। जे० आर० ए० एस० बी०, भाग १, सन् १८८८ ई०, पृ० ३-४ पर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने फ्रांसीसी विद्वान् तासी के उपरांत चंद वरदायी के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"६. चन्द्र कवि, कवि और बंदी चन्द्र या चन्द वरदायी। समय ११६१ ई०।

राग०, ? सन० वह प्राचीन गायक रणथंभौर के वीसलदेव चौहान का वंशज था (टॉड, २, ४४७ और टिप्पणी; कलकत्ता संस्करण, २,४६२ और टिप्पणी)। कवि सूरदास उसके वंशज थे और वह जगात गोत्र का था (संख्या ३७ में सूरदास की वंशावली का विवरण देखिये)। वह पृथ्वीराज के दरबार में आया और उसका मंत्री तथा कवीश्वर नियुक्त हुआ। उसकी रचनाओं का संग्रह मेवाड़ के अमरसिंह (परिचय-संख्या १६१, राज्यकाल १५६७-१६२१ ई०, देखिये टॉड, १, भूमिका पृ० १३, पृ० ३५० और टिप्पणी; कलकत्ता संस्करण, भाग १, भूमिका पृ० १२, पृ० ३७१ और टिप्पणी) ने १७ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में कराया। उसी समय संभवतः उन्हें अंशतः शुद्ध करके वर्तमान साँचे में ढाला गया जिसके कारण एक प्रस्थापना सामने आई (देखिये जे० ए० एस० बी०, १८८६, पृ० ५ पर कविराज श्यामलदास का 'चंद वरदायी के महाकाव्य की प्राचीनता और प्रामाणिकता' पर लेख जिसमें हमारे कवि पर प्रहार किया गया है तथा उसके प्रतिवाद में 'चंद वरदायी के पृथ्वीराज रासो की संरक्षा' शीर्षक पुस्तिका जिसके लेखक पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या हैं और जो सन् १८८७ ई० में बनारस मेडिकल हाल प्रेस से मुद्रित हुई) कि रासो आधुनिक जाल है। टॉड के अनुसार कवि के काल का यह पूर्ण इतिहास है (टॉड, १, २५४; कलकत्ता संस्करण, १,२७३) जिसमें ६९ पुस्तकें हैं तथा १००००० पद जिनमें से उन्होंने ३०००० पदों का अनुवाद किया जितने कोई अन्य यूरोपीय विद्वान् अनूदित करने में सफल नहीं हो सका। चंद और पृथ्वीराज दोनों ११९३ ई० में मुस्लिमों से युद्ध करते हुए मारे गये थे। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कवि सूरदास उनके एक वंशज थे और शार्ङ्गधर (संख्या ८) भी उन्हीं के कुल में हुए जो हम्मीर रायसा और हम्मीर काव्य के प्रणेता कहे जाते हैं। (टॉड, २, टिप्पणी ४५२; कलकत्ता संस्करण, २, टिप्पणी ४९७)। प्रिथीराज रायसा का कुछ अंश बीम्स महोदय ने संपादित किया है और कुछ डा० हार्नले ने संपादित और अनुवादित। इस कार्य में अत्यधिक कठिनाई होने के कारण दोनों विद्वान्

अधिक प्रगति नहीं कर सके। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने संपूर्ण काव्य का आलोचनात्मक संपादन प्रारंभ किया है और उसके दो समय बनारस के मेडिकल हाल प्रेस से सन् १८८७ ई० में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस काव्य का महोबा खंड जो संभवतः जाली है या चंदकृत नहीं है एक बार से अधिक हिंदी में प्रकाशित हो चुका है (टॉड, ६१४ और टिप्पणी; कलकत्ता संस्करण, १,६४८ और टिप्पणी)। यह आल्हा ऊदन (जिन्हें पूर्वी हिन्दुस्तान में प्रचलित परंपरा में आल्हा रूदल कहते हैं) नामक प्रसिद्ध वीरों के विषय में है तथा इसका वह अनुवाद जिसकी सत्यता की जाँच करने में मैं असमर्थ हूँ, फ़तेहगढ़ के ठाकुरदास का किया हुआ है और इसका उल्लेख आल्हखंड के नाम से कवि जगनिक (संख्या ७) शीर्षक के प्रसंग में कर दिया गया है। यद्यपि उसमें भी उन्हीं वीरों का वर्णन है। गार्सां द तासी के (इस्तवार इत्यादि, १,१३८ के) अनुसार राबर्ट लेंज नामक एक रूसी विद्वान् ने चंद के काव्य के एक भाग का अनुवाद किया था जिसे सन् १८३६ ई० में सेन्ट पीटर्सबर्ग पहुँचकर वह प्रकाशित करना चाहता था परन्तु इस विशारद की असामयिक मृत्यु के कारण पूर्वी भाषाओं और साहित्य के अनुरागी उसका कौशल देखने से वंचित रह गये। कर्नल टॉड ने इसके एक चरित्र का अनुवाद 'संजोगता नेम' के नाम से (टॉड, १,६२३ और टिप्पणी; कलकत्ता संस्करण, १,६५७ और टिप्पणी) एशियाटिक जर्नल, भाग २५, पृ० १०१-१०२, १६७-२११, २७३-२८६ पर प्रकाशित किया है।

कवि के ग्रंथ का अध्ययन करने के बाद मैं उसके काव्य-सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के लिये अनुप्राणित हो गया हूँ। परन्तु राजपूताना की विभिन्न बोलियों से अपरिचित कोई व्यक्ति इसे आनंद से पढ़ सकता है, इसमें मुझे सन्देह है। यह चाहे कुछ भी हो परन्तु यह काव्य भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि अभी तक प्राप्त सामग्री को देखते हुए योरोपीय अन्वेषकों के सामने अर्वाचीन प्राकृतों और प्राचीनतम गौड़ीय रचनाओं के बीच की कड़ी के रूप में केवल यही मात्र है। चंद के वास्तविक पाठ न होने पर भी हमें उसकी रचना में गौड़ीय साहित्य के अति प्राचीन अभिज्ञ निदर्शन प्राप्त होते हैं जो शुद्ध अपभ्रंश शौरसेनी प्राकृत रूपों से भरे पड़े हैं।

गार्सां द तासी के अनुसार इस कवि ने जैचन्द्र प्रकाश या जयचन्द्र का इतिहास नामक एक ग्रंथ और लिखा है जिसकी भाषा रायसा सदृश है तथा जिसके उल्लेखकर्त्ता वार्ड महोदय हैं।

जेम्स मोरिसन

वियना ओरियंटल जर्नल, भाग ७, १८९३ के पृ० १८८-९२ में श्री जेम्स मोरिसन ने 'सम अकाउंट आव दि जीनिओलॉजीज़ इन दि पृथ्वीराज विजय' शीर्षक अपने लेख में चंद वरदायी और पृथ्वीराज रासो के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"पृथ्वीराज के इतिहास के विषय में अन्य प्रचलित प्रमाणों को कतिपय शब्दों में समाप्त किया जा सकता है। उनके और उनके वंश के लिये सुप्रसिद्ध तथा सूचना का प्रधान स्रोत चंद वरदायी कृत-प्राचीन हिंदी का प्रिथ्वीराज रासौ है। कुछ समय से उक्त ग्रंथ

की चंद द्वारा रचना की प्रामाणिकता तथा सम्पूर्ण काव्य के मूल्यांकन को लेकर गंभीर शंकायें उठी हैं। जोधपुर के मुरारधन शंका उठाने वालों में प्रथम हैं जिन्होंने प्रो० बूलर को अपने कारण बताते हुए (जर्नल बाम्बे ब्रांच आव दि आर० ए० एस०, १८७६) उल्लेख किया है कि चंद भी अपने स्वामी पृथ्वीराज सहित युद्ध में मारा गया था फिर भी चौहान नरेश के पुत्र और उत्तराधिकारी के युद्धों का विस्तृत वर्णन उसी ने लिख रक्खा है। चंद की तथाकथित रचना में एक बड़ी संख्या में फ़ारसी शब्दों का मेल भी उसकी प्राचीनता में संदेह का एक कारण है।

१८८६ में कविराज श्यामलदास ने पृथ्वीराज रासो के उल्लेखों तथा संवतों की सूक्ष्म जाँच की (जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, १८८७, पृ० ५) और उन्हें निराधार तथा अशुद्ध सिद्ध किया।"

प्रो० बूलर

प्रोसीडिंग्ज़ आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, जनवरी-दिसंबर १८९३, पृ० ८३ पर प्रो० बूलर द्वारा लिखे गये एक पत्र के निम्न अंश को भाषा-वैज्ञानिक मंत्री द्वारा सुनाये जाने का उल्लेख है—

"पृथ्वीराज रासौ के प्रश्न पर एकेडेमी के लिये मैं एक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहा हूँ और मुझे उनका समर्थन करना पड़ेगा जो इसे जाली कहते हैं। मेरे एक शिष्य श्री जेम्स मोरिसन ने पृथ्वीराज विजय नामक संस्कृत ग्रंथ का अध्ययन कर लिया है जो मुझे १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुआ था तथा उन्होंने सन् १४५०-७५ ई० लिखित जोनराज की टीका भी पढ़ ली है। पृथ्वीराज विजय का कर्ता निःसंदेह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह संभवतः काश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पंडित था। उसका लिखा हुआ चौहानों का वृत्तांत चंद के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०१० तथा वि० सं० १२२५ (जे० ए० एस० बी०, भाग ५५, जिल्द प्रथम, १८८६, पृ० १५ और टिप्पणी) के शिलालेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है वही उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें दी हुई घटनायें दूसरे प्रमाणों अर्थात् मालवा और गुजरात के शिलालेखों से मिल जाती हैं।

उक्त पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के विषय में लिखा है—उसका पिता अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचन देवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राजकन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से बड़े का नाम किसी ग्रंथ या शिलालेख में लिखा नहीं मिलता और छोटे का विग्रहराज (वीसलदेव) था।

ज्येष्ठ पुत्र ने जिसका नाम किसी ग्रंथ या शिलालेख में नहीं मिलता, अपने पिता को मार डाला। इस विषय में कवि लिखता है—'उसने अपने पिता की वैसी ही सेवा की जैसी परशुराम ने अपनी माता की और अपने पीछे दीपक की बत्ती के समान दुर्गन्ध छोड़ गया।' अर्णोराज के बाद उसका पुत्र विग्रहराज और उसके अनंतर उसका पुत्र अपर गांगेय

(अमर गंगू) राजा हुआ। फिर उक्त पितृघाती के पुत्र पृथ्वीभट या पृथ्वीराज (द्वितीय) को गद्दी मिली। पृथ्वीराज के बाद मंत्रियों ने सोमेश्वर को राज्य-सिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश में बिताया था और अपने नाना जयसिंह से शिक्षा पाई थी। सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर ज़िला) की राजधानी त्रिपुर में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूर देवी से विवाह किया जिससे उक्त काव्य के चरित्रनायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पश्चात् सोमेश्वर का शरीरान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की अल्पवयस्कता में अपने मंत्री कादंब वाम (कादंबवास) की सहायता से कर्पूर देवी राज्यकार्य चलाने लगी।

उक्त काव्य में कहीं इस बात का नाम निशान नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद ले लिया था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहासकारों ने भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते हैं। उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से जिन्होंने उसे उसके राज्य में कुछ अधिकार दे रक्खे थे, अजमेर में मारा गया।

मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है और मैं समझता हूँ कि चंद के रासो का प्रकाशन बंद कर दिया जाय तो अच्छा होगा। वह ग्रंथ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। पृथ्वीराज-विजय के अनुसार पृथ्वीराज के वंदिराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चंद वरदायी।"

प्रो० बूलर सदृश विद्वान् के उपर्युक्त पत्र की प्रतिक्रिया शीघ्र ही हुई। इसी वर्ष सन् १८९३ ई० की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की प्रोसीडिंग्स पृ० ११९ पर पृथ्वीराज रासो के संपादक और अंग्रेज़ी अनुवादक श्री ग्राउज़ महोदय का मृत्यु संवाद सोसाइटी को देते हुए माननीय विद्वान् श्री जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन जो चंद की प्रशंसा में बहुत कुछ लिख चुके थे, अपना मत परिवर्तित कर चुके थे। देखिये—

"....पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने अपने को प्रधानतः चाँद बरदायीरचित प्रिथिराज रायसा के उचित संपादन कार्य की सहायता में जिसे सोसाइटी ने कुछ समय पूर्व उठाया था, लगा रखा था। इसके संबंध में उनका अंतिम लेख १८७८ ई० में प्रकाशित हुआ था। अपने अन्वेषण के बीच में इस काव्य के अनुवाद और वैज्ञानिक संपादन के सिद्धांतों को लेकर श्री जॉन बीम्स महोदय से उनका विवाद भी छिड़ा था। दोनों विद्वानों के तर्क जर्नल में क्रमशः प्रकाशित होते रहे हैं जिनका अब थोड़ा साहित्यिक मूल्य मात्र रह गया है। क्योंकि यह बात निश्चित हो चुकी है कि उक्त रचना आधुनिक जाल है।"

सहायक-ग्रन्थ

अप्पय दीक्षित : कुवलयानंद, बंबई (सं० १६५२)

अब्दुल रहमान : संदेशरासक, संपादक, मुनि जिन विजय तथा हरिवल्लभ भयाणी (१६४५ ई०)

आनंदवर्धन : ध्वन्यालोक

इनसाइक्लो पीडिया ब्रिटैनिका भाग ११, १४वाँ संस्करण

ई० वर्नन अर्नल्ड : वेदिक मीटर (१६०५)

ईश्वरचन्द्र शास्त्री : चाणक्य राजनीति शास्त्रम् (१६२१ ई०)

एच० डी० वेलणकर : कविदर्पणम् (ए० बी० ओ० आर० आई० १६३४-३५, खंड १६, भाग १-२, पृ० ४४-८६, १६३५-३६, खंड १७, भाग १, पृ० ३७-६०)

एच० डी० वेलणकर : गाथा लक्षणम् नंदिताढ्य (ए० बी० ओ० आर० आई० १६३२-३३ खंड १४, भाग १-२, पृ० १-३८)

एफ० स्टेंगस : पर्सियन इंग्लिश डिक्शनरी (१६३०)

ए० बी० एम्० हबीबुल्ला : दि फ़ाउन्डेशन आव मुस्लिम रूल इन इंडिया (१६४५ ई०)

एल० आल्सडोर्फ : अपभ्रंश स्टडियन लिपज़िग (१६३७ ई०)

एल० आल्सडोर्फ : कुमारपाल प्रतिबोध, हंबर्ग (१६२८ ई०)

कन्हैयालाल पोद्दार : काव्यकल्पद्रुम (सं० १६६१)

कामताप्रसाद गुरु : हिंदी व्याकरण (सं० १६८४)

कालिदास : अभिज्ञान शाकुंतल

कीथ : हिस्ट्री आव दि संस्कृत लिटरेचर

केलाग : ए ग्रामर आव दि हिंदी लैंग्वेज (१८६३ ई०)

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ३ (१६२८ ई०) भाग ४ (१६३७ ई०)

कौटिल्य : अर्थशास्त्र, संपादक, गणपति शास्त्री, (१६२४ ई०)

गौरीशंकर हीराचंद ओझा : कोशोत्सव स्मारक संग्रह (सं० १६८५)

गौरीशंकर हीराचंद ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (१६२८ ई०)

चंद छंद वरणन की महिमा : रायल एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल की हस्तलिखित प्रति, राजस्थानी संग्रह संख्या ५१३-३२

चंद वरदायी : पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा (१६२८ ई०)

जगदीशसिंह गहलोत : राजपूताना का इतिहास, भाग १, (सं० १६६४)

जगन्नाथप्रसाद 'भानु' : काव्य प्रभाकर

जगन्नाथप्रसाद 'भानु' : छंदः प्रभाकर (१६३६ ई०)

जयकृष्ण : रूप दीप पिंगल (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल के संस्कृत सेक्शन की पांडुलिपि नं० जी० ६६८७-६-ए-६)

जयदेव : चंद्रालोक, बंबई, (१६२३ ई०)

जयदेव : रतिमंजरी

जयानक : पृथ्वीराज विजय, संपादक, एस० के० बेलवेलकर, बिबलिओथेका इंडिका, एन० एस० नं० १४००

जान बीम्स : स्टडीज़ इन दि ग्रामर आव चंद वरदायी (जे० आर० ए० एस० बी०, खंड ४२, भाग १, १८७३ ई०)

टेस्सिटरी : नोट्स आन दि ग्रामर आव दी ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी

डब्ल्यू गाइगर : पाली लिटरेचर ऐंड लैंग्वेज, अनुवादक बी० के० घोष

दंडी : काव्यादर्श, लाहौर

दुर्गाशंकर शास्त्री : गुजरात नो मध्यकालीन भारतीय इतिहास (१६३७ ई०)

धणपाल : भविसत्तकहा, जाकोबी (१६१८ ई०)

धीरेन्द्र वर्मा : हिंदी भाषा का इतिहास

पंडितराज जगन्नाथ : रस गंगाधर, संपादक, म० म० गंगाधर शास्त्री (१६०३ ई०)

पिंगलाचार्य : पिंगल छंद सूत्रम् (बिबिलिओथेका इंडिका, एन्० एस० नं० २३०, २४८ तथा ३०७, द एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, १८७४)

पुष्पदंत : हरिवंश पुराण, संपादक, एल० अल्सडार्फ (१६३६ ई०)

प्रबंध कोष

बलभद्र विलास

बीजोलियन इंसक्रिप्शन्स, जे० आर० ए० एस० बी०, भाग ५५, पार्ट १, पृ० ४०

बेवरिज : मैम्वायर्स आव बाबर

ब्रजेश्वर वर्मा : सूरदास (१६४६ ई०)

भविष्य पुराण

भामह : काव्यालंकार, बनारस (१६२८ ई०)

भोजराज : सरस्वती कंठाभरण, निर्णय सागर प्रेस (१६२५ ई०)

मम्मट : काव्य प्रकाश, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २००३)

मिनहाजुस्सिराज : तबक़ात ए नासिरी, दि हिस्ट्री आव इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग ३ (१८६६ ई०)

मुनिरतनचंद्र : अर्द्ध मागधी डिक्शनरी

मुनिराज विद्याविजय : सूरीश्वर और सम्राट अकबर (सं० १६८०)

मैकडोनेल और कीथ : वेदिक इंडेक्स (१६१२ ई०) दो भाग

रत्नशेखर सूरि : छंदःकोशः, संपादक, एच० डी० वेलणकर, जे० यू० बी० १६३३-३४ खंड २, भाग ३, नवंबर पृ० ५४-६१ तथा परिशिष्ट

रमाशंकर त्रिपाठी : महाकवि चंद के वंशधर, सरस्वती (नवंबर, १६२६ ई०)

रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास (सं० २००२)
रुद्रट : काव्यालंकार
लार्ड ईगर्टन : ए डिसक्रिप्शन आव दि इंडियन ऐंड ओरियन्टल आर्मर (१८९६ ई०)
लेडेन तथा असंकाइन : मैम्वायर्स आव बाबर
वाग्भट (आयुर्वेद)
वाग्भट : वाग्भटालंकार (मोतीलाल बनारसीदास)
वामन : काव्यालंकार सूत्र, बनारस (१९०७ ई०)
वाल्मीकि : रामायण
विरहांक : वृत्तजाति संमुच्चयः, संपादक, एच० डी० वेलणकर, (जे० बी० बी० आर० ए० एस०, एन्० एस० खंड ५, १९२९ पृ० ३४-६४)
विलियम इरविन : दि आर्मी आव दि इंडियन मुगल्स (१९०३ ई०)
विश्वनाथ पंचांगम्, काशी
विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, सं० काणे, निर्णय सागर प्रेस (१९३३ ई०)
वृत्त रत्नाकर
वेदव्यास : अग्नि पुराण, पूना
वेदव्यास : महाभारत, संपादक, रामचंद्र शास्त्री (१९३१) दो भाग
वैशंपायन : नीति प्रकाशिका, संपादक, गुस्तव आपर्ट (१८८२ ई०)
श्रीमद्भगवद्गीता
श्रीमद्भागवत्
सी० वूलनर : इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत (१९२८ ई०)
सी० एम्० घोष : प्राकृत पैंगलम् (एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल १९०२ ई०)
सी० बी० वैद्य : हिस्ट्री आव दि मेडीवल इंडिया (१९२६ ई०)
सुजंन चरित्र
सूरजचंद : साहित्य लहरी
स्वयंम्भू : स्वयंम्भूच्छंदः संपादक, एच० डी० वेलणकर (जे० बी० बी० आर० ए० एस०, एन्० एस० १९३५, खंड २, पृ० १८-५८ तथा जे० यू० बी० १९३६-३७, खंड ५, भाग ३, पृ० ४१-९३)
हम्मीर महाकाव्य : प्रकाशक जे० एस० किर्तने
हरप्रसाद शास्त्री : प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिप्ट्स आव बार्डिक क्रानिकल्स, रा० एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल (१९१३ ई०)
हर विलास सारदा : पृथ्वीराज विजय, (जे० आर० ए० एस० बी० १९१३ ई०)
हसन निज़ामी : ताजुल-म-आसिर, दि हिस्ट्री आव इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग ३ (१८६९ ई०)
हार्नले : कम्परेटिव ग्रामर आव दि गौडियन लैंग्वेजेज़ (१८८० ई०)
हिंदी शब्द सागर

हेमचंद्र : काव्यानुशासनम्, संपादक, रसिकलाल पारिख और रामचंद्र अथवले (१६३८ ई०) दो भाग

हेमचंद्र : छंदोऽनुशासनम्, संपादक, एच० डी० वेलणकर, (अध्याय ४-५, जे० बी० बी० आर० ए० एस०, एन्० एस०, खंड १६, १६४३ पृ० २७-७४ तथा अध्याय ६-७ वही, खंड २०, १६४४ पृ० १-४४)

हेमचंद्र : द्वयाश्रय

संकेताक्षर

अ० = अरबी

उ० = उर्दू

क० द० = कवि दर्पणम्

गा० ल० = गाथा लक्षणम्

छं० = छंद

छं० को० = छंदःकोश

छंदो० = छंदोऽनुशासनम्

जे० आर० ए० एस० बी० = जर्नल आव् दि रायल सोसाइटी आव् बंगाल

तु० = तुर्की

ना० प्र० स० = नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

पी० आर० ओ० एस० बी० सी० = प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इनसर्च आवमैनुस्क्रिप्ट्स आव बार्डिक क्रानिकल्स १९१३. रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, म० म० हरप्रसाद शास्त्री

पृ० = पृष्ठ

पृ० रा० = पृथ्वीराज रासो

प्रा० = प्राचीन

प्रा० पै० = प्राकृत पैंगलम्

फा० = फ़ारसी

ब० व० = बहुवचन

म० भा० स० = मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरीशंकर हीराचंद ओझा

म० स० = महोबा समय

रु० दी० पिं० = रूप दीप पिंगल

वि० वि० = विशेष विवरण

वृ० जा० स० = वृत्त जाति समुच्चयः

सं० = संस्कृत

स० = समय

स्वं० छं० = स्वयंम्भूच्छंदः

हिं० = हिंदी

स्थाननामानुक्रमणिका

ग्रंथनामानुक्रमणिका

व्यक्ति तथा वस्तुनामानुक्रमणिका

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति			पृष्ठ	पंक्ति		शुद्ध
१	२१	वर्णानुक्रम	वर्णनक्रम	,,	२२	कम्मा	कै कम्मां
२	१	पट्टा	पट्टी	६६	१८	बेल	षेल
१०	६	कमार	कगार		,,	डिमरू	डिभरू
,,	७	स्त्री	रत्तौ	,,	२२	मा	मो
११	२६	ग्रसै	ग्रसै	६७	२९	साथ	माथ
१४	१२	११७	१२५	६९	१२	हम	इम
,,	३५	नम्र	नग्र		३३	अंग	अगं
१८	१९	(छं० १७२	(छं० १८७२	७०	१९	पस्तर	परत्तर
१९	१	यज्ञ	यश	७४	४	हय	इय
२३	२८	घान	घन	७५	३०	गंभार	गंमार
२५	७	देइ	दोइ	७६	१७	हम	इम
,,	१२	तुरिन	तुरिय	,,	२०	मर	भर
,,	२९	सरन	भरन	७८	९		
२६	१	सतियों	सखियों	,,	१९	हथ्थह	
,,	३२	दोनौ	दीनौ	,,	२०	तीन	तोन
२९	१	हेमकुमार	हेजमकुमार	७९	१८	मषन	मवन
३१	१९	वरंत	धरंत	,,	२७	,,	,,
,,	३२	अंबजा	अंबुजा	८३	२५	हमारा	उनका
,,	२९	अपने	अप्पै	९३	६	ढिल्लषं	ढिल्लवं
३४	८	हम्मीह	हम्मीरह	९४	८	अमृत सुमृत	अभृत सुभृत
३५	१०	जू	जौ	९४	२६	सुभ्र	सुग्र
,,	,,	सुमत	सुभत	९९	१	गतनु	गतेनु
३६	५	कियौ	बियौ	११०	४	द्रघान	द्रप्पन
,,	८	हम	इम	११३	१	२०	२०४
३७	११	५२	४२	,,	१०	लुट्यौ	तुट्यौ
३९	१	घंभ	घंम	११६	७	स० ६१	२. स० ६१
,,	६	आकष	आकर्षै	११८	३४	लम्यौ	लभ्यौ
,,	२५	के पास	कै मास	११९	११	अत्ताताह	अत्तताइ
४०	४	ग्रहि ग्रासै	ग्रहि ग्रासै	१२५	१	घम्म	ध्रम्म
,,	२०	नंच	नंचौ	,,	२३	विरचित	वीरोचित
४३	२	पृ० २८०	पृ० २८०-१	१२६	८	पानी	दानी
५०	२८	हह	इह	१२८	५	फुमि	फुकि
५२	६	ग्ररइ	करइ	१३०	१४	मन	नन
५३	८	मोरा	भोरा	,,	२४	अलथं	अलधं
,,	३०	मजाय	मजाम	१३३	१८	रोमंत	रोमंच
५६	४	घान	धाम	१३५	२	पथ्थरी	पध्धरी
,,	५	ग्रथ	पथ	१३६	२२	हवकहि	हक्कहि
५७	१३	कोहिथ्थ	बोहिथ्थ	,,	३५	सुपट्टं	सुथट्टं
५८	,,	व्रक्क	न्रक्क	१३७	२२	उत्तरी	उत्तरै
६०	१२	रिब्ब	रिष्ब	१३९	२५	करवकी	करक्की
६२	२२	हय	इय	१४५	२६	पट्ट	भट्ट
६३	३३	वाहनी	षाहनी	१५३	६	अम्राज	अग्राज
६४	३२	घर	वर	१६०	१	छह्यि	
६५	१६	सुब्बा	ग्रब्बां	१६५	१५		बन्यौ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१	६	ग्रह	ग्रह
१८२	४	ग्रमुजा	ग्रमुजा
१८५	२	बरनी	बरनौं
१८६	६	रष्ष	रष्षै
,,	८	द्रयाव	दयाव
१८९	३	जुध	जुधं
१९२	६	त्नीर	कीर
,,	२९	भाव	भावे
१९३	२५	छुटि	छुटि
१९५	८	रंक	रंग
१९७	२८	कल्ष्या	कल्प्या
१९८	७	रुन्नो	रुन्नौ
२०२	३०	हारा	द्वारा
२०४	३०	रप्षै	रष्षै
२०७	३०	१०१	१४०१
२१७	२३	२२-४	२३-४
२१८	२२	चंद	छंद
२१९	१५	सइ	साइ
२२१	२९	१०७-२०	१०८-२०
२२३	२९	बन	बिन
२२४	२	८५,	८५-७,
,,	२	३२५	३२६
,,	२०	५२८	५१८
२२८	१४	ग्रह	ग्रह
२३१	५	३०२	१०२
२३२	२०	अतिशवकरी	अतिशक्करी
,,	२४	गा०	गा०
२३३	७	सम	सस
	१७	३६६७३	३६६-७३
२३५	१	+४+४+	+४+४+४+
२३७	२	कुरु	गुरु
	५	उथप्षनं	उथप्पनं
	२०		
२३८	३०	(>चंद्रायना)	(>चंद्रायण)
२३९	१	११	३१
,,	३	२०७	२२७
,,	६	चन्द्रायण	चान्द्रायणा
२४१	२३	विनथ	विनय
२४३	११	त्रिसि	निसि
,,	१२	सुधान	सुथांन
,,	१३	चहु	चिहु
,,	२०	शास्त्र	सास्त्र
२४५	२	छं० ५१ सं० १५५६	छं० १५५१ स० ६६,
,,		छं० स० ६५४१६६	छं० १५५४ स० ६६

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४६	१८	चठि्डय	चढि्ढय
२४८	२३	११९	११४
२४९	२३	अम्र	अग्र
२५१	२०	रिड्डाम	रिड्डुक
,,	३१	षढम	पढम
२५२	२५	सुम्यौ	सुभ्यौ
२५५	२२	म	भ
२५६	१२	७२	७३
,,	३३	समुद्र	समुद
२५८	१७	मणिग्रं	भणिग्रं
२६०	६	कहंनैं	कहंनं
,,	९	द्वादशावृत्ति	द्वादशाक्षरावृत्ति
२६१	२६	पायौ	पायै
२६८	२७	स्त्रग्विणी	स्रग्विणी
२७१	१६	छं०	पृष्ठ
२७२	२२	भांति	भंति
२७७	१०	मरि	मति
२७८	४	दिष्यौ	दिष्यौ
२७९	१६	रंगम	रंगन
२८०	१०	सुरतिन	सुरतित
२९३	११	रिध्य	रिदय
२९५	१	दप्थ	दप्य
२९६	१७	लन्न	वन्न
३००	३	तुंहि	तुहि
३०१	१६	१२	१-२
३०२	५	मांह	मांही
३१२	२०	विंत्ता करै	वित्तां करे
,,	२८	मर	भर
३१४	११	दिस	दिए
३१६	२८	६२	४२
३१८	१९	विफस्यौ	विफर्‌यौ
३१९	२३	टगा	टग्ग
३२०	२१	स० ९५	स० ९
,,	३१	है	औ
३२१	१६	बलाह	बलाइ
३२३	१९	जरकम	जरकस
३२७	१३	कालवूंत स	कालबूतं सु
३२९	१५	Indian	India
३३१	११	आर	ओर
३३५	२६	५१	४१
३३६	१८	अ ३	अ०
३४२	२२	१००	२००
३४४	२४	मोपति	भोपति
३४५	३०	लोन>लवण	लोन>लवण